प्रस्तुत पुस्तक न केवल भारतीय विश्वविद्यालयों की बी. ए. व बी काम परीक्षाओ और भारतीय बैंकर्स संस्थान की विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए एक पाठ्य पुस्तक के रूप में लिखी गई है, अपितु बैंकिग उद्योग के त्वरित विकास व विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए इसे एक सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पुस्तक मे बैंकिग उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न भारतीय अधिनियमों, देशी विदेशी न्यायालयीय निर्णयों, भारतीय बैंकिग जगत की अद्यतन प्रवृत्तियों एवं व्यावहारिक बैंकिग के मूर्धन्य विद्वानो के अभिमतो को भी समावेशित किया गया है।

मूल्य : 48.00

बैंकिंग-विधि एवं व्यवहार

बैंकिंग-विधि एवं व्यवहार

डा. बी. पी. शर्मा
एम.एल. वर्मा
प्रो. एच. आर. वर्मा

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1984

BANKING VIDHI AVAM VYAVAHAR

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर
उपलब्ध कराये गये कागज से निर्मित।

मूल्य : 48.00

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-302 004

मुद्रक :
राष्ट्र उद्योग प्रिन्टर्स
दीनानाथ जी का रास्ता
चांदपोल बाजार, जयपुर।

प्राक्कथन

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपने जीवन काल के दस वर्ष पूरे कर चुकी है। 15 जुलाई 1983 को इस संस्था ने ग्यारहवें वर्ष मे प्रवेश किया है। इस अल्पावधि मे संस्था ने विभिन्न भाषाओं के लगभग 300 मानक ग्रन्थों का हिन्दी में प्रकाशन कर मातृभाषा के माध्यम में विश्वविद्यालय के छात्रों व विषय विशेष के पाठकों के समक्ष भाषा वैविध्यता की कठिनाई दूर करने मे अपना अकिंचन योगदान दिया है।

अकादमी के कई प्रकाशन द्वितीय व तृतीय आवृत्तियों मे छप चुके हैं। इसके लिये हम सुयोग्य पाठकों व लेखकों के अत्यन्त ऋणी हैं।

प्रकाशन जगत में मानक ग्रन्थों का कम मूल्य पर प्रकाशन एक ऐसा प्रयत्न है जिससे विश्वविद्यालय स्तर एवं विषय विशेष के विशेषज्ञों के ग्रन्थ आसानी से हिन्दी मे उपलब्ध हो सकें। प्रयत्न यह रहा है कि अकादमी शोध ग्रन्थों का प्रकाशन अधिकाधिक करे इससे लेखक एवं पाठक दोनों ही लाभान्वित हो सकें तथा प्रामाणिक विषय वस्तु पाठकों को सुलभ होती रहे। लेखक को भी नव सृजन के लिए उत्साह व प्रेरणा मिलती रहे जिससे प्रकाशन के अभाव मे महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियां अप्रकाशित ही नहीं रह जाये। वास्तव मे हिन्दी ग्रन्थ अकादमी इसे अपना उत्तरदायित्व समझती रही है कि दुर्लभ विषय ग्रन्थों का ही प्रकाशन किया जाय। हमे यह कहते गर्व होता है कि अकादमी द्वारा प्रकाशित कतिपय ग्रन्थ केन्द्र एव अन्य राज्यों के बोर्ड व संस्थानों द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं और इनके विद्वान लेखक सम्मानित हुए हैं।

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय की अनुप्रेरणा व सहयोग हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को स्वरूप ग्रहण करने से लेकर योजनाबद्ध प्रकाशन कार्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। राज्य सरकार ने इस अकादमी को आरम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग देकर पल्लवित किया है।

अकादमी अपने भावी कार्यक्रमो मे राजस्थान से सम्बन्धित दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य को प्रमुखता देने जा रही है जिससे विलुप्त कड़ियां जुड़ सकें। यह भी प्रयत्न है कि तकनीकी एव आधुनिकतम विषय वस्तु के ग्रन्थ योजनाबद्ध प्रकाशित हो जिससे सम्पूर्ण विषय वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने मे छात्रों को किसी तरह का अभाव अनुभव नहीं हो।

'बैंकिंग-विधि एवं व्यवहार' पुस्तक मूलतः स्नातक स्तर के छात्रो एवं भारतीय बैंकर्स संस्थान की विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं को ध्यान मे रखते हुए लिखी गई है। बैंकिंग-उद्योग का विकास तथा विस्तार जिस गति से हो रहा है, उसको लक्ष्य कर इसमे विषय-सम्बद्ध विभिन्न अधिनियमों देश-विदेश, के न्यायालयीय निर्णयों, बैंकिंग जगत् की उदात्त प्रवृत्तियो एवं मूर्धन्य विद्वानो के अभिमतों को भी समाविष्ट किया गया है। हमे आशा है कि पुस्तक विषय मे रुचिशील पाठकों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

हम इसके लेखक-गण सर्वश्री डा. बी. पी. शर्मा, जी. एम. एस. शर्मा व प्रो. एच. आर शर्मा, समीक्षक डा. एस. एन. मेहरोत्रा, आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी एवं भाषा-सम्पादिका डा. मोहिनी शर्मा के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभार प्रकट करते हैं।

शिवचरण माथुर

मुख्यमंत्री, राजस्थान सरकार
एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

(डा.) पुरुषोत्तम नागर

निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

विषय सूची

अध्याय | पृष्ठ सं.

बैंक की परिभाषा और कार्य
(Definition & Functions of Banker)

बैंक की परिभाषा (Definition of Banker)

बैंकिंग उद्योग एक विकासमान उद्योग है। बैंकों ने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने ग्राहको को सेवाएं प्रदान की हैं और उन्हें संतुष्ट करने के लिए अपने कार्य-कलापो मे निरन्तर विस्तार किया है। इस प्रकार की प्रगतिशील सस्थाओं को परिभाषाओ के बन्धन मे बांधना लगभग असम्भव है क्योकि आज जिस परिभाषा को सांगोपांग माना जायेगा कल वही परिभाषा एकांगी बन जाएगी। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति सालमन के कथन को उद्धृत करना समीचीन होगा। उनके अनुसार बैंक-व्यवसाय को कानूनी परिभाषा द्वारा नहीं बांधा जा सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध वास्तविक व्यवहार से है। इस अजेय कठिनाई के बावजूद भी बैंकिंग व्यवसाय की प्रकृति पर प्रकाश डालना उपादेय व उचित जान पडता है।

बैंकिंग की परिभाषा (Definition of Banking)—देश-विदेश के विभिन्न अधिनियमो में 'बैंक' शब्द की निम्नलिखित प्रकार से परिभाषा दी गयी है :

(i) भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम 1881 की धारा 31 के अनुसार, "बैंकर की तरह कार्य करने वाले व्यक्तियों एवं डाक विभाग के बचत अधिकोषो (Banks) को बैंकर कहा जाता है।"[1]

(ii) भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 की धारा 5 (C) के अनुसार, "बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है जो भारत मे बैंकिंग का व्यवसाय करती है।" इस अधिनियम की धारा (B) के अनुसार बैंकिंग का आशय "उधार देने अथवा विनियोग करने के उद्देश्य से जनता से निक्षेप के रूप मे धन राशियां स्वीकार करना, जो मांगने पर प्रतिदेय हो अथवा अन्यथा प्रतिदेय हो तथा चैक, ड्राफ्ट, आदेश के द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार वापिस निकाला जा सके।"[2]

(iii) जापानी बैंकिंग अधिनियम के अनुसार, "उन संस्थाओं को बैंक कहा जाता है जो ऋण देने व ऋण लेने का काम करती हैं।"

---

1. "Banker includes any person acting as a banker and any post-office saving bank" —Indian Negotiable Instrument Act, 1881 (Sec 3)

2. Banking means "the accepting for the purpose of lending or investment of deposits of money from the public, repayable on demand or otherwise and withdrawable by cheque draft, order or otherwise."—Indian Banking Regulation Act, 1949 [Section 5 (B)]

1

बैंक की परिभाषा और कार्य
(Definition & Functions of Banker)

बैंक की परिभाषा (Definition of Banker)

बैंकिंग उद्योग एक विकासमान उद्योग है। बैंकों ने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने ग्राहकों को सेवाएं प्रदान की हैं और उन्हें संतुष्ट करने के लिए अपने कार्य-कलापों मे निरन्तर विस्तार किया है। इस प्रकार की प्रगतिशील संस्थाओं को परिभाषाओं के बन्धन मे बाँधना लगभग असम्भव है क्योंकि आज जिस परिभाषा को सागोपांग माना जायेगा कल वही परिभाषा एकांगी बन जाएगी। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति सालमन के कथन को उद्धृत करना समीचीन होगा। उनके अनुसार बैंक-व्यवसाय को कानूनी परिभाषा द्वारा नहीं बांधा जा सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध वास्तविक व्यवहार से है। इस अजेय कठिनाई के बावजूद भी बैंकिंग व्यवसाय की प्रकृति पर प्रकाश डालना उपादेय व उचित जान पड़ता है।

बैंकिंग की परिभाषा (Definition of Banking)—देश-विदेश के विभिन्न अधिनियमों में 'बैंक' शब्द की निम्नलिखित प्रकार से परिभाषा दी गयी है :

(i) **भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम 1881 की धारा 31 के अनुसार,** "बैंकर की तरह कार्य करने वाले व्यक्तियों एवं डाक विभाग के बचत अधिकोषों (Banks) को बैंकर कहा जाता है।"[1]

(ii) **भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 की धारा 5 (C) के अनुसार,** "बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है जो भारत में बैंकिंग का व्यवसाय करती है।" **इस अधिनियम की धारा (B) के अनुसार** बैंकिंग का आशय "उधार देने अथवा विनियोग करने के उद्देश्य से जनता मे निक्षेप के रूप में धन राशियाँ स्वीकार करना, जो माँगने पर प्रतिदेय हों अथवा अन्यथा प्रतिदेय हों तथा चैक, ड्राफ्ट, आदेश के द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार वापिस निकाला जा सके।"[2]

(iii) **जापानी बैंकिंग अधिनियम के अनुसार,** "उन संस्थाओं को बैंक कहा जाता है जो ऋण देने व ऋण लेने का काम करती हैं।"

---

1. "Banker includes any person acting as a banker and any post-office saving bank" —Indian Negotiable Instrument Act, 1881 (Sec. 3)

2. Banking means "the accepting for the purpose of lending or investment of deposits of money from the public, repayable on demand or otherwise and withdrawable by cheque draft, order or otherwise."—Indian Banking Regulation Act, 1949 [Section 5 (B)]

(iv) ब्रिटिश विपत्र अधिनियम, 1882 की धारा (3) के अनुसार, "उन समामेलित व असमामेलित संस्थाओं को बैंकर कहा जाता है जो बैंकिग का व्यवसाय करते हैं।"[1]

उपयुक्त परिभाषाएं केवल 'वैंकिग' शब्द की व्याख्या करती हैं। अतः इनसे 'बैंक' शब्द की प्रकृति को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। 'बैंक' शब्द की जानकारी के लिए हमें इस विषय के विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं की शरण में जाना होगा। डॉक्टर हार्ट, सर जॉन पेजेट व श्री वेबस्टर प्रभृति विद्वानों ने 'बैंक' की निम्न परिभाषाएं दी हैं :—

(i) डॉक्टर हार्ट (*Dr. Herbert L. Hart*) के अनुसार, "बैंक या बैंकर एक व्यक्ति या कम्पनी होती है जो जनता से निक्षेप स्वीकार करती है, उनके ड्राफ्ट्स का संग्रह करती है, व ग्राहकों के खाते में धन जमा होने पर उनके द्वारा लिखे गए चैकों के भुगतान के लिए दायी होती है।"

डॉक्टर हार्ट की यह परिभाषा उनके समय में ठीक हो सकती थी, किन्तु आज की परिवर्तित परिस्थितियों में इस परिभाषा को संतोषजनक नहीं माना जा सकता क्योंकि यह परिभाषा अधिकोषों (Banks) द्वारा सम्पादित समस्त कार्यों का समावेश नहीं करती है।

(ii) सर जॉन पेजेट के मतानुसार, "कोई भी व्यक्ति अथवा निगमित या अन्य संस्थान अधिकोष नहीं कहा जा सकता यदि वह अपने ग्राहकों के लिए (क) स्थायी निक्षेप स्वीकार नहीं करता है, (ख) चालू निक्षेप स्वीकार नहीं करता है, (ग) धनादेशों (Cheques) का निर्गमन व भुगतान नहीं करता है और (घ) ग्राहकों से प्राप्त धनादेशों (विवर्त और रेखांकित) का संग्रह नहीं करता है।"[2] उपर्युक्त चार तत्वों के अतिरिक्त श्री पेजेट ने एक 'बैंकर' के लिए निम्नलिखित दो शर्तें और बताई हैं:—

(1) जो व्यक्ति या संस्था अपने आपको 'बैंकर' माने उसे इस आशय की एक सार्वजनिक घोषणा करनी चाहिए ताकि अधिक से अधिक व्यक्ति उसे बैंकर के रूप में जान सकें व उसे इसी रूप में मान्यता प्रदान कर सकें और (2) 'बैंकिग उसकी जीविकोपार्जन का मुख्य व्यवसाय होना चाहिए।

श्री पेजेट की परिभाषा अपेक्षाकृत पर्याप्त विशद है, किन्तु फिर भी यह परिभाषा डॉ० हार्ट की परिभाषा के दोषों से ग्रसित है।

(iii) सही एवं उपयुक्त परिभाषा : वेबस्टर (Webster) (वेबस्टर शब्द कोष) के अनुसार, "बैंक एक संस्था है जो द्रव्य में व्यवसाय करती है, एक प्रतिष्ठान है जहाँ

---

1. "Banker includes a body of persons, whether incorporated or not, who carry on the business of banking"—British Bills of Exchange Act, 1882 (Sect. 3)

2. "No person or body corporate or otherwise, can be a banker who does not (i) take deposit accounts, (ii) take current accounts, (iii) issue and pay cheques, and (iv) Collects cheques (crossed or uncrossed) for his customers."
"—Sir John Paget's Law of Banking 5th Ed, P.5.

पर धन जमा किया जाता है, सुरक्षार्थ रखा जाता है व जहाँ से धन का निर्गमन किया जाता है और जो ऋण देने, कटौती करने और मुद्रा के प्रेषण की सुविधाएं देता है ।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बैंकिंग व्यवसाय में सलग्न कम्पनियों को अपने नाम के रूप में 'बैंक', 'बैंकर' 'या बैंकिंग' शब्द को अनिवार्यतः अपनाना पड़ता है, और कोई दूसरा व्यवसाय करने वाले प्रमण्डल (Company) इन शब्दों को अपने नाम के रूप में नहीं अपना सकते। इसी प्रकार प्रत्येक बैंकर द्वारा जनता की धन राशियों के लेन-देन का व्यवसाय किया जाता है।

वाणिज्य बैंकों के कार्य
(Functions of Commercial Banks)

सामान्यतः वाणिज्य बैंकों द्वारा निम्नांकित कार्य किये जाते हैं :

(1) चालू व स्थाई निक्षेपों को प्राप्त करना;
(2) जनता से प्राप्त निक्षेपों को उधार देना अथवा विनियोग करना;
(3) जमा की गई धनराशि जमाकर्त्ता के द्वारा मांगने पर (चैक, ड्राफ्ट अथवा अन्य आदेश के माध्यम से) भुगतान करना;
(4) विपत्र, प्रतिज्ञापत्र व अन्य सलेखों की कटौती करना;
(5) ऋण व अग्रिम और अधिविकर्षों की स्वीकृति देना;
(6) ड्राफ्ट्स, गश्तीपत्र, साखपत्र, यात्री चैक आदि का निर्गमन करना;
(7) ग्राहकों की ओर से विपत्रों की स्वीकृति प्रदान करना;
(8) बैंक नोटों का निर्गमन करना;
(9) ग्राहकों की ओर से प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना;
(10) ग्राहकों की प्रतिभूतियों के ब्याज, लाभांश आदि का संग्रहण करना;
(11) ग्राहकों की प्रतिभूतियों, बाण्डों व मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षार्थ स्वीकार करना;
(12) प्रन्यासी, निष्पादक, एटार्नी व अभिकर्ता के रूप में कार्य करना;
(13) विदेशी विनिमय में व्यवहार करना;
(14) गारण्टी व क्षतिपूर्ति अनुबन्धों में प्रविष्ट करना;
(15) सोने व चाँदी का क्रय-विक्रय करना;
(16) सार्वजनिक व निजी ऋणों का प्रबन्ध व अभिगोपन एवं निर्गमन करना;
(17) वे सम्पूर्ण कार्य करना जो देश में बैंकिंग व्यवसाय के संवर्द्धन एवं विकास में (बैंकिंग अधिनियम के अन्तर्गत) सहायक हों।

बैंकिंग कम्पनियों द्वारा निषिद्ध व्यवसाय
(Business Prohibited by a Banking Company)

भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 की धारा 8 के अनुसार बैंकिंग कम्पनियों द्वारा निम्नांकित व्यवसाय करना निषिद्ध है—

1. प्रत्यक्ष या परोक्ष में वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना;

2. बैंकिंग कम्पनियाँ अपने ग्राहकों की ओर से भी व्यापारिक व्यवहार नहीं कर सकती और न ही व्यापारिक जोखिम उठा सकती हैं, यद्यपि ऋण एवं अग्रिम की प्रतिभूति के रूप में रखी हुई सम्पत्ति को बेचकर अपनी ऋण-राशि वसूल कर सकती है।
3. बैंकर के लिए किसी अचल सम्पत्ति के क्रय-विक्रय पर प्रतिबन्ध है किन्तु बैंकर द्वारा प्राप्त संग्रहण हेतु विनिमय-विपत्र तथा निष्पादन के रूप में प्राप्त सम्पत्ति का क्रय-विक्रय वैध है।

प्रश्न

1. बैंकिंग शब्द की परिभाषा दीजिए। आधुनिक बैंकों के मुख्य व गौण कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. बैंकर की परिभाषा दीजिए और उसके निषिद्ध कार्यों का वर्णन कीजिए।

2

बैंकर और ग्राहक के सम्बन्ध

(Relationship Between Banker & Customer)

ग्राहक की परिभाषा (Definition of a Customer)

भारत, इंग्लैण्ड व अन्य देशों के बैंकिंग और परक्राम्य संलेख अधिनियम 'ग्राहक' शब्द के बारे मे पूर्णतः मौन है। वैधानिक परिभाषाओ के अभाव मे बैंकिंग के विद्वानो एव न्यायाधीशों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से इस शब्द की व्याख्या करने का प्रयास किया है। परिणामतः प्रारम्भिक अवस्था मे यह शब्द भी 'बैंकर' शब्द की भाति एक विवादास्पद बना रहा।

प्रचलित मतानुसार उस व्यक्ति या संस्था को एक बैंक का ग्राहक माना जाता है जिसका उस बैंक मे व्यक्तिगत नाम से खाता होता है। यह खाता चालू, बचत अथवा स्थाई हो सकता है। न्यायमूर्ति डवे का निर्णय इस मत की पुष्टि करता है। उनके अनुसार, "ग्राहक वह व्यक्ति होता है जिसका किसी बैंक मे खाता (चालू या स्थाई) होता है अथवा जिसका अधिकोष (Bank) से इससे मिलता-जुलता सम्बन्ध होता है।"[1]

एक अन्य न्यायाधीश ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए यह कहा है कि "बैंक व ग्राहक बनने वाले व्यक्तियों मे किसी प्रकार का खाता होना चाहिए।"[2]

चालू खाता नकद राशि, चैक अथवा अधिविकर्ष (Overdraft) मे खुलवाया जा सकता है। धनादेश (cheque) से खाता खोलने पर अधिकोष को अपने ग्राहक के कपटपूर्ण व्यवहार के दुष्परिणामो को सहन करना पड़ता है किन्तु यह बाधा सम्बन्धित व्यक्ति के ग्राहक बनने में बाधक नही होती है।

स्थाई निक्षेप वाला व्यक्ति भी अधिकोष का ग्राहक माना जाता है।[3] स्थाई निक्षेप स्वीकार करते समय सामान्यतः अधिकोष धन जमा करवाने वाले व्यक्ति का परिचय नही करवाते हैं। अतः ऐसे ग्राहक के कपटपूर्ण व्यवहार करने पर (चैकों के संग्रहण पर) सम्बन्धित अधिकोष को इस प्रकार के दुष्परिणामो म वचने के लिए सवैधानिक संरक्षण प्राप्त नही होता है। बचत खाते वाले ग्राहको की भी यही स्थिति होने से बैंकर को सवैधानिक सरक्षण नही मिल पाता।

ग्राहक होने की अनिवार्य शर्तें
(Essential Conditions to become a Customer)

ग्राहक कहलाने के लिए दो शर्तों की पूर्ति होना अनिवार्य है :—

1. ग्रेट वेस्टर्न रेल्वे बनाम लन्दन एण्ड काउण्टी बैंक विवाद, 1901
2. मैथ्यूज बनाम विलियम्स ब्राउन एण्ड कम्पनी।
3. ग्रेट वैस्टर्न रेल्वे बनाम सन्दन एण्ड काउण्टी बैंक विवाद, 1901।

(i) ग्राहक होने के लिए व्यक्ति *या संस्था को अधिकोष में धन जमा कराकर* खाता (चालू, स्थाई अथवा बचत) खोलना अनिवार्य है, तथा

(ii) उसे बैंकर के साथ बैंकिंग व्यवसाय की प्रकृति का व्यवहार करना चाहिए, न कि वह केवल बैंक द्वारा प्रदत्त जनोपयोगी सेवायें प्राप्त करता रहा हो। बैंक द्वारा प्रदत्त ऐसी सेवाओं की गणना आकस्मिक सेवाओं में की जाती है और आकस्मिक *सेवा प्राप्त करने वाला व्यक्ति कभी भी अधिकोष का ग्राहक नहीं* माना जा सकता। केवल बैंकिंग सेवा प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही बैंक का ग्राहक माना जाता है और बैंकिंग सेवाएँ खाता खुलवाने पर ही प्रदत्त की जाती हैं।

संबंधों का सूत्रपात (Begining of Relationship)

शब्दकोष के अनुसार *'ग्राहक' वह व्यक्ति होता है जो किसी व्यावसायिक* प्रतिष्ठान पर बहुधा जाता है। बैंकिंग व्यवसाय के प्रारम्भिक दिनों में इस विषय के विद्वानों एवं न्यायाधीशों ने इसी परिप्रेक्ष्य में 'सम्बन्धों की स्थापना' पर अपने विचार प्रकट किये हैं। उदाहरणार्थ, सर जॉन पेजेट *(Sir John Paget) ने यह अभिमत प्रकट किया कि* **बैंक का ग्राहक कहलाने के लिये एक व्यक्ति को बैंक के साथ नियमित रूप से व्यवहार करना चाहिए, एक मात्र व्यवहार से कोई व्यक्ति बैंक का ग्राहक नहीं बन सकता।[1]"** *न्यायालयों निर्णयों ने भी इस मत की पुष्टि की है, जैसे 'प्रथम व्यवहार मात्र से एक* व्यक्ति बैंक का ग्राहक नहीं बन पाता। ग्राहक बनने के लिए उसे खाते में नियमित रूप से व्यवहार करना होगा।"[2]

वर्तमान में अवधि सिद्धांत महत्वहीन

(In Modern Times Duration Theory not significant)

सन् 1914 में नियमितता के इस सिद्धान्त का खण्डन किया गया और एक नये सिद्धान्त की प्रतिस्थापना की गई। इस नवीन सिद्धान्त की स्थापना का श्रेय न्यायमूर्ति श्री *बेलाकी (Justice Bailhache) को जाता है। बेलाकी ने यह अभिमत प्रकट किया* कि "जब खाते में प्रथम चैक जमा करवाया जाता है तभी चैक जमा करवाने वाला व्यक्ति बैंक का ग्राहक बन जाता है। जमा करवाये गये चैक का भुगतान इस सम्बन्ध की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण नहीं है।"[3] *कमिश्नर ऑफ टैकसेशन बनाम दी इंगलिश, स्कॉटिश एण्ड आस्ट्रेलियन बैंक विवाद 1920 में इस मत की पुनः पुष्टि की गई। अपने निर्णय में* न्यायाधीश लार्ड डनेडीन (Lord Dunedin) ने कहा है कि "The word 'Customer' signifies a relationship in which duration is not of essence." अतः ग्राहक बनने के लिए नियमितता या अवधि महत्वपूर्ण नहीं है।

डॉ. हार्ट ने भी *उपर्युक्त मत की पुष्टि करते हुए कहा है कि "ग्राहक वह*

---

1. "To Constitute a Customer there must be some recognisable course or habit of dealing in the nature of regular banking business."

—Sir John Paget.

2. मैथ्यूज बनाम विलियम्स ब्राउन एण्ड कम्पनी, 1894।

3. लेडब्रोक बनाम टोड, 1914।

जिसका किसी बैंक के पास कोई खाता है या जिसके लिए कोई बैंकर नियमित रूप से बैंकर के रूप मे कार्य करने के लिए तैयार है।"[1]

सारांश में, यो कहा जा सकता है कि जिस समय किसी बैंक मे खाता खोला जाता है उसी समय से खाता खुलवाने वाला व्यक्ति उस बैंक का ग्राहक बन जाता है; खाता खोलने के पश्चात् उसके ग्राहक बनने के लिए व्यवहार करना अनिवार्य नही होता है।

सम्बन्धों की समाप्ति
(Termination of Relationship)

जब एक बैंकर किसी व्यक्ति को अपना ग्राहक बना लेता है तो वह खाते के बन्द होने तक उसका ग्राहक बना रहता है। खाते मे अधिविकर्ष होने पर भी उसकी स्थिति अपरिवर्तित रहती है।[2] खाते के बन्द किये जाने के साथ ही बैंक और उस खातेदार के ग्राहक के रूप में सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।

बैंकर तथा ग्राहकों के सम्बन्धों की विविधता
(Diversification of Relationship between Banker and Customer)

अधिकोष एवं उसके ग्राहको मे पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में पृथक्-पृथक् प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। मुख्य-सम्बन्धो की विवेचना नीचे की जा रही है।

(i) ऋणी और ऋणदाता के रूप मे सम्बन्ध :
(Relationship as Debtor and Creditor)

अधिकोष एवं उसके ग्राहको मे मूलतः ऋणी व ऋणदाता का सम्बन्ध होता है। जब एक ग्राहक अपने खाते मे द्रव्य जमा करवाता है तो बैंक शब्दावली मे उस निक्षेप को ऋण माना जाता है। अतः ग्राहक का खाता खोलते ही अधिकोष और ग्राहक परस्पर ऋणी और ऋणदाता बन जाते है। खाते के कोष के अनुसार इन दोनो की स्थिति बदलती रहती है। बैंक द्वारा ग्राहक को अधिविकर्ष स्वीकार करने पर बैंक ऋणदाता बन जाता है और ग्राहक ऋणी बन जाता है।

ग्राहक द्वारा जमा करायी गई राशि पर बैंक का पूर्ण अधिकार होता है और वह उस राशि का अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। इसी प्रकार इस जमा-राशि पर उपार्जित आय पर भी बैंक का एकमात्र अधिकार होता है। वह जनता को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु निक्षेपों पर ब्याज आदि का प्रलोभन दे सकता है, किन्तु पूर्व अनुबन्ध के अभाव में ग्राहक केवल अपनी मूल राशि पाने का ही अधिकारी होता है। सामान्यतः बैंकर तथा ग्राहक मे ऋणी तथा ऋणदाता के रूप मे सम्बन्ध होता है, फिर भी दोनों प्रकार के सम्बन्धो में अन्तर होता है जिसका विवेचन आगे किया जा रहा है :—

(अ) ग्राहक द्वारा जमा राशि की मांग करना अनिवार्य है (Demand by customer is necessary for deposits)—ग्राहकों से प्राप्त द्रव्य का अधिकोष अपनी प्रेरणा पर भुगतान नही कर सकते क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें ग्राहकों के खाते बन्द करने करने पड़ते है और अनुचित रूप से खातों को बन्द करने पर उन्हे अपने ग्राहकों की क्षतिपूर्ति भी करनी पड़ती है। अत. अधिकोष केवल अपने ग्राहकों की मांग पर जमा धन का

---

1. "A Customer is one who has an account with a banker or for whom a banker habitually undertakes to act as such." —Dr. Hart.

2. क्लार्क बनाम लन्दन एण्ड काउण्टी बैंक, 1897।

का भुगतान करते हैं। अधिकोष अपने ग्राहकों की उचित मांग (आदेश) को मानने के लिए बाध्य होते हैं। सावधि निक्षेपों का भुगतान सामान्यतः पूर्व निश्चित अवधि की समाप्ति पर किया जाता है। लॉर्ड एटकिन्स (Lord Atkins) ने जो चिमसन बनाम स्विस बैंकिंग कार्पोरेशन के विवाद में अपना निर्णय देते समय इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि *बैंकर का सम्बन्ध एक ऋणी एवं ऋणदाता का होता है, किन्तु इस गर्भित अनुबन्ध में* एक अनिवार्य शर्त यह होती है कि बैंकों को उधार दी गई रकम मांग के अतिरिक्त देय नहीं है।[1]

(ब) मांग करने का स्थान एवं समय उपयुक्त हो (Proper place and Time for Demand)—ग्राहकों को भुगतान का आदेश सामान्यतः बैंक की उसी शाखा पर *प्रस्तुत करना पड़ता है जिस पर उनका खाता होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना* यह आदेश बैंक कार्यावधि (Banking hours) में प्रस्तुत करना पड़ता है। कार्यावधि के पश्चात् प्रस्तुत किये गये आदेशों को मानने के लिए बैंक बाध्य नहीं है।

(स) मांग उपयुक्त ढंग से की जानी चाहिए (Demand must be made in proper form)—बैंकिंग अधिनियम के अनुसार जमाकर्ता को अपनी जमा राशि चैक, ड्राफ्ट, आदेश या अन्य माध्यम से वापिस प्राप्त करनी चाहिए। बैंक की प्रचलित रीति-रिवाज के अनुसार ही राशि वापिस की जा सकती है। ग्राहकों के मौखिक अथवा टेलीफोन पर दिये गये आदेशों को भी मानने के लिए बैंक बाध्य नहीं होते हैं।

(द) समय-सीमा नियम लागू होना (Application of Limitation Act)—अधिकोष में जमा धन पर समय सीमा-नियम उसकी मांग से लागू होता है। ग्राहक द्वारा मांग न करने पर उसकी जमा राशि अधिकोष के जीवन-काल में अक्षुण्ण बनी रहती है। यदि मांग करने पर अधिकोष जमा धन-राशि का भुगतान न करे तो सम्बन्धित ग्राहक को अपने द्रव्य की वसूली के लिए माग तिथि के 3 वर्ष के भीतर-भीतर अपने अधिकोष के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत करना पड़ता है।

(ह) पारस्परिक दायित्व (Mutual Responsibilities)—बैंक एवं उसके ग्राहकों के दायित्व पारस्परिक होते हैं। एक ओर बैंक किसी व्यक्ति का खाता खोलकर यह *दायित्व लेता है कि वह उसके द्वारा लिखे चैकों का भुगतान करेगा, उसके विपत्रों का* संग्रहण तथा अन्य उचित आदेशों का पालन करेगा। दूसरी ओर ग्राहक भी यह दायित्व स्वीकार करता है कि वह चैक लिखते समय समुचित सावधानी बरतेगा ताकि अधिकोष जालसाजी एवं गलतफहमी का शिकार होने से बच सके।

(ii) प्रन्यासी के रूप में सम्बन्ध (Relationship as a Trustee)

जब एक व्यक्ति किसी अधिकोष के पास अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ जैसे प्रतिभूतियाँ, आभूषण, रत्न आदि सुरक्षार्थ जमा करवाता है अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए कुछ द्रव्य जमा करवाता है तब इन वस्तुओं या द्रव्य को जमा करने वाला अधिकोष उस व्यक्ति के प्रन्यासी का कार्य करता है। व्यक्ति के अतिरिक्त संस्थायें, प्रन्यास, निष्पादक आदि भी द्रव्य या सम्पत्ति जमा करा सकते हैं। प्रन्यास जमा करवाई गयी वस्तुओं को

---

1. *"The relationship between banker and customer is that of debtor and creditor, but one of the implied contract is that money lent tothe banker is not payable except on demand."* Lorel Atkins observed in Joachimson Vs. Swiss Banking Corporation (1912). 3 KB-10.

जमा-कर्त्ता मूल स्वरूप में अपने अधिकोष से वापस लेने के अधिकारी होते हैं किन्तु ऐसी राशि मूलस्वरूप में नहीं लौटाई जाती है।

बैंक द्वारा सावधानी एवं दायित्व (Precautions and Liabilities of Bank)

प्रन्यासी के खाते मे व्यवहार करते समय बैंक द्वारा निम्नांकित सावधानियाँ वर्तना उचित होगा—

(1) **प्रविशिष्ट करें**—जब किसी अधिकोष के पास मूल्यवान वस्तुएँ अथवा प्रतिभूतियां जमा करवाई जाती है तब उसे इनकी सेफ कस्टोडी पंजिका (Safe Custody Register) मे प्रविष्टि कर लेनी चाहिए और जमा कराने वाले व्यक्ति के उन पर हस्ताक्षर भी करवा लेने चाहिएँ। साथ ही बैंक के एक उत्तरदायी अधिकारी द्वारा भी इसको प्रमाणित करवा लेना चाहिए। इसी प्रकार इन वस्तुओं के लौटाने पर जमाकर्त्ता से एक **प्राप्ति रसीद** ले लेनी चाहिए अथवा उसी पंजिका मे प्राप्ति सूचक हस्ताक्षर करवा लेना चाहिए।

(2) **निरीक्षण**—बैंक को चाहिए कि वह, सम्पत्ति के स्वामी अथवा उसके द्वारा नियुक्त अधिकृत अभिकर्ता को वस्तुओं को निरीक्षण करने की उचित सुविधा प्रदान करे।

(3) **सम्पत्ति की सुरक्षा**—प्रन्यासी बैंक को सम्पत्ति की सुरक्षार्थ उसी सावधानी से काम करना पड़ता है जिस सावधानी से एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपनी उसी प्रकार की सम्पत्ति की देख-रेख करता है।[1] प्रन्यास सम्पत्ति की सम्पूर्ण शक्ति को काम मे न लाने पर उन्हे सकल लापरवाही (Gross Negligance) का दोषी माना जाता है।

(4) **क्षतिपूर्ति**—जब अधिकोष के कर्मचारियो से धोखेबाजी से प्रन्यास स्वरूप प्राप्त वस्तु गुम (Lost) हो जाती है तो सम्बन्धित अधिकोष को उस सम्पत्ति के स्वामी को क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है।[2]

(5) **सम्पत्ति की वापसी**—अधिकोष इन वस्तुओं को उनके स्वामी अथवा उसके अधिकृत प्रतिनिधि को लौटाता है। जब अधिकोष किसी अनधिकृत व्यक्ति को इन वस्तुओं को सौंप देता है तब वह **परिवर्तन का दोषी** माना जाता है। जब स्वामी का निधन हो जाता है तब जमा करवाई हुई वस्तुओं पर उसके उत्तराधिकारी, निष्पादक अथवा प्रशासक का अधिकार हो जाता है। अधिकोष इन व्यक्तियों को क्रमशः **उत्तराधिकारी प्रमाणपत्र, संप्रमाण व प्रबन्ध-पत्र के प्रस्तुतीकरण** पर ही जमा सम्पत्ति को सौंपता है। संयुक्त नाम से जमा सम्पत्ति को समस्त व्यक्तियो की सहमति से ही लौटाया जाना चाहिए।

(6) **विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति**—जब ग्राहक किसी बैंक के पास किसी विशिष्ट उद्देश्य से कुछ द्रव्य जमा करवाता है तब वह अधिकोष उस द्रव्य को प्रन्यासी के रूप मे प्राप्त करता है और माग पर उस धन को लौटाने के लिए बाध्य होता है। निम्नलिखित उदाहरण उपर्युक्त कथन को स्पष्ट करने में सहायक होंगे :—

1. गिलबिन बनाम मैकम्यूलन, 1868।
2. नेशनल बैंक ऑफ लाहौर बनाम सोहनलाल सहगल तथा अन्य; लॉयड्स बैंक बनाम प्रेस।

(क) जब एक व्यक्ति किसी अधिकोष के पास किसी कम्पनी के अंश या ऋण-पत्रों के क्रय करने के लिए कुछ राशि जमा करवाता है और आदेशित अंश अथवा ऋण-पत्रों खरीदने से पहिले वह अधिकोष टूट (Failure) जाता है तो उस अधिकोष को वह राशि सम्बन्धित व्यक्ति को लौटानी पडती है। अधिकोष ने यह राशि विशिष्ट उद्देश्य के लिए प्राप्त की थी, अतः इसे 'प्रन्यास मुद्रा' (Trust money) कहा जायेगा।[1]

(ख) जब एक ग्राहक अपने बैंक को सग्रहणार्थ एक चैक देता है और चैक के सग्रहण के पूर्व ही वह बैंक टूट जाता है और बाद मे बैंक का निष्पादक उस चैक की राशि सग्रहण करता है तो वह राशि प्रन्यास राशि मानी जायेगी।

(ग) जब एक ग्राहक कार, स्कूटर, रेडियो आदि के खरीदने के लिए अपने बैंक के पास गारण्टी राशि जमा करवाता है तो वह अधिकोष इस प्रकार की राशि को प्रन्यासी के रूप मे प्राप्त करता है और इस राशि का प्रयोग अन्यत्र नहीं कर सकता है। इस सम्बन्ध में एक विवाद का निर्णय प्रस्तुत किया जा रहा है :—

सुब्रह्मण्यम पिल्लई बनाम पिल्लई सैण्ट्रल बैंक विवाद में कुछ व्यक्तियों ने मोटर कार क्रय करने के लिए गारण्टी-स्वरूप दो-दो हजार रुपये पिल्लई बैंक में जमा करवाये थे मोटरकार मिलने से पूर्व पिल्लई सैन्ट्रल बैंक बन्द हो गया। जमाकर्ताओ का दावा था कि उनकी जमा राशि विशेष कार्य के लिये थी अतः बैंक इस राशि के लिए प्रन्यासी था। अतः यह राशि बैंक की सम्पत्ति में से पूर्वाधिकारी देनदारी (Preferential Debt) के रूप मे चुकाई जावे। न्यायालय ने इस तथ्य की पूर्णरूप से पुष्टि की और गारण्टी की राशि को पूर्वाधिकार के आधार पर (प्रन्यास मुद्रा मान कर) बैंक द्वारा चुकाने का निर्णय दिया।

(iii) अभिकर्ता के रूप में सम्बन्ध (Relationship as an Agent)

(क) विशिष्ट कार्यों का सम्पादन :—एक अधिकोष और उसके ग्राहको मे प्रतिनिधि (Agent) एव प्रधान (Principal) का भी सम्बन्ध हो सकता है। इन सम्बन्धों की स्थापना उस समय होती है जब एक ग्राहक अपने अधिकोष को *किसी विशेष* कार्य के सम्पादनार्थ, जैसे प्रतिभूतियो के क्रय-विक्रय करने, विपत्रों एव धनादेशों के सग्रहण, बीमा-किश्त, जल-विद्युत शुल्क, मकान किराया, सदस्यता शुल्क आदि के भुगतान, करने, अपनी ओर से अभिकर्ता नियुक्त करता है। ऐसी स्थिति में बैंक को *निम्नांकित* सावधानियाँ ध्यान मे रखनी चाहिए—

(क) स्पष्ट निर्देश आवश्यक—अभिकर्ता अधिकोष को उपर्युक्त कार्यों का सम्पादन करने हेतु ग्राहक से स्पष्ट आदेश प्राप्त करने चाहिए और *अनधिकृत* कार्य की पुष्टि करवानी चाहिए।"

(ख) आदेशों की लिपिबद्धता—जब अधिकोषो को स्थायी शुल्को का भुगतान करना *पड़ता है तो उसे अपने हितो की रक्षार्थ इस प्रकार के आदेशों को डायरी मे लिपिबद्ध कर लेना चाहिये। यहाँ यह स्मरणीय है कि* अभिकर्ता बैंक स्थायी आदेशो की पूर्ति के लिए तभी दायी होता है जबकि ग्राहक के खाते मे देय *तिथि पर पर्याप्त मात्रा में* राशि जमा हो।

(ग) लापरवाही के लिए क्षतिपूर्ति—जब प्रतिनिधि बैंक आदेशित कार्यों की

---

1. ऑफिसियल एसाइनी ऑफ मद्रास बनाम जे० डब्ल्यू।

पूर्ति हेतु कपटपूर्ण व्यवहार करता है या जानबूझकर लापरवाही करता है और उसके फलस्वरूप ग्राहक को हानि होती है तब वह भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 162 के प्रावधानो के अनुसार उस क्षतिपूर्ति के लिए दायी होता है।

(घ) खर्चों की वसूली—प्रतिभूतियो के क्रय-विक्रय करते समय अभिकर्ता बैंक प्रतिभूति मूल्य, बैंक कमीशन व दलाली आदि ग्राहक से वसूल करने का अधिकारी होता है।

(iv) परामर्शदाता के रूप में सम्बन्ध (Relationship as Adviser)—पाश्चात्य देशों की भाँति भारत में भी अधिकोप अपने ग्राहकों के आर्थिक सलाहकार का भी कार्य करते हैं जिसके लिए वे पृथक् से 'परामर्श विभाग' की स्थापना करते है। यह विभाग विभिन्न कम्पनियो के बारे मे तथ्यपूर्ण, सही व अद्यतन सूचना एकत्रित करके सम्भावित विनियोजकों को वांछित जानकारी प्रदान करता है। परामर्शदाता अधिकोप से निम्नलिखित मार्ग दर्शक तत्वो की अपेक्षा की जाती है :—

(क) वे उचित सूझबूझ एवं कुशलता से कार्य करेंगे ;

(ख) वे अपने ग्राहकों को सम्पूर्ण जानकारी देंगे व किसी तथ्य को छिपायेंगे नहीं;

(ग) असावधानी से काम करने पर वे ग्राहकों की क्षति-पूर्ति के लिए दायी होते हैं।[1]

बनबरी बनाम बैंक ऑफ मॉण्ट्रियल विवाद (1918) में दिया गया निर्णय भी उपर्युक्त तत्वो की पुष्टि करता है। इस निर्णय मे न्यायमूर्ति चैसलर ने यह अभिमत व्यक्त किया था कि **"परामर्शदाता को कार्य करते समय अधिकोषों को समुचित सावधानी व कुशलता को काम में लेना चाहिए। लापरवाही से काम करने पर अधिकोप उसके लिए दायी होगा।"**

अधिकोषों का उत्तरदायित्व
(Obligations of a Banker)

जब एक बैंक अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है तो उसे अनेक दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है और उनकी अवहेलना पर दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। अधिकोषों के प्रमुख दायित्व निम्नांकित हैं :—

चैक भुगतान करने का वैधानिक दायित्व (Legal obligation to Honour the cheques)—एक बैंक अपने ग्राहक द्वारा लिखित चैंको के प्रस्तुतीकरण पर भुगतान करने के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी है। भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम (Negotiable Instruments Act) 1881 की धारा 31 के अन्तर्गत यह उपबन्ध है कि "किसी चैक के आहर्ती (Drawee) को जिसके पास ऐसे चैक के भुगतान हेतु उपयुक्त प्रयोग करने के लिए आहरण कर्ता (Drawer) की पर्याप्त निधि है, उस समय चैक का भुगतान करना होगा जब उसमे ऐसा करने के लिए विधिवत कहा जाये और यदि वह भुगतान में चूक करे तो ऐसी गलती के कारण आहरण कर्ता को हुई किसी हानि की क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।"

शोधी बैंक अपने इस दायित्व का निर्वाह केवल निम्नलिखित अवस्थाओं में करता है :—

---

1. वुड्स बनाम मार्टिन्स बैंक लिमिटेड विवाद (1958)।

(क) "बैंक के पास आहरणकर्त्ता की पर्याप्त निधि होनी चाहिए (Bank has sufficient funds of the drawer) : जब ग्राहक के खाते में पर्याप्त मात्रा मे धन जमा नही होता है तब शोधी बैंक भुगतान के लिए प्रस्तुत चैकों को 'अपर्याप्त राशि' लिखकर लौटा देते है, और उनका भुगतान नही करते हैं।

अधिविकर्ष की सुविधा : जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक को अधिविकर्ष की सुविधा दे देता है तब ऐसा ग्राहक खाते में धन जमा न होने पर भी स्वीकृत सीमा तक अपने अधिकोष पर धनादेश (Cheques) लिखने का अधिकारी होता है व शोधी अधिकोष को स्वीकृत सीमा के भीतर लिखे गये धनादेशो का भुगतान करना पड़ता है।

अधिविकर्ष की परिपाटी :—कभी-कभी अधिकोष भूलवश अपने ग्राहको को अधिविकर्ष स्वीकृत कर देते हैं। ऐसे अधिकोषो को अपनी भूल का पता लगते ही सम्बन्धित ग्राहक से भूलवश भुगतान की गई राशि की माँग करनी चाहिए। जब अधिकोष अपने ग्राहक से ऐसी राशि की माँग नही करता है और ग्राहक खाते मे द्रव्य जमा न होने पर भी अपने अधिकोष पर दुबारा धनादेश लिख देता है तो अधिकोष को पूर्व-परिपाटी के कारण बाद मे लिखे गये धनादेशो का भी भुगतान करना पडता है। भुगतान न करने पर उसे गलत अनादरण के दुष्परिणामो का भागी बनना पडता है।

संग्रहण : कभी-कभी ग्राहक अपने अधिकोष के पास धनादेश, विपत्र, ऋण पत्र आदि सलेख सग्रहण हेतु जमा करवाते हैं। कुछ अधिकोष इन विलेखो के सग्रहण के पूर्व ही विलेखो की राशि सम्बन्धित ग्राहक के खाते मे जमा कर देते हैं। ऐसे ग्राहक इस प्रकार से जमा राशि के विरुद्ध धनादेश लिखने के अधिकारी होते हैं भले ही धनादेश के प्रस्तुतीकरण के समय उनके विलेखो का सग्रहण न हुआ हो। जब ऐसे विलेखो की राशि संग्रहण के पश्चात् सम्बन्धित ग्राहक के खाते मे जमा की जाती है और विलेखो के सग्रहण पूर्व ही यदि ग्राहक धनादेश लिखे तो शोधी अधिकोष खाते मे पर्याप्त राशि जमा न होने पर ऐसे धनादेशो को लौटाने का अधिकारी होता है। वह इन धनादेशों को लौटाते समय उन पर 'राशि संग्रहीत नहीं हुई है' (Effects not yet cleared) लिख देता है।

(ख) "बैंकर को चैक भुगतान के लिए विधिवत कहा जाना चाहिए (Banker must pay the cheque when duly required to do so)—चैंक के भुगतान के लिए बैंक को विधिवत् कहा जाने का तात्पर्य यह है कि ग्राहक द्वारा निर्गमित चैक पूर्ण एवं नियमानुसार (complete and in order) होने चाहिए।

उचित अवधि :- सामान्यतः बैंक छः माह से अधिक पुराने चैंकों को काल तिरोहित (Stale) और आगामी तिथि वाले चैंको को उत्तर तिथीय (post dated) मानकर भुगतान नही करते है। बिना तारीख के चैंक का भुगतान करना भी उचित नहीं है, क्योंकि यह अपने आप मे अपूर्ण है।

उचित समय :—बैंक कार्यावधि (office hours) के पश्चात् किया गया भुगतान 'विधिवत् भुगतान' की परिधि मे नही आता है। ऐसे चैंक के भुगतान के लिए शोधी बैंक उत्तरदायी नही होते हैं। किन्तु बैंक अपने ग्राहको की सुविधा का ध्यान रखते हुए व्यावसायिक कार्यकाल मे परिवर्तन कर सकता है।

उचित शाखा :—ग्राहक के दृष्टिकोण से प्रत्येक शाखा एक पृथक् बैंक होता है। अतः धारक को अपना चैक उसी शाखा पर प्रस्तुत करना पड़ता है जिसके पास ग्राहक का खाता होता है। पूर्व व्यवस्था द्वारा अन्य किसी शाखा पर भी चैक लिखा जा सकता है। किन्तु पूर्व व्यवस्था के अभाव मे अन्य किसी शाखा पर प्रस्तुत किये गए धनादेश का अनादरण हो जाता है।

(ग) चैक भुगतान के लिये राशि का उचित प्रयोग करना चाहिये (Funds must be properly applicable to the payment of such cheques)—चैक के भुगतान के लिए ग्राहक के खाते में जिसके विरुद्ध चैक निर्गमित किया गया है, उस खाते में पर्याप्त मात्रा मे राशि जमा होनी चाहिए। बैंक ऐसे चैक का भुगतान ग्राहक के सावधि जमा खाते की जमा राशि से करने का अधिकारी नही है, क्योकि यह राशि किसी विशेष उद्देश्य से जमा करायी गई है।

(घ) सही स्वरूप (proper form)—शोधी अधिकोष अपने ग्राहको के लिखित स्पष्ट एव पूर्ण आदेशो को मानने के लिए बाध्य होते हैं। इसके अतिरिक्त इन आदेशों का विधि सम्मत होना भी आवश्यक है, अर्थात् भुगतान का आदेश चैक के स्वरूप मे दिया जावे।

(ङ) न्यायालीय आदेशों की पूर्ति (कुर्की का आदेश) (Garnishee order)—जब न्यायालय किसी व्यक्ति के अधिकोष मे जमा निक्षेपो को कुर्क या जब्त कर लेता है तब शोधी अधिकोष अपने ऐसे ग्राहको के आदेश को मानने के लिए बाध्य नही होते है।

भारत मे कुर्की के आदेश न्याय प्रक्रिया-संहिता (Civil Procedure Code) 1908 की आदेश संख्या 21, नियम सख्या 216 के अन्तर्गत निर्गमित किये जाते हैं। इसमे निम्न पक्षकार होते है :

(i) इन आदेशो के अन्तर्गत निर्णयाधीन देनदार (Judgment Debtor) या ऋणी बैंक का ग्राहक होता है। इस आदेश द्वारा बैंक मे उसके खाते मे जमा राशि से भुगतान स्थगित (Suspend) कर दिया जाता है।

(ii) निर्णयाधीन लेनदार (Judgment Creditor) : यह लेनदार अथवा ऋणदाता होता है जो ऐसे आदेश की प्राप्ति हेतु न्यायालय मे आवेदन प्रस्तुत करता है।

(iii) निर्णयाधीन अनुऋणी (Garnishee) : देनदार ग्राहक का बैंकर जिसे इस प्रकार के आदेश के द्वारा निर्देशित ग्राहक के खाते मे से भुगतान रोकने या लेन-देन बन्द करने का आदेश दिया जाता है, उसे अनुऋणी कहते है।

कुर्की के आदेश को दो भागो में बाँटा जा सकता है :—

(अ) कुर्की का पूर्व आदेश (Order Nisi) : यह एक प्रकार से 'कारण बताओ' नोटिस होता है। इस आदेश के द्वारा न्यायालय अनुऋणी को एक निश्चित अवधि (सामान्यतः 8–10 दिन) के भीतर अपने पक्ष के स्पष्टीकरण का अवसर देता है और स्पष्टीकरण की प्राप्ति पर अन्तिम आदेश जारी कर दिया जाता है।

(ब) कुर्की का पूर्ण आदेश (Order Absolute)—इसके अन्तर्गत न्यायालय अन्तिम रूप से अनुऋणी को आदेश देता है कि वह ग्राहक के खाते से निर्देशित लेनदार को

एक निश्चित राशि का भुगतान कर दे। यह आदेश चालू बचत व स्थाई निक्षेपों पर समान रूप से लागू होता है।

कुर्की आदेश सम्बन्धी अधिकोष का दायित्व (Bank's Responsibility Relating to Garnishee Order)—कुर्की पूर्व आदेश का निम्नांकित बातों पर प्रभाव पड़ता है :—

(i) **आदेश का तत्काल लागू होना (Applicability of Order)** कुर्की—का आदेश बैंक के मुख्य कार्यालय (Head Office) को भेजा जाता है जो अपनी विभिन्न शाखाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। कुर्की का आदेश प्राप्त होते ही बैंक को ग्राहक के खाते से भुगतान करना तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। ऐसी सूचना प्राप्त करने से पूर्व भुगतान की गई राशि के लिए बैंक की शाखा उत्तरदायी नहीं होती है।

(ii) **राशि का स्पष्टीकरण (Specification of Amount)**—बैंक द्वारा कुर्की आदेश से वह राशि स्पष्ट रूप से निश्चित कर लेनी चाहिए जिसका भुगतान ग्राहक के खाते से नहीं किया जाता है। किन्तु ग्राहक के खाते मे अवरोधित (Frozen) राशि से अधिक राशि के जमा होने पर शेष राशि का भुगतान ग्राहक को किया जा सकता है।

(iii) **खातों का एकीकरण (Integration of all accounts)**—कुर्की के आदेश सम्बन्धित ग्राहक के समस्त व्यक्तिगत खातो पर लागू होते है। अतः सही स्थिति जानने के लिए सम्बन्धित अधिकोष अपने ग्राहक के समस्त खातो के शेष को किसी एक खाते मे स्थानान्तरित कर देता है। ये खाते निलम्बित (Suspend) हो जाते हैं और कुर्की हुए माने जाते हैं।

(iv) **नया खाता खोलना**—जब सम्पूर्ण राशि को कुर्क कर लिया जाता है तो सम्बन्धित ग्राहक अपने बैंकिग व्यवहारों के लिए नया खाता खोल लेता है। इस नये खाते में जमा राशि पर कुर्की का पुराना आदेश लागू नही होता है।

कुर्की आदेश का लागू न होना (Non Appliance of Garnishee order)

कुर्की का आदेश निम्नलिखित द्रव्यो पर लागू नही होता है :—

1. कुर्की के आदेश की प्राप्ति के पश्चात् ग्राहक या उसकी ओर से प्राप्त राशि;
2. सयुक्त खाते मे जमा निक्षेप;
3. प्रन्यास निक्षेप;
4. आदेश प्राप्ति के पश्चात् प्रतिभूतियो के विक्रय से प्राप्त धन, भले ही प्रतिभूतियो का विक्रय आदेश–प्राप्ति के पूर्व हो चुका हो।
5. आदेश प्राप्ति के पश्चात् संग्रह योग्य विलेखो से प्राप्त राशि–भले ही विलेख आदेश प्राप्ति के पूर्व संग्रहणार्थ दे दिये गये हो। अतः इसके लिए बैंकर ग्राहक के नाम मे एक नया खाता खोल देता है।
6. जब खातों मे अधिविकर्ष होता है, भले ही ग्राहक ने स्वीकृत सीमा का पूरी तरह से उपयोग न किया हो।

7. जब आदेश के निर्णयाधीन देनदार की पहिचान शंकास्पद (doubtful) या अस्पष्ट हो।
8. जब बैंक की विदेशी शाखा के खाते में ग्राहक की राशि जमा हो।
9. यदि कुर्की आदेश मे ऋणी का नाम बैंक खातेदार के नाम से भिन्न हो।
10. यदि कुर्की आदेश जारी होने मे पूर्व ग्राहक दिवालिया घोषित हो जाता है, अथवा दिवालियापन के लिए आवेदन पत्र न्यायालय को प्राप्त हो जाता है।

आयकर अधिकारियों द्वारा निर्गमित कुर्की आदेश (Attachment Order Issued by Income Tax Authorities)

यदि कोई करदाता आयकर को राशि का भुगतान नही करता है तो आयकर अधिकारी को, आयकर अधिनियम (Income-Tax Act), 1961 की धारा 226 (3) के अन्तर्गत, यह अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे बैंक को, जिसके पास ऐसे व्यक्ति की जमा है, लिखित सूचना द्वारा यह आदेश दे सकता है कि वह उस राशि मे से कर की शेष राशि के बराबर राशि आयकर अधिकारी को चुका दे। इस आदेश के सम्बन्ध में बैंकर की स्थिति निम्न प्रकार है :—

(i) **संयुक्त खाते**—करदाता के सयुक्त खाते पर भी ऐसा आदेश लागू होता है और किसी विपरीत प्रमाण के अभाव मे यह माना जायेगा कि करदाता एवं अन्य खाताधारी का सयुक्त खाते में बराबर-बराबर हिस्सा है। अतः संयुक्त खाते में करदाता के हिस्से की जमा-राशि पर कुर्की आदेश लागू होता है।

(ii) **पास बुक का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं**—ऐसे आदेश का पालन करते समय ग्राहक से पास बुक अथवा जमा रसीदें मागे बिना ही बकाया कर का भुगतान कर सकता है। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि बैंक, स्थाई जमा खाते में जमा राशि परिपक्व होने पर ही, चुकाने को बाध्य किया जा सकता, पहले नहीं।

(iii) इस प्रकार के आदेश के अन्तर्गत आयकर अधिकारी को चुकायी गई राशि की सीमा तक बक ग्राहक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(iv) **बैंक का व्यक्तिगत दायित्व**—यदि इस आदेश की बैंक द्वारा अवहेलना का जाती है तो सम्बन्धित राशि के लिये बैंक को ही त्रुटि करने वाला करदाता (assessee in default) मान लिया जाता है और उस राशि की वसूली के लिए बैंक के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है।

अतः स्पष्ट है कि बैंक को कुर्की आदेश का पालन करते समय जिम्मेदारी एवं सतर्कता मे कार्य करना चाहिए।

चैक के त्रुटिपूर्ण एवं अवांछनीय अनादरण के परिणाम (Consequences of Wrong and unwanted Dishonour of a Cheque)

एक शोधी अधिकोष को अनुचित तरीके से अपने ग्राहकों के धनादेशो का अनादरण नही करना चाहिए अन्यथा विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 31 के अन्तर्गत अनादरण कारण ग्राहकों को होने वाली क्षति की पूर्ति करनी पड़ती है।

गलत अनादरण की अवस्था में दोषी अधिकोष को केवल धनादेश की राशि का ही भुगतान नहीं करना पड़ता है अपितु उसे ग्राहक की साख एवं कष्ट की भी क्षति पूर्ति करनी पड़ती है। गलत अनादरण से उत्पन्न क्षति अथवा कष्ट को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती है। क्षति का निर्धारण प्रत्येक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। क्षति का निर्धारण किसी समर्थ न्यायालय द्वारा किया जाता है।

क्षति की प्रकृति (Nature of Loss)—अनादरण से उत्पन्न क्षति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(i) साधारण क्षति और (ii) विशिष्ट क्षति। साधारण क्षति पूर्ति गैर-व्यापारी एवं गैर-उद्योगपति ग्राहकों को स्वीकृत की जाती है। ऐसे ग्राहकों के धनादेशों का जब अनुचित रूप से अनादरण किया जाता है तो सामान्यत: उनकी साख को कोई हानि नहीं पहुँचती, किन्तु उन्हें अनुचित अनादरण के कारण मानसिक पीड़ा (Mental Strain) सहन करनी पड़ती है। अत: न्यायालय उन्हें इस मानसिक पीड़ा की क्षति पूर्ति के लिए दोषी अधिकोष से हर्जाना दिलवाते हैं। हर्जाने की राशि धनादेश की राशि से सदैव अधिक होती है।

विशिष्ट क्षति पूर्ति सामान्यत: व्यापारी एवं उद्योगपति ग्राहकों को स्वीकृत की जाती है। इन ग्राहकों के धनादेशों का अनुचित रूप से अनादरण होने पर इनकी साख एवं व्यापारिक प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगता है। अत: न्यायालय इन ग्राहकों को विशिष्ट क्षति पूर्ति दिलवाते हैं। विशिष्ट क्षति पूर्ति भी दो प्रकार की होती है—(i) साधारण एवं (ii) अत्यधिक। अत्यधिक क्षति पूर्ति निम्नलिखित अवस्थाओं में स्वीकार की जाती है:

जब त्रुटिपूर्ण अनादरण से
(1) व्यवसाय के टूटने की सम्भावना होती है;
(2) व्यवसाय तत्काल भुगतान की माँग करते हैं;
(3) महत्वपूर्ण सौदा टूट जाता है, या कोई ठेका उसके हाथ से निकल जाता है, और
(4) व्यापारिक साख को असाधारण चोट पहुँचती है।

धनादेश की राशि जितनी कम होती है ग्राहक की साख को उतनी ही अधिक मात्रा में हानि पहुँचती है (The lesser the amount of cheque dishonoured, the more the trader loses its goodwill) इन दोनों में विपरीत सम्बन्ध होता है। इस संदर्भ में डेविडसन बनाम बार्कलेज बैंक लि. 1940 के विवाद में न्यायाधीश हिलबेरी ने निर्णय देते हुए कहा था कि: 'व्यापारी के लिए इसकी ख्याति को इससे अधिक नुकसान पहुँचाने वाली और क्या बात हो सकती है कि इतनी छोटी-सी राशि का चैक भी अनाहत हो गया।'

क्षति पूर्ति के निर्धारक तत्व:—क्षति पूर्ति की राशि का निर्धारण करते समय न्यायालय सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखता है; जैसे (i) ग्राहक की बाजार में कितनी प्रतिष्ठा है? (ii) उसकी आर्थिक स्थिति कैसी है? और (iii) व्यापारी के बाजार में व्यापारिक रीति-रिवाज (customs) क्या है?

प्रमाण का भार—"गैर-व्यापारी और गैर-उद्योगपति ग्राहकों को भी विशिष्ट क्षतिपूर्ति स्वीकृत की जा सकती है किन्तु ऐसी क्षतिपूर्ति के लिए उन्हें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि धनादेश के अनादरण के कारण उनकी साख को क्षति पहुँची थी।

II. खातों की गोपनीयता रखने का दायित्व (Obligation to maintain Secrecy of Accounts)—गोपनीयता के निर्वाह के लिए ग्राहको को अपने बैंक से पृथक् अनुबन्ध करने की आवश्यकता नही होती है क्योंकि गोपनीयता की बैंको के गर्भित दायित्वों में गणना की जाती है। इस दायित्व के अन्तर्गत अधिकोषों को अपने ग्राहकों से सम्बन्धित उन सूचनाओं को भी गुप्त रखना पडता है जिन्हें वह अन्य स्रोतो से प्राप्त करता है। अधिकोषों का यह दायित्व शाश्वत होता है। अतः एक ग्राहक के निधन अथवा सम्बन्ध-विच्छेद के पश्चात् भी उसका अधिकोष ग्राहक की साख व वित्तीय व्यवहारो का उद्घाटन नही कर सकता।

गोपनीयता का उल्लंघन करने पर अधिकोष को अनुबन्ध भंग करने (Breach of Contract) का दोषी माना जाता है व उसे ग्राहक की क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी बनाया जा सकता है। किन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे अधिकोष ग्राहको के खाते की स्थिति का उद्घाटन कर सकते है। सन् 1924 मे न्यायमूर्ति लॉर्ड बैंक्स (Bankes) ने 'टूर नियर बनाम इंगलैण्ड' विवाद मे पहली बार इन 'विशिष्ठ परिस्थितियों' को लिपिबद्ध किया और अब इन परिस्थितियों को सार्वदेशिक मान्यता प्राप्त हो चुकी है। न्यायमूर्ति बैंक्स के मतानुसार एक अधिकोष निम्न परिस्थितियो मे अपने किसी ग्राहक के खाते की स्थिति का उद्घाटन कर सकता है :—

(1) वैधानिक अनिवार्यता (Compulsion of Law)—देश के कानून द्वारा बाध्य किये जाने पर एक बैंक अपने किसी ग्राहक के वित्तीय व्यवहारो एव उसके खाते की स्थिति से प्राधिकृत अधिकारियो को अवगत करा सकता है। निम्नांकित परिस्थितियो में बैंक को किसी ग्राहक के खाते के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देनी चाहिए :—

(i) आयकर अधिनियम 1961 के अन्तर्गत—आयकर अधिनियम की धारा 131 के अन्तर्गत आय-कर अधिकारी किसी भी व्यक्ति अथवा बैंक को उसकी लेखा-पुस्तकें तथा महत्त्वपूर्ण दस्तावेजो को आय-कर कार्यालय मे प्रस्तुत करने का आदेश जारी कर सकता है। अतः यदि आय-कर अधिकारी किसी ग्राहक के खाते के व्यवहारों सम्बन्धी जानकारी चाहे तो बैंक को सम्बन्धित ग्राहक द्वारा जमा लाभाश, ब्याज व अन्य राशि की जानकारी देनी पडती है।

(ii) उपहार-कर अधिनियम (Gift-Tax Act) 1958 : इस अधिनियम की धारा 36 के अन्तर्गत उपहार-कर अधिकारियो को भी वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो आय-कर अधिकारियों को प्रदान किये गये हैं।

(iii) बैंकर की पुस्तकों का साक्ष्य अधिनियम (Banker's Book Evidence Act) 1891 के अन्तर्गत यदि न्यायालय किसी बैंक को ग्राहक के खाते सम्बन्धी जानकारी देने का आदेश देता है तो बैंक ऐसी जानकारी देने के लिए बाध्य है। यदि बैंक स्वयं किसी विवाद मे पक्षकार नही है तो बैंक की पुस्तकों में की गई प्रविष्टयाँ साक्ष्य (evidence) के रूप मे मानी जायेंगी। इसके अतिरिक्त न्यायालय किसी वैधानिक कार्यवाही के लिए किसी पक्षकार को बैंक की पुस्तको की जाँच करने अथवा नकल लेने की अनुमति भी प्रदान कर सकता है।

(iv) भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 235 से 237 के अन्तर्गत जब भी केन्द्रीय सरकार किसी कम्पनी के क्रिया-कलापों की जाँच हेतु निरीक्षक नियुक्त करे तब कम्पनी के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं एजेण्टों (जिनमें बैंकर भी शामिल हैं) का कर्त्तव्य होगा कि वे इस कार्य में निरीक्षक को अपेक्षित जानकारी दें एवं जाँच में यथासंभव सहयोग दें। परन्तु बैंक के लिये यह महत्वपूर्ण है कि वह ऐसी जाँच के समय सम्बन्धित कम्पनी के सचिवों एवं कोषाध्यक्षों आदि के बारे में तो अपेक्षित जानकारी दे, परन्तु किसी अन्य ग्राहक के बारे में नहीं।

(v) बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 की धारा 26 के अन्तर्गत बैंक के लिए 'रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया' को एक 'वार्षिक विवरण' भेजना अनिवार्य है जिसमें ऐसे खातों एवं उनकी राशि का उल्लेख किया जाता है जो गत 10 वर्षों से निष्क्रिय पड़े हुए हैं।

(vi) भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अनुसार रिज़र्व बैंक को यह अधिकार है कि वह बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों को दिये गये ऋणों की जानकारी प्राप्त करे। इसी विधान की धारा 45 (B) के अनुसार प्रत्येक बैंक का यह वैधानिक दायित्व है कि वह इस सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी प्रदान करे। स्मरण रहे कि रिजर्व बैंक ऐसी जानकारी अपने तक ही सीमित रखता है और केवल सामूहिक रूप में ही किसी बैंक को ऐसी जानकारी देता है।

(vii) पुलिस के समक्ष जानकारी प्रकट करना (Disclosure of information to Police) किसी जाँच से सम्बन्धित पुलिस अधिकारी आवश्यक जाँच के उद्देश्य से बैंक की पुस्तकों का निरीक्षण कर सकते हैं, किन्तु दण्ड-प्रक्रिया-संहिता (Criminal Procedure Code) की धारा 94 (3) के अन्तर्गत बैंक को पुलिस के समक्ष अपनी लेखा पुस्तकें प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है।

(viii) विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act) 1973 की धारा 43 के अन्तर्गत सम्बन्धित अधिकारियों को विदेशी मुद्रा के विनिमय में व्यवसाय करने वाली कम्पनियों की लेखा पुस्तकों तथा अन्य आवश्यक दस्तावेजों का निरीक्षण करने तथा उसके निदेशक या अधिकारी से आवश्यक पूछताछ करने का अधिकार प्राप्त है।

(2) ग्राहक की स्पष्ट या गर्भित सहमति से (With the Express or Implied consent of the customer) एक ग्राहक भी अपने अधिकोष को अपने वित्तीय व्यवहारों आदि के बारे में किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान या व्यक्ति को सूचित करने का आदेश दे सकता है। ग्राहक से प्राप्त आदेशों की पूर्ति पर सम्बन्धित अधिकोष गोपनीयता के उल्लंघन का दोषी नहीं माना जाता है किन्तु अधिकोष को अपने हितों की रक्षार्थ ग्राहक के आदेशों का अक्षरशः पालन करना पड़ता है। एक ग्राहक सामान्यतः अपने अधिकोष को निम्नांकित दो अवस्थाओं में अपने वित्तीय व्यवहारों के उद्घाटन की अनुमति देता है :—

1. जब वह किसी नवीन व्यवसायिक प्रतिष्ठान से सम्बन्ध स्थापित करता है; और
2. जब वह किसी व्यक्ति की जमानत पर अधिविकर्ष अथवा ऋण लेता है।

3. सार्वजनिक हित में (In Public Interest) एक अधिकोष सार्वजनिक हितों की रक्षार्थ अपनी प्रेरणा पर अपने किसी भी ग्राहक के वित्तीय व्यवहारों से राज्य को सूचित कर सकता है। जब अधिकोष सार्वजनिक हित में अपने ग्राहकों के व्यवहारों का उद्घाटन

करता है तब उसे विश्वासघात का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि दो देशो मे युद्ध चल रहा हो और एक युद्धरत राष्ट्र का नागरिक दुश्मन राष्ट्र के नागरिको या सरकार के साथ मौद्रिक या अन्य प्रकार का व्यवहार करे तो अधिकोष निःसकोच अपने ऐसे ग्राहकों के राष्ट्र-विरोधी व्यवहारों से राज्य सरकार को सूचित कर सकता है।

4. **बैंक के स्वहित में (In the Interest of the Banker itself)** अधिकोष अपने हितो की रक्षार्थ भी अपने किसी ग्राहक के वित्तीय व्यवहारो एव उसके खाते की नवीनतम स्थिति का उद्घाटन कर सकते हैं।

5. **साथी बैंकों को सूचना (Information to fellow Bankers)** अधिकोष व्यावसायिक प्रतिष्ठानो एव व्यक्तियो को केवल अपने ग्राहकों की अनुमति पर ही आवश्यक सूचना दे सकते है किन्तु साथी अधिकोषों को ग्राहकों की अनुमति के बिना भी वांछित सूचना दी जा सकती है। इस प्रकार की सूचना देने के बावजूद भी अधिकोष गोपनीयता के दोषी नही माने जाते क्योकि "सूचनाओं का इस प्रकार का आदान-प्रदान एक सुप्रतिष्ठित परिपाटी है, ग्राहक इस परिपाटी से पूर्णतः भिज्ञ होता है और इस कार्य मे उसकी गर्भित स्वीकृति होती है।"[1] किन्तु जब ग्राहक अपने अधिकोष को ऐसा करने से मना कर दे तो सम्बन्धित अधिकोष को अपने उस ग्राहक के आदेश का अवश्य पालन करना पडता है अन्यथा वह ग्राहक की क्षतिपूर्ति के लिए दायी होता है।

सूचना देते समय ध्यान में रखने योग्य तथ्य
(Facts to be kept in mind while Providing Information)

(क) तथ्य मात्र (only facts)—साथी अधिकोषो को अपना अभिमत भेजते समय अधिकोष को अपनी ओर से कोई बात नही कहनी चाहिए तथा तथ्य मात्र ही व्यक्त करने चाहिए। सम्पूर्ण अभिमत तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। बैंकर को किसी भी तथ्य का जानबूझकर मिथ्या वर्णन नही करना चाहिए। क्योंकि इसके गभीर परिणाम हो सकते है।

(ख) अधिकृत व्यक्ति—बैंक को किसी ग्राहक के खाते की जानकारी किसी अधिकृत अथवा विश्वसनीय व्यक्ति या सस्था को ही देनी चाहिए ताकि जानकारी का दुरुपयोग न होने पावे।

(ग) सामान्य वक्तव्य—बैंक को अपने ग्राहक के खाते के बारे में वास्तविक आँकड़े न देकर *यथासभव सामान्य वक्तव्य ही देना चाहिए। सूचना सांकेतिक भाषा मे हो।* वित्तीय स्थिति की जानकारी देते समय साधारण, उत्तम, अच्छी, बढ़िया (excellent), संतोषजनक, अवांछनीय आदि संकेत-चिन्हो का प्रयोग करना उचित होगा।

(घ) हस्ताक्षर न करें—इंग्लैण्ड मे Tenderden's Act के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त करने के उद्देश्य से बैंक खातों की जानकारी देते समय अपने हस्ताक्षर नहीं करते हैं। भारत में भी यही परिपाटी प्रचलन में है।

अकारण या अनुचित रूप से जानकारी देने के परिणाम (Effects of Unwarranted or unjustified Disclosure)

अधिकोष को अपना मत सावधानी एवं निष्पक्षतापूर्वक प्रकट करना पड़ता है। पक्षपात पूर्ण अभिमत प्रकट करने पर उसे लापरवाही का दोषी माना जाता है और अपमान-

1. कारसन्स बनाम बार्कलेज एण्ड कम्पनी व अन्य 1910.

जनक अभिमत प्रकट करने पर उसे क्षतिपूर्ति के लिये भी दायी माना जाता है। भ्रकारण अथवा अनुचित रूप से जानकारी देने पर बैंकर को निम्नांकित जोखिम उठाने की संभावना बनी रहती है :—

(अ) ग्राहक के प्रति दायित्व—यदि बैंक द्वारा मिथ्यावर्णन अथवा अनुचित रूप से जानकारी देने से ग्राहक को कोई आर्थिक अथवा ख्याति की क्षति पहुँची है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए बैंक पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ब) तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व—यदि बैंक बढा चढ़ा कर गलत सूचना देता है और तीसरा पक्षकार यह सिद्ध कर दे कि उसने ऐसी गलत सूचना पर विश्वास करके हानि उठाई है, तो बैंक तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

अधिकोष के अधिकार
(Rights of a Banker)

बैंक अपने ग्राहकों को विविध सेवाएँ प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप उसे कुछ अधिकार प्राप्त हैं, जिनका विश्लेषण आगे किया जा रहा है :—

(अ) ग्रहणाधिकार (Right of Lien)

ग्रहणाधिकार का अभिप्राय उस अधिकार से है जो ऋणदाता को ऋणी द्वारा जमा कराई गई वस्तुओ एवं प्रतिभूतियो की जमानत पर स्वीकृत ऋणो के सम्पूर्ण भुगतान तक अपने पास रखने का अधिकार देता है। स्वीकृत ऋणों के अशोधित रह जाने पर ऋणदाता ऋणी को यथोचित सूचना देने के पश्चात् गिरवी रखी गई वस्तुओं एवं प्रतिभूतियों का विक्रय भी कर सकता है। ग्रहणाधिकार शब्द को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है :—

(i) बैंकिंग की शब्दावली के अनुसार : "ग्रहणाधिकार दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति को उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब तक कि दूसरा व्यक्ति ऋण का भुगतान न कर दे।"[1]

(ii) इंग्लैड के हेल्सबरी कानून के अनुसार : "किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे की उन वस्तुओं को जो इसके अधिकार में हैं, उस समय तक रोक रखना जब तक कि उसकी (वस्तुओं के धारक की) निश्चित मांग की सतुष्टि न कर दी जाए।"[2]

ग्रहणाधिकार को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है :—

(1) विशिष्ट ग्रहणाधिकार (Particular Lien), तथा

(2) सामान्य ग्रहणाधिकार (General Lien)

इनकी विवेचना आगे की जा रही है।

(1) विशिष्ट ग्रहणाधिकार—इसके अन्तर्गत ऋणदाता केवल उन वस्तुओ एवं प्रतिभूतियों को रोक सकता है जिन्हें ऋणी ने किसी विशिष्ट अशोधित ऋण की सुरक्षार्थ जमा करवाया था। अन्य ऋणों की सुरक्षार्थ प्राप्त वस्तुओं और प्रतिभूतियों को ऋणदाता अधिकोष रोकने का अधिकारी नही होता है। इस प्रकार विशिष्ट ग्रहणाधिकार में रोकी

1. Dictionary of Banking: "Lien is the right to retain property belonging to another until debt due from the latter is paid.'
2. Halsbury's Law of England : "as a right in one man to retain that which is in his possession belonging to another until certain demands of the person in possession are satisfied."

गई वस्तु तथा ऋण की राशि में सीधा सम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ एक स्कूटर मैकनिक तब तक स्कूटर को रोक सकता है जब तक कि उसे मरम्मत का पारिश्रमिक न मिलजावे।

सामान्य ग्रहणाधिकार—सामान्य ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत ऋणदाता किसी भी अशोधित ऋण या ऋणों के शोधन के लिए बन्धक स्वरूप प्राप्त वस्तुओं एवं प्रतिभूतियों को अपने पास रोक सकता है।[1]

अधिकोष एव सामान्य ग्रहणाधिकार (General Lien of Banker's Right)

(2) सामान्यतः हर देश मे अधिकोषो को देश के कानून द्वारा ग्रहणाधिकार दिया गया है। भारत मे अधिकोषो को यह अधिकार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 171 द्वारा स्वीकृत किया गया है। इस धारा के अन्तर्गत भारतीय अधिकोषों को सामान्य ग्रहणाधिकार स्वीकृत किया गया है। यह अधिकार विशिष्ट ग्रहणाधिकार से व्यापक होता है। ग्रहणाधिकार की प्राप्ति के लिए ऋणदाता अधिकोषों को पृथक से अनुबन्ध की आवश्यकता नही पडती। यह उनका गर्भित अधिकार होता है और ऋणों के अशोधित रह जाने पर ये ऋणो को यथोचित सूचना देने के पश्चात बन्धक स्वरूप प्राप्त वस्तुओं का विक्रय भी कर सकते हैं। अधिकोषो के इस अधिकार पर परिसीमन अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

(1) विशेषतायें (Salient Features)

बैंकर निम्नांकित परिस्थितियो मे अपने सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है :—

(i) बैंकर की हैसियत से रखी गई समस्त वस्तुओं पर—ऋणदाता अधिकोष को ग्रहणाधिकार केवल उन वस्तुओ पर प्राप्त होता है जिन पर ग्राहक का वैधानिक अधिकार है और जो बेंक के पास बैंकर की हैसियत मे रखी हुई हैं। किन्तु यदि वस्तुएँ तथा प्रतिभूतियाँ बैंकर के पास प्रन्यासी (Trustee) या अभिकर्ता (Agent) के रूप मे रखी गई हैं, अथवा ग्राहक और बैंकर के मध्य सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग न करने सम्बन्धी अनुबन्ध किया हुआ है तो ग्रहणाधिकार का प्रयोग वर्जित होगा।

(ii) बैंकर का ग्रहणाधिकार गर्भित गिरवी के रूप में (Banker's Lien as an implied Pledge)—बैंकर अपने पास में ग्राहक द्वारा रखी हुई वस्तुएँ व प्रतिभूतियां यथोचित सूचना देकर बेच सकता है। इस प्रकार बैंकर का ग्रहणाधिकार गर्भित रूप से गिरवी (Pledge) के समान ही है।

(iii) ऋण भुगतान के पश्चात् छोड़ी गई प्रतिभूतियों या राशि (Securities remaining with Banker after payment of loan)यदि कोई ग्राहक ऋण चुकाने के पश्चात् भी सम्बन्धित प्रतिभूतियाँ बंक के पास छोड़ देता है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में बैंक इन प्रतिभूतियो पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(iv) संग्रहित राशि (Collected Amount)—एक सग्राहक बैंक को सग्रहीत विलेखो की राशि पर भी ग्रहणाधिकार मिलता है। इसी प्रकार यदि ग्राहक बैंक के पास बौण्ड तथा कूपन संग्रहण के लिए जमा कराता है और बैंक ऐसी राशि ग्राहक के खाते मे जमा कर देता है तो आवश्यकता पड़ने पर बैंक इस राशि का किसी भी ऋण के विरुद्ध समायोजन कर सकता है।

---

1. Kunhan Vs. Bank of Madras (1895) 19 mad. 234.

ग्रहणाधिकार के अपवाद (Exception to the lien Right)—बैंकर द्वारा निम्नांकित अवस्थाओं में ग्रहणाधिकार का प्रयोग करना वर्जित है :—

(i) निरापद सुरक्षार्थ जमा (Safe Custody Deposit)—जब ग्राहक बैंक के सुरक्षा ग्रह मे निरापद सुरक्षा हेतु मूल्यवान आभूषण, प्रतिभूतियाँ अथवा महत्त्वपूर्ण दस्तावेज जमा करता है तो बैंक प्रन्यासी अथवा निक्षेप गृहीता (Bille) का कार्य करता है जो ग्रहणाधिकार के विरुद्ध किया गया समझौता है। ऐसी स्थिति में बैंक इन वस्तुओं पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग नही कर सकता है ।

(ii) विशिष्ट प्रयोजनार्थ जमा किये गये प्रपत्र एवं धन राशि (Documents and money deposited for specific purpose)—यदि ग्राहक कोई प्रतिभूति, विनिमय विपत्र अथवा धन राशि स्पष्ट रूप से किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए जमा कराता है, तो बैंक ऐसी वस्तुओं पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग नही कर सकता है ।

(iii) ऋण-प्राप्ति हेतु बैंकर को सौंपी गई प्रतिभूतियाँ (Securities Lodged with the Banker for securing Loan)—यदि ग्राहक बैंक के पास कोई सम्पत्ति किसी संभावित ऋण की जमानत के रूप मे छोड़ देता है और बाद मे ऐसा ऋण बैंक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है, तो ऐसी सम्पत्ति (Valuable) पर बैंक का ग्रहणाधिकार नही होता है । लूकस बनाम डोरेन (Lucas Vs Dorrein) के विवाद में दिये गये निर्णय के अनुसार ऐसी प्रतिभूति भी विशिष्ट प्रयोजनार्थ मानी जायेगी ।

(iv) भूल से छोड़ी गई वस्तुएं (Valuables left with the Bank by mistake)—यदि कोई ग्राहक बैंकर की खिड़की अथवा टेबिल पर कोई महत्त्वपूर्ण दस्तावेज अथवा वस्तुएं भूल मे छोड़ जाय अथवा उससे बल-प्रयोग द्वारा छीन ली जाय, तो ऐसी प्रतिभूति पर बैंकर का ग्रहणाधिकार नहीं होगा । इसका आधार यह है कि बैंक केवल उन्हीं चल सम्पत्तियों पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है जो उसके पास बैंक के नाते, सामान्य व्यवसाय के अन्तर्गत और वैधानिक रूप में आयी हो ।

(v) अपरिपक्व ऋण (Debt-not-due)—यदि ग्राहक द्वारा लिए गये ऋण की भुगतान तिथि अभी दूर है तो बैंक ग्राहक के खाते में जमा राशि अथवा जमा करायी गयी प्रतिभूतियों को ऋण के भुगतान के विरुद्ध नहीं रोक सकता है ।

(iv) प्रन्यास खाते (Trust Account)—यदि अधिकोष को यह तथ्य ज्ञात हो कि ग्राहक ने किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रन्यास (Trust) के रूप में खाता खोला है तो ऐसे खाते पर बैंक द्वारा ग्रहणाधिकार वर्जित है ।

(vii) खाते की जमा राशि पर (Credit Balance of Account)—ग्राहक के खाते में जमा राशि पर भी बैंकर अपने किसी ऋण के भुगतान हेतु ग्रहणाधिकार का प्रयोग नही कर सकता है । यद्यपि इस राशि पर बैंकर समंजन के अधिकार का प्रयोग कर सकता है ।

II समंजन अथवा समायोजन का अधिकार (Right of Adjustment)—जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक के विभिन्न खातों में जमा राशि को नाम वाले खातों मे स्थानांतरित कर देता है तो स्थानान्तरण की इस क्रिया को समायोजन या समंजन कहा जाता है। समायोजन एक शाखा के विभिन्न खातों का व विभिन्न शाखाओं के खातों का किसी एक शाखा के खाते में हो सकता है ।

समायोजन अधिकार की आवश्यक शर्तें
(Essential Conditions of Right of Adjustment or Set-off)

अधिकोष समायोजन के अधिकार को निम्नांकित अवस्थाओं में [illegible] सकते हैं :—

(i) दोनों खाते एक ही व्यक्ति के हों (Both a/cs. must be of the same person)—जिन खातों का समायोजन किया जावे वे सब एक ही नाम से व एक ही हैसियत से सचालित होने चाहिए, किन्तु इस शर्त का एक अपवाद भी है। यदि किसी ग्राहक ने प्रन्यासी की हैसियत से कुछ ऋण लिया हो और प्रन्यास खाते से उस ऋण की वसूली न हो रही हो ऋणदाता अधिकोष ग्राहक के व्यक्तिगत खाते से ऋण राशि का समजन कर सकता है क्योंकि इस प्रकार के ऋण के शोधन के लिए ग्राहक व्यक्तिगत रूप से दायी होता है।

(ii) सूचना देना आवश्यक (Intimation is essential)—इस प्रक्रिया को पूर्ण करने से पूर्व ऋणदाता अधिकोष को सम्बन्धित ग्राहक को सूचना देनी पड़ती है। यदि वह बिना सूचना दिए हुए किसी भी समय इस अधिकार को काम में लेना चाहे तो उसे अपने ग्राहक से यह अधिकार अग्रिम ले लेना चाहिए।

(iii) परिपक्व ऋण (Matured Debts)—जिन ऋणों के शोधनार्थ समायोजन किया जा रहा हो वे समायोजन के समय परिपक्व होने चाहिए। भावी तथा आकस्मिक ऋणों के लिए समायोजन नहीं हो सकता। किन्तु यदि ग्राहक का निधन हो गया हो तो अपरिपक्व ऋणों के शोधनार्थ भी समायोजन किया जा सकता है।

(iv) विपरीत अनुबन्ध का अभाव (Absence of an agreement to the Contrary)—यदि समायोजन के विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनुबन्ध हो चुका हो तो ऋणदाता अधिकोष इस अधिकार को काम में नहीं ले सकता।

(v) बैंक संरक्षक के रूप में न हो (Bank does not act as a guardian)—ग्राहक जिन खातों का सचालन संरक्षक के रूप में करता है उन खातों पर इस अधिकार को प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु जब ग्राहक केवल अपनी सुविधा के लिए पृथक-पृथक् खातों का संचालन करता है और वास्तव में सारे खाते उसी के होते हैं तब ऐसे खातों में जमा राशि का भी समायोजन किया जा सकता है।

(vi) साझेदारी में व्यक्तिगत खाते (Individual Accounts under Partnership)—एक साझेदारी के व्यक्तिगत खाते में जमा राशि का साझेदार फर्म के ऋणों के शोधनार्थ समायोजन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार से फर्म के सदस्यों के व्यक्तिगत ऋणों के शोधनार्थ फर्म की सम्पत्ति का समायोजन नहीं किया जा सकता।

(vii) एकाकी खाते (Sole Account)—एकाकी खातों में जमा राशि का सयुक्त खातों के ऋणों के शोधनार्थ समायोजन नहीं किया जा सकता। किन्तु जब ऋण के भुगतान के लिए उत्तरदायित्व पृथक् एव सयुक्त होता है तब एकाकी खाते में जमा राशि को सयुक्त खाते के ऋणों के शोधनार्थ काम में लाया जा सकता है।

(viii) कुर्की आदेश लागू करने के पूर्व (Before Enforcement of Garnishee order)—बैंक अपने हित की रक्षा का पहले ध्यान रखता है। यही कारण है कि वह समायोजन के अधिकार का प्रयोग करने के पश्चात् ही कुर्की के आदेश का पालन करता है।

III विनियोजन करने का बैंकर का अधिकार
(Banker's Right of Appropriation)

प्रत्येक बैंक अपने दैनिक व्यवहार में ग्राहकों से धन जमा राशि के रूप में प्राप्त करता है। यदि किसी बैंक में एक ग्राहक के एक से अधिक खाते हों और उसने बैंक से भिन्न-भिन्न तिथियों में ऋण भी लिया हो, तो ग्राहक द्वारा जमा करायी गई धन-राशि के विनियोजन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ठीक इसी प्रकार की समस्या इंग्लैण्ड में डेवायनेस बनाम नोबल (Devaynes Vs. Noble) के विवाद में उठी थी जिसे क्लेटन के विवाद (Clayton's Case) के नाम से पुकारा जाता है।[1] इस विवाद की संक्षिप्त चर्चा आगे की जा रही है :—

क्लेटन का विवाद (Clayton's Case)—इस विवाद के अन्तर्गत अनेक बैंकरों की एक साझेदारी बैंकिंग फर्म थी। इस बैंकिंग फर्म में एक ग्राहक मि० क्लेटन के चालू खाते में जमा बाकी राशि (Credit Balance) थी। इसी अन्तराल में एक साझेदार का निधन हो गया। परन्तु क्लेटन नामक ग्राहक का खाता चालू रहा और उसमें राशि जमा कराई गई और निकासी भी गई जिसकी प्रविष्टियाँ भी तिथि वार की गई। थोड़ी अवधि पश्चात वह बैंकिंग फर्म दिवालिया घोषित हो गयी। परिणामतः क्लेटन ने न्यायालय में दावा प्रस्तुत किया और कहा कि (i) उसने साझेदार के निधन के पश्चात् जो राशि निकाली थी वह साझेदार के निधन की तिथि से फर्म के दिवालिया होने की तिथि के मध्य जमा कराई गई राशि से निकाली गयी थी। (ii) इस प्रकार साझेदार के निधन के समय उसके खाते में जो जमा रकम शेष (Credit Balance) थी वह मृतक साझेदार की सम्पत्ति से देय थी।

निर्णय (Judgment)—किन्तु न्यायालय ने क्लेटन के दावे को अस्वीकार कर दिया और निर्णय दिया कि चालू खाते में नामे पक्ष (Debit Side) की पहली रकम यदि जमा पक्ष (Credit side) की पहली रकम से पूर्णतया कम की जा सकती है (discharged) तो उसे घटा दिया जावे।[2]

उपर्युक्त विवाद के निर्णय के आधार पर बैंक को विनियोजन करते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

(i) ग्राहक के स्पष्ट आदेश अथवा गर्भित परिस्थितियों के अनुसार विनियोजन किया जावे। एक ग्राहक के चालू खाते में नाम पक्ष की प्रत्येक प्रविष्टि को एक पृथक् ऋण माना जाता है व ग्राहक अपने खाते में द्रव्य जमा करवाकर किसी भी एक या एक से अधिक ऋणों के शोधन को प्राथमिकता दे सकता है। ऋणदाता बैंक को अपने ऋणी ग्राहक से प्राप्त आदेशों का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है, वह प्राप्त निर्देशों की अवहेलना नहीं कर सकता।

(ii) बैंकर द्वारा विनियोजन (Appropriation by Banker)—जब ऋणी ग्राहक द्रव्य जमा कराते समय अपने बैंक को उसके प्रयोग के लिए कोई आदेश नहीं देता है

---

1. Devaynes Vs. Noble (Known as Clayton's case) 1816 Mer. 572
2. In current account the first item on the debit side of the account is reduced if discharged by the first item on the credit side.

तो उसका बैंक प्राप्त राशि को अपने विवेक के अनुसार काम में लेने का अधिकारी होता है। वह प्राप्त राशि को कालतिरोहित ऋणों (Time Barred Debts) के शोधन के लिए भी काम मे ले सकता है और जब वह ग्राहक को अपने निर्णय से अवगत करा देता है तो वह निर्णय अपरिवर्तनीय हो जाता है।

(iii) जब कोई भी पक्षकार विनियोजन नहीं करता (Where neither party appropriates)—जब ग्राहक और अधिकोष दोनो ही अपने अधिकारो का प्रयोग नहीं करते हैं तब प्राप्त राशि का क्लेटन नियम के अनुसार प्रयोग किया जाता है। **इस नियम के अनुसार जो ऋण सबसे पहिले स्वीकृत किया जाता है उसका भुगतान भी सबसे पहले किया जाता है अर्थात् ऋणी से प्राप्त राशि को सबसे पहले प्रथम ऋण के शोधनार्थ काम में लिया जाता है।** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा सख्या 59, 60 व 61 उपर्युक्त विचारों का समर्थन करती है।

यदि ऋण एक ही समय पर देय हों तो प्राप्त धन राशि को ऋणों के अनुपात में भुगतान हेतु विभाजित किया जाना चाहिए।

(iv) ब्याज का भुगतान प्रथम (Payment of Interest First)—वेंकटाद्री अप्पाराव बनाम पार्थ सारथी अप्पाराव विवाद 1921 के निर्णयानुसार ग्राहक से प्राप्त राशि को सबसे पहले ब्याज के शोधनार्थ प्रयुक्त किया जाता है और ब्याज के भुगतान के पश्चात् शेष राशि क्लेटन नियम के अनुसार मूलधन के शोधनार्थ प्रयोग की जाती है।

(v) नया खाता खुलने पर (When new account is opened)—अधिकोष क्लेटन नियम द्वारा प्राप्त लाभो का तभी फायदा उठा सकता है जबकि ग्राहक का खाता चालू रहता है। यदि ग्राहक अपने पुराने खाते को बन्द कर दे और उसके स्थान पर नया खाता खोल लेवे अपने समस्त व्यवहारों को नये खाते के माध्यम से पूर्ण करें तो बैंक इच्छुक होते हुए भी क्लेटन नियम का लाभ नही उठा सकता।

(vi) सूचना आवश्यक (Intimation is must)—जब कोई अधिकोष इस नियम द्वारा निर्धारित मार्ग का उल्लघन करना चाहता है तो उसे सम्बन्धित ग्राहक को अपने विचारों से अवगत कराना पडता है। जब वह प्राप्त राशि को अपनी इच्छानुसा काम में ले लेता है तब उसमें परिवर्तन नही किया जा सकता।[1]

IV ब्याज, कमीशन, आनुषंगिक व्यय, प्रभार आदि लगाने का अधिकार
(Right to Charge Interest, Commission, Incidental Expenses, Charges etc.)

(क) ब्याज (Interest)—जब कोई अधिकोष अपने किसी ग्राहक को उसके चालू खाते मे अधिविकर्ष स्वीकृत करता है तो उसे स्वीकृत राशि पर ग्राहक से ब्याज वसूल करने का गर्भित अधिकार होता है। ब्याज पूर्व निर्धारित दर अथवा प्रथानुसार दर से प्रति छठे माह गणना करके वसूल किया जाता है।

(ख) कमीशन—अधिकोष अपने चालू खाते वाले ग्राहको से चालू खातों के सचालन हेतु तथा अन्य सेवाएँ प्रदान करने के फलस्वरूप शुल्क वसूल कर सकते हैं। इन शुल्को को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

---

1. दी मेवका 1897।

(ग) आनुषंगिक व्यय—इसी प्रकार से अधिकोष विभिन्न सेवा कार्यों के लिए भी अपने ग्राहकों से आनुषंगिक व्यय के लिए भी शुल्क वसूल कर सकते है चाहे उनके लिए अनुबन्ध हुआ हो या न हुआ हो। अधिकोषों के इस अधिकार को भी न्यायिक मान्यता प्राप्त है।

(घ) प्रभार (Charges)—रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार बैंक अपने ग्राहक को नकद साख (cash credit) के रूप में राशि की सीमा (limit) निश्चित करता है उस पर भी बैंक वचनबद्धता प्रभार (commitment charges) वसूल करने का अधिकारी है।

परिसीमा की अवधि (Period of limitation)—बैंकर और ग्राहक-सम्बन्धी एक विशिष्ट तथ्य यह है कि ग्राहक के मांगने पर ही उसकी जमा राशि लौटायी जाती है। इस सम्बन्ध में परिसीमा अधिनियम 1963 की अनुसूची भाग द्वितीय, अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत बैंक द्वारा जमा राशि का भुगतान करने की परिसीमा अवधि तीन वर्ष है। इस अवधि की गणना ग्राहक द्वारा जमा राशि के वापस मांग किये जाने के दिन से की जाती है।

बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध की समाप्ति (Termination of Relationship between Banker and Customer)

अधिकोष एवं ग्राहक के सम्बन्ध पारस्परिक संविदा द्वारा स्थापित होते हैं जो किसी भी पक्षकार द्वारा भंग करने पर समाप्त हो जाते है। सामान्यतः इन सम्बन्धों की समाप्ति अग्रांकित कारणों से हो सकती है:—

(i) पारस्परिक समझौते द्वारा (By mutual agreement)—बैंकिंग व्यवहार में ग्राहक और बैंकर के बीच कभी-कभी मन मुटाव उत्पन्न हो जाता है कभी बैंक ग्राहक से संतुष्ट नहीं होता है। इसके विपरीत कभी ग्राहक बैंक की सेवाओं से खुश नहीं रहता है तथा उससे अधिक आकांक्षाएँ रखता है। ऐसी अवस्था में दोनों पक्षकार पारस्परिक समझौते द्वारा अपने सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते है।

(ii) पूर्व सूचना देकर (By Prior Notice)—बैंक कभी भी ग्राहक को पूर्व सूचना देकर खाता बन्द कर सकता है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व ग्राहक को उचित समय दिया जाना चाहिए ताकि वह अपना खाता किसी अन्य बैंक में खोल सके, और उसे बाह्य चैकों के संग्रहण कराने में परेशानी नहीं हो। ग्राहक स्वयं भी बैंक को सूचना देकर अपना खाता बन्द कर सकता है। सामान्यतः एक अधिकोष निम्नांकित अवस्थाओं में अपने किसी ग्राहक को अवांछनीय (Undesirable) मानकर उससे सम्बन्ध विच्छेद करता है:—

(क) जब ग्राहक को विदेशी धनादेश, विदेशी विपत्र अथवा विदेशी विनिमय-सम्बन्धी व्यवहारों में अपराधी (Defaulter) घोषित कर दिया जाता है।

(ख) जब ग्राहक खाते में धन जमा न होने पर भी धनादेश लिखने का अभ्यस्त (Habitual) हो जाता है।

(ग) जब वह बार-बार अधिविकर्ष की मांग करता है।

(घ) जब वह अवैधानिक उपायों से प्राप्त धनादेशों व विपत्रों को संग्रहण हेतु अपने अधिकोष के पास जमा करवाता है।

(iii) ग्राहक के निधन पर (On the Death of Customer)—एक ग्राहक के निधन पर उसका अधिकोष खाता बन्द कर देता है। मृत्यु से पूर्व ग्राहक द्वारा लिखे गये चैकों का भुगतान करने के लिए बैंक को मजबूर नहीं किया जा सकता।

एक ग्राहक के निधन पर उसके अधिकोष खाते में जमा राशि पर उसके वैधानिक प्रतिनिधि (निष्पादक, प्रशासक या उत्तराधिकारी) का अधिकार हो जाता है। सम्बन्धित अधिकोष वैधानिक प्रतिनिधित्व के प्रमाणपत्र (सप्रमाण, प्रबन्ध पत्र या उत्तराधिकारी प्रमाण पत्र) के प्रस्तुतीकरण पर ही मृत ग्राहक के वैधानिक प्रतिनिधि को मान्यता प्रदान करता है। जब तक ग्राहक के निधन की सूचना अधिकोष को नहीं मिलती है तब तक ग्राहक के निधन के बावजूद भी बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध यथावत चालू रहते हैं।

जब एक ग्राहक अपनी मृत्यु से पूर्व अपने अधिकोष को किसी कार्य को करने का आदेश दे देता है और उसको अधिकोष निधन की सूचना मिलने से पूर्व ही उस आदेश का क्रियान्वयन कर देता है तो उस ग्राहक के निधन के पश्चात् भी उस आदेश से सम्बद्ध मौद्रिक व्यवहारों के लिए बैंक व मृत ग्राहक में बैंक व ग्राहक के सम्बन्ध बने रहते हैं। फलतः अधिकोष भुगतान की राशि को मृत ग्राहक के नाम लिख सकते हैं। भुगतान की राशि मृत ग्राहक के नाम लिखने के पश्चात् अधिकोष मृत ग्राहक का खाता बन्द कर देते हैं और खाता बन्द करने का कारण भी लिख देते हैं।

(iv) ग्राहक के पागलपन पर (Incase of Insanity of the Customer)—जब कोई ग्राहक पागल हो जाता है तो उसका अधिकोष अभिकर्ता के रूप में उसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है। अतः ग्राहक के पागलपन के साथ ही दोनों के सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। सम्बन्ध-समाप्ति के लिए अधिकोष के पास पागलपन की सूचना पहुँचना अनिवार्य है।

जब पागल ग्राहक पुनः स्वस्थ हो जाता है तब वह अपने अधिकोष खाते का पुन. संचालन कर सकता है किन्तु उसका अधिकोष उसे यह अधिकार उस न्यायालय द्वारा अधिकृत करने पर ही देता है जिसने उसे पागल घोषित किया था।

(v) ग्राहक का दिवालिया होना (In case of Insolvency of the Customer)—*किसी ग्राहक के दिवालिया घोषित किये जाने पर उसका अधिकोष से* सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है क्योंकि उसके खाते में जमा राशि पर सरकारी प्रापक (Official Receiver) का अधिकार हो जाता है। उपर्युक्त व्यवस्थानुसार जब किसी अधिकोष को अपने किसी ग्राहक के दिवालियापन का समाचार मिलता है तो वह उसका खाता बन्द कर देता है।

(vi) कम्पनी का समापन—जब एक कम्पनी का समापन हो जाता है तब उसका अपने बैंक से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है व कम्पनी खाते के संचालन का अधिकार कम्पनी के अवसायक (liquidator) को प्राप्त हो जाता है।

(vii) सम्पूर्ण राशि के लिए कुर्की आदेश की प्राप्ति पर (On Receipt of Garnishee order for whole Amount)

जब किसी ग्राहक के विरुद्ध कुर्की का आदेश जारी किया जाता है तो ऐसा आदेश

उनके अधिकोष में जमा राशि पर भी लागू हो जाता है। जब कुर्की के आदेश द्वारा जमा राशि का कुछ भाग ही जब्त किया जाता है तब बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध यथावत चालू रहते हैं, किन्तु जब सम्पूर्ण जमा राशि को जब्त कर लिया जाता है अथवा आदेश में जब्त की गई राशि का उल्लेख नहीं किया जाता है तब बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध आदेश प्राप्ति पर अविलम्ब समाप्त हो जाते है। परिणामतः आदेश प्राप्ति के पश्चात् प्राप्त किये गए धनादेश का अधिकोष भुगतान नहीं करते हैं।

(viii) ग्राहक द्वारा खाते की जमा बाकी का अभिहस्तांकन (Assignment of Balance of his Account by Customer)

जब एक ग्राहक अपने खाते में जमा राशि का किसी तृतीय व्यक्ति के पक्ष में अभिहस्ताकन कर देता है और अपने अधिकोष को एतद् विषयक सूचना दे देता है तब अधिकोष और उसके ऐसे ग्राहक के इस सूचना प्राप्ति के साथ ही सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं। अभिहस्ताकन के बाद अभिहस्ताकक अभिहस्ताकित राशि को वापिस नहीं ले सकता। जब एक ग्राहक अपनी जमा राशि में से केवल कुछ राशि का ही अभिहस्ताकन करता है, तब बैंक व ऐसे ग्राहक के सम्बन्ध पूर्ववत बने रहते है।

(ix) अधिकोष द्वारा व्यवसाय की समाप्ति

जब एक अधिकोष अपना व्यवसाय बन्द कर देता है, अथवा किसी अन्य अधिकोष मे मिल जाता है या असफल (Failure) घोषित कर दिया जाता है, तब उसका अपने ग्राहकों से सम्बन्ध टूट जाता है। भारत में जब कोई अधिकोष असफल हो जाता है तब प्रत्येक ग्राहक को खाते मे जमा राशि में से 5,000 रुपये अनिवार्यतः प्राप्त होते हैं। यह राशि निक्षेप बीमा निगम (Deposit Insurance Corporation) द्वारा दी जाती है। जब एक अधिकोष किसी दूसरे अधिकोष में मिल जाता है तब नया अधिकोष पुराने अधिकोष के ग्राहको को पूर्व अनुबन्ध के अनुसार भुगतान करता है।

प्रश्न

1. बैंकर और ग्राहक के मध्य पाए जाने वाले सामान्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिए। इन सम्बन्धों की चालू खाते और ऋण खाते के सन्दर्भ में उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
2. एक बैंकर के सामान्य तथा विशेष ग्रहणाधिकारों की विवेचना कीजिए।
3. रकम की कुर्की आदेश क्या हैं? इस आदेश के प्राप्त होने पर निम्नांकित ग्राहकों के बारे में एक बैंकर को क्या-क्या कदम उठाने चाहिए :
   (i) ऐसा ग्राहक जिसके चालू खाते में जमा शेष हो, और
   (ii) ऐसा ग्राहक जिसने अपने बैंक के पास 6 माह के लिए सावधि जमा करवा रखी हो।
4. बैंक और ग्राहक के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना कीजिए। एक व्यक्ति ग्राहक कब माना जाता है?
5. एक बैंकर अपने ग्राहक के खाते से सम्बन्धी सूचनाओं को कब व कैसे प्रकट कर सकता है? अनुचित भेद प्रकाशन पर उसे किन जोखिमों का सामना करना पड़ता है?
6. एक बैंकर को अपने ग्राहक के प्रति प्राप्त अधिकारों व कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।

3

बैंक द्वारा खातों का संचालन

(Accounts Operated by the Banker)

खातों का वर्गीकरण :

प्रचलित प्रथानुसार बैंक खाते मूलतः तीन श्रेणियों में वर्गीकृत है—

(i) सावधि जमा खाता (Fixed Deposit Account),

(ii) चालू खाता (Current Account), और

(iii) बचत जमा खाता (Savings Deposit Account)

गत कुछ वर्षों से बैंक कुछ अन्य नये खाते भी ग्राहकों के खोलने लगे हैं, जैसे (क) आवर्ती जमा खाता (Recurring Deposit Account), (ख) विद्यार्थी जमा खाता (Student Deposit Account), (ग) पिग्मी जमा योजना (Pigmy Deposit Scheme), (घ) सामाजिक सुरक्षा जमा खाता (Social Security Deposit Account) आदि। अब आगे प्रमुख खातों के खोलने और संचालन करने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जा रहा है :—

1. सावधि जमा खाता खोलना एवं उसका संचालन (Opening and operation of Fixed Deposit Account)—सावधि जमा खाते का विवरण एवं संचालन विधि निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दी जा रही है—

(i) **अर्थ एवं परिभाषा**—जब एक व्यक्ति अपने अधिकोष के पास अपनी अतिरेक राशि को एक निश्चित अवधि के लिए जमा करवाता है तो उस राशि को 'स्थाई निक्षेप' अथवा 'सावधि जमा' कहा जाता है। जिस खाते में उस राशि को जमा किया जाता है उसे 'सावधि जमा खाता' कहा जाता है। सुरक्षा एवं ब्याज के दृष्टिकोण से यह खाता सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

(ii) **जमा की अवधि** (Period of Deposit)—जिस समय अधिकोष के पास मुद्रा जमा कराई जाती है उसी समय निक्षेप की अवधि भी निश्चित कर ली जाती है। सामान्यतया इस खाते में कम से कम 15 दिन और अधिक से अधिक 7 वर्ष के लिए मुद्रा जमा करवाई जाती है। जिन व्यक्तियों को अपनी अतिरेक (Surplus) की निकट भविष्य मे आवश्यकता नही पड़ती है वे इससे भी अधिक लम्बे समय के लिए निक्षेप जमा करवा देते हैं। इस प्रकार के खाते खोलने वालों मे विशेषतः मध्यम वर्ग के व्यक्ति, विधवायें, धार्मिक व शिक्षा संस्थाएँ और प्रन्यास आदि होते हैं।

(iii) **विदेशों में परिपाटी**—विदेशों में सावधि जमा खाते में मुद्रा जमा कराते समय उसकी अवधि तय नही की जाती है। ऐसे निक्षेपों के आहरण से पूर्व जमाकर्ता को

अपने अधिकोष को पूर्व सूचना देनी पडती है। यह सूचना एक सप्ताह या एक पक्ष पूर्व देनी पडती है।

(iv) न्यूनतम जमा राशि (Minimum Deposit Account)—इस खाते में जमा करवाई जाने वाली राशि की अधिकतम सीमा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु न्यूनतम राशि का लगभग प्रत्येक देश में निर्धारण किया जाता है। भारत में यह खाते कम से कम 100 रुपये से खोला जा सकता है।

(v) आवेदन पत्र (Application form)—सावधि जमा खाता खोलने के लिए जमाकर्त्ता को एक छपा हुआ निर्धारित आवेदन पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रपत्र में जमाकर्त्ता के नमूने के हस्ताक्षर (Specimen Signature) और जमा राशि व अवधि का विशेष रूप से उल्लेख करना पड़ता है।

(vi) सावधि जमा रसीद (Fixed Deposit Receipt)—सावधि जमा खाता खोलने पर ग्राहक को बैंक द्वारा निक्षेप-प्राप्ति के प्रमाणस्वरूप एक रसीद दी जाती है। जिसे 'स्थाई जमा रसीद' कहा जाता है। इस रसीद पर निर्गमक अधिकोष को भारतीय मुद्राक शुल्क अधिनियम (Indian Stamp Duty Act) 1899 के अधीन मुद्राक शुल्क (Stamp Duty) लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। इस रसीद में अधिकोष व निर्गमक शाखा का नाम, निक्षेप की अवधि, आहरण की शर्तें, जमा-तिथि, ब्याज की दर तथा इसकी परिपक्व तिथि आदि समस्त तथ्यों का उल्लेख होता है।

(vii) अहस्तान्तरणीय (Non-Transferable)—इन महत्वपूर्ण सूचनाओं के अतिरिक्त इन रसीदों पर 'अहस्तांतरशील' शब्द भी अंकित रहते हैं। इन शब्दों के कारण इन रसीदों की परक्राम्यता समाप्त हो जाती है फलतः इन रसीदों का हस्तान्तरक वैध हस्तान्तरण के बावजूद भी रसीदों के हस्तान्तरी को अपने से श्रेष्ठ अधिकार नहीं दे सकता और हस्तान्तरी अपने नाम से निर्गमक अधिकोष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। जिन रसीदों पर 'अहस्तांतरणशील' या अपरक्राम्य शब्द अंकित नहीं होते हैं वे भी अपरक्राम्य ही होती हैं।[1]

(viii) रसीद पर ऋण एवं अग्रिम (Loans and Advances against F.D.R.)—इस रसीद की प्रतिभूति पर कुल धन के 75% भाग तक ऋण एवं अग्रिम भी लिया जा सकता है। निर्गमक बैंक इस प्रकार के ऋण पर ब्याज लेता है और ब्याज की दर निक्षेप पर दिये जाने वाले ब्याज की दर से 2% अधिक होती है।

(ix) मूलधन तथा ब्याज का भुगतान (Payment of Principal Value and Interest)—परिपक्व तिथि पर भुगतान लेते समय जमाकर्त्ता को अपनी जमा रसीद बैंक को लौटानी पड़ती है। भुगतान से पूर्व उसे इस रसीद पर बीस पैसे के राजस्व मुद्रांक (Revenue Ticket) पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।

एक खातेदार चाहे तो अपनी रसीद का नवीनीकरण (Renewal) भी करवा सकता है। नवीनीकरण की अवस्था में उसे रसीद पर मुद्रांक नहीं लगाना पड़ता और नवीनीकरण की शर्तें पूर्व शर्तों के समान अथवा उनसे भिन्न हो सकती हैं।

(x) अवधि समाप्त होने के पूर्व अन्तिम भुगतान (Final payment prior to due date)—जमाकर्त्ता आवश्यकता पडने पर सावधि जमा का भुगतान उसकी परिपक्व तिथि से पूर्व भी प्राप्त कर सकता है। इस स्थिति में बैंक धन का भुगतान करते

1. Paget's Law of Banking, 6th. Ed. p 123.

समय उस पर ब्याज से 2% कम करके भुगतान करता है। जब परिपक्व तिथि सार्वजनिक अवकाश होता है तो जमाकर्त्ता को जमा राशि का भुगतान सार्वजनिक अवकाश के दूसरे दिन मिलता है किन्तु ऐसी अवस्था में उसे ब्याज केवल परिपक्व तिथि तक ही दिया जाता है।

(xi) **जमा रसीद खो जाने पर भुगतान** (Payment when Fixed Deposit Receipt is lost)—जब निर्गमक अधिकोष सावधि जमा स्वीकार करते समय यह शर्त लगा देता है कि निक्षेपों का भुगतान 'जमा रसीद' के प्रस्तुतीकरण पर ही किया जायेगा तो प्रत्येक ग्राहक को अपनी जमा राशि का भुगतान लेने के लिए इस रसीद को अनिवार्यतः अपने अधिकोष को लौटाना पड़ता है। इस जमा रसीद के खो जाने अथवा चोरी चली जाने पर ग्राहक को चाहिए कि वह बैंक को इसकी तत्काल सूचना देवे। इस सूचना की प्राप्ति पर निर्गमक अधिकोष साधारण कागज पर अपने ग्राहक से क्षतिपूरक बन्धक (Indemnity Bond) लिखवा लेता है और उसे जमा राशि का भुगतान कर देता है।

(xii) **अभिहस्तांकन** (Assignment)—यदि जमाकर्त्ता चाहे तो अपनी जमा रसीद का किसी भी व्यक्ति के पक्ष में अभिहस्तांकन कर सकता है किन्तु उसे अपने अभिहस्तांकन की सूचना अपने अधिकोष को अनिवार्यतः देनी पड़ती है। जब निर्गमक अधिकोष अभिहस्तांकन को जमा रसीद का भुगतान करता है तो उसमें से अभिहस्तांकिति को स्वीकृत ऋण राशि की ब्याज सहित कटौती कर लेता है।

(xiii) **ब्याज की दर** (Rate of Interest)—स्थायी जमा खाते में ब्याज की दर अन्य खातों की अपेक्षा अधिक होती है। भारत में इस खाते में जमा राशि पर निम्नांकित दरों से ब्याज दिया जाता है :—

स्थाई जमा खाते में ब्याज दरें (2 मार्च 1981 से)

क्रम सं.	परिपक्व अवधि	2 मार्च 1981 से पूर्व	2 मार्च 1981 में
(i)	15 दिन से 45 दिन तक की जमा	2.50	2.50
(ii)	16 दिन से 90 दिन तक की जमा	3.00	3.00
(iii)	91 दिन या अधिक परन्तु 6 माह से कम	4.00	4.00
(iv)	6 माह या अधिक परन्तु 9 माह से कम	4.50	4.50
(v)	9 माह या अधिक परन्तु 1 वर्ष से कम	5.50	5.50
(vi)	1 वर्ष व 1 से अधिक किन्तु 2 वर्ष से कम	7.00	7.50
(vii)	2 वर्ष व 2 से अधिक किन्तु 3 वर्ष से कम	7.00	8.50
(viii)	3 वर्ष तक	7.00	10.00
(ix)	3 वर्ष से अधिक किन्तु 5 वर्ष तक	8·50	10.00
(x)	5 वर्ष से ऊपर	10.00	10.00

इस प्रकार जितनी अवधि अधिक होगी ब्याज की दर भी उतनी ही ऊँची होगी।

स्थाई निक्षेप रसीद का नमूना

No. 12345 NOT TRANSFERABLE TERM DEPOSIT RECEIPT

Due on1. 7. 81

Rs 10,000/- STATE BANK OF INDIA

SIKAR (Rajasthan) Date 1. 1. 81

Received from Shri M. D. Sharma Rupees Ten thousand *as a deposit repayable 6 months after date with interest at the rate* of 4.5% per annum.

For State Bank of India
Sd.........
Branch Manager

(i) This deposit earns simple interest @ 4.5% per annum or Reserve Bank of India's directives (ii) The Rate of interest payable on this deposit is subject to the directives that may be isssued by the Reserve Bank of India from time to time (iii) The amount of interest will be paid/reinvested monthly/quarterly/half yearly/yearly rates.

NOTE : Interest will cease on due date when the receipt should be sent in endorsed by the depositor for payment or Renewal

INTERIM INTEREST PAYMENTS IF ANY

Date of *payment*	Period for which paid *From*	*To*	Amount Rs	P	Signature of the *Depositor*

(xiii) कुर्की का आदेश (Garnishee order)—सामान्यतः सावधि जमा खातों पर कुर्की का आदेश इनकी परिपक्वता पर लागू होता है। जब भुगतान के लिए निक्षेप रसीद का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य कर दिया जाता है तब कुर्की का आदेश रसीद के प्रस्तुतीकरण पर लागू होता है।

(xiv) अवधि सीमा नियम—सावधि जमा खाते पर अवधि सीमा नियम ग्राहक द्वारा परिपक्व तिथि पर जमा रसीद प्रस्तुत करने की तिथि से लागू होता है।

सावधि जमा खाते के विशिष्ट लाभ
(Main Merits of Fixed Deposit Account)

सावधि जमा खाते में ग्राहक को निम्नांकित सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं—

(i) सावधि जमा रसीद की जमानत पर ग्राहक बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है।

(ii) मूल जमा-रसीद के खो जाने पर क्षतिपूरक बन्धक (Indemnity Bond) के आधार पर भुगतान लिया जा सकता है।

(iii) जमाकर्त्ता चाहे तो सावधि जमा रसीद के साथ अधिकार-पत्र संलग्न कर इसकी राशि किसी अन्य व्यक्ति को दिला सकता है।

(iv) समस्त जमाकर्त्ताओं के हस्ताक्षर होने पर ही संयुक्त सावधि जमा रसीद की रकम प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार कोई भी एक व्यक्ति अन्य साथियों के साथ धोखा नही कर सकता।

(v) इसका वैधानिक रूप से अभिहस्तांकन (Assignment) भी किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए जमाकर्ता द्वारा बैंक को अभिहस्तांकन की सूचना देना अनिवार्य है।

नकद प्रमाण-पत्र (Cash Certificates)—आजकल कुछ अधिकोष स्थाई जमाओं के लिए नकद प्रमाणपत्रो (Cash Certificates) का भी विक्रय करते है। ये प्रमाणपत्र भिन्न-भिन्न अभिदानो (Denominations) और भिन्न-भिन्न परिपक्व (Maturity) तिथियों के होते हैं। इन प्रमाण-पत्रो पर देय ब्याज की राशि इनके विक्रय-मूल्य में से अग्रिम घटा दी जाती है अर्थात् इनके क्रेता को केवल शुद्ध रकम (अंकित मूल्य-देय प्राप्त ब्याज) ही विक्रेता बैंक के पास जमा करवानी पड़ती है। देय तिथि पर इनके धारक को इन पर अंकित मूल्य प्राप्त हो जाता है। ग्राहको व शाखाओं को सुविधा के लिए प्रधान कार्यालय अवधि, अभिदान व ब्याज दर के आधार पर देय ब्याज तालिकाएँ तैयार करता है और उन्हे प्रत्येक शाखा कार्यालय के पास भेजता है। इन प्रमाण-पत्रों पर अंकित मूल्य, निर्गमन मूल्य, निर्गमन तिथि, देय तिथि, क्रम संख्या, ब्याज दर, क्रेता का नाम आदि अंकित किये जाते हैं और ये शाखा प्रबन्धक की ओर से निर्गमित किये जाते हैं। वह पुष्टि स्वरूप इन पर अपने हस्ताक्षर करता है। इन पर भी देय-तिथि के पश्चात् ब्याज नहीं मिलता है।

2. चालू खाता (Current Account)

चालू खाते को विदेशो मे 'चैक खाता' भी कहा जाता है क्योंकि इस खाते में अधिकांश लेने-देन चैकों के माध्यम से ही पूरे किये जाते हैं। इस खाते के अन्तर्गत ग्राहक दिन में अनेक बार राशि जमा करा सकता है और निकाल सकता है। यही कारण है कि

नकद प्रमाण-पत्र का नमूना

Branch........ Not transferable

State Bank *of India*

Cash Cer*tificate*

Face Value......... Date of Issue.........

Issue Price......... Due date..............

S. N.......................

Received from A. K. Parian Rupees.........payable after........., months/years for issuance of the Cash Certificate *of*............inclusive of interest at..............*per cent per* annum *receivable after*.................. months/years after date.

For State Bank of India

Sd..............

Branch Manager

I. *Interest on this deposit is compounded at quarterly intervals.*

II. Interest will cease on due date when the certificate must be sent in duly discharged by the depositor for payment.

बडे-बडे व्यापारी, उद्योगपति, कम्पनियाँ, सार्वजनिक निगम आदि चालू खाता खोलना पसन्द करते है।

चालू खाते की प्रमुख विशेषताएं (Special Features of Current Account) चालू खाते की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन आगे किया जा रहा है :—

(i) मुख्यत: व्यापारियों द्वारा संचालन—चालू खाता प्रमुख रूप से व्यापारियों उद्योगपतियो, संस्थाओं तथा चरित्रवान, उत्तरदायी सुदृढ आर्थिक स्थिति वाले व्यक्तियों द्वारा संचालित किया जाता है जिन्हे यह धन दिन मे अनेक बार निकालने की स्वीकृति प्रदान करता है।

(ii) संग्रहण सुविधा उपलब्ध—यह चालू खाता ही है जिसके माध्यम से बैंक ग्राहक के चैक, ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर्स, लाभांश पत्र, विपत्रों आदि की राशि का संग्रहण कर उनके खाते मे जमा करता रहता है।

(iii) ब्याज नहीं मिलता—रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार चालू खाते में 14 दिन के लिये जमा राशि पर ब्याज नही दिया जा सकता। सामान्यत: बैंक इस खाते में न्यूनतम राशि से कम जमा होने पर बैंक प्रभार (Charges) के रूप मे राशि वसूल भी करते हैं। बड़े-बड़े शहरों के अलावा अन्य स्थानो पर प्राय: बैंक द्वारा चालू खाते पर ब्याज देने की परिपाटी नही है।

(iv) चैक द्वारा आहरण की सुविधा—बैंक चालू खाते मे चैक द्वारा धन-राशि के आहरण की सुविधा प्रदान करते हैं। किसी भी ग्राहक को चैक के भुगतान के समय अपनी पास-बुक (Pass Book) को अपने बैंक के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही होती है।

(v) अधिविकर्ष की सुविधा—जिन ग्राहकों को अतिरिक्त राशि की आवश्यकता पड़ती है उन्हें अधिकोष चालू खाते के अन्तर्गत अधिविकर्ष की सुविधा प्रदान करते हैं। यह सुविधा पूर्व अनुबन्ध के आधार पर केवल प्रतिष्ठित ग्राहकों को ही उपलब्ध होती है।

(vi) चालू खाते के अन्तर्गत सुविधाएं—चालू खाते धारियों को निम्नांकित विशेष सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं :—

(क) बैंकर अपने ग्राहक को ऋण तथा अग्रिम की स्वीकृति प्रदान कर सकता है। नकद साख (Cash Credit) के रूप में ऋण प्रदान करना व्यापारिक ग्राहकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(ख) तीसरे पक्षकार के नाम में लिखे गये विपत्र व चैक, जिन पर यथोचित्र पृष्ठाकन (endorsement) किया गया हो, संग्रहण हेतु चालू खाते में जमा कराये जा सकते हैं। इनकी राशि वसूल होने पर ग्राहक के खाते में जमा कर दी जाती है।

(ग) यह चालू खाता ही है जिसमे ग्राहक अपने खाते में जमा शेष से अधिक आहरण करने अर्थात् अधिविकर्ष की सुविधा प्राप्त कर सकता है।

(घ) कम्पनियाँ एवं सार्वजनिक निगम आदि चालू खाता खोलकर धन के रखने एवं स्थानान्तरण करने और राशि भुगतान करने की परेशानी से बच जाते हैं। इस प्रकार ग्राहक समय एवं श्रम की बचत के साथ ही साथ दैनिक लेन-देन के हिसाब रखने तथा नकद धन रखने की जोखिम से मुक्त रहते हैं।

3. बचत खाता (Saving Account)

बचत खाते का प्रारम्भ मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों विशेषतः कर्मचारी वर्ग में बचत की आदत डालने के लिए किया गया था। इन खातों ने अधिकोषों एवं सरकारों के वित्तीय संसाधनों मे अप्रत्याशित रूप से वृद्धि की है।

बचत जमा खाते की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Saving Deposit Account)—बचत जमा खाते की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(i) धन जमा कराने पर प्रतिबन्ध—ग्राहक अपने बचत खाते मे कितनी ही बार राशि जमा करा सकता है लेकिन ऐसी राशि 5 रुपये से कम नही होनी चाहिए। यहाँ यह स्मरणीय है कि व्यवहार में बचत खाते में जमा करने के लिए बैंक ऐसे चैक या बिल आदि स्वीकार नहीं करता जो ग्राहक के अतिरिक्त किसी अन्य पक्षकार को देय हो, अर्थात् ग्राहक के पक्ष मे पृष्ठांकित विलेख स्वीकार नहीं किये जाते।

(ii) जमा राशि के आहरण पर प्रतिबन्ध (Restrictions on withdrawals)—इस खाते मे ग्राहक द्वारा जमा राशि के निकालने पर कुछ प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। (1) बचत खाते मे से ग्राहक द्वारा सामान्यतः सप्ताह में एक या दो बार रकम निकाली जा सकती है। अधिकांश बैंक बचत खाते से तीन माह की अवधि में 25 बार रकम निकालने की अनुमति प्रदान करते हैं। (2) इसी प्रकार एक दिन में एक या अधिक बार में जमा राशि का 10% अथवा 1000 रुपये, जो भी अधिक हो, निकाला जा सकता है। इससे अधिक राशि एक दिन में निकालने के लिए बैंक को 10 दिन पूर्व सूचना देनी होती है। इस नियम में विशेष परिस्थितियो मे छूट दी जा सकती है। व्यवहार में कोई भी बैंक इस नियम के अन्तर्गत ग्राहक का भुगतान नही रोकते।

(iii) ब्याज का भुगतान (Payment of Interest)—बचत खाते में जमा राशि पर ब्याज दिया जाता है। ब्याज की गणना महीने के आधार पर की जाती है। एक महीने की 6 तारीख से अन्तिम तारीख तक की अवधि में एक खाते में जो न्यूनतम शेष होता है उसी पर ब्याज दिया जाता है। ब्याज का हिसाब लगाते समय प्रत्येक 10 रुपये की राशि को पूर्ण रकम माना जाता है। प्रत्येक कलेण्डर वर्ष में जून तथा दिसम्बर मे ब्याज की गणना करके ग्राहक के खाते मे जमा कर दिया जाता है।

(iv) अभिहस्ताकन (Assignment)—बचत खाते में जमा राशि का भी अभिहस्तांकन किया जा सकता है और परिसीमा नियम के प्रावधान भी माग की तिथि से लागू होते हैं।

(v) चैक की सुविधा—बचत खाते से रकम निकालने के दो तरीके होते हैं :—(1) रकम निकालने का फार्म (Withdrawal form) भरकर साथ में पास बुक प्रस्तुत करना, तथा (2) चैक द्वारा रकम निकालना। चैक द्वारा रकम निकालने के लिए ग्राहक को सदैव अपने खाते में एक निश्चित न्यूनतम राशि, सामान्यतः 100 रुपये, जमा रखनी होती है।

(vi) कोई भी बैंक उन बचत खातों पर ब्याज नही देता है जो किसी व्यापारिक अथवा व्यावसायिक संस्था के नाम से खोले गये हैं, चाहे ऐसी फर्म एक-स्वामित्व वाली (Proprietary) अथवा भागीदार वाली (Partnership) फर्म है या कम्पनी अथवा संगठन है।

चालू एवं बचत खाता खोलना एव उसका संचालन (Opening and operation of Current and Saving Account)

(1) निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन (Application on the prescribe form)—एक अधिकोष मे खाता खुलवाने के लिए सम्भावित ग्राहक को अपने मनपसन्द अधिकोष से लिखित निवेदन करना पडता है। निवेदन के रूप में एकरूपता लाने के उद्देश्य से प्राय: प्रत्येक अधिकोष अपने छपे हुए प्रार्थना-पत्र रखता है। ये प्रार्थना-पत्र अधिकोषो की ओर से निशुल्क दिये जाते हैं। चालू एवं बचत खाते के लिए पृथक्-पृथक् प्रार्थना पत्र होते हैं। चैक की सुविधा वाले खाते के लिए विशेष प्रार्थना-पत्र भरना पड़ता है।

इस प्रार्थना-पत्र मे प्रार्थी को अपना नाम, पता, व्यवसाय आदि देने के अतिरिक्त यह भी घोषणा करनी पड़ती है कि उसने अधिकोष के नियमों को पढ लिया है और वह उनका तथा उनमे संशोधन किये गये नियमो का पालन करेगा।

(2) आवेदक का समुचित परिचय या सदर्भ (Introduction of applicant or Reference)—प्राधित अधिकोष प्रार्थी के निवेदन को स्वीकार करने से पूर्व उसकी साख, चरित्र, आर्थिक स्थिति एवं व्यवहार आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। यह जानकारी वैधानिक संरक्षणों का लाभ उठाने, व्यावसायिक एवं वैधानिक दायित्वो की पूर्ति करने एवं असावधानी से होने वाली हानियों से बचने के लिए प्राप्त की जाती है।

अनेक न्यायालीय निर्णयों[1] द्वारा यह अभिमत प्रकट किया गया है कि जो अधिकोष अपने ग्राहको का परिचय प्राप्त किये बिना ही खाता खोलता है वह असावधानी का दोषी होता है। भारतीय पर क्राम्य सलेख अधिनियम की धारा 121 केवल सावधानी व सद्-विश्वास से ग्राहकों के धनादेशो का संग्रहण करने पर सग्राहक अधिकोष को वैधानिक संरक्षण प्रदान करती है। **समुचित परिचय सावधानी का एक अभिन्न अंग माना जाता है।** *अतः वैधानिक संरक्षणों का लाभ पाने के लिए प्रत्येक भावी-ग्राहक का समुचित परिचय प्राप्त करना अनिवार्य होता है।* आवेदक अपना परिचय निम्नांकित रूप से दे सकता है :—

(अ) नियोजक द्वारा (By Employer)—भिन्न-भिन्न वर्ग के व्यक्तियो की जानकारी भिन्न-भिन्न माध्यमो से प्राप्त की जाती है। उदाहरणार्थ कर्मचारी वर्ग की जानकारी नियोजकों से प्राप्त की जाती है। जो अधिकोष एक कर्मचारी का खाता खोलने से पूर्व उसके नियोजक से उसकी वित्तीय स्थिति व अन्य व्यवहारो के बारे में जानकारी प्राप्त नही करता उसे लापरवाही का दोषी माना जाता है।

(ब) किसी सम्मानित व्यक्ति, बैंक कर्मचारी अथवा ग्राहक द्वारा (By any honourable person, Bank's emloyee or customer)—व्यापारियो, उद्योगपतियों एवं अन्य वर्ग के सम्बन्ध में जानकारी उस क्षेत्र के अन्य व्यवसायियों, सन्दर्भगत व्यक्तियो अथवा उस क्षेत्र में कार्य करने वाली विशेषज्ञ संस्थाओं से प्राप्त की जाती है। जिस व्यक्ति का सन्दर्भ स्वरूप नाम दिया जाता है वह **अनिवार्यतः अधिकोष का कर्मचारी अथवा अधिकोष का ग्राहक होना चाहिए।** जब एक अधिकोष अपने किसी भावी ग्राहक का परिचय किसी अपरिचित व्यक्ति से प्राप्त करता है तो उस जानकारी के बावजूद भी वह लापरवाही का दोषी माना जाता है।[2] बैंक संदर्भगत व्यक्तियों से भावी ग्राहक की

1. (अ) लैड ब्रोट एण्ड कम्पनी बनाम टॉड, 1914।
   (ब) लायड्स बैंक बनाम सेवोरी एण्ड कम्पनी, 1932।
2. दी गार्जियन्स ऑफ सेण्ट जॉन्स बनाम बार्कलेज बैंक।

ईमानदारी, नेक-नीयती (Integrity) सम्माननीयता एवं वित्तीय स्थिति के बारे में गुप्त रूप में जानकारी प्राप्त करता है।

परिचयात्मक सदर्भ से लाभ (Merits of Introductory References)—समुचित परिचय व्यावसायिक दायित्वों की पूर्ति में सहायक होता है। व्यावसायिक दायित्व के क्षेत्र में अधिकोषों को मुख्य लाभ निम्न प्रकार से प्राप्त होते हैं :—

(i) संवैधानिक सुरक्षा (Statutory Protection)—भावी ग्राहक का संदर्भ प्राप्त करके खाता खोलने पर विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 131 के अन्तर्गत ग्राहक के दोषपूर्ण स्वामित्व वाले चैक के संग्रहण के लिए बैंक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता तथा बैंक को संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त होती है। लेड ब्रोक एण्ड कम्पनी बनाम टॉड 1914 (Ladbroke and Co., Vs. Todd) के विवाद में दिये गये निर्णय में इसी तथ्य की पुष्टि की गयी थी।

(ii) असावधानी के कारण अधिविकर्ष में सुरक्षा (Safeguard against inadverent overdraft)—कभी-कभी एक अधिकोष सद्-विश्वास से किन्तु असावधानीवश अपने किसी ग्राहक को अधिविकर्ष की सुविधा दे देता है। इसी प्रकार से कभी-कभी एक ग्राहक का धन किसी दूसरे ग्राहक के खाते में जमा हो जाता है। ग्राहक के बेईमान होने पर अधिकोष को दोनों ही अवस्थाओं में हानि उठानी पड़ सकती है। किन्तु ग्राहक सदर्भ में दिये गये व्यक्तियों के भय से ऐसा कार्य करते हुए शर्मायेगा। इस प्रकार बैंक को चरित्रवान एवं ईमानदार ग्राहक से ऋण-राशि की वसूली में सुविधा मिल सकेगी।

(iii) दिवालिया व्यक्तियों से मुक्ति—दिवालिया व्यक्तियों से आर्थिक व्यवहार करते समय ऐसी सूचना बड़ी लाभप्रद सिद्ध होती है क्योंकि दिवालिए व्यक्ति की सम्पत्ति पर राजकीय आदाता प्रभृति अधिकारियों का अधिकार होता है व उसे 50 रुपये से ज्यादा का ऋण स्वीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि इस प्रकार के ऋण का शोधन नहीं किया जा सकता। अतः एक अधिकोष या तो ऐसे व्यक्ति को ग्राहक ही नहीं बनाएगा या उसे ऋण स्वीकृत नहीं करेगा।

(iv) व्यावसायिक सूचना देने में सहायता—एक अधिकोष इस प्रकार की प्राप्त सूचना अपने सहयोगी अधिकोषों व अन्य संस्थाओं को सम्प्रेषित (Communicate) कर सकता है तथा इसके बदले में उसे भी आवश्यकता के समय उनसे वांछित सहयोग मिलता है।

(v) उत्तम आचरण की आशा—प्रस्तावित ग्राहक के बारे में संतोषजनक संदर्भ प्राप्त कर लेने के पश्चात् बैंक उसके उत्तम आचरण के प्रति आश्वस्त हो जाता है और ग्राहक से कभी भी धोखे की आशंका नहीं रहती है।

(vi) व्यावसायिक सूचना देने में सहायक—बैंक को अनेक बार व्यावसायिक शिष्टाचार के नाते अपने ग्राहक की वित्तीय स्थिति एवं आचरण के विषय में साथी बैंकों अथवा व्यापारियों को सूचना देनी पड़ती है। संतोषजनक संदर्भ के अभाव में न केवल बैंक को हानि की आशंका रहती है वरन् अन्य बैंकों एवं सामान्य जनता को भी नुकसान उठाना पड़ता है। अतः व्यावसायिक सूचना देने के लिए सन्दर्भ की पर्याप्तता वांछनीय है।[1]

(3) नमूने के हस्ताक्षर (Specimen Signature)—खाता खोलते समय बैंक प्रत्येक ग्राहक से 'नमूने के हस्ताक्षर कार्ड' पर उसके नमूने के हस्ताक्षर लेता है। सामान्य-

1. H. P. Sheldon : *Practice and Law of Banking*, 8th. ed. P. 235.

तथा एक ही कार्ड पर तीन हस्ताक्षर किये जाते हैं तथा उनका किसी उत्तरदायी व्यक्ति द्वारा सत्यापन (Verification) करवाया जाता है। इस प्रकार के हस्ताक्षर कार्ड को बैंक वर्णों के क्रम से फाइल कर लेता है व भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश का भुगतान करने से पूर्व उसके हस्ताक्षरों का ग्राहक के नमूने के हस्ताक्षरो से मिलान करता है। ऐसा करने से अधिकोष जालसाजी के शिकार होने से बच जाते हैं।

(4) संचालन-सम्बन्धी निर्देश—जब एक ग्राहक अपने खाते का स्वय संचालन नहीं करता है तो उसे अपने अधिकोष को अपने खाते के संचालन के लिए किसी अभिकर्ता की नियुक्ति कर संचालन सम्बन्धी स्पष्ट निर्देश देने पड़ते हैं। साझेदारी, प्रमण्डल, संस्थाओं और संयुक्त खातों के संचालन के लिए निर्देश प्राप्त करना अनिवार्य होता है।

(5) खाता खोलना (Opening of an Account)—उपर्युक्त औपचारिकताएँ पूरा करने के पश्चात् ग्राहक को बचत खाता खोलने के लिए कम-से-कम 5 रुपये तथा चालू खाता खोलने के लिए कम-से-कम 100 रुपये से 500 रुपये तक जमा करना पड़ता है। बैंक चाहे तो उस पर लिखे गए ड्राफ्ट तथा चैक से भी खाता खोल सकता है, किन्तु प्रथम जमा के रूप मे नकद धन लेकर खाता खोलना उत्तम रहता है। नया खाता खोलने पर बैंक को (i) जमा पर्ची पुस्तिका, (ii) चैक बुक, तथा (iii) पास बुक दे देता है। इन पुस्तकों की प्राप्ति पर ग्राहक अपने खाते को संचालित करने मे पूर्ण सक्षम हो जाता है।

बैंक खाते का संचालन
(Operation of a Bank Account)

बैंक खाते के संचालन का अभिप्राय ग्राहक द्वारा अपने खाते मे धन जमा कराने तथा धन वापिस निकालने की प्रक्रिया से है। इस कार्य के लिए बैंक द्वारा प्रदत्त निम्नांकित पुस्तकों का प्रयोग किया जाता है :—

I. जमा-पर्ची पुस्तिका (Pay-in-slip-book) :

खातों मे धन जमा करवाने के लिए बैंक की ओर से 'जमा-पर्ची-पुस्तिका' मिलती है। इस पर्ची के दो भाग होते हैं—(i) पर्णिका (Foil) व (ii) प्रतिपर्णिका (Counter foil)। इस पर्ची के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने खाते मे धन जमा करवा सकता है। इस पर्ची मे जमा कराने की तिथि, ग्राहक का नाम, खाता संख्या, जमा कराई जाने वाली राशि एवं उसका विस्तृत विवरण देना पड़ता है। धन जमा कराने पर सम्बन्धित अधिकोष जमा पर्ची पर अपनी मोहर लगा देता है और हस्ताक्षर कर देता है तथा प्रतिपर्णिका जमाकर्ता को लौटा देता है। जमा-पर्ची पुस्तिका का नमूना पृष्ठ 41 पर दिया गया है।

II. चैक बुक (Cheque Book) :

नवीन ग्राहक का खाता खोलने के पश्चात् अधिकोष उसे चैक बुक देता है। चैक का निर्धारित प्रपत्र भी दो भागों में विभक्त होता है। एक प्रमुख भाग और दूसरा छिद्रित प्रतिपर्णिका भाग (perforated counter foil)। प्रमुख भाग में चैक का क्रमांक, दिनांक, आहार्यी (Drawee) का नाम व स्थान, राशि शब्दों व अंकों में लिखने के लिए स्थान और ग्राहक के हस्ताक्षर एवं खाता संख्या के लिए रिक्त स्थान होता है। समस्त चालू खातेदारों को चैक की सुविधा उपलब्ध होती है जब कि बचत खाते में बैंक का उपयोग करने के लिए खाते में सदैव कम से कम 100 रुपये का जमा शेष रहना अनिवार्य है। जब ग्राहक के

पास चैक फॉर्म समाप्त होने लगें तो उसे चैक बुक में लगी मांग-पर्ची (Requisition slip) को भरकर बैंक को प्रस्तुत करके दूसरी चैक बुक ले लेनी चाहिए।

बचत खाते में जिन ग्राहकों को चैक की सुविधा उपलब्ध नहीं है, वे रुपये निकालने के प्रपत्र (Withdrawal Form) का उपयोग करते है। चैक द्वारा धन राशि-निकालने पर पास बुक का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं है। मांग-पर्ची का नमूना नीचे दिया जा जा रहा है :—

State Bank of BIKANER & JAIPUR
Date of Issue.........

As a safeguard against fraud a new cheque book will ordinarily be issued only on receipt of this requisiton form duly signed by the customer

No $\frac{S}{B}$ £ 814511 to $\frac{S}{B}$ £ 814520 1982

TO THE STATE BANK OF BIKANER & JAIPUR
SIKAR
SAVINGS BANK ACCOUNT 3644

Pesase send $\frac{\text{per bearer}}{\text{by post}}$ a book containing 10 Cheque forms.

signature
Address

Cheque forms are supplied in books of 10.

III पास बुक (Pass Book)

चालू खाता व बचत खाता खोलने वाले ग्राहको को उनका बैंक एक पास बुक देता है जिसमें वह (बैंक) उन समस्त व्यवहारो की प्रविष्टियां करता है जो समय-समय पर उसके ग्राहक के मध्य सम्पन्न होते हैं। वस्तुत: 'पास बुक' ग्राहक के अधिकोष खाते की प्रमाणित (Authenticated) व अक्षरश: प्रतिलिपि होती है। पास बुक की प्रविष्टि की अधिकोष के किसी उत्तरदायी अधिकारी द्वारा पुष्टि की जाती है। यह अधिकारी पुष्टि स्वरूप प्रत्येक शेष के समक्ष अपने संक्षिप्त हस्ताक्षर (initial) करता है। पास बुक का ग्राहक और अधिकोष मे बराबर आदान-प्रदान होता रहता है। सम्भवत: इसी कारण से इसे 'पास बुक' कहा जाता है।

प्रत्येक पास बुक पर ग्राहक का नाम, पता और व्यवसाय, खाते की प्रकृति और उसकी संख्या, अधिकोष का नाम, खाता-पृष्ठ और खाते के सचालन-सम्बन्धी महत्वपूर्ण नियम दिये रहते हैं। सामान्यत: एक पास बुक में निम्नांकित खाने होते हैं :—दिनांक, विवरण, नाम, जमा, नाम व जमा शेष, हस्ताक्षर।

खाता खोलते समय पास बुक निशुल्क दी जाती है किन्तु इसके खो जाने पर इसकी 'दूसरी प्रति' (Duplicate copy) निर्गमित कर दी जाती है जिसके लिए ग्राहक से दण्ड-स्वरूप कुछ शुल्क भी बैंक द्वारा वसूल किया जाता है।

पास बुक से ग्राहक को निम्नांकित लाभ उपलब्ध होते हैं—

(i) ग्राहक को बैंक के साथ किये गये समस्त लेनदेन का पूर्ण विवरण मिल जाता है।

(ii) ग्राहक को यह जानकारी भी मिल जाती है कि बैंक ने उसकी जमा पर कितना ब्याज दिया है तथा कितने प्रानुषंगिक व्यय (Incidental charges), प्रभार और शुल्क बैंक द्वारा ग्राहक से वसूल किये गये हैं।

(iii) ग्राहक पास बुक की सहायता से बैंक समाधान विवरण (Bank Reconciliation Statement) तैयार कर लेता है जिससे उसे रोकड़ मिलाने में सुविधा रहती है।

कुछ कुशल बैंक ग्राहकों को उसके खाते की नकल (Photostate copy) मासिक अथवा अर्ध-मासिक भेजते हैं। ग्राहक इसकी जाँच करके अपने पास रख लेता है तथा त्रुटि होने पर उसमें सुधार हेतु बैंक को लौटा देता है।

पास बुक में की गई प्रविष्टियों की वैधानिक स्थिति
(Legal Position of Entries in the Pass Book)

क्या 'पास बुक' की प्रविष्टियाँ शुद्धता का अकाट्य प्रमाण है ?—पास-बुक के अधिकोषों का एक सुपरिचित प्रलेख है किन्तु फिर भी इसकी प्रविष्टियों की वैधानिक मान्यता अथवा प्रमाणिकता के बारे में विद्वानों एवं न्यायाधीशों में मतैक्य नहीं है।

सर जॉन पेजेट का दृष्टिकोण (Sir John Paget's View) : पास बुक की वैधानिक स्थिति के सम्बन्ध में सर जॉन पेजेट की यह मान्यता है कि पास-बुक एक अधिकोष एवं उसके किसी ग्राहक के मध्य किये गये समस्त व्यवहारों का एक अकाट्य एवं आपत्ति-विहीन लेख होता है। इसे इसी रूप में मान्यता दी जानी चाहिए व नाम पक्ष की प्रविष्टियों को ग्राहक की जाँच के पश्चात् अन्तिम माना जाना चाहिए और उन पर बैंक के अहित (detriment) में नये सिरे से विचार नहीं किया जाना चाहिए।[1] डिवेन्स बनाम नोबल्स (Devaynes Vs. Nobles,) 1816 के विवाद में दिये गये निर्णय में भी पेजेट के मत की पुष्टि की गई थी। जॉन पेजेट के मतानुसार निम्नांकित महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आते हैं :—

(क) बैंक द्वारा पास-बुक में प्रविष्टियाँ करने के बाद उसे ग्राहक के पास भेजनी चाहिए। ग्राहक को चाहिए कि वह पास बुक की प्रविष्टियों की सही होने की गहराई से जाँच करे।

(ख) यदि ग्राहक इस जाँच के पश्चात् इनमें कोई त्रुटि अथवा भूल पाता है तो उसे इसकी उचित अवधि में बैंक को सुधार हेतु सूचित करना चाहिए।

(ग) यदि ग्राहक पास-बुक मिलने के पश्चात् अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो यह माना जावेगा कि सम्पूर्ण प्रविष्टियाँ उसे अन्तिम रूप से मान्य हैं और ग्राहक को भविष्य में बैंक की गलती निकालने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार पास-बुक ग्राहक के खाते का निर्विवाद एवं स्वीकृत (Settled and Accepted) अभिलेख के रूप में समझा जाना चाहिए।

विपरीत दृष्टिकोण (Divergent View)—इंग्लैण्ड व भारत में पास-बुक के सम्बन्ध में दिये गये निर्णय उपर्युक्त मान्यता का खण्डन करते है।

(i) उदाहरणार्थ चेटरटन बनाम लन्दन एण्ड काउण्टी बैंक विवाद में निर्णय देते हुए माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिमत प्रकट किया कि यदि ग्राहक पास बुक प्राप्त करने

---
1. Paget's Law of Banking 5th. Ed. p. 344.

के पश्चात् उसकी प्रत्येक प्रविष्टि पर सही का निशान लगा दे व बिना किसी प्रकार की आपत्ति के उसे अपने अधिकोष को लौटा दे तो भी यह नहीं माना जायेगा कि ग्राहक ने पास बुक देख ली है और उसकी प्रविष्टियां सही हैं।

(ii) वेगलिआनो ब्रदर्स बनाम बैंक ऑफ इंग्लैण्ड विवाद (Vagliand Brothers Vs. Bank of England)—में दिया गया निर्णय भी इस मत की पुष्टि करता है। इस निर्णय में यह अभिमत प्रकट किया गया कि पास बुक की प्रविष्टियों को खाते का अकाट्य प्रमाण नहीं माना जा सकता। अतः पास बुक की प्रविष्टियों की शुद्धता के सम्बन्ध में जब कभी भी मालूम हो विवाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

(iii) प्रविष्टियां शुद्धता का अकाट्य प्रमाण नहीं—भारतीय न्यायालयों ने भी इस सम्बन्ध में ब्रिटिश न्यायालयों का अनुसरण किया है। उदाहरणार्थ, कबिटी गल्ला रबर इस्टेट बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया विवाद में दिया गया निर्णय यह बताता है कि जब एक ग्राहक या उसका प्रतिनिधि अधिकोष कार्यालय से पास बुक लाता है व बिना किसी आपत्ति के उसे लौटा देता है तो यह नहीं माना जायेगा कि अधिकोष व सम्बन्धित ग्राहक का खाता अन्तिम रूप (Settle) ले चुका है व दोनों पक्ष उसे मानने के लिए बाध्य हैं। भावजी बनाम दी नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया विवाद में दिये गये निर्णय भी पास बुक की प्रविष्टियों को शुद्धता का अकाट्य प्रमाण नहीं मानता।

(iv) परम्परा-सम्बन्धी अपवाद (Exception regarding tradition) उपर्युक्त मान्यताओं का एक अपवाद भी है। जब एक ग्राहक और उसके अधिकोष में पास-बुक के सम्बन्ध में कोई परम्परा होती है तो न्यायालय उन परम्परा को मान्यता प्रदान करते हैं और उस परम्परा के परिप्रेक्ष्य में ही अपना अभिमत प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ "यदि ग्राहक अधिकोष द्वारा भेजी गई पास-बुक की बराबर जाँच करता रहे व अपने अधिकोष से अशुद्धियों को ठीक करता रहे या स्पष्टीकरण मांगता रहे तो बाद में वह पास-बुक की प्रविष्टियों के बारे में आपत्ति प्रस्तुत नहीं कर सकता, अर्थात् उन्हें सही माना जायेगा।[1]

पास-बुक और ग्राहक का दायित्व—पास-बुक में अंकित व्यवहारों की भांति पास-बुक-सम्बन्धी दायित्वों के बारे में भी विद्वान अभी एक मत नहीं हो पाये हैं। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि ग्राहकों को अपनी पास बुक की अनिवार्यतः जांच करनी चाहिए जब कि अन्य लोगों का यह मत है कि पास-बुक की जाँच करने के लिए किसी ग्राहक को बाध्य नहीं किया जा सकता। इंग्लैण्ड और भारत में अभी तक दूसरा मत ही चलन में है।

मोरगन बनाम यू० ए० मोर्टगेज एण्ड ट्रस्ट कम्पनी ने अपने निर्णय में यह मत व्यक्त किया है—"बैंक से पास-बुक मिलने पर सम्बन्धित ग्राहक को उसकी अवश्य जांच करनी चाहिए व यथोचित समय में अपने अधिकोष का उन अशुद्धियों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए जिनका जांच करने पर उसे पता चलता है। जो ग्राहक पास-बुक की जांच नहीं करते उन्हें लापरवाही का दोषी माना जाना चाहिए।"

---

1. बाल कृष्ण प्रमाणिक बनाम भवानीपुर बैंकिंग कारपोरेशन लिमिटेड 1932 एवं डेवेनीज बनाम नोबिल विवाद के लिए यथेष्ट गमिति।

(क) अशुद्ध प्रविष्टियों का ग्राहक पर प्रभाव

(*Effect of wrong Entries on Customer*)

(i) ग्राहक की मानसिक स्थिति में परिवर्तन—पास-बुक की प्रविष्टियांशुद्धता का अकाट्य प्रमाण नही होती हैं। अतः सम्बन्धित अधिकोष को उन प्रविष्टियों को ठीक करने का अधिकार रहता है जिन्हें वह भूल से ग्राहक के खाते में प्रविष्ट कर देता है।

किन्तु यदि एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक के खाते में भूल से कुछ रकम जमा कर देवे और ग्राहक सद्विश्वास पूर्वक तथा बिना किसी सन्देह के उस प्रविष्टि को सही मान ले या उन प्रविष्टियों के कारण उसकी मानसिक स्थिति में परिवर्तन हो जाय और वह इस जमा-राशि को निकल वाले तो सम्बन्धित बैंक इस प्रकार से निकाली गई राशि को अपने ग्राहक से राशि वापस करने को बाध्य नहीं कर सकता।[1]

(ii) जमा के आधार पर चैंक निर्गमन अथवा पृष्ठांकन पर—यदि कोई अधिकोष अपने किसी ग्राहक के खाते में भूल से कुछ धन जमा करदे व सम्बन्धित ग्राहक खाते के शेष के आधार पर किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में चैंक निर्गमित करदे अथवा अपने पक्ष में लिखे हुए चैंक का किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन कर देता है। यदि ऐसे चैंक के भुगतान के समय बैंक को अपनी भूल का पता लगता है तो शोधी अधिकोष उस समय अपनी भूल का सुधार नही कर सकता है। उसे ऐसे चैंक का भुगतान करना होगा। भुगतान न करने पर उसे गलत अनादरण से उत्पन्न क्षति की पूर्ति करनी होगी।[2] मावजी बनाम दी नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, 1901 के विवाद में यह मत व्यक्त किया गया था कि ग्राहक को पास-बुक को प्रविष्टियों के आधार पर व्यवहार करने का पूर्ण अधिकार है।[3]

(iii) अनजाने में नाम प्रविष्टि पर—यदि एक अधिकोष अनजाने मे अपने किसी ग्राहक के खाते में कुछ राशि नाम लिख दे और फिर ग्राहक को सूचना दिये बिना ही भूल सुधार के लिए उसकी विपरीत प्रविष्टि कर दे तो ग्राहक का इस प्रकार से जमा की गई राशि पर अधिकार नही होगा। यदि वह जमा-राशि पर अपना अधिकार प्रमाणित करना चाहेगा तो उसे नाम पक्ष की प्रविष्टि को भी स्वीकार करना होगा। इस प्रकार की प्रविष्टियो से न तो ग्राहक की मानसिक स्थिति में अन्तर आता है और न उनके आधार पर कोई कार्य करता है।[4]

(iv) भूल से जमा न करने पर—यदि अधिकोष ग्राहक के खाते मे कुछ धन जमा करना भूल जावे तो वह उस धन को अपने पास नही रख सकता। अपनी भूल का पता लगते ही उसे उस राशि को सम्बन्धित ग्राहक के खाते में जमा करना होगा चाहे ग्राहक उस भूल की ओर अपने अधिकोष का ध्यान आकर्षित करे या नहीं करे।

---

1. स्काईरिंग बनाम ग्रीन वुड, 1825।
2. हॉलैण्ड बनाम मैनेचेस्टर तथा लिवरपूल डिस्ट्रिक्ट बैंकिंग कम्पनी लिमिटेड, 1909।
3. M. L. Tannan : Banking Law and Practice in India, P. 269.
4. ब्रिटिश एण्ड नार्थ यूरोपियन बैंक लिमिटेड बनाम लालजटीन, 1927.

(ख) बैंक के पक्ष में अशुद्ध प्रविष्टियाँ
(Entries favourable to Banks)

यदि बैंक ने गलती से कुछ ऐसी राशियां ग्राहक के खाते में नाम लिख दी है जिनका दायित्व ग्राहक का नहीं है तो ग्राहक का कर्त्तव्य है कि उनका पता लगते ही वह बैंक को सूचित करदे अन्यथा ग्राहक को लापरवाही का दोषी माना जायेगा और ग्राहक को हानि होने पर बैंक उत्तरदायी नहीं होगा। इस मत की पुष्टि ग्रीनवुड बनाम मार्टिन्स बैंक लि० 1933 (Greenwood Vs. Martins Bank Ltd) के विवाद में की गयी है। प्रस्तुत विवाद में ग्रीनवुड के खाते से उसकी पत्नी उसके जाली हस्ताक्षर बनाकर चैक द्वारा राशि निकालती रही। ग्रीनवुड को इस जालसाजी का ज्ञान होने पर भी (वह पत्नी की प्रार्थना पर) चुप रहा। कुछ समय बाद उसकी पत्नी ने फिर जाली हस्ताक्षर बनाकर धनराशि निकालनी शुरू कर दी। इस पर ग्रीनवुड ने बैंक को शिकायत की जिसके फलस्वरूप पत्नी ने आत्महत्या करली। ग्रीनवुड बैंक द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय ने ग्रीनवुड को जालसाजी को प्रोत्साहित करने के लिए उत्तरदायी ठहराया और बैंक को गलत भुगतान करने के दोष से मुक्त कर दिया। इस संदर्भ में न्यायाधीश हार्ट (Hart) ने अपने निर्णयों में कहा कि **"ग्राहक इस प्रकार का किसी प्रविष्टि पर आपत्ति नहीं उठा सकता जिसे वह यह जानकर भी कि इस प्रकार का भुगतान उसको खाते से नहीं किया जाना चाहिए था, उसकी सूचना बैंकर को नहीं देता है।"**[1]

ग्राहक एवं अधिकोष के लिए सुरक्षित मार्ग
(Safeguards for Customer and Bankers)

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि एक अधिकोष को आवश्यक सावधानी के साथ पास बुक में प्रविष्टियां करनी चाहिये तो दूसरी ओर ग्राहक को भी जालसाजी रोकने के लिए निम्नांकित कार्यवाही करनी चाहिये :—

(क) ग्राहक को समय-समय पर पास बुक बैंक के पास प्रविष्टियों के कराने के लिए भेजनी चाहिए ताकि त्रुटियों की ओर अधिकोष का समय पर ध्यान आकर्षित किया जा सके।

(ख) पास बुक की प्रत्येक प्रविष्टि एकाउन्टेंट अथवा अन्य जिम्मेदार अधिकारी के द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिए।

(ग) ग्राहक को अपने हित में, कानूनी तौर से बाध्य न होते हुए भी अपनी पास-बुक की प्रविष्टियों को अपने बही-खाते की प्रविष्टियों से मिला लेना चाहिए। कोई त्रुटि पाने पर ग्राहक को तुरन्त बैंक को इसकी सूचना देनी चाहिए।

(घ) बैंक को ग्राहक के पास पास-बुक बंद लिफाफे में भेजनी चाहिए ताकि इसकी गोपनीयता (secrecy) बनाई रखी जा सके।

---

1. Justice Hart remarked: "That the customer is precluded from challenging any entry if, knowing that it referred to a payment not chargeable against him, has refrained from communicating his knowledge to the banker."

(ङ) बैंक को चाहिए कि समय-समय पर ग्राहक के खाते में हुए लेन देन का विवरण (Better if it is a photostate copy of the account) तथा साथ में एक फार्म भेज दे जिसमें ग्राहक अपने हस्ताक्षर से यह प्रमाणित करे कि "मैंने अपने खाता-विवरण की जाँच करली है और उसे सही पाया है।" ऐसा करने पर उस तिथि तक का हिसाब तो तय मान लिया जाता है जिसके लिए बाद में ग्राहक अपने उत्तरदायित्व से विमुख नहीं हो सकता। लेकिन ऐसे प्रमाणपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए ग्राहक बाध्य नहीं है।

(च) अतः बैंक को चालू खाते सम्बन्धी नियमों में ग्राहक का दायित्व निम्न प्रकार से स्पष्ट कर देना चाहिए जैसा कि स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा किया जाता है :—

"ग्राहक को इन प्रविष्टियों की सावधानीपूर्वक जाँच कर लेनी चाहिए। यदि उन्हें कोई भूल-चूक दिखाई दे, तो उसकी ओर तुरन्त बैंक का ध्यान दिलाया जाना चाहिए। इस आदेश की उपेक्षा करने के कारण यदि कोई हानि होगी तो उसके लिए बैंक उत्तरदायी नहीं होगा।"

(छ) यदि पास बुक खो जाती है तो दूसरी (Duplicate) दे दी जाती है। ग्राहक को पास बुक लौटाते समय बैंक यह सावधानीपूर्वक देख ले कि इस तिथि तक के समस्त, लेन-देनों की सही प्रविष्टयां करदी गई हैं तथा तिथि भी लिख दी गई है।

बैंक द्वारा खाता बन्द करना

(Closing of a Bank Account)

निम्नांकित अवस्थाओं में बैंक को किसी ग्राहक का खाता बन्द करने अथवा उसका संचालन स्थगित करने का अधिकार है :—

(1) ग्राहक द्वारा आदेश—यदि ग्राहक स्वयं अपना खाता बन्द करने का आदेश देता है तो बैंक को चाहिए कि वह खाता बन्द करदे।

(2) ग्राहक अवांछनीय व्यवहार—अनेक बार यह देखने में आया है कि ग्राहक अपने खाते में जमा शेष न होने पर भी चैक लिखता है, जाली विपत्रों को संग्रहण हेतु बैंक को भेज देता है तथा अन्य प्रकार से बैंक के साथ छल-कपट करता है। इस स्थिति में बैंक उसे उचित सूचना देकर खाता बन्द कर सकता है।

(3) ग्राहक के पागलपन पर—यदि ग्राहक पागल हो जाता है तो भी बैंक को चाहिए कि उसके खाते का संचालन तत्काल स्थगित कर दे।

(4) ग्राहक के निधन पर—जैसे ही बैंक को ग्राहक के निधन की सूचना मिलती है, उसे अविलम्ब खाता बन्द कर देना पड़ता है।

(5) कुर्की आदेश की प्राप्ति पर—जब कभी न्यायालय से ग्राहक के खाते में जमा पूर्ण राशि के विरुद्ध कुर्की आदेश (Garnishee order) जारी हो जाता है तो भी बैंक को ग्राहक का खाता बन्द करना पड़ता है। लेकिन यदि कुर्की आदेश किसी आंशिक राशि तक ही सीमित है तो बैंक शेष राशि के लिए ग्राहक के खाते का संचालन जारी रख सकता है।

(6) ग्राहक के दिवालिया हो जाने पर—इस स्थिति में भी बैंक का कर्तव्य है कि खाते-सम्बन्धी सभी व्यवहार निलम्बित कर दे और खाते में शेष जमा राशि सरकारी प्रापक (Officer Receiver) को हस्तान्तरित कर दे।

(7) अभिहस्तांकन—कभी-कभी ग्राहक अपने खाते की सम्पूर्ण राशि का किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में अभिहस्तांकन (Assignment) करने का आदेश देता है। ऐसी स्थिति में बैंक को सम्बन्धित ग्राहक का तुरन्त खाता बन्द करना पड़ता है और सम्पूर्ण राशि आदेशित व्यक्ति के खाते में जमा करनी पडती है, अथवा नकद देनी पडती है।

बैंक जमा राशियों का बीमा—भारत में 1962 से बैंक जमाओं का बीमा किया जा रहा है। इस हेतु देश में एक निगम की स्थापना की गई है जिसे निक्षेप बीमा एवं साख गारन्टी निगम (Deposit Insurance and Credit guarantee Corporation) कहा जाता है। निगम के संगठन व कार्य-पद्धति की संक्षिप्त विवेचना आगे की पंक्तियों में की जा रही है।

निक्षेप बीमा एवं साख गारण्टी निगम

(Deposit Insurance Credit Guarantee Corporation)

भारत में निक्षेप बीमा की आवश्यकता पर सबसे पहले "ग्रामीण बैंकिंग जाँच समिति" ने प्रकाश डाला किन्तु समिति की इस महत्त्वपूर्ण सिफारिश पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। 1954 में सर्राफ समिति ने पुनः रिजर्व बैंक का इस ओर ध्यान आकर्षित किया व इस हेतु उसके समक्ष एक योजना भी प्रस्तुत की किन्तु रिजर्व बैंक इस सम्बन्ध में इस बार भी उदासीन रहा और कुछ समय के लिए इस विषय को लगभग भुला दिया गया। जब 1960 में दक्षिण भारत मे कार्यरत दो महत्त्वपूर्ण अधिकोष (लक्ष्मी व पलाई बैंक) अचानक टूट गए तब संसद व संसद के बाहर भारत सरकार व रिजर्व बैंक की इस सम्बन्ध में तीखी आलोचना की गई। स्थिति की गम्भीरता का एहसास करते हुए सरकार ने 1961 में संसद में 'भारतीय निक्षेप बीमा विधेयक' प्रस्तुत किया जिसे सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। 7 दिसम्बर 1961 को राष्ट्रपति महोदय ने इस विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान की और 1 जनवरी 1962 से इस निगम ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। निगम की मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं:—

पूंजी व संचालन :—निगम की अधिकृत व दत्त पूंजी 10 करोड़ रुपए है जिसे रिजर्व बैंक ने खरीद रखा है। 1968 से पूर्व निगम की अधिकृत व दत्त पूंजी 1 करोड़ रुपए थी। निगम का संचालन एक 8 सदस्यीय संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है और रिजर्व बैंक का गवर्नर इसका पदेन अध्यक्ष होता है। शेष 7 सदस्यों में से एक सदस्य की नियुक्ति भारत सरकार, 1 सदस्य की नियुक्ति रिजर्व बैंक व शेष 5 सदस्यों की नियुक्ति भारत सरकार रिजर्व बैंक के परामर्श से करती है। ये पाँचों व्यक्ति व्यापार, उद्योग व वित्त के विशेषज्ञ होते हैं किन्तु न तो ये केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या किसी अधिकोष के कर्मचारी होते हैं और न किसी अधिकोष से अन्य किसी प्रकार से सम्बद्ध होते हैं।

बीमा क्षेत्र :—प्रारम्भ में बीमा निगम केवल व्यापारिक अधिकोषों के निक्षेपों का बीमा करता था किन्तु अब ग्रामीण अधिकोषों व सहकारी अधिकोषों के निक्षेपों का भी

है अथवा अपने सामान्य कोष में से बीमा कोष मे आवश्यक राशि का स्थानांतरण कर सकता है। 30.6.77 को बीमा कोष में 62.72 करोड़ रुपए जमा थे व—31 दिसम्बर 79 तक निगम ने 14 व्यापारिक अधिकोषों व सहकारी अधिकोषों को क्रमश: 113 लाख रुपए व 97 लाख रुपए का भुगतान किया अथवा भुगतान के लिए व्यवस्था की।

निरीक्षण—निगम स्वयं किसी भी पंजीकृत अधिकोष के निरीक्षण के लिए अधिकृत नहीं है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वह इस विषय मे रिजर्व बैंक से आग्रह कर सकता है व रिजर्व बैंक को उसके इस आग्रह को अनिवार्यतः मानना पड़ता है। रिजर्व बैंक निरीक्षणोपरान्त अपने प्रतिवेदन की एक प्रति निगम के पास भेजता है। निगम किसी भी अधिकोष से निक्षेपो के बारे में आवश्यक जानकारी माग सकता है व उसके एतद्विषयक किसी भी अभिलेख को देख सकता है।

नवीन उत्तरदायित्व—15 जुलाई 1978 को साख–गारण्टी निगम को इस निगम मे मिला दिया गया और इसकी अधिकृत व दत्त पूंजी 10 करोड़ रुपए कर दी गई। अब यह निगम निक्षेप बीमा के साथ साथ गारन्टी निगम के विभिन्न कार्यो व योजनाओ का भी सचालन करता है। इसे नवीन गारण्टी योजनाओं के निर्माण के लिए भी अधिकृत किया गया है। इस समय निगम स्वीकृत संस्थाओं द्वारा कमजोर वर्ग के लोगों को प्रदत्त साख की 3 योजनाओ (i) लघु ऋण गारण्टी योजना (ii) वित्तीय निगम गारण्टी योजना व (iii) सेवा सहकारी समिति गारण्टी योजना—के अन्तर्गत गारण्टी देता है। इन योजनाओं के अन्तर्गत निगम क्रमशः व्यापारिक व क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों, राज्य वित्त निगमों व सहकारी संस्थाओ द्वारा स्वीकृत ऋणों की गारण्टी देता है। जून 1979 तक निगम इन योजनाओ के अन्तर्गत क्रमश: 1907·75, 9·38 व ·62 करोड़ रुपए के ऋणो की गारण्टी दे चुका था।

प्रश्न

1. एक बैंक में कितने प्रकार के खाते खोले जा सकते हैं ? संक्षेप में वर्णन कीजिये। एक निरक्षर व्यक्ति का खाता किस प्रकार खोला जायेगा, समझाइए।
2. एक नया खाता खोलने की विधि का वर्णन कीजिए तथा उन सावधानियो का वर्णन कीजिए जो एक बैंकर एक संयुक्त पूंजी वाले प्रमण्डल के साथ लेन-देन करते समय काम में लेता है।
3. एक ग्राहक का खाता खोलते समय व्यवहृत उन सावधानियों का वर्णन कीजिए जिनके अभाव में एक बैंक वैधानिक संरक्षण प्राप्त करने से वंचित रह जाता है।
4. बैंक पास-बुक से क्या तात्पर्य है ? ग्राहक के पक्ष में की गई अशुद्ध प्रविष्टियों सम्बन्धी बैंक के दायित्व को स्पष्ट कीजिए।
5. स्थाई जमा रसीद की विशेषताएं बताइए। क्या वह एक विनिमय साध्य प्रलेख है ? इस रसीद की प्रतिभूति पर ऋण देते समय बैंक को किन सावधानियों को काम में लेना चाहिए ?

बीमा करता है । प्रथम दो श्रेणी के अधिकोषो को अपने कुल निक्षेपों का इस निगम से अनिवार्यत: बीमा करवाना पड़ता है किन्तु सहकारी अधिकोषों पर यह प्रावधान सम्बन्धित राज्य सरकारो की सहमति से ही लागू किया जा सकता है । जुलाई 1979 तक13 राज्यो — आन्ध, जम्मू व कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर-प्रदेश, प. बंगाल, गुजरात व तमिलनाडु-ग्रोर 3 केन्द्र-शासित क्षेत्रों–देहली, गोआ, दामन व दीव और पॉण्डीचेरी–ने अपने राज्यो में कार्यरत सहकारी अधिकोषों पर इस योजना को लागू करने की सहमति प्रदान करदी थी । बीमा हेतु प्रत्येक अधिकोष को निगम के पास अपना पंजीकरण करवाना पड़ता है । 31 दिसम्बर 1979 को निगम के पास 1392 अधिकोष पंजीकृत थे जिनमे से 78 व्यपारिक अधिकोष, 59 क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष व 1255–सहकारी अधिकोष थे । निगम किसी अधिकोष के टूट जाने या अन्य किसी अधिकोष में मिल जाने पर निक्षेपकर्त्ताओं की नियमानुसार पूर्णत: अथवा अंशत: क्षतिपूर्ति करता है।

बीमा की अधिकतम सीमा—प्रारम्भ में निगम एक खातेदार के 1500 रुपए तक के निक्षेपों का पूर्ण बीमा करता था किन्तु निगम धीरे-धीरे इस राशि को बढ़ाता चला गया और जुलाई 80 में इसे 30000 रु० कर दिया । अब जिस ग्राहक के खाते में 30000 रु० या इससे कम राशि जमा होती है उसे अपने अधिकोष के टूटने या विलय की अवस्था मे निगम से सम्पूर्ण जमा राशि प्राप्त होती है । क्षतिपूर्ति हेतु इस राशि का एक ही नाम व एक ही क्षमता मे जमा होना आवश्यक होता है । 30000 रु० से अधिक राशि जमा होने पर आधिक्य का भुगतान दिवालिया अधिकोष के उपलब्ध संसाधनो में से किया जाता है । जब एक ग्राहक का एक से अधिक अधिकोषों में खाता होता है तो उसे प्रत्येक टूटनेवाले अधिकोष मे जमा राशि का उपर्युक्त दर से भुगतान किया जाता है । निगम अभी केवल व्यक्तिगत जमाओ का निक्षेप करता है । अतएव—केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, विदेशी सरकारो व-अधिकोषों को निक्षेप बीमा का लाभ नही मिल पाता है । सितम्बर 1978 को निगम के पास 931 लाख बीमित खाते थे जिनमे से 915(98·3%) लाख खाते पूर्णत: बीमित थे । इन खातो में उक्त तिथि को 21669 करोड़ रुपए जमा थे जिनमें से 15369 करोड़ तुल्य (70·96) निक्षेप पूर्णत: बीमित थे

प्रीमियम की दर : निगम पंजीकृत अधिकोषों से बीमा शुल्क लेता है । यह शुल्क कुल जमाओ पर लिया जाता है । निगम 15 पैसे प्रति सैकड़ा प्रतिवर्ष की दर से शुल्क ले सकता है किन्तु प्रारम्भ में इसने केवल 5 पैसे प्रति सैकड़ा की दर से बीमा शुल्क लिया जिसे 1971 मे घटाकर 4 पैसे प्रति सैकड़ा कर दिया गया । प्राप्त राशि को निक्षेप बीमा कोष में जमा किया जाता है और इसका केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों मे विनियोजन किया जाता है । विनियोगों से प्राप्त ब्याज को भी इसी कोष में जमा किया जाता है जिसका इन्हीं प्रतिभूतियों में पुनर्विनियोग किया जाता है । पंजीकृत अधिकोषों को देयराशि का हर छठे माह भुगतान करना पड़ता है । समय पर भुगतान न करने पर दोषी अधिकोषो को देय राशि पर 8% की दर से ब्याज देना पड़ता है ।

हानि की अवस्था में निक्षेप कर्ताओ को इसी कोष में से भुगतान किया जाता है । निजी संसाधनो के अभाव में निगम रिजर्व बैंक से 5 करोड़ रुपए तक उधार ले सकता

4

बैंकों के विशेष प्रकार के ग्राहक
(Special Types of Customers of Banks)

पिछले अध्याय में ग्राहक द्वारा विभिन्न प्रकार के खाते खोलने एवं उनका संचालन करने सम्बन्धी अनेक वैधानिक व्यवस्थाओं की समीक्षा की गई थी। अब हम निम्नांकित दर्शाये गये विभिन्न वर्गों से सम्बन्धी व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा खोले गये खातों की प्रक्रियाओं का विवेचन करेंगे। इनके लिए अनुबन्ध करने सम्बन्धी विशिष्ट प्रावधान हैं, अतः इन्हें विशेष प्रकार के ग्राहक कहना अधिक उचित होगा।

1. अवयस्क (Minor)
2. पागल (Lunatic)
3. शराबी (Drunkard)
4. विवाहित महिलायें (Married Women)
5. पर्दानशीन महिलायें (Pardanashin Ladies)
6. निरक्षर व्यक्ति (Illiterate Person)
7. संयुक्त खाते (Joint Accounts)
8. संयुक्त हिन्दू परिवार (Joint Hindu Family)
9. साझेदारी फर्म (Partnership firms)
10. प्रन्यासी (Trusts)
11. निष्पादक एवं प्रशासक (Executors and Administrators)
12. ग्राहक के मुख्त्यार (Customers Attorney)
13. स्थानीय संस्थाएं (Local Authorities)
14. सहकारी समितियां (Co-operative Societies)
15. सरकारी विभाग (Government Departments)
16. संयुक्त पूँजी कम्पनी (Joint Stock Company)
17. समिति, क्लब, धर्मार्थ एवं शिक्षा संस्थाएँ आदि (Societies, clubs, charitable and Educational Institutions etc.)

उपरोक्त संस्थाओं का विस्तारपूर्वक आगे विश्लेषण किया जा रहा है।

(1) अवयस्क
(Minor)

जिस व्यक्ति की आयु 18 वर्ष से कम होती है वह अवयस्क कहलाता है। यदि 18 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति के लिए या ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति के लिए अभिभावक की

6. "पास-बुक में की गई प्रविष्टियाँ बैंक और ग्राहक के मध्य सम्पन्न व्यवहारों का निर्विवाद अभिलेख (Unquestionable Record) स्थापित करती हैं।" समझाइए।
7. एक बैंकर अपने ग्राहक को कौन-कौन-सी पुस्तकें देता है ? प्रत्येक का संक्षित वर्णन दीजिए।
8. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें एक बैंकर अपने ग्राहक का खाता बन्द कर देता है। खाता बन्द करते समय खाते में जमा धनराशि किसे लौटाई जाती है ? समझाइए।
9. परिचय-सम्बन्धी उपयुक्त हवाला लिया बिना खाता खोलने पर बैंक को किन जोखिमों का सामना करना पड़ता है ? समझाइए।

———

4

बैंकों के विशेष प्रकार के ग्राहक
(Special Types of Customers of Banks)

पिछले अध्याय में ग्राहक द्वारा विभिन्न प्रकार के खाते खोलने एवं उनका संचालन करने सम्बन्धी अनेक वैधानिक अवस्थाओं की समीक्षा की गई थी। अब हम निम्नांकित दर्शाये गये विभिन्न वर्गों से सम्बन्धी व्यक्तियों एव संस्थाओं द्वारा खोले गये खातों की प्रक्रियाओं का विवेचन करेंगे। इनके लिए अनुबन्ध करने सम्बन्धी विशिष्ट प्रावधान हैं, अतः इन्हे विशेष प्रकार के ग्राहक कहना अधिक उचित होगा।

1. अवयस्क (Minor)
2. पागल (Lunatic)
3. शराबी (Drunkard)
4. विवाहित महिलायें (Married Women)
5. पर्दानशीन महिलायें (Pardanashin Ladies)
6. निरक्षर व्यक्ति (Illiterate Person)
7. संयुक्त खाते (Joint Accounts)
8. संयुक्त हिन्दू परिवार (Joint Hindu Family)
9. साझेदारी फर्म (Partnership firms)
10. प्रन्यासी (Trusts)
11. निष्पादक एवं प्रशासक (Executors and Administrators)
12. ग्राहक के मुख्त्यार (Customers Attorney)
13. स्थानीय संस्थाएं (Local Authorities)
14. सहकारी समितियां (Co-operative Societies)
15. सरकारी विभाग (Government Departments)
16. संयुक्त पूंजी कम्पनी (Joint Stock Company)
17. समिति, क्लब, धर्मार्थ एवं शिक्षा संस्थाएें आदि (Societies, clubs, charitable and Educational Institutions etc.)

उपरोक्त संस्थाओं का विस्तारपूर्वक आगे विश्लेषण किया जा रहा है।

(1) अवयस्क
(Minor)

जिस व्यक्ति की आयु 18 वर्ष से कम होती है वह अवयस्क कहलाता है। यदि 18 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति के लिए या ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति के लिए अभिवाहक की

नियुक्ति किसी न्यायालय द्वारा की जाती है, तो ऐसा व्यक्ति उस समय तक अवयस्क माना जायेगा जब तक कि वह अपनी आयु के 21 वर्ष पूरे न करले। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के अनुसार अवयस्क कोई वैधानिक प्रसंविदा करने मे सक्षम नहीं होता है। उसके द्वारा किये गये सभी प्रसविदे अवैध (Void) होते हैं किन्तु उसे जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने हेतु किये गये प्रसंविदे विधि मान्य प्रसविदे (Valid Contract) होते हैं। अन्य सभी प्रसंविदो में अवयस्क अपने वचन का खण्डन (repudiate) कर सकता है। इसीलिए किसी अवयस्क के साथ लेन-देन करते समय विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है। बैंक को भी अवयस्क का खाता खोलने एवं उसके संचालन में निम्नांकित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए :

(1) अधिविकर्ष (Overdraft)—यद्यपि बैंक किसी भी अवयस्क का खाता खोलने को स्वतंत्र है किन्तु उसे अधिविकर्ष अथवा ऋण नहीं देना चाहिए, क्योंकि यह ऋण राशि उससे कानूनी कार्यवाही द्वारा वसूल नहीं की जा सकती। इस प्रकार की जोखिम से बचने के लिए अवयस्क का खाता उसके अभिभावक (Guardian) के नाम से खोलना उचित होगा जिससे ऋण व अग्रिम संरक्षक से वसूल की जा सकेगी।

(2) संपत्ति गिरवी—बैंक को अवयस्क की सम्पत्ति गिरवी रखकर अग्रिम धनराशि नहीं देनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना वैधानिक रूप से अवैध (invalid) है। अवयस्क को उसकी सम्पत्ति तत्काल लौटानी पड़ती है। बैंक अवयस्क द्वारा प्रतिभूति के रूप में रखी हुई सम्पत्ति को बेचने का भी अधिकारी नहीं है।

(3) अवयस्क साझेदार के रूप में—कोई भी अवयस्क अन्य साझेदारों की सहमति से साझेदारी फर्म मे साझेदार के रूप में शामिल हो सकता है। किन्तु वह साझेदारी फर्म की हानि या देनदारी के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। जैसे ही वह वयस्क (Mazor) हो जाता है, उसे 6 महीने के भीतर साझेदारी के रूप में अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए।

(4) चैक या विपत्र के बेचान पर—अवयस्क को चैक लिखने और विपत्र का बेचान करने का अधिकार है किन्तु इस प्रकार के चैक या विपत्र के अनादरण पर उत्तरदायी नहीं होता है। यद्यपि इन विलेखो से सम्बन्धित सभी अन्य पक्ष उत्तरदायी होते हैं। अतः बैंक को अवयस्क द्वारा लिखे गये चैकों तथा बेचे गये विपत्रों के सम्बन्ध मे व्यवहार करते समय सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता है।

(5) अभिकर्ता के रूप में—कोई भी अवयस्क बैंक के साथ व्यवहार करने के लिए अभिकर्ता (Agent) के रूप में कार्य कर सकता है। उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए उसका नियोक्ता (Principal) उत्तरदायी होता है। यहाँ बैंक को चाहिए कि नियोक्ता से इस सम्बन्ध में अभिकर्ता के अधिकार एवं धनराशि निकालने की सीमा के स्पष्ट आदेश प्राप्त कर लेने चाहिए। बैंक को यह सावधानी भी रखनी है कि अवयस्क इन सीमाओं से अधिक धनराशि नहीं निकाल पावे।

(6) प्रत्याभूति के आधार पर ऋण—बैंक को किसी तीसरे व्यक्ति की प्रत्याभूति (guarantee) के आधार पर अवयस्क को अग्रिम-ऋण नहीं देनी चाहिए क्योंकि यह अग्रिम-राशि अवयस्क के प्रत्याभू (Guarantor) से भी वसूल नहीं की जा सकती है।

इसका कारण यह है कि बैंकर और अवयस्क के बीच हुआ अनुबन्ध ही वैध नहीं है, अतः प्रत्याभू का दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

(2) पागल
(Lunatic)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 की धारा 12 के अनुसार "अनुबन्ध करने के लिए प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ मस्तिष्क वाला कहा जाता है जो कि अनुबन्ध करते समय अनुबन्ध के अपने हितों पर होने वाले प्रभाव के विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता रखता हो।" पागल व्यक्तियों में अस्वस्थ मस्तिष्क होने के कारण अनुबन्ध करने की क्षमता का अभाव होता है इसलिए इनके साथ किए गए अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं। अतः एक अधिकोष पागल व्यक्तियों को अपना ग्राहक नहीं बनाता है। किसी पागल का खाता खोलते समय बैंक को निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए :—

(i) जब एक अधिकोष किसी पागल व्यक्ति को अपना ग्राहक बना लेता है और उसके खाते में से धनादेश आदि का भुगतान कर देता है तो शोधी अधिकोष इस प्रकार के भुगतान की राशि को पागल ग्राहक के नाम नहीं लिख सकता। एक पागल व्यक्ति स्वस्थ होने पर अथवा उसके प्रतिनिधि इस प्रकार के भुगतान की राशि को अधिकोष से वसूल करने के अधिकारी होते हैं।

(ii) पागलपन के दौर की स्थिति में—जिन व्यक्तियों में कभी-कभी पागलपन का दौर आता है उन व्यक्तियों को भी अधिकोष अपना ग्राहक नहीं बनाते हैं और न उन्हें ऋण स्वीकृत करते है क्योंकि सम्बन्धित अधिकोष के लिए यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि धनादेश के आलेखन अथवा ऋण स्वीकृति के समय वे मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ थे।

(iii) पागलपन की सूचना पर खाता बन्द करें—जब एक ग्राहक पागल हो जावे तो उसके अधिकोष को एतद् विषयक अधिकृत सूचना के मिलते ही पागल ग्राहक का खाता बन्द कर देना चाहिए। यदि किसी ग्राहक ने अपने खाते के सचालन के लिए अभिकर्ता (Agent) नियुक्त कर रखा हो और वह पागल हो जाये तो उसके खाते का संचालन स्थगित कर देना चाहिए। एक ग्राहक के पागलपन के साथ ही उसके अभिकर्ता के अधिकार समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार से जब एक अभिकर्ता पागल हो जाता है तब भी वह अपने मालिक के खाते का संचालन नहीं कर सकता।

(iv) पागलपन की जाँच करना आवश्यक—एक अधिकोष ,अपने किसी पागल ग्राहक का खाता बन्द करने से पूर्व उसके पागलपन की प्रमाणिकता की जाँच करता है। वह केवल अफवाहों (Rumours) के आधार पर किसी ग्राहक का खाता बन्द नहीं करता है, क्योंकि ऐसी अवस्था में उसे धनादेशों के गलत अनादरण के लिए दायी बनना पड़ता है। अधिकोष को प्रमाणिक सूचना ग्राहक के निकटतम सम्बन्धी, उसके विधि परामर्शदाता, न्यायालय अथवा किसी मानसिक चिकित्सक से प्राप्त हो सकती है। बैंक को ऐसी सूचना लिखित में लेनी चाहिए। निकट सम्बन्धी अथवा विधि परामर्शदाता से प्राप्त सूचना की किसी चिकित्सक से पुष्टि करवाई जानी चाहिए।

(v) खाते का पुनः संचालन—जब पागल व्यक्ति पुनः स्वस्थ हो जाता है तो उसके खाते को पुनः संचालन किया जा सकता है। खाते के पुर्नसंचालन से पूर्व उसके अधि-

नियुक्ति किसी न्यायालय द्वारा की जाती है, तो ऐसा व्यक्ति उस समय तक अवयस्क माना जायेगा जब तक कि वह अपनी आयु के 21 वर्ष पूरे न करले। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के अनुसार अवयस्क कोई वैधानिक प्रसंविदा करने में सक्षम नही होता है। उसके द्वारा किये गये सभी प्रसंविदे अवैध (Void) होते हैं किन्तु उसे जीवन की आवश्यक वस्तुएं प्रदान करने हेतु किये गये प्रसंविदे विधि मान्य प्रसंविदे (Valid Contract) होते हैं। अन्य सभी प्रसंविदों में अवयस्क अपने वचन का खण्डन (repudiate) कर सकता है। इसीलिए किसी अवयस्क के साथ लेन-देन करते समय विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है। बैंक को भी अवयस्क का खाता खोलने एवं उसके संचालन में निम्नांकित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए :

(1) अधिविकर्ष (Overdraft)—यद्यपि बैंक किसी भी अवयस्क का खाता खोलने को स्वतंत्र है किन्तु उसे अधिविकर्ष अथवा ऋण नहीं देना चाहिए, क्योंकि यह ऋण राशि उससे कानूनी कार्यवाही द्वारा वसूल नहीं की जा सकती। इस प्रकार की जोखिम से बचने के लिए अवयस्क का खाता उसके अभिभावक (Guardian) के नाम से खोलना उचित होगा जिससे ऋण व अग्रिम संरक्षक से वसूल की जा सकेगी।

(2) संपत्ति गिरवी—बैंक को अवयस्क की सम्पत्ति गिरवी रखकर अग्रिम धनराशि नही देनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना वैधानिक रूप से अवैध (invalid) है। अवयस्क को उसकी सम्पत्ति तत्काल लौटानी पड़ती है। बैंक अवयस्क द्वारा प्रतिभूति के रूप में रखी हुई सम्पत्ति को बेचने का भी अधिकारी नहीं है।

(3) अवयस्क साझेदार के रूप में—कोई भी अवयस्क अन्य साझेदारों की सहमति से साझेदारी फर्म में साझेदार के रूप में शामिल हो सकता है। किन्तु वह साझेदारी फर्म की हानि या देनदारी के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। जैसे ही वह वयस्क (Mazor) हो जाता है, उसे 6 महीने के भीतर साझेदारी के रूप में अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए।

(4) चैक या विपत्र के बेचान पर—अवयस्क को चैक लिखने और विपत्र का बेचान करने का अधिकार है किन्तु इस प्रकार के चैक या विपत्र के अनादरण पर उत्तरदायी नही होता है। यद्यपि इन विलेखों से सम्बन्धित सभी अन्य पक्ष उत्तरदायी होते हैं। अतः बैंक को अवयस्क द्वारा लिखे गये चैकों तथा बेचे गये विपत्रों के सम्बन्ध में व्यवहार करते समय सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता है।

(5) अभिकर्ता के रूप में—कोई भी अवयस्क बैंक के साथ व्यवहार करने के लिए अभिकर्ता (Agent) के रूप में कार्य कर सकता है। उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए उसका नियोक्ता (Principal) उत्तरदायी होता है। यहाँ बैंक को चाहिए कि नियोक्ता से इस सम्बन्ध में अभिकर्ता के अधिकार एवं धनराशि निकालने की सीमा के स्पष्ट आदेश प्राप्त कर लेने चाहिए। बैंक को यह सावधानी भी रखनी है कि अवयस्क इन सीमाओं से अधिक धनराशि नहीं निकाल पावे।

(6) प्रत्याभूति के आधार पर ऋण—बैंक को किसी तीसरे व्यक्ति की प्रत्याभूति (guarantee) के आधार पर अवयस्क को अग्रिम-ऋण नहीं देनी चाहिए क्योंकि यह अग्रिम-राशि अवयस्क के प्रत्याभू (Guarantor) से भी वसूल नहीं की जा सकती है।

इसका कारण यह है कि बैंकर और अवयस्क के बीच हुआ अनुबन्ध ही वैध नहीं है, अतः प्रत्याभू का दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

(2) पागल
(Lunatic)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 की धारा 12 के अनुसार "अनुबन्ध करने के लिए प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ मस्तिष्क वाला कहा जाता है जो कि अनुबन्ध करते समय अनुबन्ध के अपने हितों पर होने वाले प्रभाव के विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता रखता हो।" पागल व्यक्तियों में अस्वस्थ मस्तिष्क होने के कारण अनुबन्ध करने की क्षमता का अभाव होता है इसलिए इनके साथ किए गए अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं। अतः एक अधिकोष पागल व्यक्तियों को अपना ग्राहक नहीं बनाता है। किसी पागल का खाता खोलते समय बैंक को निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए :—

(i) जब एक अधिकोष किसी पागल व्यक्ति को अपना ग्राहक बना लेता है और उसके खाते में से धनादेश आदि का भुगतान कर देता है तो शोधी अधिकोष इस प्रकार के भुगतान की राशि को पागल ग्राहक के नाम नहीं लिख सकता। एक पागल व्यक्ति स्वस्थ होने पर अथवा उसके प्रतिनिधि इस प्रकार के भुगतान की राशि को अधिकोष से वसूल करने के अधिकारी होते है।

(ii) पागलपन के दौर की स्थिति में—जिन व्यक्तियों में कभी-कभी पागलपन का दौर आता है उन व्यक्तियों को भी अधिकोष अपना ग्राहक नहीं बनाते हैं और न उन्हे ऋण स्वीकृत करते है क्योंकि सम्बन्धित अधिकोष के लिए यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि धनादेश के आलेखन अथवा ऋण स्वीकृति के समय वे मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ थे।

(iii) पागलपन की सूचना पर खाता बन्द करें—जब एक ग्राहक पागल हो जावे तो उसके अधिकोष को एतद् विषयक अधिकृत सूचना के मिलते ही पागल ग्राहक का खाता बन्द कर देना चाहिए। यदि किसी ग्राहक ने अपने खाते के सचालन के लिए अभिकर्ता (Agent) नियुक्त कर रखा हो और वह पागल हो जाये तो उसके खाते का संचालन स्थगित कर देना चाहिए। एक ग्राहक के पागलपन के साथ ही उसके अभिकर्ता के अधिकार समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार से जब एक अभिकर्ता पागल हो जाता है तब भी वह अपने मालिक के खाते का संचालन नहीं कर सकता।

(iv) पागलपन की जांच करना आवश्यक—एक अधिकोष अपने किसी पागल ग्राहक का खाता बन्द करने से पूर्व उसके पागलपन की प्रमाणिकता की जांच करता है। वह केवल अफवाहों (Rumours) के आधार पर किसी ग्राहक का खाता बन्द नहीं करता है, क्योंकि ऐसी अवस्था में उसे धनादेशो के गलत अनादरण के लिए दायी बनना पड़ता है। अधिकोष को प्रमाणिक सूचना ग्राहक के निकटतम सम्बन्धी, उसके विधि परामर्शदाता, न्यायालय अथवा किसी मानसिक चिकित्सक से प्राप्त हो सकती है। बैंक को ऐसी सूचना लिखित में लेनी चाहिए। निकट सम्बन्धी अथवा विधि परामर्शदाता से प्राप्त सूचना की किसी चिकित्सक से पुष्टि करवाई जानी चाहिए।

(v) खाते का पुनः संचालन—जब पागल व्यक्ति पुनः स्वस्थ हो जाता है तो उसके खाते को पुनः सचालन किया जा सकता है। खाते के पुर्नसंचालन से पूर्व उसके अधि-

कोष को सम्बन्धित न्यायालय या चिकित्सक से ग्राहक के स्वास्थ्य लाभ का प्रमाण पत्र ले लेना चाहिए।

एक पागल ग्राहक के खाते मे से निम्नलिखित अवस्थाओ मे अधिकोष द्वारा वैध भुगतान किया जा सकता है :—

(i) **सूचना के अभाव में भुगतान**—जब तक एक अधिकोष को अपने ग्राहक के पागलपन की सूचना नही मिलती है तब तक वह अपने ग्राहक के धनादेशों का भुगतान कर सकता है और भुगतान की राशि ग्राहक के नाम लिख सकता है।

(ii) **पागलपन से पूर्व स्वीकृत ऋण**—पागलपन से पहले स्वीकृत किए गए ऋण को भी ग्राहक के खाते मे से कटौती की जा सकती है। इसी प्रकार से जब कोई व्यक्ति किसी विपत्र की कटौती करवाता है और परिपक्व तिथि पर वह अनादरित हो जाता है तो कटौती करने वाला अधिकोष विपत्र की राशि सम्बन्धित ग्राहक से वसूली कर सकता है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसे यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि विपत्र की कटौती के समय वह ग्राहक के पागलपन से अनभिज्ञ था।

(iii) **जीवन रक्षा हेतु राशि का आहरण**—पागल ग्राहक का अधिकोष पागल व्यक्ति की पत्नी अथवा उसके किसी अन्य निकट सम्बन्धी को पागल व्यक्ति के खाते मे से जीवन-रक्षक वस्तुओं की पूर्ति के लिए आहरण की सुविधा दे सकता है, किन्तु यह अनुमति तभी दी जाती है जब कि शोधी बैंक को वे यह बन्धक पत्र (Bond) लिखकर दे देते है कि यदि पागल व्यक्ति ने स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् इस प्रकार से आहरित राशि की माँग की तो वे शोधी अधिकोष को आहरित राशि से क्षतिपूर्ति करेंगे।

(3) शराबी
(Drunkard)

मदिरापान से किसी व्यक्ति की अनुबन्ध क्षमता पर कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ता है। अत: शराबी व्यक्तियों को बिना किसी झिझक के ग्राहक बनाया जा सकता है। नशे की अवस्था में शराबी की अनुबन्ध क्षमता समाप्त हो जाती है। अत: जब वह यह प्रमाणित कर देता है कि नशा करने से उसकी मानसिक स्थिति असंतुलित हो गई थी व उससे अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उससे नशे की अवस्था में चैक, प्रतिज्ञा-पत्र या बिल लिखवाया या स्वीकार करवाया गया था तो वह इन प्रलेखो के दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

बैंक द्वारा सावधानी (Precautions by Banks)–(i) जब एक शोधी अधिकोष को यह ज्ञान हो जाय कि ग्राहक ने चैक नशे की अवस्था में लिखा था तो उसे ऐसे चैक का भुगतान नहीं करना चाहिए।

(ii) किन्तु जब नशे से चूर ग्राहक स्वयं चैक प्रस्तुत करे और भुगतान के लिए अपने बैंक को बाध्य करे तो शोधी बैंक को अपनी उपस्थिति में ग्राहक से चैक पर पुन: हस्ताक्षर करवा लेने चाहिए तथा इन हस्ताक्षरों को किसी उत्तरदायी व्यक्ति से प्रमाणित करवा लेना चाहिए। तदुपरान्त ग्राहक को भुगतान कर देना चाहिए। इस प्रकार से भुगतान करने पर शोधी बैंक को भुगतान के लिए दायी नही ठहराया जा सकता।

(iii) जब शराबी या अन्य किसी प्रकार का नशा करने वाला व्यक्ति किसी यथा विधि धारक (Holde in due course) को चैंक देता है तो ऐसा धारक अपने चैक का भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(4) विवाहित महिलाएं
(Married Women)

विवाह एक महिला की अनुबन्ध क्षमता को किंचित भी क्षत-विक्षत नही करता है। अतः अन्य व्यक्तियों की भाँति एक विवाहित महिला भी किसी बैंक मे खाता खोल सकती है, चैंक लिख सकती है व अन्य मौद्रिक व्यवहार कर सकती है।

एक विवाहित महिला के खाते में यथेष्ट मात्रा मे धन जमा होने पर उसके बैंक को उसके आदेशो के पालन में किसी प्रकार की हानि नही होती है। विवाहित महिला ग्राहकों के साथ बैंकिंग व्यवहार तथा ऋण स्वीकृत करते समय बैंक को निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए :—

(i) व्यक्तिगत सम्पत्ति पर ऋण प्रदान करें—विवाहित महिलाओं को सामान्यतः बैंक द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति पर ऋण प्रदान करना चाहिए ताकि ऋण-वसूली मे आसानी रहे। विवाहित महिलाओ की व्यक्तिगत सम्पत्ति (स्त्री धन) बहुत कम होती है अथवा बिल्कुल नहीं होती है। इसके अतिरिक्त इनके आभूषणों को धार्मिक परम्पराओं के अनुसार जीते जी शरीर से पृथक् नही किया जा सकता। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के कारण अब हिन्दू विवाहित महिलाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति के क्षेत्र का विस्तार हुआ है किन्तु फिर भी उनकी निजी सम्पत्ति नगण्य ही होती है। अतः ऋण वसूली मे परेशानी हो सकती है।

(ii) पति केवल जीवनयापन सम्बन्धी ऋणों के लिए उत्तरदायी—सामान्यतया एक विवाहित महिला अपने ऋणो के लिए अपने पति को उत्तरदायी नही ठहरा सकती। वह अपने पति को केवल उन ऋणो के लिए दायी ठहरा सकती है जिन्हें वह भोजन, वस्त्र व अन्य जीवनयापन व गार्हस्थ जीवन की आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति के लिए लेती है अथवा अपने पति के अभिकर्ता के रूप मे लेती है। किन्तु पति इस तर्क पर अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है कि उसने अपनी पत्नी को ऋण लेने के लिए मना कर रखा था और उसके पास आवश्यक वस्तुओ का कोई अभाव नही था। ऐसी स्थिति में यह ऋण महिला की व्यक्तिगत सम्पत्ति से ही वसूल किया जा सकता है।

इसी प्रकार से जब एक पत्नी स्वेच्छा से अपने पति को छोड देती है अथवा उसे जीवन-यापन के लिए नियमित रूप से मासिक-खर्चा (Allowarce) मिलता है तो वह अपने पति के नाम से उधार नही ले सकती।

(iii) अधिविकर्ष की स्वीकृति—ऋणों के आदेश की पूर्ति न होने पर ऋणी महिला को न बन्दी बनाया जा सकता है और न उन्हें जेल मे बन्द किया जा सकता है। अतः विवाहित महिला को अधिविकर्ष देते समय यह जाँच कर लेनी चाहिए कि उसके पास पूर्ण-स्वामित्व वाली सम्पत्ति है।

(iv) पत्नी द्वारा पति को गारन्टी—जब एक विवाहित महिला अपने पति के ऋणों के लिए गारन्टी का प्रस्ताव करती है तो ऋणदाता बैंक को इस प्रस्ताव को नही मानना चाहिए

क्योंकि पति की असमर्थता की अवस्था में उसकी पत्नी न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत कर सकती है कि ऋणी की गारण्टी देने के लिए उस पर अनुचित रूप से दबाव डाला गया था। सामान्यत: न्यायालय विवाहित महिलाओं के इस तर्क को मान लेते हैं। जब एक बैंक को इस प्रकार की गारण्टी पर ऋण देना पड़े तो उसे ऋण स्वीकृति के पूर्व महिला प्रत्याभू (Surety) से इस आशय की लिखित घोषणा करवा लेनी चाहिए कि वह सदभंगत गारण्टी स्वेच्छा से दे रही है। इस गारन्टी को स्वीकार करने से पूर्व ऋणदाता बैंक प्रत्याभू महिला के वकील से भी यह घोषणा करवानी चाहिए कि उसने प्रत्याभू महिला को गारण्टी के दायित्वों से भली-भांति अवगत करा दिया है व उसने इन परिणामों की जानकारी के पश्चात् मेरे समक्ष स्वेच्छापूर्वक गारण्टी दी है।

(v) जब विवाहित महिला द्वारा ऋण पति की लिखित सहमति अथवा पति के अधिकार (Authority) से लिया जाता है तो ऋण की वापसी के लिए पति उत्तरदायी होता है।

(vi) ऋणदाता अधिकोष एक महिला ग्राहक के खाते में जमा राशि को अपने ऋण के शोधनार्थ आसानी से रोक सकता है।

(5) पर्दानशीन महिलाएँ

(Pardanashin Ladies)

जाति एवं धार्मिक प्रथा के अनुसार कुछ महिलाएँ अपने परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य पुरुषों से पर्दा करती हैं और उनके सामने नहीं आती हैं। इनको पर्दानशीन महिलाएँ कहा जाता है। बैंकों को इन महिलाओं के साथ व्यवहार करते समय निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए :—

(i) खाता खोलने में सावधानी—पर्दानशीन महिलाओं को पहिचानने में संदेह बना रहता है। प्राय: यह महिलाएँ अशिक्षित होती हैं और बैंक-सम्बन्धी कार्य नजदीक से जानने वाले व्यक्ति द्वारा किया जाता है। अत: बैंक को चाहिए कि ऐसे व्यक्ति की विशेष जाँच पड़ताल करने के पश्चात् ही खाता खोला जावे।

(ii) अनुचित दबाव (Undue Influence)—ऐसी महिलाएँ अनुचित दबाव में आकर किसी के पक्ष में चैक लिख देती हैं अथवा बिल का पृष्ठांकन कर देती हैं। बैंकर द्वारा ऐसे विपत्रों के भुगतान पर वैधानिक गवाह का दायित्व आता है। अत: बैंक को इस बात की पुष्टि कर लेनी चाहिए कि पर्दानशीन महिला ने अनुबन्ध करते समय स्वतंत्र सहमति (free consent) प्रदान की थी। स्मरणीय है कि ऐसे अनुबन्ध के दूसरे पक्षकार को यह सिद्ध करना पड़ता है कि पर्दानशीन महिला के साथ किया गया अनुबन्ध उपरोक्त सभी दोषों से मुक्त है, जब कि यह सिद्ध करना सरल कार्य नहीं है। यही कारण है कि बैंक इन महिलाओं के साथ संकोच से खाता खोलते हैं।

(6) निरक्षर व्यक्ति

(Illiterate Persons)

अनपढ़ व्यक्ति अपने हस्ताक्षर करने में असमर्थ रहता है। अत: बैंक को ऐसे व्यक्ति के साथ खाता खोलते एवं उसके संचालन करते समय निम्नांकित सतर्कताएँ बरतनी चाहिए :—

(i) बैंकर को अनपढ़ व्यक्ति के बांये हाथ के अंगूठे की निशानी ले लेनी चाहिए ।

(ii) निरक्षर व्यक्ति के फोटोग्राफ की एक प्रति (Copy) भी बैंकर को अपने पास रखनी चाहिए । यह फोटोग्राफ किसी प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश द्वारा प्रमाणित करवाया जाना चाहिए, ताकि ऐसे ग्राहक को पहिचानने में आसानी रहे ।

(iii) चैक द्वारा राशि निकालने पर अंगूठे के निशान के आगे उसका नाम लिखकर किसी उपस्थित सम्मानित ग्राहक के हस्ताक्षर गवाह (Witness) के रूप में करवाना बैंक के हित में होगा ।

(7) संयुक्त खाते
(Joint Accounts)

संयुक्त खातों के संचालन पर विधि अथवा व्यवहार-सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नही है, अतः संयुक्त खातो के खोलने एवं उनके संचालन मे बैंक को निम्नांकित सावधानियां काम मे लेनी चाहिए :—

(i) **समस्त खातेदारों की सहमति लेना आवश्यक**—संयुक्त खाता खोलते समय समस्त खातेदारो की सहमति लेना आवश्यक है । अतः संयुक्त खाता खोलने से पूर्व प्रार्थित अधिकोष खाता खोलने के लिए प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर समस्त प्रार्थियों की सहमति ले लेता है। जिन प्रार्थियों की सहमति प्राप्त नही होती है उन्हें सयुक्त खातेदार नही बनाया जाता है।

(ii) **खाते की प्रकृति**—खातेदार ऐसा खाता अपनी व्यक्तिगत हैसियत अथवा प्रन्यासी के रूप में खुलवाते हैं। अतः प्रार्थित अधिकोष ग्राहकों की सहमति के अतिरिक्त खाते का पूर्ण नाम व खातेदारों की हैसियत के बारे में भी जानकारी प्राप्त करता है। प्रार्थित अधिकोष ऐसा खाता खातेदारों द्वारा प्रस्तावित नाम से खाता खोलता है व उसी नाम से प्रस्तुत चैक का भुगतान करता है ।

(iii) **आहरण सम्बन्धी निर्देश**—खातेदारो से अन्य कोई निर्देश प्राप्त न होने पर खाते में से आहरण समस्त खातेदारों के हस्ताक्षरों से ही हो सकता है ।[1] किन्तु शोधी अधिकोष को अपने हितो की रक्षार्थ आहरण-सम्बन्धी निर्देश खाता खोलते समय ही ले लेना चाहिए। खातेदार चाहें तो खाते के सचालन के लिए वे किसी बाह्य व्यक्ति को भी प्राधिकृत (Autborise) कर सकते है किन्तु इस प्रकार से प्राधिकृत व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को खाते के संचालन के लिए अधिकृत नही कर सकता। यद्यपि सयुक्त खाते के संचालन का अधिकार कुछ ही व्यक्तियों को दिया जा सकता है किन्तु उस खाते पर लिखे गये चैकों के भुगतान को रुकवाने का अधिकार सभी खातेदारों को होता है। इस प्रकार से प्राप्त आदेश को शोधी बैंक को अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है और रोके गये चैक का भुगतान केवल समस्त खातेदारों की लिखित सहमति पर किया जा सकता है ।

(iv) **अधिविकर्ष की सुविधा**—सयुक्त खाते में अधिविकर्ष की सुविधा केवल समस्त खातेदारो की स्वीकृति पर दी जाती है । सामूहिक दायित्व के कारण ऋणदाता बैंक किसी

---

1. मार्शल बनाम न्यूट वैल ।

एक खातेदार से अशोधित राशि का शोधन नहीं कर सकता। अतः उसे अपने हितों की रक्षार्थ ऋण स्वीकृत करते समय खातेदारों से सामूहिक व व्यक्तिगत दायित्व की स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए या उनसे ऋण-शोधन की गारण्टी ले लेनी चाहिए। इसी प्रकार बैंक को ऋण की सीमा-सम्बन्धी आदेश लिखित में प्राप्त कर लेने चाहिए।

(v) *मृत्यु पागलपन या दिवालिया होने पर नवीन निर्देश*—जब संयुक्त खातेदारों में से किसी एक या अधिक खातेदार के निधन पागलपन या दिवालिया घोषित होने पर संयुक्त खाते का संचालन बन्द कर दिया जाता है। खाते के पुनः संचालन के लिए नवीन लिखित निर्देश प्राप्त करना चाहिए।

(vi) खाते में जमा बहुमूल्य वस्तु—जब खाते में किसी बहुमूल्य वस्तु को जमा करवाया जाता है तो सम्बन्धित बैंक ऐसी वस्तु को समस्त जीवित-खातेदारों, मृतक खातेदारों के वैधानिक प्रतिनिधियों एवं दिवालिया खातेदारों के सरकारी प्रापक (Official Receiver) को लौटा देता है। जब ऐसी वस्तु का विक्रय किया जाता है तो अधिक्य (Surplus) का भुगतान समस्त खातेदारों या उनके प्रतिनिधियों को किया जाता है।

(vii) कुर्की आदेश—जब संयुक्त खातेदारों में से किसी एक खातेदार पर कुर्की का आदेश जारी किया जाता है तब वह आदेश संयुक्त खाते पर लागू नहीं होता है, केवल उसके व्यक्तिगत खाते में जमा राशि पर लागू होता है। अतः अधिकोष संयुक्त खाते का यथावत संचालन करता रहता है किन्तु समस्त खातेदारों के विरुद्ध कुर्की का आदेश जारी होने पर बैंक उनका संयुक्त खाता बन्द कर देता है।

(viii) पति-पत्नी का संयुक्त खाता—पति-पत्नी का संयुक्त खाता अन्य संयुक्त खातों से भिन्न होता है। अतः इसका संचालन करते समय बैंक को निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है :—

(अ) संयुक्त खाता पति की सुविधार्थ अथवा उसके असामयिक निधन पर पत्नी की सहायतार्थ खोला जा सकता है। प्रथम अवस्था में पति के निधन पर खाते में जमा राशि पर पति के वैधानिक उत्तराधिकारी का अधिकार हो जाता है; उसकी पत्नी को यह राशि नहीं दी जाती है। जब खाते में जमा राशि के भुगतान के लिए दोनों अथवा जीवित रहने वाले व्यक्ति को भुगतान का प्रावधान किया जाता है तब भी पति के निधन पर जमा राशि का भुगतान उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को ही किया जाता है।[1]

(ब) जब पति-पत्नी के वैधव्य काल (Widowhood) के लिए संयुक्त खाते में धन जमा करवाता है तब पति के निधन पर संयुक्त खाते में जमा राशि उसकी पत्नी को प्राप्त होती है, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं होती है।[2]

(स) जब पत्नी की पति से पहले मृत्यु हो जाती है तो संयुक्त खाते में जमा राशि पर पति का एकमात्र अधिकार हो जाता है।

(ix) संयुक्त खाता व प्रन्यासी—सामान्यतः संयुक्त प्रन्यास खातों में से राशि समस्त प्रन्यासियों के हस्ताक्षरों द्वारा निकाली जाती है किन्तु प्राधिकरण अधिकार द्वारा वे किसी

---

1. एस० के० पनिकर बनाम ट्रावनकोर नेशनल एण्ड क्विलन बैंक लिमिटेड 1942।
2. फेलो एण्ड फेलो 1911।

एक या कुछ प्रन्यासियों को भी इस कार्य के लिए अधिकृत कर सकते हैं। जब कोई प्रन्यासी गुम हो जाता है व समुचित खोज के पश्चात् भी नही मिलता है तो शेष खातेदारो को भी प्रन्यास खाते में से आहरण की सुविधा दी जा सकती है।

(8) संयुक्त हिन्दू परिवार (Joint Hindu Family)– संयुक्त हिन्दू परिवार का सचालन एवं सम्पत्ति का प्रबन्ध हिन्दू विधि (Hindu Law) के अनुसार होता है। इसमें दो प्रकार के सिद्धान्त शामिल हैं :—

(अ) मित्ताक्षरा (Mitakshar)—सयुक्त हिन्दू परिवार मित्ताक्षरा विधान द्वारा शासित होता है। इस विधान के अन्तर्गत सयुक्त हिन्दू परिवार की वंश परम्परागत सम्पत्ति पर परिवार के सभी (पुत्र व पुत्री) सदस्यो का अधिकार होता है। उन्हें यह अधिकार उनके गर्भाधान के समय से ही प्राप्त हो जाता है। अतः इस प्रकार की सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकृत करने से पूर्व ऋणदाता बैंक परिवार के समस्त सदस्यों की सहमति प्राप्त करता है, अन्यथा ऋणो के अशोधित रह जाने पर ऋणदाता बैंक प्रतिभूति स्वरूप प्राप्त सम्पत्ति को ऋणो के शोधनार्थ काम मे नही ले सकेगा।

(ब) दाय भाग (Daya Bhag)—इस सिद्धान्त के अधीन पिता के जीवित रहने तक पुत्र का पैतृक सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता। पिता के निधन पश्चात् ही पुत्र को पिता की सम्पत्ति पर अधिकार मिल पाता है।

संयुक्त परिवार की इस वैधानिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए बैंकर को ऐसा खाता खोलते समय विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है।

(i) कर्त्ता या व्यवस्थापक (Manager) के नाम से खाता खोलना चाहिए—संयुक्त हिन्दू परिवार का खाता परिवार के कर्ता अथवा व्यवस्थापक के नाम से खोला जाता है। व्यवस्थापक के नाम से खाता केवल उस अवस्था में खोला जाता है कि पारिवारिक व्यवसाय की अनेक स्थानों पर शाखाएँ होती हैं और कर्ता उन समस्त स्थानों पर खातों का संचालन नही कर पाता है।

(ii) व्यवसाय की प्रकृति एवं स्वामित्व—संयुक्त परिवार का खाता खोलने से पूर्व सम्बन्धित बैंक को पारिवारिक व्यवसाय की प्रकृति और स्वामित्व के बारे में सूचना मांगनी चाहिए। पारिवारिक व्यवसाय वंश परम्परागत (Traditional) है अथवा नवीन है और व्यवसाय का सचालन परिवार के सदस्यो द्वारा अथवा बाह्य व्यक्तियों के साझे में किया जा रहा है। इन सभी तथ्यों सम्बन्धी सभी सहस्वामियों की सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए जिससे संयुक्त परिवार खाते में सभी का दायित्व निश्चित किया जा सके।

(iii) व्यवस्थापक (Manager) के अधिकार—पारिवारिक व्यावसाय में कर्ता की अपेक्षा व्यवस्थापक के अधिकार व्यापक होते हैं क्योंकि वह व्यवसाय के संचालनार्थ पूर्णतः सक्षम होता है। सयुक्त हिन्दू परिवार के लेन-देन के व्यवहार के संदर्भ में कर्ता या व्यवस्थापक को कानून के अन्तर्गत निम्नांकित गर्भित अधिकार होने हैं :—

(क) वह पारिवारिक व्यवसाय के संचालन के लिए ऋण ले सकता है।

(ख) पारिवारिक सम्पत्ति को गिरवी रख सकता है।

(ग) परक्राम्य संलेखों द्वारा परिवार के समस्त सदस्यों को दायी बना सकता है।

(घ) परिवार के नाम से भुगतान कर सकता है।

(ङ) परिवार के किसी विवाद का निपटारा कर सकता है।

किन्तु वह परिवार के समस्त सदस्यों की सहमति के बिना पारिवारिक सम्पत्ति से नये व्यवसाय का संचालन नहीं कर सकता। जब एक व्यवस्थापक व्यवसाय के संचालन के लिए ऋण लेता है और उसका पारिवारिक सम्पत्ति से शोधन नहीं हो पाता है तो अशोधित ऋण का शोधन उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति से किया जाता है।

(iv) ऋण से सम्पूर्ण परिवार लाभान्वित हो—परिवार का कर्ता संयुक्त परिवार की सम्पत्ति को तभी गिरवी रख सकता है जबकि उसके इस ऋण से सम्पूर्ण परिवार लाभान्वित हुआ है अथवा ऋण लेना परिवार के लिए आवश्यक हो गया था। सट्टे के लिए या नये व्यापार के लिए प्राप्त ऋण के लिए केवल कर्ता ही व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए स्वीकृत ऋणों को पारिवारिक आवश्यकता अथवा पारिवारिक लाभ के लिए लिया गया ऋण माना जाता है:—

(क) राजस्व व राजकीय ऋणों का भुगतान;

(ख) पारिवारिक सदस्यों का भरण-पोषण;

(ग) सदस्यों एव उनके बाल-बच्चों का विवाह;

(घ) पारिवारिक उत्सव व मृतक संस्कार;

(ङ) कर्ता व अन्य सदस्यों की फौजदारी मुकद्दमों से सुरक्षा;

(च) पारिवारिक व्यवसाय का संचालन करना।

(v) सदस्यों का दायित्व:—पारिवारिक व्यवसाय के कर्ता अथवा व्यवस्थापक द्वारा लिए गये ऋण के शोधन के लिए सभी सदस्यों का अपनी-अपनी सम्पत्ति के अनुपात में दायित्व होता है। कर्ता का दायित्व असीमित होता है। जो सदस्य कर्ता अथवा व्यवस्थापक के साथ ऋण अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करते हैं वे ऋणों के शोधन के लिए व्यक्तिगत रूप से भी उत्तरदायी होते हैं।

(vi) संयुक्त परिवार एवं साझेदारी—जब परिवार का कोई सदस्य निजी प्रेरणा पर किसी साझेदारी फर्म में शामिल होता है तो साझेदारी फर्म के ऋणों के शोधनार्थ या दायित्वों के भुगतान के लिए केवल उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति को काम में लाया जा सकता है। किन्तु जब ऐसा सदस्य सबकी सहमति पर साझेदारी व्यवसाय में शामिल होता है तब सम्पूर्ण परिवार की सम्पत्ति को साझेदारी की देनदारी के भुगतान के लिए काम में लाया जा सकता है। केवल अवयस्क (minor) सदस्य इस सामान्य नियम के अपवाद (Exception) होते हैं।

(vii) इकलौते पुत्र द्वारा नवीन व्यवसाय—जब किसी संयुक्त हिन्दू परिवार में पिता व उसके पुत्र का ही परिवार होता है और पिता नवीन व्यवसाय का संचालन करे तो उस व्यवसाय को संयुक्त हिन्दू परिवार का व्यवसाय माना जाता है। इस प्रकार के

व्यवसाय के संचालनार्थ लिए गये ऋणों का शोधन संयुक्त परिवार की सम्पत्ति से किया जाता है।[1]

(viii) बैंक द्वारा प्राप्त घोषणा-पत्र—उपर्युक्त समस्त अवस्थाओं में बैंकर को अपने हितो की रक्षार्थ घोषणापत्र मे सभी सह-स्वामियों के नाम उम्र, एवं कर्ता के साथ उनके सम्बन्ध दर्शाते हुए कर्ता एवं अन्य सभी वयस्क सहस्वामियो के हस्ताक्षर लेलेना उचित होगा। जैसे ही अवयस्क सह-स्वामी वयस्क हो जाता है, तो उसके भी घोषणापत्र पर हस्ताक्षर का अनुसमर्थन पूर्ण लेन देन करा लेने चाहिए ताकि वह भी समस्त लेन-देन के लिए उत्तरदायी हो जावे।

ईसाई व मुस्लिम सम्प्रदाय में संयुक्त परिवार व्यवस्था मान्य न होने के कारण उनके केवल व्यक्तिगत खाते ही खोले जाते हैं।

(9) साझेदारी फर्म (Partnership Firm)—एक साझेदार अपनी फर्म का प्रतिनिधि होता है। अतः साझेदारी फर्म का खाता किसी एक, कुछ अथवा समस्त साझेदारों के निवेदन पर खोला जा सकता है किन्तु साझेदारो के गर्भित अधिकार एक साझीदार को अपनी प्रेरणा पर किसी बैंक में फर्म का खाता खोलने के लिए प्राधिकृत नहीं करते है। अतः बैंक में खाता खुलवाने से पूर्व समस्त सदस्यों को एक प्रस्ताव पारित करना पड़ता है। जब एक साझीदार अपनी प्रेरणा पर किसी अधिकोष मे फर्म के नाम से खाता खोलता है तो उस कार्य के परिणामों के प्रति वह व्यक्तिशः दायी होता है।

सामान्यतः फर्म के नाम से ही बैंक खाता खोलता है किन्तु प्रथा अथवा परम्परा द्वारा अनुमोदित होने पर किसी साझेदार के नाम से भी फर्म का खाता खोला जा सकता है। इस प्रसंग में एलाएन्स बनाम कार्सलो विवाद, 1871 मे दिये गये निर्णय का उल्लेख करना उचित जान पडता है। उपर्युक्त निर्णय के अनुसार "व्यावसायिक साझेदारी स्थापित करने का अर्थ यह नहीं होता कि साझेदार अपने नाम से बैंक मे खाता खोलकर खाते के परिणामो से अन्य साझीदारो को बाध्य करे।" इस प्रकार साझेदारी फर्म का खाता खोलते समय बैंक द्वारा निम्नांकित सतर्कतायें ध्यान में रखनी चाहिए:—

(1) साझेदारी संलेख (Partnership Deed) की प्राप्ति :—बैंकर को खाता खोलने से पूर्व साझेदारी संलेख की एक प्रति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस संलेख में :—

(अ) साझेदारों के नाम व पते, (ब) साझेदारी फर्म के व्यवसाय की प्रकृति,(स) पूंजी की संरचना, प्रबन्ध एवं वित्तीय अधिकार एवं दायित्वों-सम्बन्धी नियम,(ई) साझेदारो के गर्भित अधिकारो पर प्रतिबन्ध अथवा परिवर्तन करने सम्बन्धी धाराओं का गहन अध्ययन कर लेना चाहिए।

(2) खाता फर्म के नाम से ही खोला जावे—जब एक अधिकोष किसी साझेदारी फर्म का अपने यहाँ खाता खोलता है तो उस फर्म के नाम से ही उस खाते को खोलना चाहिए, किसी एक या अधिक साझेदारो के नाम से खाता नही खोलना चाहिए। खाता

1. अच्युत नारायण बनाम रतनजी व मन्ना भट्ट बनाम तिवप्पा।

खोलने के लिए एक संयुक्त आवेदन पत्र व उस प्रस्ताव की प्रतिलिपि लेलेनी चाहिए जिसके द्वारा फर्म का उस बैंक में खाता खोलने का निर्णय लिया गया था।

(3) आवश्यक विवरण का पत्र—उपर्युक्त दो महत्त्वपूर्ण सूचनाओ के अतिरिक्त बैंक को समस्त साझेदारो द्वारा हस्ताक्षरित एक ऐसा पत्र भी प्राप्त करना चाहिए जिसमे समस्त साझेदारो के नाम, पूरे पते, फर्म का व्यवसाय व खाते के संचालन के लिए अधिकृत व्यक्तियो के नाम व नमूने के हस्ताक्षर हों।

(4) खाते का संचालन—एक साझीदार अपने फर्म का प्रतिनिधि होता है। अत: सामान्य अवस्था में शोधी अधिकोप किसी भी साझीदार द्वारा लिखे गए चैंक का भुगतान कर सकता है। किन्तु जब किसी साझीदार के इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है अथवा जब खाते के संचालन के लिए कुछ ही सदस्यों को प्राधिकृत किया जाता है तब शोधी बैंक को प्राप्त निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है समस्त साझीदारो की लिखित सहमति पर फर्म के खाते के संचालन के लिए किसी अन्य व्यक्ति को भी प्राधिकृत किया जा सकता है।

(5) फर्म खाते के संचालन पर रोक लगाना—यद्यपि आहरण के लिए कुछ सदस्यों को प्राधिकृत किया जा सकता है, किन्तु ऐसे सदस्यो द्वारा लिखे गये चैंको का भुगतान कोई भी साझेदार रुकवा सकता है व शोधी-बैंक साझेदारों के इस अधिकार की अवहेलना नही कर सकता। जब खाते का संचालन किसी एक ही साझीदार द्वारा किया जाता है तब शोधी-बैंक को अधिक सतर्कता से कार्य करना पडता है। क्योंकि इस अवस्था मे अधिकारों के दुरुपयोग (Misuse of powers) की अधिक सम्भावना रहती है।

(6) ऋण लेने, सम्पत्ति गिरवी रखने,चैंक व बिल लिखने तथा उनका पृष्ठांकन करने सम्बन्धी स्पष्टीकरण–फर्म द्वारा अधिकृत किये जाने पर व्यवसाय का प्रबन्धक साझेदारी फर्म के लिए ऋण ले सकता है, चैंक व विपत्र लिख सकता है तथा उनका पृष्ठांकन भी कर सकता है बशर्ते कि इस प्रकार के अधिकार देने में समस्त साझेदारों ने सहमति देदी है। यदि कोई साझेदार यह तर्क प्रस्तुत करे कि फर्म ने उसे स्थाई सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण लेने के लिए अधिकृत कर दिया है तो बैंक द्वारा ऋण स्वीकृति से पूर्व उसके इस कथन की जाँच करनी चाहिए क्योंकि एक अनधिकृत साझेदार ऋणदाता बैंक को फर्म की सम्पत्ति पर वैधानिक अभार (Charge) नही दे सकता।[1]

(7) ऋण देने में सतर्कता–ऋण स्वीकार करने से पूर्व ऋणदाता बैंक को साझेदारी फर्म के अद्यतन अन्तिम खातों (Final Accounts) की एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रतिलिपि की सहायता से उसे फर्म की आर्थिक स्थिति व उसके सही नाम के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त बैंक को ऋण की अदायगी के लिए समस्त साझेदारो से सामूहिक व व्यक्तिगत गारण्टी भी लेनी चाहिए ताकि ऋणों के अशोधित रह जाने पर बैंक साझेदारो की व्यक्तिगत व सामूहिक सम्पत्ति से ऋणों की वसूली मे प्राथमिकता प्राप्त कर सके।

(8) फर्म के पक्ष में प्राप्त चैंक की राशि फर्म के खाते में जमा हो किसी निजी खाते में नहीं—जब एक साझेदार फर्म के पक्ष में लिखे गये चैंकों को अपने व्यक्तिगत खाते

---

1. मर्चेन्ट बनाम मोर्टन ब्राउन व कम्पनी।

में जमा करवाना चाहता है तो फर्म के बैंक को चाहिए कि इस सम्बन्ध में अन्य साझीदारों से आवश्यक स्वीकृत प्राप्त करके ही ऐसा करे अन्यथा वह लापरवाही के लिए दोषी माना जायेगा और उसे विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 131 के अन्तर्गत सवैधानिक संरक्षण (Statutory Protection) प्राप्त नही होगा।

(9) व्यक्तिगत अधिविकर्ष को फर्म के खाते से चुकाना वर्जित-जब एक साझेदार अपने व्यक्तिगत खाते के अधिविकर्ष को समाप्त करने अथवा कम करने के लिए फर्म के खाते पर चैक लिखता है तो शोधी-बैंक को ऐसे चैक के भुगतान के पूर्व उसकी स्वीकृति अन्य साझीदारो से लेनी चाहिए अन्यथा वह लापरवाही का दोषी माना जायेगा।

(10) अवकाश ग्रहण करने पर साझेदार का दायित्व—(i) जब एक साझेदार किसी फर्म से अवकास (Retirement) ग्रहण करता है तो अवकाश-प्राप्ति की तिथि से वह फर्म के कार्यों के प्रति उत्तरदायी नही रहता है। किन्तु उसके अवकाश ग्रहण के पश्चात् भी फर्म का बैंक खाता यथावत चालू रहता है और वह बैंक के प्रति उस समय तक उत्तरदायी बना रहता है जब तक कि वह उसे इस तथ्य से सूचित नहीं करता है। अतः उसे अवकाश ग्रहण करने की सूचना से बैंक को अविलम्ब सूचित करना चाहिए।

(ii) जब अवकाश ग्रहण के समय फर्म अपने बैंक की ऋणी होती है और ऋण निवर्तमान (Retired) सदस्य की सम्पत्ति प्रतिभूति पर लिया हुआ होता है तो ऋणदाता बैंक उस सम्पत्ति पर अपने अधिकार की सीमा निश्चित् करने के लिए फर्म का खाता बन्द कर देता है, किन्तु जब ऋण सयुक्त सम्पत्ति की प्रतिभूति पर लिया हुआ होता है तब बैंक फर्म के खाते को यथावत चालू रखता है।

(iii) जब निवर्तमान etired) साझेदार के स्थान पर नवीन सदस्य आजाता है तो निवर्तमान सदस्य को दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है। फलतः फर्म के बैंक को फर्म का खाता बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(iv) जब बैंक पूर्ववर्ती साझेदार को दायित्व से मुक्त नही करना चाहता है तब वह फर्म का पुराना खाता बन्द कर देता है और नये साझेदारों के नाम से फर्म का नया खाता खोल लेता है। नया खाता म खोलने पर ऋणों के शोधन की प्रक्रिया मे उस पर क्लेटन विवाद लागू हो जता है।

(11) साझेदार के निधन पर बैंक द्वारा सावधानी—(अ)एक साझेदार के निधन पर साझेदारी अधिनियम की धारा 35 के अनुसार साझेदारी स्वतः समाप्त हो जानी है। अतः किसी साझेदारी मृत्यु के उपरान्त शेष साझेदार फर्म के खाते पर चैक नहीं लिख सकते, किन्तु जीवित साझेदार चाहें तो फर्म का खाता यथावत चालू रखा जा सकता है। इस विकल्प को अपनाने की अनुमति तभी दी जाती है जब कि वे मृत साझेदारी के दायित्वों को भी स्वीकार करने को तैयार हो।

(ब) जब मृत साझेदार के निधन के समय फर्म अपने बैंक की ऋणी होती है और मृत साझेदार की सम्पत्ति उस ऋण की प्रतिभूति स्वरूप बैंक के पास जमा होती है तब ऋणदाता बैंक ऐसी फर्म का खाता बन्द कर देता है। ऐसा न करने पर उस पर क्लेटन नियम लागू हो जाता है।

(स) मृत्यु के पूर्व मृतक साझेदार द्वारा जारी किये गये चैकों का भुगतान सभी जीवित साझेदारों द्वारा पुष्टि करने के पश्चात् किया जा सकता है।

(द) साझेदार की मृत्यु के बाद यदि फर्म का पुनर्गठन किया जाता है तो फर्म के नाम से नया खाता खोलना चाहिए और संचालन के लिए नये निर्देश एवं आश्वासन पत्र (Undertaking) आदि ले लेना चाहिए।

(12) साझेदार के दिवालिया होने पर बैंक द्वारा सावधानी-(अ) दिवालिए व्यक्ति बैंक खातों का संचालन नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त उनकी सम्पत्ति पर भी राजकीय प्रापक (Official Receiver) का अधिकार हो जाता है। अतः दिवालिए साझीदारा द्वारा लिखे गये चैंकों का भुगतान बैंक को नहीं करना चाहिए। किन्तु जब शेष साझेदार ऐसे चैंकों की पुष्टि कर देते हैं तो बैंक ऐसे चैंकों का भी भुगतान कर सकता है।

(ब) किसी साझेदार के दिवालिया घोषित होने के पश्चात् वह साझेदार उस दिन के पश्चात् फर्म के किसी लेन-देन के लिए उत्तरदायी नहीं होता है।

(स) सामान्यतया किसी एक साझेदार के दिवालिया होने पर फर्म का खाता बन्द कर देना चाहिए और पुनर्गठित (Reconstituted) फर्म के नाम का नया खाता खोलकर उसे सचालन करने हेतु नये निर्देश (Fresh Mandate) प्राप्त कर लेने चाहिए।

(13) समंजन (Set off)—एक साझेदार की प्रार्थना पर उसका बैंक उसके निजी खाते में से फर्म के खाते में प्रार्थित राशि का स्थानान्तरण कर सकता है, किन्तु एक बैंक अपनी निजी प्रेरणा पर ऐसा नहीं कर सकता।[1]

(14) फर्म द्वारा गारण्टी—जब एक साझीदार फर्म गारण्टी का व्यवसाय करती है तो उसका कोई भी सदस्य वैध गारण्टी दे सकता है किन्तु ईतर (other than guarantee) व्यवसाय की अवस्था में एक गारण्टी तभी वैध मानी जाती है जब कि वह समस्त साझेदारों की सहमति से दी जाती है।

(15) नये सदस्य का प्रवेश—जब किसी नये व्यक्ति को फर्म का सदस्य बनाया जाता है तो फर्म का बैंक (खाते में जमा शेष होने पर) फर्म के खाते के संचालन के लिए समस्त सदस्यों से नवीन निर्देश प्राप्त करता है और खाता बन्द नहीं करता है। किन्तु जब खाते में अधिविकर्ष होता है तब बैंक फर्म का पुराना खाता बन्द कर देता है और उसके स्थान पर समस्त सदस्यों के नाम से नया खाता खोल लेता है। नया खाता खोलते समय फर्म का बैंक पुराने साझेदारों से यह भी घोषणा करवा लेता है कि वे फर्म के पुराने दायित्वों के प्रति उत्तरदायी रहेंगे।

(16) साझेदारी की समाप्ति—साझेदारी फर्म की समाप्ति पर बैंक खातों का संचालक केवल फर्म के यादिक लेन-देनों के निपटाने के लिए किया जाता है। सरकारी प्रापक (Official Receiver) की नियुक्ति पर खाते में जमा राशि उन्हें सौंप दी जाती है किन्तु जमा राशि के समर्पण से पूर्व बैंक उनकी नियुक्ति की पुष्टि कर लेता है।

---

1. वाट्स बनाम क्राइस्टी।

(10) प्रन्यासी
(Trusts)

प्रन्यासी खाता प्रन्यासी के व्यक्तिगत नाम से अथवा प्रन्यास के नाम से खोला जाता है। शोधी बैंक को खाते मे एक ऐसा नोट लगाना चाहिए जिससे खाते की प्रन्यास प्रकृति का पता लग जावे। एक अधिकोष प्रन्यास खाता खोलते समय निम्नलिखित सावधानियों को काम में लेता है :—

(1) प्रन्यास खाते की प्रतिलिपि की प्राप्ति एवं जांच—प्रन्यास खाता खोलने से पूर्व प्रत्येक बैंक को प्रन्यास प्रलेख (Trust Deed) की एक अद्यतन (Complete) प्रति मागनी चाहिए। इस प्रलेख की सहायता से शोधी बैंक को (i) प्रन्यासियों के अधिकारों, (ii) उनकी नियुक्ति की शर्तों, (iii) प्रन्यास सम्पत्ति, व (iv) उसके उद्देश्यों का पता चल जाता है। इन सूचनाओं के मिलने पर एक बैंक प्रन्यास खातों का निर्विघ्नतापूर्वक संचालन कर सकता है। सर जॉन पेजेट के मतानुसार एक बैंक को प्रन्यास प्रलेख या अन्य किसी प्रलेख के अवलोकन की विधान के अनुसार आवश्यकता नहीं पड़ती है। परन्तु व्यवहार में प्रत्येक बैंक ऐसा करता है।

(2) खाते का नाम—जब एक प्रन्यास के एक से अधिक प्रन्यासी होते हैं तब प्राथित बैंक को प्रन्यास खाते को प्रन्यास खाते के रूप मे खोलना चाहिए, अर्थात् प्रन्यासियों के संयुक्त नाम से उस खाते को नही खोलना चाहिए।

(3) नमूने के हस्ताक्षर—प्रन्यासी प्रन्यास खाते का व्यक्तिगत रूप से संचालन नही कर सकते और न वे अपने अधिकारों को किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष मे स्थानातरित ही कर सकते हैं। उन्हें उस खाते का सामूहिक रूप से संचालन करना पड़ता है। अतः बैंक को उन सभी प्रन्यासियो के नमूने के हस्ताक्षर ले लेने चाहिए जो प्रन्यास खाते का संचालन करने हेतु अधिकृत हैं।

(4) पारस्परिक सम्बन्ध—जब प्रन्यास खाता खोला जाता है तब बैंक व प्रन्यासियों मे ऋणी व ऋणदाता के सम्बन्ध होते हैं। अधिकोष जमा करवाई गई सम्पत्ति का स्वय प्रन्यासी नही बनता है।

(5) खातों का संचालन—शोधी बैंक सामान्यतः समस्त प्रन्यासियों द्वारा हस्ताक्षरित विलेखो का ही भुगतान करते हैं किन्तु प्रन्यास प्रलेख में अन्यथा प्रावधान होने पर वे उन प्रावधानो के अनुसार आदेशित विलेखों का भी भुगतान कर देते हैं व किसी भी प्रन्यासी द्वारा किसी भी विलेख के भुगतान के लिए मना करने पर उस आदेश को मानने के लिए बाध्य होते हैं।

6) व्यक्तिगत ऋणों का प्रन्यास खाते से समंजन (Set off) संभव नहीं होता—बैंक प्रन्यासियों के व्यक्तिगत ऋणों के शोधनार्थ प्रन्यास खाते में जमा राशि का समंजन नही कर सकते, किन्तु जब वे खाते की प्रकृति से अनभिज्ञ होते हैं तो अपने इस अधिकार को काम मे ले सकते हैं। प्रन्यास खाते की जानकारी होने पर वे इस अधिकार को काम मे नही ले सकते हैं।

(7) बैंक को राशि प्रन्यास खाते में जमा की जावे—प्रन्यास खाते के पक्ष में लिखे गये चैक व अन्य प्रलेखो की राशि को बैंक प्रन्यासियों के व्यक्तिगत खाते में जमा नहीं कर

सकते क्योंकि ऐसा करने पर वे लापरवाही के दोषी माने जाते हैं। फलतः उन्हें वैधानिक सरक्षण से हाथ धोना पड़ता है।

(8) प्रन्यास खाते की जमा शेष से व्यक्तिगत ऋणों की सप्राप्ति सम्भव नहीं—जब एक प्रन्यासी अपने व्यक्तिगत ऋणो को कम या समाप्त करने के लिए प्रन्यास खाते पर अपने पक्ष में चैक लिखता है तो शोधी बैंक उसके इस आदेश की अवहेलना कर देते हैं क्योंकि इस प्रकार के आदेशों के अनुपालन पर वे प्रन्यास भग के दोषी माने जाते हैं।

(9) दिवालिया व्यक्ति प्रन्यासी के रूप में—दिवालिए व्यक्ति भी प्रन्यासी के रूप में कार्य कर सकते है। अतः जब एक प्रन्यासी को दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तब भी प्रन्यास बैंक प्रन्यास खातों का यथावत संचालन करता रहता है व दिवालिये प्रन्यासी द्वारा आदेशित चैकों का भुगतान भी करता रहता है।

(10) प्रन्यासी की मृत्यु—एक प्रन्यासी के निधन पर शेष जीवित प्रन्यासियों को प्रन्यास खाते को सचालित करने का पूर्ण अधिकार होता है। अतः किसी प्रन्यासी के मरने पर बैंक प्रन्यास खाते को बन्द नही करते हैं। किन्तु प्रन्यास विलेख में अन्यथा प्रावधान होने पर शोधी बैंक उन प्रावधानो के अनुसार कार्य करता है।

(11) ऋण एव अधिविकर्ष—प्रन्यासियों को प्रन्यास खाते में ऋण लेने व प्रन्यास सम्पत्ति को गिरवी रखने का अधिकार नही होता है। वे अपने व्यक्तिगत ऋणों के लिए भी प्रन्यास सम्पत्ति को गिरवी नही रख सकते। अतः बैंक प्रन्यास खातों में अधिविकर्ष की सुविधा प्रदन नहीं करते हैं और न ही वे प्रन्यास सम्पत्ति को गिरवी रखते हैं।

किन्तु जब प्रन्यास प्रलेख में ऋण लेने व सम्पत्ति को गिरवी रखने का प्रावधान होता है तब प्रन्यासी ऐसा कर सकते हैं। इन प्रावधानो के आधार पर जब ऋण स्वीकार किया जाता है तब ऋणदत्त बैंक ऋणों के शोधनार्थ समस्त प्रन्यासियों को व्यक्तिगत व समूहिक रूप से उत्तरदायी बना लेता है।

(12) निष्पादक एवं प्रशासक (Executors and Administrators)—

जब एक व्यक्ति वसियत द्वारा अपनी मृत्यु के पश्चात् अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर देता है तो इस प्रकार के नियुक्त व्यक्ति को निष्पादक (Executor) कहा जाता है। किन्तु यदि (i) वसियत में सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नही किया जाता है, या (ii) वसियत द्वारा अधिकृत व्यक्ति निष्पादक का कार्य करने के लिए तत्पर नही होता है, अथवा (iii) अधिकृत व्यक्ति की मृत्यु हो गई है तो न्यायालय मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के प्रबन्ध के लिए अपनी ओर से किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को नियुक्त कर देता है। न्यायालय द्वारा नियुक्त इस व्यक्ति को प्रशासक (Administrator) कहा जाता है।

निष्पादकों एवं प्रशासकों की समान उद्देश्यों के लिए नियुक्ति की जाती है व उनके अधिकार भी समान होते हैं। किन्तु नियुक्ति की विधि व नियुक्ति पत्रो में भेद होता है। निष्पादक की नियुक्ति के प्रमाण पत्र को 'संप्रमाण' (Pro bate) व प्रशासक की नियुक्ति के प्रमाणपत्र को 'प्रबन्ध पत्र' कहा जाता है। संप्रमाण द्वारा न्यायालय मृत व्यक्ति की वसियत को प्रमाणित करता है। संप्रमाण पर मुद्रांक (Stamp) लगाना पड़ता है।

विवाहित महिलाओं को भी निष्पादक अथवा प्रशासक नियुक्त किया जा सकता है। वे अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होती हैं। उनके पति केवल तभी दायी होते हैं जब वे अपनी पत्नियों के कार्यों में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करते हैं।

एक निष्पादक प्रशासक व्यक्तिगत रूप से मृत व्यक्ति के ऋणों के लिए दायी नहीं होता है, किन्तु जब वे मृत व्यक्ति के व्यवसाय का ऋण लेकर संचालन करते हैं तो उस ऋण की अदायगी के लिए वे व्यक्तिगत रूप से दायी (Liable) होते हैं।

खाता खोलने सम्बन्धी प्रक्रियाएँ एवं बैंक का दायित्व

(1) तत्काल खाता बन्द करना चाहिए—एक अधिकोष को अपने ग्राहक के निधन का समाचार पाते ही उसका खाता बन्द कर देना चाहिए। जैसे ही मृत ग्राहक की वसियत के लिए न्यायालय द्वारा निष्पादक की नियुक्ति कर दी जाती है और संप्रमाण (Probate) की एक प्रति बैंक को उपलब्ध हो जाती है तो मृतक के खाते में जमा राशि का निष्पादक/प्रशासक के खाते में स्थानान्तरण कर दिया जाता है।

(2) बैंक द्वारा संप्रमाण का अध्ययन—सप्रमाण की सहायता से बैंक को आवश्यक सूचनाओं जैसे, (i) वसियत नामे व संप्रमाण की तिथि, (ii) सप्रमाण का स्थान, (iii) सप्रमाण निर्गमित करने वाले अधिकारी का नाम व पता, (iv) संप्रमाण मे वर्णित सम्पत्ति का विवरण एवं मूल्य, (v) संप्रमाण प्रस्तुत करने वाले अधिकारी का नाम व पता, और (vi) निष्पादक के अधिकार आदि की जानकारी मिल जाती है।

प्रबन्ध-पत्र द्वारा बैंक को यह पता लग जाता है कि प्रशासक को चैक व विपत्र आदि लिखने, स्वीकार करने, ऋण लेने, सम्पत्ति गिरवी रखने आदि के लिए अधिकृत किया गया है अथवा नही। इन प्रलेखों से प्राप्त सुचनाओं को सम्बन्धित बैंक अपनी पुस्तकों में लिपिबद्ध कर लेता है व प्रलेखो को फाइल कर देता है।

(3) नमूने के हस्ताक्षर लेना—सम्बन्धित अधिकोष प्राप्त निर्देशों के अनुसार खाते का संचालन करता है। अतः वह खाते को सचालन के लिए अधिकृत समस्त सदस्यों के नमूने के हस्ताक्षर (Specimen Signature) ले लेता है। जब किसी व्यक्ति विशेष को खाते के सचालनार्थ अधिकृत नही किया जाता है तब समस्त निष्पादकों/प्रशासको को खाते के सचालन का अधिकार होता है और उन सभी के नमूने के हस्ताक्षर ले लिये जाते हैं।

(4) चैक लिखने का अधिकार—जब कुछ ही व्यक्तियों को खाते के संचालन के लिए अधिकृत किया जाता है तब शेष अन्य व्यक्ति चैक नहीं लिख सकते। किन्तु वे अधिकृत व्यक्तियों द्वारा जारी किये गये चैकों या विपत्रों प्रभृति प्रलेखो के भुगतान को रुकवा सकते हैं। शोधी बैंक को इन आदेशों का अनिवार्यतः अनुपालन करना पड़ता है।

(5) किसी निष्पादक की मृत्यु पर—जब किसी एक या अधिक निष्पादक/प्रशासक का निधन हो जाता है तो शेष जीवित निष्पादक खाते का यथावत संचालन कर सकते हैं। अतः अधिकोष निष्पादक/प्रशासक के निधन पर उनका खाता बन्द नहीं करते हैं किन्तु नवीन निर्देशों की प्राप्ति तक खातों का संचालन स्थगित कर देते हैं।

(6) समंजन (Set off) का अधिकार नहीं—बैंको को इन खातों के संचालन में समंजन का अधिकार नहीं मिलता है। अतः अधिकोष मृत व्यक्ति के खाते में से निष्पादकों/प्रशासकों के व्यक्तिगत खातो में राशि हस्तांतरित नही कर सकता। इसी प्रकार वह

निष्पादको प्रशासको के व्यक्तिगत खातों मे से भी मृत्य व्यक्ति के खाते में धन का स्थानातरण नही कर सकते।

(7) अभिकर्ता की नियुक्ति सभव नहीं—एक निष्पादक/प्रशासक को खाते के संचालन के लिए अभिकर्ता (Agent) नियुक्त करने का अधिकार नहीं होता है। अतः बैंक इस प्रकार नियुक्त अभिकर्ता द्वारा लिखित चैकों का भुगतान नहीं करते हैं। इसी प्रकार से वे उन चैकों या विपत्रों का भी भुगतान नहीं करते हैं जिन्हें संप्रमाण या प्रबन्ध पत्रों की सीमाओं का उल्लंघन करके लिखाया स्वीकार किया जाता है।

(8) रिक्त स्थान की न्यायालय द्वारा पूर्ति—जब मृत निष्पादक अपनी वसियत में किसी व्यक्ति का उत्तराधिकारी के रूप में मनोनयन (Nomination) नही करता है तब निष्पादक के रिक्त स्थान की पूर्ति न्यायालय द्वारा की जाती है। प्रशासक के निधन पर भी रिक्त स्थान की पूर्ति न्यायालय द्वारा की जाती है। उन्हे खाता सचालन का अधिकार होता है।

(9) बैंक द्वारा मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के दुरुपयोग पर नियंत्रण रखना चाहिए—शोधी बैंक को निष्पादकों/प्रशासको द्वारा लिखे गये चैकों व उनके द्वारा स्वीकृत विपत्रों का सावधानी पूर्वक जाँच करके भुगतान करना चाहिए। जब बैंक को यह विश्वास हो जाय कि निष्पादक या प्रशासक मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं तो बैंक उनके आदेशों की अवहेलना कर सकता है, अन्यथा वह लापरवाही का दोषी माना जायेगा।

(10) विशेष कार्यों हेतु ऋण प्रदान करना—निष्पादको या प्रशासकों को संप्रमाण के निर्गमन के पूर्व व बाद मे ऋण की आवश्यकता पड सकती है। जब मृत व्यक्ति अपने खाते में जमा शेष छोड़कर नही जाता है तो निष्पादक को उसके दाह-संस्कार व संप्रमाण पर मुद्रांक शुल्क (Stamp Duty) लगाने हेतु ऋण की आवश्यकता पड़ सकती है। ऐसी स्थिति मे बैंक अधिकृत निष्पादक या प्रशासक को उनकी व्यक्तिगत साख पर ऋण प्रदान कर सकता है।

(11) अधिविकर्ष—बैंक निष्पादकों को अधिविकर्ष या संपत्ति गिरवी रखकर ऋण प्रदान कर सकता है परन्तु ऐसे ऋण सम्बन्धी अधिकार के लिए वसियत में विपरीत निर्देश नहीं होने चाहिए। ऐसे ऋण से सम्बन्धित प्रलेखों पर सभी निष्पादकों के सहमति स्वरूप हस्ताक्षर करा लेने चाहिए तथा उन्हे व्यक्तिगत दायित्व पर ऋण लेने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

(12) दिवालियापन—निष्पादक के दिवालिया होने पर उसके लेनदार मृतक की सम्पत्ति से अपना ऋण वसूल नहीं कर सकते हैं, साथ ही निष्पादक के अधिकार का अन्त भी नही होता है। अवयस्क निष्पादक अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

अतः बैंकर को निष्पादको/प्रशासकों को अधिविकर्ष या ऋण देते समय विशेष सतर्कता से काम करना चाहिए ताकि मृतक की सम्पत्ति का दुरुपयोग न होने पावे।

(12) ग्राहक का मुख्तार
(Customer's Attorney)

कोई भी ग्राहक अपने बैंक खाते से लेन-देन करने के लिए किसी व्यक्ति को मुख्तार (Attorney) नियुक्त कर सकता है। मुख्तार नाम दो प्रकार का हो सकता है:—

(i) विशेष मुख्तार नामा (Special Power of Attorney)—इसके अन्तर्गत किन्ही विशिष्ट कार्यों के सम्पादनार्थ जैसे किसी सम्पत्ति की खरीद या बिक्री के मामले को निपटाने के लिए अधिकार दिया जाता है।

(ii) सामान्य मुख्तार नामा (General Power of Attorney)—इसके अन्तर्गत मुख्तार नामा के लेखक द्वारा किसी व्यक्ति विशेष को उसकी ओर से लेन-देन करने अथवा अन्य सभी मामले निपटाने का अधिकार दे दिया जाता है।

बैंकर को मुख्तार की वैधानिक स्थिति का ध्यान रखते हुए निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए :—

(क) बैंकर को इस तथ्य की जाँच कर लेनी चाहिए कि मुख्तारनामा पर उचित मुल्य के टिकट लगे हुए हैं तथा वह किस तिथि से लागू होता है।

(ख) बैंकर को मुख्तार नामा की एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करके अपने भावी संदर्भ हेतु सुरक्षित रखनी चाहिए।

(ग) बैंकर को अपनी संतुष्टि के लिए ग्राहक द्वारा प्रस्तुत आदेश पत्र पर ग्राहक के हस्ताक्षर अपने समक्ष करा लेने चाहिए ताकि आदेश पत्र मे निर्देशित अधिकार भविष्य में कोई विवाद उत्पन्न होने पर प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकें। क्योंकि ग्राहक के खाते से मुख्तार द्वारा प्रन्यासी के रूप मे धनराशि निकाली जाती है, अतः बैंक का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि मुख्तार ग्राहक के खाते से निकाली गई राशि का दुरुपयोग नही कर रहा है।

(13) स्थानीय संस्थाएं
(Local Authorities)

नगर पालिकाओं, नगर परिषदों, नगर निगमों, पंचायतों व जिला-परिषदों आदि संस्थाओं की गणना स्वायत्त संस्थाओं में की जाती है। ये सस्थायें जनता की प्रन्यासी होती है। फलतः बैंक इन संस्थाओं के साथ व्यवहार करते समय निम्नांकित बातें ध्यान में रखते हैं :—

(i) बैंक को एक स्वायत्त संस्था का खाता खोलने से पूर्व उसके अधिनियम, नियम व उपनियमों की एक-एक प्रति प्राप्त करनी चाहिए तथा इनका गहराई से अध्ययन करना चाहिए।

(ii) प्रार्थित बैंक को उस प्रस्ताव की एक अधिकृत प्रतिलिपि भी प्राप्त करनी चाहिए जिसके द्वारा प्रार्थी सस्था को किसी विशिष्ट बैंक मे खाता खोलने के लिए अधिकृत किया गया था।

(iii) बैंक को उन व्यक्तियों के नमूने के हस्ताक्षर प्राप्त करने चाहिए जिन्हें प्रस्ताव द्वारा खाते के संचालन के लिए अधिकृत किया गया है।

(iv) कुछ संस्थाए विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का संचालन करती हैं और उनके लिए बैंक मे पृथक्-पृथक् खाता रखती हैं। सम्बन्धित बैंक को इस प्रकार से खोले गये खातों को पृथक्-पृथक् ही रखना चाहिए व अपनी प्रेरणा पर उन्हे परस्पर मिलाना नहीं चाहिए।

(v) ऋण सम्बन्धी अधिकार—स्वायत्त संस्था से ऋण प्रस्ताव प्राप्त होने पर उसका बैंक सम्बन्धित अधिनियम के ऋण सम्बन्धी प्रावधानों का अध्ययन करता है व अधिनियम द्वारा स्वीकृत शर्तों और सीमाओं के भीतर स्वीकृत पद्धति के अनुसार ऋण स्वीकृत कर सकता है।

(vi) जब एक बैंक किसी स्वायत्त संस्था को अनधिकृत रूप से ऋण स्वीकृत कर देता है तो वह उस ऋण का शोधन नहीं कर सकता है। जब ऋणी स्वायत्त संस्था इस प्रकार के ऋणों का भुगतान करने के पश्चात् ऋण राशि वापसी की मांग करती है तो ऋणदाता बैंक को उस राशि को लौटाना पड़ता है।[1]

(14) सहकारी समितियां
(Co-operative Societies)

भारत में सहकारी समितियां अपने राज्य के सहकारी विभाग द्वारा बनाए गये नियमों के अनुसार ही किसी बैंक मे अपना खाता खोल सकती है। सहकारी समितियां राज्य के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत (Registered) होती हैं और उनका संचालन सहकारी विभाग के उप-पंजीयक (Deputy Registrar) द्वारा प्रमाणित उप-नियमों द्वारा किया जाता है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए बैंकर को खाता खोलते समय निम्नांकित बिन्दुओं पर विशेष सावधानी रखनी चाहिए :—

(i) जब कोई बैंक को एक सहकारी समिति से खाता खोलने के लिए आवेदन पत्र प्राप्त होता है तो उसे प्रार्थी समिति से—

(क) उसके अद्यतन उपनियमों (Bylaws),

(ख) पंजीकरण प्रमाण-पत्र की एक प्रतिलिपि,

(ग) खातों के संचालन के लिए अधिकृत व्यक्तियों के नमूने के सत्यापित (Verified) हस्ताक्षरों, तथा

(घ) उस प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि जिसके द्वारा समिति को आर्थिक व्यापारिक बैंक में खाते खोलने के लिए अधिकृत किया गया है; की मांग करनी चाहिए।

(ii) बैंकर को समिति की प्रबन्ध समिति द्वारा पारित उस प्रस्ताव की एक प्रमाणित प्रतिलिपि भी प्राप्त करनी चाहिए जिसमें समिति की ओर से किसी अधिकारी की नियुक्ति तथा उसे चैक लिखने, और पृष्ठांकन करने के अधिकार दिये गये हैं।

(iii) अधिकतम ऋण सीमा—सहकारी समिति की अधिकतम ऋण सीमा का निर्धारण उसके उपनियमों द्वारा किया जाता है। अतः जब एक सहकारी समिति अपने अधिकोष के समक्ष ऋण प्रस्ताव प्रस्तुत करती है तब ऋणदाता बैंक ऋण स्वीकृति से पूर्व उसके इन उपनियमों (Bylaws) का अवलोकन करता है व ऋण सीमा के भीतर ऋण उपलब्ध करा देता है।

(15) सरकारी विभाग
(Government Department)

केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार के भिन्न-भिन्न विभागों द्वारा भी बैंक में खाता खोला जा सकता है। इन सरकारी विभागों के साथ खाते का संचालन करते समय बैंक को निम्नलिखित तथ्यों पर विशेषतः ध्यान देने की आवश्यकता है :—

(i) बैंक को उस अधिकार पत्र (Authority Letter) की एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त कर लेनी चाहिए जिसके द्वारा विभागाध्यक्ष ने किसी विशिष्ट व्यक्ति को खाते का संचालन करने हेतु नियुक्त किया है।

1. एटोरनी जेनरल बनाम टोटेन होम परवन डिस्ट्रिक्ट कौंसिल 1909।

(ii) खाते से सम्बन्धित चैक जारी करने, पृष्ठांकन करने व अधिविकर्ष आदि सम्बन्धी समस्त शर्तें विभाग से सम्बन्धित नियम व उपनियम मे दिये हुए होते है। अतः बैंक को विभाग के नियम-उपनियमों की एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(16) संयुक्त पूंजी प्रमण्डल
(Joint Stock Company)

व्यावसायिक (सार्वजनिक एवं निजी) एव अव्यवसायिक प्रमण्डल अपने नाम में अधिकोष मे खाता खोल सकते हैं। एक सार्वजनिक प्रमण्डल को अनिवार्यतः किसी अधिकोष में खाता खुलवाना पडता है क्योंकि ऐसे प्रत्येक प्रमण्डल को अंश पत्रों के विक्रय से प्राप्त राशि को आबटन (Allotment) तक किसी अधिकोष के पास जमा रखना पडता है व अन्तर्नियमों एव प्रविवरण मे भी उसे अपने अधिकोष का नाम देना पडता है। वैधानिक अनिवार्यताओ के अतिरिक्त व्यावसायिक आवश्यकताओ के कारण भी प्रमण्डलो को अधिकोष के साथ खाता खोलना अनिवार्य हो जाता है।

एक सार्वजनिक प्रमण्डल से व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उसके पार्षद सीमा-नियमो (Memorandum of Association) एवं अन्तर्नियमो की अनिवार्यतः जानकारी रखनी पडती है।[1] *अतः एक सार्वजनिक कम्पनी का खाता खोलने से पूर्व एवं* उसका संचालन करते समय प्रार्थित अधिकोष निम्नलिखित सावधानियाँ रखता है :—

1. प्रमाण पत्रों एवं दस्तावेजों की जांच (Examination of Certificates and Documents) बैंक में खाता खुलवाने के लिए संचालको द्वारा एक आवेदन-पत्र छपे हुए निर्धारित प्रपत्र पर भरकर दिया जाना चाहिए। इस आवेदन पत्र मे सभी सचालको के नाम, पूरे पते एव उनके हस्ताक्षर होने चाहिए। कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है अतः यह अपना स्वयं सचालन नही कर सकती। अतः बैंक को निम्नांकित प्रमाणपत्रों एवं प्रलेखो की प्रतियाँ भी देनी चाहिए :—

(i) समामेलन प्रमाण पत्र एवं व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र;

(ii) पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association);

(iii) पार्षद अन्तर्नियम (Article of Association)।

उपर्युक्त प्रलेखो में कम्पनी के उद्देश्य, नियम, उपनियम, अधिकार एवं कर्तव्यों का विस्तृत ब्योरा होता है। अतः इनका संक्षिप्त अध्ययन आगे किया जा रहा है।

(i) समामेलन प्रमाण पत्र एवं व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण पत्र (Certificate of Incorporation and Certificate of Commencement of Business) प्रत्येक कम्पनी को कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी के रजिस्ट्रार द्वारा एक समामेलन का प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है। इसकी प्राप्ति के पश्चात् ही कम्पनी का विधिवत गठन माना जाता है और उसे अनुबन्ध करने का अधिकार मिल जाता है। कम्पनी के अस्तित्व के सम्बन्ध में संदेहात्मक स्थिति मे प्रार्थित बैंक कम्पनी के रजिस्ट्रार के कार्यालय से वांछित सूचनाओं की पुष्टि करवा सकता है।

सार्वजनिक कम्पनी अपनी पूंजी की व्यवस्था बाजार में अंश (Shares) बेचकर करती है। इस सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम की धारा 149 में दर्शाए गये वैधानिक औपचारिकताओं की पूर्ति पर कम्पनी रजिस्ट्रार व्यवसाय प्रारम्भ करने के प्रमाण पत्र देता है। इसके अभाव मे कोई भी सार्वजनिक कम्पनी व्यापार प्रारम्भ नही कर सकती है।

---

1. [illegible]

निजी कम्पनी को व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त करने की आवश्यकता नही होती है क्योंकि निजी कम्पनी द्वारा बाजार में अंश पत्र (Shares) बेचना वर्जित होता है।

इस प्रकार बैंक को चाहिए की खाता खोलने से पूर्व कम्पनी से उपर्युक्त दोनों प्रमाण-पत्रों की प्रमाणित प्रति प्राप्त करले और उनकी सत्यता के बारे मे जाँच करले। इससे उसके पास उनके वैधानिक गठन-सम्बन्धी प्रमाण रह सकेगा।

(ii) पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association) पार्षद सीमानियम मे कम्पनी के उद्देश्य, कम्पनी का नाम, पंजीकृत कार्यालय की स्थिति एवं पता, कार्य क्षेत्र, सदस्यो का दायित्व एव अधिकृत पूँजी का विभिन्न अंशों में वर्गीकरण आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यो की जानकारी दी गई होती है। यह पार्षद सीमा नियम ही है जिसके अध्ययन पर बैंक को कम्पनी के उद्देश्य एव ऋण लेने के अधिकार एवं उसकी सीमा आदि की जानकारी मिल सकती है।

(iii) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) पार्षद अन्तर्नियमों के अन्तर्गत आन्तरिक प्रबन्ध संचालन के नियम, जैसे दैनिक प्रशासन, प्रबन्ध अधिकार की सीमाएं, कम्पनी के लेनदारों, सामान्य जनता, अंशधारियों के साथ सम्बन्ध कम्पनी की बैठकों (meetings), संचालको के अधिकार आदि दिये होते है। वस्तुत: यह पार्षद सीमा नियम का पूरक (Supplement) प्रलेख है जिसकी सहायता से उद्देश्यो की प्राप्ति की जा सकती है।

बैंकर को इस प्रलेख का गहराई से अध्ययन करना चाहिए क्योंकि कोई भी व्यवहार इस प्रपत्र में दी गई भावनाओ के विपरीत नहीं होना चाहिए। बैंक को इसकी एक छपी हुई प्रमाणित प्रति भी अपने अभिलेख (Record) में भावी संदर्भ के लिए रख लेनी चाहिए जिसमें निम्नांकित तथ्यों का स्पष्टीकरण होता है :—

(क) कम्पनी का संचालन करने सम्बन्धी सचालकों के अधिकार;

(ख) ऋण लेने की प्रक्रिया एव उसकी अधिकतम सीमा;

(ग) ऋण लेते समय प्रतिभू के रूप में कम्पनी की सम्पत्ति को बन्धक (Mortgage) रखने सम्बन्धी संचालको के अधिकार;

(घ) कम्पनी ने अपनी ओर से चैक लिखने, बिल स्वीकार करने तथा उनका पृष्ठांकन करने का किसको अधिकार है तथा उसकी क्या विधि (Procedure) होगी।

(2) सचालक मण्डल द्वारा पास प्रस्ताव की प्रति (Copy of the Resolution passed by Board of Directors) इसके पश्चात् बैंक को संचालकों द्वारा उस प्रस्ताव की एक प्रमाणित प्रति भी ले लेनी चाहिए जिसके अन्तर्गत बैंक मे खाता खोलने की स्वीकृति दी गई है। इस सम्बन्ध में बैंक को निम्नांकित बिन्दुओ की पुष्टि कर लेनी चाहिए :—

(क) बैंक को कम्पनी का बैंकर नियुक्त करने सम्बन्धी निर्देश;

(ख) उन सचालको के नाम जिन्हें कम्पनी का खाता संचालन का अधिकार दिया गया है;

(ग) उन अधिकृत व्यक्तियों के नाम जिन्हें कम्पनी की ओर से महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों के निष्पादन (Execute) करने तथा जिनके समक्ष कम्पनी की मोहर (Seal) लगायी जा सकेगी;

(घ) उन व्यक्तियों के नाम जिन्हें विश्वास बन्धक (equitable mortgage) के सम्बन्ध में स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार विलेख (Title Deed) प्रदान करने का अधिकार दिया गया है।

(ङ) अग्रिमो सम्बन्धी सम्पूर्ण विवरण जैसे—उसकी अधिकतम सीमा, प्रतिभूति की प्रकृति एव ब्याज की दर आदि।

(3) कम्पनी द्वारा ऋण लेने का अधिकार (Borrowing Powers of the Company) प्रत्येक व्यापारिक कम्पनी को ऋण लेने का गर्भित अधिकार होता है जिसकी पार्षद सीमा नियम एव अन्तर्नियम द्वारा सीमा निश्चित करदी जाती है। बैंक को यह ध्यान रखना चाहिए कि गैर व्यापारिक (Non-trading) कम्पनी को ऋण लेने का अधिकार नही होता है।

ऋण लेने के अधिकार की सीमाएँ (Limitations on Borrowing Powers) कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी द्वारा ऋण लेने के अधिकार की निम्नांकित सीमाएं निश्चित की गई हैं :—

(1) ऋण प्रस्ताव पास करना—अधिकोष मे ऋण लेने के पूर्व सचालक-मण्डल को एक ऋण प्रस्ताव पारित करना पडता है। पृथक-पृथक ऋणो के लिए पृथक्-पृथक् प्रस्ताव पारित करने पडते हैं।

(2) ऋण लेने की सीमा—कम्पनी अधिनियम की धारा 293 के अनुसार कोई भी सार्वजनिक कम्पनी निर्धारित अधिकतम सीमा से अधिक मात्रा मे ऋण नही ले सकती है। कम्पनी की प्रदत्त पूंजी (Paid up Capital) और सचित कोष (Free Reserves) की राशि के योग से अधिक ऋण लेने पर प्रतिबन्ध है। इस ऋण राशि मे कम्पनी द्वारा व्यवसाय के सामान्य व्यवहार में बैंक से लिए गये अस्थायी ऋण (6 माह में देय) शामिल नही है।

(3) शक्ति बाह्य ऋण (Ultravires Borrowing) कोई भी कम्पनी अपने पार्षद सीमा नियम और अन्तर्नियमो में दी गई सीमा के अन्तर्गत ऋण लेने को स्वतन्त्र है। किन्तु इस सीमा से बाहर ऋण लेना शक्ति बाह्य ऋण कहलाता है। ऐसा ऋण व्यर्थ (Vaid) होता है और कम्पनी के सदस्य सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके भी उसे वैध (Valid) नहीं बना सकते हैं।

ऋण सम्बन्धी बैंक के अधिकार—यदि बैंक यह सिद्ध करदे कि ऋण लेने की अधिकतम सीमा सम्बन्धी उसे जानकारी नही थी और उसने सद्भावना से ऋण दिया था तो बैंकर को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है—

(क) जिस सम्पत्ति पर ऋण राशि विनियोग की गई है बैंक उस सम्पत्ति से ऋण राशि वसूल कर सकता है।

(ख) कम्पनी की साधारण सभा मे एक विशेष प्रस्ताव पास करके संचालकों के ऋण लेने के अधिकार की सीमा मे वृद्धि कर दी जाये तो ऐसा ऋण वैध माना जायेगा और बैंक उसे वसूल करने का अधिकारी होगा।

(ग) बैंकर व्यक्तिगत रूप से सचालकों के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस अवस्था में सचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगे। परन्तु बैंक कम्पनी के नाम ऋण की वापसी के लिए न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी नहीं है।

(घ) यदि बैंक द्वारा प्रदत्त ऋण राशि का प्रयोग कम्पनी के पूर्व वैध ऋणों (Previous Legal Debts) के चुकाने हेतु किया गया है तो बैंकर को पूर्व ऋण दाताओं के समस्त अधिकार प्राप्त होंगे।

(4) संचालक मण्डल द्वारा ऋण लेने की शक्ति का उपयोग (Use of power of borrowing by Board of Directors) कम्पनी अधिनियम की धारा 292 के अधीन कम्पनी के संचालक मण्डल ऋण पत्रों के अलावा अन्य ऋण लेने के लिए संचालक मण्डल की सभा में एक प्रस्ताव पारित करके ही ऋण लेने के अधिकारी हैं। यह ऋण लेने का अधिकार किसी समिति (Committee), प्रबन्ध संचालक, अथवा कम्पनी के किसी अन्य अधिकारी को भी दिया जा सकता है। इस सन्दर्भ में बैंक से कितना अग्रिम अथवा अधिविकर्ष लिया जायेगा तथा उसके लेने की क्या प्रक्रिया होगी आदि सभी बातों का स्पष्टीकरण होना चाहिए।

बैंक द्वारा सावधानियाँ
(Precautions by a Banker)

बैंक द्वारा उपर्युक्त वैधानिक स्थिति को ध्यान मे रखते हुए कम्पनियों को ऋण देने में निम्नांकित सावधानियाँ रखने की आवश्यकता है :—

(i) *ऋण उद्देश्य एवं सीमा के अधीन हो*—बैंकर को इस तथ्य की जाँच कर लेनी चाहिए कि कम्पनी द्वारा ऋण कम्पनी के पार्षद सीमा नियम में दिये गये उद्देश्यों की पूर्ति हेतु लिया गया है तथा ऋण की मात्रा निर्धारित सीमा के अन्दर ही है।

(ii) प्रस्ताव की प्रति—बैंकर को संचालक-मण्डल द्वारा कम्पनी अधिनियम की धारा 292 के अन्तर्गत पारित प्रस्ताव की एक प्रमाणित प्रति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(iii) बैंक को संचालक—मण्डल द्वारा ऐसा प्रस्ताव पारित करवाना चाहिए जिसमें उन्हें ऋण लेने की सीमा को और बढा दिया जावे, जिससे बैंक द्वारा ऋण वैध हो जावे तथा कम्पनी अधिनियम के सम्बन्धित प्रावधानों का उल्लंघन भी न हो।

(5) कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रभारों की रजिस्ट्री कराना (Registration of Charges Under Companies Act) कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 125 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यापारिक कम्पनी को अपनी किसी विद्यमान अथवा भावी सम्पत्ति को बन्धक रखने अथवा प्रभार सृजन करने का गर्भित अधिकार होता है। एक कम्पनी के लिए अपनी सम्पत्तियों पर उत्पन्न किये गये निम्नलिखित प्रभारों (Charges) का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है :—

1. ऋणपत्रों के निर्गमन को सुरक्षित करने के लिए किया गया प्रभार।
2. कम्पनी की अयाचित (Uncalled) अंश पूँजी पर प्रभार।
3. कम्पनी के पुस्त-ऋणों (Book Debts) पर प्रभार।
4. कहीं पर भी स्थित कम्पनी की अचल सम्पत्ति पर अथवा उसके किसी हित पर प्रभार।
5. कम्पनी की किसी चल-सम्पत्ति पर किया गया प्रभार जो कहीं गिरवी नहीं है।
6. जहाज या उसके किसी भाग पर प्रभार।
7. कम्पनी की किसी सम्पत्ति, जिसमें स्टॉक (Stock) भी शामिल है, पर किया गया प्रभार।
8. कम्पनी द्वारा याचित (Called) किन्तु अदत्त याचनाओं (Unpaid Calls) पर प्रभार।
9. ख्याति (Goodwill), पेटेण्ट (Patent) या पेटेण्ट के अधीन किसी लाइसेंस, ट्रेडमार्क (Trade mark) या प्रतिलिप्याधिकार (Copy right) पर किया गया प्रभार।

कम्पनी को उपर्युक्त प्रभारों के रजिस्ट्रेशन के लिए प्रभार का विवरण और प्रभार उत्पन्न करने वाला प्रपत्र (यदि कोई हो) अथवा उसकी एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्रभार उत्पन्न करने की तिथि से 30 दिन के भीतर रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत कर देनी चाहिए। यदि रजिस्ट्रार उचित समझे तो इस अवधि को 7 दिन के लिए और बढ़ा सकता है।

बैंक द्वारा सावधानी
(Precaution by Banker)

(क) पर्याप्त जमानत (Adequate Security)--यदि कम्पनी ने बैंक से ऋण लेते समय ऐसे प्रभार का सृजन किया है तो बैंक को यह जाँच कर लेनी चाहिए कि प्रस्तावित ऋण के लिए कम्पनी द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली जमानत पर्याप्त है।

(ख) विधिवत रजिस्ट्रेशन—बैंक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसके पक्ष में कम्पनी की जिन सम्पत्तियों पर प्रभार-सृजन किया गया है उसकी विधिवत निर्धारित अवधि के भीतर रजिस्ट्रेशन करा लिया गया है।

(ग) प्रभार-सम्बन्धी प्राथमिकता—रजिस्ट्रेशन से बैंकर सहित समस्त लेनदारों के हितों की सुरक्षा हो जाती है। तीसरे पक्षकार को ऐसे प्रभार की जानकारी उस प्रभार के सृजन होने की तिथि से नहीं वरन उसकी रजिस्ट्री कराने की तिथि से मानी जाती है। इस स्थिति का स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा नीचे किया जा रहा है :—

स्पष्टीकरण—यदि कोई कम्पनी 'राम' से 5 मई को और 'श्याम' से 10 मई को ऋण लेती है तथा एक ही सम्पत्ति इन दोनों ऋणदाताओं को प्रभार स्वरूप रख देती है। किन्तु इस सम्पत्ति पर 'श्याम' के पक्ष में प्रभार की रजिस्ट्री 3 जून को तथा 'राम' के पक्ष में प्रभार की रजिस्ट्री 4 जून को की जाती है। इस अवस्था में 'श्याम' के पक्ष में किये गये प्रभार की रजिस्ट्री एक दिन पहले होने के कारण 'राम' के पक्ष में किये गये प्रभार से प्राथमिकता (Preference) दी जायेगी।

(घ) संचालकों से व्यक्तिगत प्रत्याभूति—यद्यपि बैंकर ऋण देते समय स्थाई सम्पत्ति पर स्थाई प्रभार (fixed charges) और पुस्तऋणों पर चल प्रभार सृजन कर ऋण की वापसी को सुरक्षित बनाने का प्रयास करता है, किन्तु पूर्व प्रभार की जानकारी के अभाव में अपने हित की रक्षार्थ अतिरिक्त प्रतिभूति (Callateral Security) स्वरूप संचालकों से व्यक्तिगत प्रत्याभूति (Guarantee) भी ले लेना उपयोगी रहता है।

(6) संचालकों के व्यक्तिगत खाते (Personal A ccounts of tl e Directors) जब कम्पनी के बैंक में संचालकों के व्यक्तिगत खाते भी खुले हुए हों तो बैंक को कम्पनी के खाते में व्यवहार करते समय विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। यदि संचालक कम्पनी के नाम में प्राप्त चैकों को अपने व्यक्तिगत खाते में हस्तान्तरित करना चाहे तो बैंक को ऐसा करने से पूर्व अन्य संचालकों से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। अन्यथा किसी अनियमित धन के हस्तान्तरण के लिए बैंक कम्पनी के प्रति उत्तरदायी होगा।

(7) निजी कम्पनियों को ऋण (Loans to Private Companies) निजी कम्पनियों को कम्पनी विधान 1956 के अन्तर्गत अनेक छूट प्रदान की गई हैं। निजी कम्पनियों के अंतिम खातों का अंकेक्षण तथा प्रकाशन अनिवार्य नहीं है। अतः बैंक को ऋण देते समय न केवल कम्पनी द्वारा प्रस्तुत प्रतिभूतियों की पर्याप्तता की जाँच करनी चाहिए, वरन संचालकों की व्यक्तिगत जमानत भी ले लेनी चाहिए। वास्तव में एक निजी

कम्पनी को ऋण प्रदान करते समय बैंक द्वारा उन सभी बातों को ध्यान रखना आवश्यक है जो कि एक सामान्य व्यापारी अथवा फर्म को ऋण देते समय ध्यान में रखनी पड़ती हैं।

(8) कम्पनी का समापन (Winding up of a Company) कम्पनी के समापन का आशय कम्पनी का समय से पूर्व विघटन से है जबकि कम्पनी का व्यापार बन्द कर दिया जाता है। समापन-सम्बन्धी औपचारिकता की सूचना मिलने पर बैंकर को कम्पनी के खाते का संचालन बन्द कर देना चाहिए और उसके बाद जारी किये गये चैकों का भुगतान तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। सरकारी अवसायक (Official Liquidator) की नियुक्ति के प्रमाणित आदेश प्राप्ति पर उसके नाम से खाते का पुनः संचालनप्रारम्भ कर देना चाहिए।

(17) समिति, क्लब, धर्मार्थ एवं शिक्षा संस्थाएं आदि
(Societies, Club, Charitable and Educational Institutions etc.)

अव्यावसायिक संस्थाओं यथा विद्यालय, महाविद्यालय, पुस्तकालय, मनोरंजन क्लब, गोशाला, खेलकूद परिषद् आदि की समाज-सेवा के उद्देश्य से स्थापना की जाती है। इनके साथ लेन-देन करते समय बैंकर को निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिए :—

(i) समिति समामेलित होनी चाहिए (The Society must be incorporated) साहित्य, विज्ञान, ललित कलाओं एवं धार्मिक संस्थाओं का सोसायटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1860 के अन्तर्गत पंजीकृत होना अनिवार्य है। पंजीकरण के पश्चात् ही ऐसी संस्था को कोई वैध अनुबन्ध करने या वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिलता है, तभी उसके विरुद्ध भी वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। अपंजीकृत संस्था के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। अतः बैंक को खाता खोलने के पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिए कि प्रार्थी संस्था पंजीकृत है।

(ii) संस्था के नियम तथा उपनियम (Rules and Bye Laws of the Society) खाता खोलने से पूर्व संस्था के नियम व उपनियमों की अधिकृत प्रतिलिपि प्राप्त करनी चाहिए और उनके वित्तीय प्रावधानों का अध्ययन करना चाहिए। नियम और उपनियमों की सहायता से बैंकर को संस्था के उद्देश्यों, व अधिकारियों के अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

(iii) प्रबन्ध समिति द्वारा पारित प्रस्ताव की प्रतिलिपि—बैंक में खाता खोलने से पूर्व संस्था की कार्यकारिणी समिति (Executive Committee), प्रबन्ध अथवा संचालन समिति को खाता खोलने के लिए एक प्रस्ताव पारित करना पड़ता है :—

(अ) यह प्रस्ताव सम्बन्धित संस्था को किसी विशिष्ट बैंक में खाता खोलने का अधिकार होता है।

(ब) इस प्रस्ताव में खाते को संचालन करने वाले अधिकारियों के नाम का उल्लेख भी होता है।

(स) इसमें उक्त खाते के संचालन-सम्बन्धी अन्य व्यवस्थाओं व नियमों का उल्लेख भी होता है।

(द) बैंक को इस प्रस्ताव की एक प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त कर लेनी चाहिए और उन अधिकारियों के नमूने के हस्ताक्षर ले लेने चाहिए जिन्हें खाते के संचालन के लिए नियुक्त किया गया है।

(iv) संस्थाओं को ऋण लेने का अधिकार (Borrowing Powers of the Society) संस्था के चार्टर (charter) से यह जानकारी मिल जाती है कि संस्थाओं को ऋण लेने का अधिकार है अथवा नहीं। अव्यावसायिक संस्थाओं को ऋण लेने का गर्भित अधिकार नहीं होता है। अतः ये संस्थाएं अपने नियम-उपनियमों अथवा साधारण सभा द्वारा अधिकृत किये जाने पर ही ऋण ले सकती हैं। बैंक ऋण स्वीकृत करते समय उपर्युक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में वे किसी सदस्य अथवा पदाधिकारी की व्यक्तिगत जमानत पर इन संस्थाओं को ऋण दे देते हैं।

(v) व्यक्तिगत खाते के बारे में विशेष सावधानी (Special Precaution Regarding Personal Account) जब खाते के सचालन के लिए अधिकृत व्यक्तियों का व्यक्तिगत खाता भी उसी बैंक में होता है तो वह संस्था की सम्पत्ति को उनके खाते में स्थानांतरित नहीं कर सकता है। जब एक अधिकोष उपर्युक्त परिस्थिति मे असावधानी करता है तो उसे असावधानी का दोषी माना जाता है और सवैधानिक संरक्षण प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रहता है।

(vi) संस्था के हित सर्वोपरि (Institution's Interest is above all) खाते के संचालन में शोधी बैंक ग्राहक संस्था के हितों को सर्वोपरि स्थान देता है। फलतः जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि संस्था की सम्पत्ति का दुरुपयोग किया जा रहा है तो वह संस्था के खाते पर लिखे गये चैकों का भुगतान करने से पूर्व संस्था की कार्यकारिणी को अपनी जानकारी से अवगत कराता है, और उसके आदेशानुसार कार्य करता है।

(vii) पदाधिकारी द्वारा त्यागपत्र या मृत्यु—जब खाते के सचालन के लिए अधिकृत व्यक्तियों में से किसी का निधन हो जाता है, अथवा उनमे से किसी ने त्यागपत्र दे दिया है तो शोधी बैंक इस विषय-सम्बन्धी सूचना मिलने पर खाते का सचालन निलम्बित (Postpone) कर देता है। किन्तु उक्त सूचना प्राप्ति से पूर्व प्राप्त किये गये चैकों का भुगतान कर देता है। निलम्बित खाते का पुनः संचालन कार्यकारिणी द्वारा इस प्रयोजनार्थ किसी व्यक्ति के नामांकन (Nomination) करने पर ही सभव हो सकता है।

(viii) भुगतान पर रोक—संस्था की कार्यकारिणी किसी भी चैक के भुगतान को रुकवा सकती है। अतः कार्यकारिणी से इस सम्बन्ध में निर्देश प्राप्त होने पर शोधी बैंक को उसका अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

प्रश्न

1. एक बैंक मे कितने प्रकार के खाते खोले जा सकते हैं ? संक्षेप में समझाइए। एक निरक्षर व्यक्ति किस प्रकार खाता खोल सकता है ?
2. निम्नांकित खातों को खोलते समय एक बैंक से किन सावधानियों की अपेक्षा की जाती है :
   (1) साझेदारी (2) अवयस्क (3) एक पर्दानशीन (4) अविवाहित महिला और (5) क्लब।
3. किसी ग्राहक की मृत्यु की जानकारी मिलने पर बैंक को क्या करना चाहिए ? सविस्तार समझाइए।
4. जब एक बैंक अपने किसी ग्राहक के चैक का भूल से अनादरण कर देता है तो ग्राहक इसका क्या उपचार कर सकता है ? समझाइए।

5

बैंक कोषों का विनियोजन

(Employment of Bank Funds)

सामान्य—व्यापारिक अधिकोष मुद्रा में व्यवहार करते है व इस व्यवसाय द्वारा लाभार्जन का प्रयास करते हैं। समुचित कोष बैंको की सफलता के सबसे बड़े साधन होते हैं। जिन अधिकोषों के पास समुचित मात्रा मे कोष नहीं होते हैं अथवा जो बैंक अपने कोषो का समुचित ढंग से उपयोग नही कर पाते हैं वे न स्वयं जीवित रह पाते हैं और न अपने ग्राहकों के निक्षेपो को ही सुरक्षित रख पाते है।

कोषों के प्रकार—अधिकोष ससाधनो को निम्नांकित दो भागों मे बांटा जा सकता है :

(अ) निजी कोष—निजी कोषो की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। इनमें निम्नांकित तत्त्वों को शामिल किया जाता है :

(i) अंश पूंजी—अंश पूंजी व्यापारिक अधिकोषो के निजी कोषो का एक प्रमुख अंग होती है। अधिकोषों के सुसंगठन, सुदृढ़ आर्थिक आधार व ग्राहकों के निक्षेपों की रक्षार्थ सामान्यतः अंश पूंजी की न्यूनतम मात्रा विधान द्वारा निश्चित कर दी जाती है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष में किसी भी व्यापारिक अधिकोष की दत्त पूंजी 5 लाख रुपये से कम नही हो सकती और प्रार्थित पूंजी, अधिकृत पूंजी की आधी व दत्त पूंजी, प्रार्थित पूंजी की आधी से कम नही हो सकती। दूसरे शब्दों में एक अधिकोष की अधिकृत पूंजी 20 लाख से कम नहीं हो सकती। निजी क्षेत्र के अधिकोष परम्परानुसार अपनी 50% अधिकृत पूंजी की ही अंशधारियो से मांग करते हैं।

(ii) सुरक्षित कोष—यह निजी स्रोतों का दूसरा प्रमुख अंग होता है। सुरक्षित कोष एक अधिकोष की चालु पूंजी, जन विश्वास व उसकी लाभार्जन शक्ति में अभिवृद्धि करते हैं और उसे आकस्मिक हानियो को वहन करने की क्षमता प्रदान करते हैं। अतएव प्रत्येक अधिकोष सुरक्षित कोषों के निर्माण की ओर प्रयत्नशील रहता है। भारतवर्ष में प्रत्येक अधिकोष को लाभांश की घोषणा से पूर्व अपना 20% लाभ अनिवार्य रूप से सुरक्षित कोष में स्थानान्तरित करना पड़ता है।

(iii) गुप्त कोष—इन कोषो की स्थापनार्थ अधिकोष अपनी स्थाई सम्पत्तियों व विनियोगो को उनके वास्तविक मूल्य से कम मूल्य पर प्रदर्शित करते हैं। कोष अधिकोषो को वित्तीय सुदृढ़ता प्रदान करते हैं और संकटकालीन परिस्थितियों में आश्रय प्रदान करते हैं। इन्हें चिट्ठे में प्रदर्शित नहीं किया जाता है।

(iv) हानि-लाभ खाते का शेष—लाभांश दर की स्थिरता व सम्भाव्य संकटों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए अधिकोष अपने वार्षिक लाभ के एक भाग को अपने पास रख लेते हैं। यह शेष उनके तरल ससाधनों में वृद्धि करता है।

(v) सम्भाव्य हानि पूर्ति कोष—सम्भाव्य हानियों-विवादास्पद देनदारियों के लिए भी अधिकोष अपने हानि लाभ खाते में से व्यवस्था करते हैं। इन विवादों के निपटारे तक अधिकोष इस प्रकार से आरक्षित राशि को अपने काम में ले सकते है।

(ब) बाह्य कोष—बाह्य साधनो में मुख्यतः निक्षेपो व ऋणों की गणना की जाती है। निक्षेप बचत, चालू व स्थाई खातों में प्राप्त किए जाते हैं। स्थाई निक्षेप एक निश्चित अवधि के पश्चात् देय होते हैं, अतएव अधिकोष इनका अधिक निश्चितता के साथ प्रयोग कर सकते है। आवश्यकता के समय बैंक सहयोगी अधिकोषों व रिजर्व बैंक से ऋण भी ले सकते हैं। रिजर्व बैंक से मुख्यतः 'पुनर्वित्त सुविधा' के अन्तर्गत व सहयोगी अधिकोषो से याचना-राशि व अल्पकालीन ऋणों के रूप मे सहायता ली जाती है।

कोषों का विनियोजन—आय की दृष्टि से अधिकोषो के विनियोगों को दो भागो मे बांटा जा सकता है—निष्क्रिय विनियोग व लाभकारी विनियोग।

A. निष्क्रिय विनियोग—निष्क्रिय विनियोगो से अधिकोषों को कोई आय प्राप्त नही होती, किन्तु फिर भी उन्हे निम्नांकित कारणों वश अपनी आय का एक बहुत बड़ा भाग सदैव अपने पास रखना पड़ता है :

1. वैधानिक दायित्व—विश्व के लगभग समस्त अधिकोषों को वैधानिक रूप से अपने कोषो का एक निश्चित प्रतिशत सदैव अपने पास किसी अधिकृत अधिकोष अथवा केन्द्रीय अधिकोष के पास नकद रखना पड़ता है। भारत भी इसका अपवाद नही है। वैधानिक व्यवसायों के कारण वे चाहने पर भी इन कोषों को लाभकारी कार्यों में प्रयोग नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 की व्यवस्थानुसार देश के प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को अपने 3% निक्षेप हमेशा रिजर्व बैंक के पास जमा रखने पड़ते हैं। इन जमाओं पर उन्हें कोई ब्याज नही मिलता है। गैर अनुसूचित अधिकोष इस राशि को अपने पास, किसी अन्य अधिकोष के पास अथवा रिजर्व बैंक के पास रख सकते हैं। रिजर्व बैंक इस राशि को 15% तक बढा सकता है व बढाई गई राशि पर भी ब्याज देना उसके लिए अनिवार्य नही है। इसके अतिरिक्त उन्हे बैंकिंग अधिनियम की धारा 24(1) की व्यवस्थानुसार भी अपने कुल निक्षेपो का 25% सदैव नकद, स्वर्ण, अभारमुक्त व अनुमोदित प्रतिभूतियो मे अपने पास रखना पड़ता है। रिजर्व बैंक इस प्रतिशत में भी समय-समय पर वृद्धि कर सकता है।

2. व्यावसायिक दायित्व—ग्राहकों से प्राप्त अधिकांश निक्षेप मांग पर देय होते हैं और अधिकोष अपने ग्राहकों की माग को पूर्ण करने के लिए वचन-बद्ध होते हैं। अतएव इस माग की पूर्ति के लिए भी उन्हे अपने कोषों का एक भाग सदा अपने पास रखना पड़ता है। तरल कोषों की मात्रा निम्नांकित तत्वो द्वारा प्रभावित होती है :

(i) ग्राहकों की आदत व बैंकिंग विकास—जिन देशों में अधिकोषण उद्योग का पर्याप्त मात्रा मे विकास हो जाता है उनमे अधिकांश भुगतान धनादेशो के माध्यम से सम्पन्न किए जाते हैं। अतएव अधिकांश लेनदेन पुस्तकीय प्रविष्टियों द्वारा सम्पन्न हो जाते हैं और अधिकोषों से नकद आहरण अल्प मात्रा में किए जाते हैं। इसके विपरीत जिन

क्षेत्रों में नकद भुगतान का चयन होता है वहाँ के अधिकोषों को अपने ग्राहकों की आवश्यकतापूर्ति के लिए काफी मात्रा में तरल कोष रखने पड़ते हैं। इसी प्रकार आर्थिक विकास का स्तर भी तरल कोषों की मात्रा को प्रभावित करता है। व्यावसायिक व औद्योगिक क्षेत्रों में विनिमय त्वरित गति से बड़ी मात्रा में किए जाते हैं। अतएव अधिकोषों को बड़ी मात्रा में तरल कोष रखने पड़ते हैं। कृषि-प्रधान क्षेत्रों में नकद लेनदेन यदा-कदा ही किए जाते हैं। अतएव इन क्षेत्रों के अधिकोष अपने ग्राहकों के निक्षेपों का सुविधापूर्वक व बड़ी मात्रा में विनियोग कर सकते हैं। इन अधिकोषों को केवल व्यस्तकाल में नकद कोषों की मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

(ii) समाशोधन गृहों की सुविधा—समाशोधन गृहों की सुविधा उपलब्ध होने पर क्षेत्र के अधिकोषों को बहुत कम मात्रा में नकद कोष रखने पड़ते हैं क्योंकि उनके धनादेशों का हाथों हाथ संग्रहण हो जाता है व भुगतान के लिए केवल नेट राशि की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ यदि किसी अधिकोष किसी दिन को 5 लाख रुपये का भुगतान करना है व 4 लाख रुपए का भुगतान प्राप्त करना है तो उसे उस दिन अपने दायित्वों की पूर्ति के लिए केवल 1 लाख रुपये की आवश्यकता पड़ेगी।

(iii) ग्राहकों का व्यवसाय व संख्या—ग्राहकों का व्यवसाय व उनकी संख्या भी ऋणों की मात्रा को प्रभावित करती है। सटोरिए व व्यापारी अपने खातों में बड़ी मात्रा में व बड़ी जल्दी-जल्दी लेन-देन करते रहते हैं। उनके द्वारा अपेक्षित आहरण का सहज ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अतएव उन्हें बड़ी मात्रा में नकद राशि रखनी पड़ती है। इसके विपरीत स्थायी आय वाले व्यक्ति यदाकदा व अल्प मात्रा में आहरण करते हैं। इनके आहरणों का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है।

ग्राहकों के व्यवसाय के अतिरिक्त उनकी संख्या भी ऋण सीमा का निर्धारण करती है। जिस शाखा के पास असंख्य मात्रा में छोटे-छोटे ग्राहक होते हैं उसे तरल संसाधनों की कम आवश्यकता पड़ती है क्योंकि सारे ग्राहक एक साथ अपनी सम्पूर्ण राशि का आहरण नहीं कर सकते। जिस शाखा के गिने-चुने व बड़े-बड़े खाते होते है उसे अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में नकद राशि रखनी पड़ती है क्योंकि किसी एक ग्राहक की मांग भी उसकी स्थिति को हास्यास्पद बनाने में सक्षम हो सकती है।

(iv) विनियोगों की तरलता—विनियोगों की तरलता भी नकद कोषों की मात्रा को प्रभावित करती है क्योंकि तरल विनियोगों को आसानी से नकद कोषों में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ जो अधिकोष विपत्रों में अपने धन का विनियोग करते हैं वे आवश्यकता के समय उनकी पुनर्कटौती करवाकर अपने नकद कोषों में अभिवृद्धि कर सकते हैं, किन्तु स्थाई सम्पत्ति अथवा गारण्टी के आधार पर ऋण स्वीकृत करने या स्थाई सम्पत्तियों में विनियोग करने पर यह सुविधा उपलब्ध नहीं होती है।

(v) क्षेत्र के अन्य अधिकोषों द्वारा रखी जाने वाली नकद राशि—नकद कोषों की मात्रा जन विश्वास का अपूर्व आधार होती है। अतएव जब क्षेत्र का कोई अधिकोष इस साधन का जनविश्वास की जागृति के लिए प्रयोग करता है तो उस क्षेत्र के अन्य अधिकोषों को भी अपने अस्तित्व की रक्षार्थ नकद कोषों की मात्रा में वृद्धि करनी पड़ती है जो अन्ततोगत्वा उसकी ऋण सीमा को प्रभावित करती है।

व्यक्तिगत आवश्यकता—वैधानिक एवं व्यावसायिक दायित्वों की पूर्ति के अतिरिक्त अधिकोष निजी आवश्यकताओं यथा भवन-किराया, उपस्कर, बिजली, पानी, वेतन व प्रासंगिक व्यय की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। ऋण एवं विनियोगों से पूर्व अधिकोषों को इनकी व्यवस्था करनी पड़ती है।

(ब) लाभकारी प्रयोग—निष्क्रिय विनियोगों के पश्चात् एक अधिकोष अपने शेष उपलब्ध-संसाधनों का ऋणों व विनियोगों में प्रयोग करता है। इन दोनों ही कार्यों से अधिकोषों को आय प्राप्त होती है किन्तु फिर भी इन दोनों में निम्नांकित अन्तर पाए जाते हैं।

ऋण व विनियोग में अन्तर :

(i) ऋण सामान्यतः अल्पकाल के लिए स्वीकृत किए जाते हैं और ऋणी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह परिपक्व तिथि पर उन्हें ब्याज सहित वापस कर देगा। किन्तु विनियोग के अन्तर्गत कोषों का दीर्घकाल के लिए विनियोजन किया जाता है व मूलधन की वापसी की कोई शर्त नहीं होती है।

(ii) ऋण स्वीकृति के लिए भावी ऋणी को अपनी ओर से अपने अधिकोष के साथ ऋण चर्चा प्रारम्भ करनी पड़ती है जबकि विनियोगों के लिए स्वयं अधिकोष को विनियोग बाजार में प्रवेश करना पड़ता है।

(iii) ऋण स्वीकृति की अवस्था में ऋणदाता अधिकोष प्रधान ऋणदाता होता है किन्तु विनियोग की अवस्था में उसकी यह स्थिति बदल जाती है। इस समय वह भी अनेक साधारण विनियोजकों की श्रेणी में आ जाता है।

(iv) ऋण सामान्यतः ग्राहकों को स्वीकृत किए जाते हैं। अतएव ऋणी व

ऋणदाता में वैयक्तिक सम्बन्ध होते हैं किन्तु विनियोजन की अवस्था में विनियोजक अधिकोष व विनियोजित प्रमण्डल या संस्था मे अवैयक्तिक सम्बन्ध होते हैं।

विनियोग क्षेत्र—अधिकोष मुख्यत: विपत्र कोषागार विपत्र व प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों मे अपने संसाधनो का विनियोग करते हैं। प्रथम दो विनियोग अल्पकालीन विनियोग व अन्तिम विनियोग दीर्घकालीन विनियोग कहलाता है।

विपत्र—विपत्रो में विनियोजित राशि को श्रेष्ठतम विनियोजन माना जाता है। इस हेतु अधिकोष अपने ग्राहको से उनके सावधि विपत्रों का देय तिथि से पूर्व ही भुगतान कर देते है। इस सुविधा के लिए वे अपने ग्राहको से डिस्काउण्ट लेते हैं और यह डिस्काउण्ट ही विनियोजक अधिकोष का लाभ होता है। डिस्काउण्ट के अतिरिक्त विनियोजक अधिकोष निम्नाकित प्रकार से लाभान्वित होता है—

(i) अल्पकालीन विनियोग—विपत्र सामान्यत: अल्पकाल के लिए लिखे जाते हैं। अत: विपत्रों में विनियोजित राशि दीर्घकाल तक एक ही स्थान व व्यवसाय में अवरुद्ध नही होती। इसके अतिरिक्त विनियोजक अधिकोष अपने स्थाई निक्षेपों की परिपक्व तिथियो व कटौती किए गए विपत्रो की देय तिथियों मे सामंजस्य स्थापित करके दोहरा लाभ कमा सकता है।

(ii) श्रेष्ठ विनियोजन—व्यापारिक अधिकोष सर्वदा उत्कृष्ठ कोटि के विपत्रों की कटौती करते हैं। फलत. इन विपत्रो में विनियोजित राशि पूर्ण सुरक्षित

है। विपत्र का स्वीकारक अपना व्यावसायिक प्रतिष्ठा व साख को बनाए रखने के लिए अपने विपत्र का देयतिथि पर भुगतान करने का भरसक प्रयास करता है। स्वीकारक के असमर्थ रहने पर विनियोजक अधिकोष विपत्र की राशि अन्य पक्षों से भी वसूल करने का अधिकारी होता है। भुगतान की इस निश्चितता के कारण विपत्रों में विनियोजित राशि की श्रेष्ठ विनियोजनों में गणना की जाती है।

(iii) पुनर्कटौती की सुविधा—विपत्रों में विनियोजित राशि की तरलता उसके विनियोजन के पश्चात् भी यथावत बनी रहती है क्योंकि अतिरिक्त कोषों की आवश्यकता पड़ने पर भी विनियोजक अधिकोष अपने इन विपत्रों की केन्द्रीय अधिकोष से पुनर्कटौती करवा लेता है। इस सुविधा के कारण अधिकोषों को अपने पास बहुत कम मात्रा में नकद कोष रखने की आवश्यकता पड़ती है।

(iv) मूल्यों की स्थिरता—विपत्रों के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अतएव इनमें विनियोजित राशि लगभग स्थिर रहती है। कभी-कभी बैंक दर में वृद्धि होने पर कटौती दर में भी वृद्धि हो जाती है। फलतः पुनर्कटौती के समय सम्बन्धित अधिकोष को नगण्य-सी हानि होने की सम्भावना रहती है, किन्तु अधिकोषों को इन परिवर्तनों का पूर्वाभास हो जाता है, अतएव वे विपत्रों की कटौती के समय सम्भावित हानि के लिए पर्याप्त सीमान्तर रख लेते हैं।

(v) अधिक आय—अन्य विनियोजनों की अपेक्षा विपत्रों की कटौती से अधिकोषों को अधिक आय प्राप्त होती है क्योंकि विपत्रों की कटौती करते ही कटौती करने वाले अधिकोष को कटौती की राशि प्राप्त हो जाती है जिसका वह तत्काल विनियोजन कर देता है अथवा उधार दे देता है। इस प्रकार विपत्रों में विनियोजन करने पर अधिकोष दोहरे लाभ के भागी बनते हैं।

(vi) निक्षेप वृद्धि—अधिकोष केवल अपने ग्राहकों के विपत्रों की कटौती करते हैं। फलतः विपत्रधारियों को अपने विपत्रों की कटौती से पूर्व किसी अधिकोष में अपना खाता खोलना पड़ता है और उसमें कुछ धनराशि सदैव जमा रखनी पड़ती है। इन खातों के कारण बैंक के निक्षेपों में वृद्धि होती है और उनका वह ऋण अथवा विनियोगों में निस्संकोच प्रयोग कर सकता है।

विपत्रों के विनियोग में अपेक्षित सावधानियाँ—विपत्रों में विनियोजित राशि की श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए एक अधिकोष उनकी कटौती से पूर्व निम्नांकित सावधानियों को काम में लेता है:

(i) व्यापारिक विपत्र—व्यापारिक अधिकोष केवल व्यापारिक विपत्रों की कटौती करते हैं क्योंकि ये विपत्र स्वयं शोध होते हैं। देय तिथि पर इन विपत्रों के अनादृत होने की सम्भावना बहुत कम रहती है। एक विपत्र का स्वीकारक खरीदे गये माल के विक्रय से प्राप्त राशि द्वारा अपने विपत्र का उसकी देय-तिथि पर भुगतान कर देता है। जब किसी कारणवश उसका माल नहीं बिक पाता है तो वह अपनी प्रतिष्ठा की रक्षार्थ भुगतान की अन्य कोई व्यवस्था करता है। जब आहार्यी किसी भी प्रकार से अपने विपत्र का भुगतान नहीं कर पाता है और उसके या विपत्र के अन्य किसी पक्ष के सम्मानार्थ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी उसका भुगतान नहीं हो पाता है तो कटौती करने वाला अधिकोष विपत्र के लेखक, आपक या पृष्ठांकक से विपत्र की राशि वसूल कर लेता है।

(ii) पक्षकारों की साख—एक विपत्र की कटौती से पूर्व एक अधिकोष उसके विभिन्न पक्षों की वित्तीय स्थिति व पूर्व आर्थिक व्यवहारों की जाँच करता है और इन दोनों तथ्यों से आश्वस्त न होने पर वह विपत्र को कटौती करने से मना कर देता है। जब एक विपत्र के साथ जहाजी बिल्टी, रेल्वे रसीद, बीमा पत्र आदि प्रलेख संलग्न होते हैं तब विनियोजक अधिकोष को कटौती करवाने वाले व्यक्ति की साख की सूक्ष्म जाँच की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(iii) पूर्ण विपत्र—कटौती से पूर्व कटौतीकर्ता अधिकोष सन्दर्भगत विपत्र की पूर्णता पर भी सरसरी निगाह डालता है अर्थात् यह देखता है कि सन्दर्भगत विपत्र में परम्परागत व वैधानिक दृष्टि से कोई कमी नहीं है; उस पर समुचित मात्रा मे टिकट लगे हुए हैं, विपत्र की अवधि समाप्त नहीं हुई है और धारक का उस पर निर्दोष अधिकार है।

सीमित विनियोग—भारतवर्ष में विपत्रों का प्रचलन अपेक्षाकृत कम है। भारतीय अधिकोष अपने कुल निक्षेपों का लगभग 5% विपत्रों में विनियोजन करते हैं जबकि पश्चिमी देशों में यह प्रतिशत 10 से 15 के मध्य पाया जाता है। विपत्रों की लोकप्रियता के लिए रिजर्व बैंक ने 1952 में एक बिल विपणि योजना प्रारम्भ की थी, किन्तु फिर भी देश में अभी तक बिलों का अपेक्षित मात्रा मे प्रयोग नहीं हो पाया है। इस सीमित प्रयोग के निम्नांकित कारण हैं :—

(1) नकद लेन-देन व नकद साख—भारतीय व्यापारियों में नकद लेन-देन की आदत है। उधार के सौदों की कमी के कारण व्यापारिक विपत्र भी कम लिखे जाते हैं। अधिकोष भी अपने ग्राहकों को प्रायः नकद साख व अधिविकर्ष के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करना पसन्द करते हैं। इन सुविधाओं के कारण व्यवसायियों की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और विपत्रों के प्रति उनमें विशेष उत्साह नहीं रहता।

(ii) स्वीकृति गृहों व बाह्य गृहों का अभाव—पाश्चात्य देशों में स्वीकृति गृहो व अधिकोषों द्वारा विपत्रों पर स्वीकृति दी जाती है और व्यापारिक अधिकोष व कटौती गृह ऐसे विपत्रों की कटौती के लिए सदैव तत्पर रहते हैं क्योंकि स्वीकृति गृहों व अधिकोषों द्वारा स्वीकृत विपत्रों के व्यापारिक विपत्र होने की गारण्टी होती है। हमारे देश में इस प्रकार की संस्थाओं का अभाव है जिससे अधिकोषों को विपत्रों के विभिन्न पक्षों की वित्तीय स्थिति की समुचित जानकारी नहीं मिल पाती है। इसके अतिरिक्त उन्हें विपत्रों की यथार्थता का भी पता नहीं चलता है क्योंकि भारत में व्यापारिक विपत्रों और अनुग्रह विपत्रों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया जाता है। इस साम्यता के कारण अधिकोष प्रायः समस्त विपत्रों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और किसी किसी प्रकार की जोखिम नहीं उठाना चाहते।

(iii) हुण्डियों का अधिक प्रयोग—भारत में हुण्डियों का अधिक प्रयोग किया जाता है जिन्हें स्थानीय रीति-रिवाजों और बोलियों के आधार पर लिखा जाता है। इसलिए इनमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इन विविधताओं के कारण अधिकोषों को इनकी कटौती में कठिनाइयाँ आती हैं।

(iv) भारी मुद्रांक कर—भारत में मुद्रांक कर अधिनियम 1899 के अनुसार सावधि विपत्रों पर उच्च दरों में मुद्रांक लगाने पड़ते हैं जिससे व्यापारी विपत्रों के प्रयोग के लिए हतोत्साहित होते हैं।

(v) लायसेंस युक्त गोदामों का अभाव—ये गोदाम विपत्रों की लोकप्रियता बढ़ाने में अच्छा सहयोग प्रदान करते है क्योंकि जब इन गोदामों द्वारा निर्गमित रसीद विपत्रों के साथ संलग्न होती है तो कटौतीकर्ता अधिकोष विपत्रों की प्रकृति से सन्तुष्ट हो जाता है और उसे उनकी कटौती में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता है। हमारे देश में ऐसे गोदामों की संख्या बहुत कम है। विगत कुछ वर्षों में केन्द्रीय माल गोदाम निगम व राज्य माल गोदाम निगमों की स्थापना से इन गोदामों की संख्या में वृद्धि हुई है, किन्तु फिर भी आवश्यकता को देखते हुए इनका अभाव है।

(vi) कोषागार विपत्रों में विनियोजन—केन्द्रीय सरकार अपनी अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोषागार विपत्रों का निर्गमन करती है। भारतीय अधिकोष विपत्रों की अपेक्षा इन प्रतिभूतियों में धन का विनियोजन अधिक श्रेयस्कर समझते हैं क्योंकि इनके पीछे सरकार की सम्पूर्ण साख होती है और आवश्यकता के समय इन्हें रिजर्व बैंक को बेच कर नकद मुद्रा प्राप्त कर सकते हैं।

(vii) बैंक शाखाओं की अपर्याप्तता—यद्यपि राष्ट्रीयकृत बैंकों ने गत वर्षों में अनेक शाखाएं खोली हैं फिर भी देश की जनसंख्या के अनुपात में ये बहुत कम हैं। अतएव ग्रामीण क्षेत्रों में विपत्रों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाता है।

विपत्रों की पुनर्कटौती—विपत्रों की कटौती के कारण व्यापारिक अधिकोषों के संसाधनों पर दबाव पड़ता है। इस दबाव को कम करने हेतु रिजर्व बैंक उन्हें पुनर्वित्त की सुविधाएं प्रदान करता है। ये सुविधाएं रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17(2) अ, 17(2) ब, 17(3) स, और 17(3) ब के अन्तर्गत प्रदान की जाती है। इस सुविधा से लाभान्वित होने के लिए कोई भी अनुसूचित अधिकोष अपने दो अच्छे हस्ताक्षरों वाले सावधि व्यापारिक-निर्यात विपत्र, स्वदेशी विपत्र और प्रतिज्ञापत्र व कृषि विपत्रों को रिजर्व बैंक से पुनर्कटौती करवा सकता है। पुनर्कटौती के समय इन विपत्रों की शेष अवधि क्रमशः 180 व 90 दिन और 15 माह से अधिक नहीं होनी चाहिए। अनुग्रह दिवसों का लाभ इसके अतिरिक्त मिलता है। पुनर्वित्त सुविधाओं को लोकप्रिय बनाने लिए रिजर्व बैंक ने जनवरी, 1952 में एक बिल मार्केट योजना का श्रीगणेश किया था किन्तु वस्तुतः वह एक अनुग्रह योजना थी। 1970 में रिजर्व बैंक ने एक नई बिल योजना का सूत्रपात किया। इस योजना के पश्चात् देश में पुनर्वित्त सुविधाओं का विकास हुआ है। अब पुनर्वित्त सुविधा के इच्छुक प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष के लिए पुनर्वित्त की एक अधिकतम सीमा निश्चित कर दी जाती है और उस सीमा तक वह अपने विपत्रों की निर्विघ्न कटौती करवा सकता है।

धारा 17(4)C भी अप्रत्यक्ष रूप से पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करती है। इस धारा के अन्तर्गत एक अनुसूचित अधिकोष अपने ग्राहकों से प्राप्त सावधि वचन-पत्रों (Usance Promissory Notes) की जमानत पर रिजर्व बैंक से अल्पकालीन ऋण प्राप्त कर सकता है। ये अग्रिम सामान्यतः मांग पर देय होते हैं।

रिजर्व बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों के विपत्रों की भी पुनर्कटौती करता है। इस उद्देश्य हेतु उन्हें सहकारी अधिकोषों के समकक्ष माना गया है किन्तु इस सुविधा से लाभान्वित होने के लिए उन्हें अपने विपत्रों पर अपने प्रायोजक अधिकोष से एक सह-हस्ताक्षरी के रूप में हस्ताक्षर करवाने पड़ते हैं।

(ब) राजकीय विभागों, अर्द्ध सरकारी संस्थाओं, विशिष्ट अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित निगमों व सरकारी प्रमण्डलों को बेचे गए माल की प्रतिभूति पर लिखे गए विपत्र,

(स) अप्रतिसंहार्य साख-पत्रों के अन्तर्गत लिखित व क्रेता द्वारा स्वीकृत और साख-पत्र के निर्गमक अधिकोष द्वारा पुष्टिकृत विपत्र,

(द) भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम पर लिखित विपत्र। इन विपत्रों पर निगम अथवा निगम व उसके ग्राहक की संयुक्त स्वीकृति आवश्यक होती है।

(4) न्यूनतम राशि :—कटौती के लिए प्रस्तुत विपत्रों की सकल राशि 50,000 रुपये से कम नहीं होनी चाहिए व किसी एक विपत्र की राशि 1000 रुपये से कम नहीं होनी चाहिए।

(5) विपत्रों की सुपुर्दगी :—कटौती की राशि 2 लाख से अधिक होने पर विपत्रों को रिज़र्व बैंक के पास जमा करवाना पड़ता है किन्तु जब पुनर्कटौती की राशि इससे कम होती है तो कटौती करने वाला अधिकोष उन्हें रिज़र्व बैंक के अभिकर्ता के रूप में अपने पास रख सकता है।

(6) एक ही अधिकोष द्वारा स्वीकृति व पुनर्कटौती :—जब किसी व्यापारिक सौदे के क्रेता व विक्रेता का एक ही अधिकोष होता है तो ऐसा अधिकोष अपने क्रेता ग्राहक की ओर से विपत्र पर स्वीकृति दे सकता है विक्रेता को उसकी कटौती कर सकता है व रिज़र्व बैंक से उसकी पुनर्कटौती भी करवा सकता है।

(7) बैंक द्वारा प्रमाण :—पुनर्कटौती के समय आवेदक अधिकोष को यह प्रमाण-पत्र देना पड़ता है कि (i) प्रस्तुत विपत्र एक व्यापारिक विपत्र है (ii) विपत्र के पक्षकारों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ है (iii) विपत्र पर उनके हस्ताक्षर वास्तविक हैं (iv) स्वीकारक बैंक के हस्ताक्षर व मोहर प्रामाणिक हैं और (v) प्रस्तुत विपत्रों पर बैंक का स्वामित्व वास्तविक व पूर्ण है।

(8) बैंक द्वारा घोषणा :—पृष्ठांकित अधिकोष को पुनर्कटौती के समय इस आशय की लिखित घोषणा करनी पड़ती है कि पृष्ठांकक अधिकोष देय तिथि पर प्रस्तुत करने पर विपत्र का भुगतान कर देगा।

(9) विपत्रों की निवृत्ति (Retirement of Bills) :—कटौती करवाने वाले अधिकोष को अपने कटौती शुदा विपत्रों का उनकी परिपक्व तिथि से 3 दिन पूर्व भुगतान करना पड़ता है ताकि उन्हें देय तिथि पर भुगतान हेतु स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके।

(10) पुनर्कटौती की दर :—इस योजना के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक ने व्यापारिक अधिकोषों को ब्याज दर में कोई छूट नहीं दी है। अतएव विपत्रों की बैंक दर पर कटौती की जाती है।

(11) विदेशी विनिमय पत्रों की कटौती व पुनर्कटौती :—इस योजना के अन्तर्गत विदेशी विपत्रों की पुनर्कटौती भी की जाती है। विदेशी विपत्रों की अधिकतम अवधि 100 दिन रखी गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि रिज़र्व बैंक बिल मार्केट के विस्तार व विकास के लिए प्रयत्नशील है किन्तु इस योजना की सबसे बड़ी कमी यह है कि व्यापारिक अधिकोषों

को पुनर्कटौती शुदा विपत्रों का देय तिथि से पूर्व भुगतान करना पड़ता है और उन्हें स्वयं स्वीकारक के समक्ष भुगतान हेतु प्रस्तुत करना पड़ता है। अच्छा तो यह होता है कि रिज़र्व बैंक स्वयं यह कार्य करता।

निर्यात बिलों की साख योजना (Export Bill credit scheme)

निर्यात सम्वर्द्धन के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए 1958 में निर्यात विपत्रों को भी विपत्र विपणन-योजना के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया व निर्यात वित्त अध्ययन दल की सिफारिश पर 1962 में इन विपत्रों की पुनर्कटौती के लिए इनकी अधिकतम अवधि 180 दिन कर दी गई। मार्च 1963 में निर्यात व्यापार को उदार शर्तों पर साख प्रदान करने के लिए रिज़र्व बैंक ने एक सर्वथा नवीन योजना प्रारम्भ की जिसे निर्यात बिल साख योजना कहा जाता है। इस नवीन योजना के अन्तर्गत अधिकोषों को अपने पास सुरक्षित निर्यात बिलों की घोषणा के आधार पर रिज़र्व बैंक पर माँग पर देय प्रतिज्ञा-पत्र लिखने के लिए अधिकृत किया गया है।

(स) कोषागार विपत्र (Treasury Bills)

व्यापारिक अधिकोष कोषागार विपत्रों में भी अपने ससाधनों का विनियोग करते हैं। इन विपत्रों की गणना प्रतिज्ञा-पत्रों में की जाती है और इनका विक्रय भारत सरकार की ओर से रिज़र्व बैंक करता है।

ये विपत्र सामान्यतः सप्ताह में एक बार बेचे जाते हैं किन्तु अतिरिक्त कोषों की आवश्यकता पड़ने पर सप्ताह के मध्य दुबारा भी इनका विक्रय किया जा सकता है। सप्ताह में दूसरी बार बेचे जाने वाले विपत्रों को 'इण्टर मिडिएट्स' अथवा 'एडहॉक्स' कहा जाता है।

इन विपत्रों को पूर्व निर्धारित बट्टे पर बेचा जाता है। बट्टे की दर रिज़र्व बैंक द्वारा तय की जाती है और क्रेता को नकद, धनादेश अथवा पूर्व परिपक्व विपत्रों के रूप में देय धनराशि जमा करवानी पड़ती है। ये विपत्र 91 दिनों के लिए निर्गमित किये जाते हैं। इन विपत्रों को मुख्यतः व्यापारिक अधिकोषों द्वारा खरीदा जाता है। कुछ समय पूर्व इनके विक्रय के लिए निविदाएँ आमन्त्रित की जाती थी और जो अधिकोष/क्रेता सबसे कम बट्टे पर इन्हें खरीदने का प्रस्ताव करता था उन्हें वे विपत्र बेच दिये जाते थे किन्तु अब सभी क्रेताओं के लिए एक समान दर तय कर दी जाती है।

कोषागार विपत्रों पर कोई ब्याज देय नहीं होता है। इन पर प्राप्त बट्टे की राशि ही इनके क्रेताओं की आय होती है। विपत्रों की परिपक्व तिथि पर इनके क्रेताओं को रोकड़ी राशि प्राप्त हो जाती है। जब एक क्रेता नये कोषागार विपत्रों को खरीदता है तो वह उनका मूल्य पुराने परिपक्व विपत्रों में भी चुका सकता है।

भारतीय अधिकोष विनियोग की दृष्टि से कोषागार विपत्रों को बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि (i) ये विपत्र अल्पकाल में परिपक्व हो जाते हैं; (ii) इन पर भी व्यापारिक विपत्रों की भाँति दोहरा लाभ मिलता है (iii) आवश्यकता के समय इनका बाज़ार में विक्रय किया जा सकता है और (iv) इनकी तरल सम्पत्ति में गणना की जाती है।

(द) प्रतिभूतियां :

व्यापारिक अधिकोष राजकीय, अर्द्धराजकीय व निजी प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों में भी अपने कोषों का विनियोजन करते हैं। इन विनियोगों की गणना सुरक्षा की तृतीय

पंक्ति में की जाती है क्योंकि आवश्यकता के समय इनका स्कन्ध बाजार में विक्रय किया जा सकता है अथवा इनकी जमानत पर ऋण लिया जा सकता है। इन प्रतिभूतियों में विनियोजन से पूर्व बैंक निम्नांकित बिन्दुओं पर विचार करते हैं :

(i) सुरक्षा :—विनियोजक अधिकोष लाभार्जन से पूर्व अपने मूलधन की सुरक्षा को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि वे विनियोजित राशि के प्रन्यासी मात्र होते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से राजकीय प्रतिभूतियों को आदर्श माना जाता है किन्तु इस श्रेष्ठता का सम्बन्धित सरकार के स्थायित्व, उसकी करारोपण शक्ति व देश के मूल्य स्तर के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ एक अस्थायी सरकार द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियाँ तुलनात्मक दृष्टि से असुरक्षित होती हैं। इसी प्रकार सीमित करारोपण शक्ति वाली सरकार की प्रतिभूतियों को भी अधिक अच्छा नहीं माना जाता है। विदेशी प्रतिभूतियों को भी सर्वथा सुरक्षित नहीं माना जाता है क्योंकि विनिमय दर में परिवर्तन होने पर विदेशी विनियोगों के मूल्यों में भी स्वतः परिवर्तन हो जाते हैं। जब एक सरकार अपनी मुद्रा का अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन करती है तब भी उसकी प्रतिभूतियों के मूल्य में परिवर्तन हो जाता है।

(ii) विक्रय साध्यता :—विनियोजक अधिकोष विनियोगों की सुरक्षा के साथ-साथ प्रतिभूतियों की विक्रय साध्यता पर भी ध्यान देता है। इस दृष्टि से अनुसूचित प्रतिभूतियों (Listed securities) अच्छी मानी जाती हैं। ये प्रतिभूतियाँ उत्कृष्टता का स्वयं सिद्ध प्रमाण होती हैं क्योंकि स्कन्ध विनिमय बाजार केवल उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभूतियों को ही अपनी सूची में शामिल करते हैं। इन प्रतिभूतियों के अधिकृत मूल्य समाचार-पत्रों व बुलेटिनों में प्रकाशित होते रहते हैं। इन प्रतिभूतियों विशेषतः परमप्रतिभूतियों को किसी भी समय बहुत बड़ी मात्रा में बिना किसी प्रकार की अनुचित हानि के बेचा जा सकता है अतएव विनियोजक अधिकोष-मूल्यों की गिरावट की अवस्था में-सम्भाव्य हानि से अपना बचाव कर सकते हैं।

(iii) मूल्यों में स्थिरता :—विनियोजक अधिकोष अपनी प्रतिभूतियों के मूल्यों की स्थिरता का भी ध्यान रखते हैं अधिकोष केवल व्यापारिक लाभ के लिए प्रतिभूतियों में अपने कोषों का विनियोजन करते हैं अतएव जिन प्रतिभूतियों के मूल्यों में बराबर उच्चावचन होते रहते हैं उनमें व्यापारिक अधिकोष अपने कोषों का विनियोजन नहीं करते हैं। मूल्य ह्रास की स्थिति में ऐसी प्रतिभूतियों को तत्काल बेचने पर विनियोजक अधिकोष को हानि वहन करनी पड़ती है व न बेचने पर उन्हें घटे हुए मूल्यों पर अपने वार्षिक स्थिति विवरण-पत्र में प्रदर्शित करना पड़ता है ये दोनों स्थितियाँ खराब होती हैं क्योंकि जमाकर्त्ताओं को इस स्थिति का पता लगने पर वे अपने निक्षेपों का व्यापक स्तर पर आहरण प्रारम्भ कर देते हैं और कभी-कभी इन आहरणों की गति इतनी तीव्र होती है कि सम्बन्धित अधिकोष अचानक टूट जाता है। इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए एक अधिकोष केवल स्थिर मूल्यों वाली प्रतिभूतियों में ही अपने कोषों का विनियोजन करता है।

(iv) नियमित व समुचित आय :—एक अधिकोष अपने कोषों का प्रतिभूतियों में विनियोजन करते समय इन तथ्यों को हमेशा अपनी आँखों के सामने रखता है। अधिकोष सामान्यतः अत्यधिक आय वाली प्रतिभूतियों में धन नहीं लगाते हैं क्योंकि इस प्रकार

की प्रतिभूतियाँ सामान्यतः कमज़ोर होती हैं व इनमें सट्टा बहुत ज्यादा होता है। आय की गणना करते समय अधिकोष प्रतिभूतियों के बाज़ार मूल्य, ब्याज दर, लाभांश दर, निर्गमन मूल्य, पुनर्ग्रहण मूल्य आदि पर विचार करते हैं। जब किसी अधिकोश को किसी कारणवश निम्न आय देने वाली प्रतिभूतियो मे अपने कोषो का विनियोजन करना पड़ता है तो वह अवसर आने पर उनका अधिक आय देने वाली प्रतिभूतियों से प्रतिस्थापन कर लेता है।

अधिकोषों की प्राथमिकता :—राजकीय व अर्द्धराजकीय प्रतिभूतियों का मूल्य सामान्यतया स्थिर रहता है व उनसे नियमित रूप से आय प्राप्त होती रहती है। अतएव व्यापारिक अधिकोष अपने अधिकोषों के विनियोजन की दृष्टि से इन प्रतिभूतियो को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। इन प्रतिभूतियों से आय कम प्राप्त होती है। अतएव इनमें सम्पूर्ण कोषों का विनियोजन करने पर बैंक के लाभ की मात्रा कम रह जाती है। अतः अधिकोष अपने विनियोगों मे संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास के अन्तर्गत वे उत्कृष्ट कोटि के निजी प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों में भी अपने कोषों का विनियोजन करते है। निजी प्रमण्डलों का चयन करते समय वे अनिवार्य सेवा प्रमण्डलों (Essential services companies) यथा जल, विद्युत, यातायात आदि को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि इनके असफल होने की सम्भावनाएँ बहुत कम होती हैं। अन्य प्रमण्डलो में विनियोजन करते समय वे ऋण पत्रो व पूर्वाधिकार अंशपत्रों को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। आजकल भारतीय अधिकोषो को अपने 40% निक्षेपों का राजकीय प्रतिभूतियों में विनियोजन रखना पड़ता है।

विनियोग नीति :—अधिकोषों की विनियोग नीति लिखित या मौखिक और औपचारिक अथवा अनौपचारिक हो सकती है किन्तु अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि औपचारिक नीति हर अवसर के लिए उपयुक्त नहीं होती है। अतएव उसे शब्दों के बन्धन में नहीं बांधा जा सकता व विनियोग अधिकारियो या विनियोग की समिति के अवसर की अनुकूलता व प्राप्य संसाधनो के परिप्रेक्ष्य में निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए। फिर भी यह कहा जा सकता है कि विनियोग नीति का निर्माण अत्यन्त सावधानी, दूरदर्शिता व सतर्कता से किया जाना चाहिए और उसमें विनियोगों की विविधता; आय की निरन्तरता और समुचितता; विनियोगो की विपणन योग्यता, परिपक्वता, प्रकृति; प्रमण्डलो की साख, वित्तीय सुदृढ़ता और प्रबन्ध की उत्कृष्टता पर ध्यान दिया जाना चाहिए। विनियोगो की सुदृढ़ता के लिए विनियोजन सम्बन्धी निर्णय केवल विनियोग समिति या अधिकृत व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं व इस कार्य के लिए ऐसे व्यक्तियों को चुना जाता है जिनका विनियोजन के क्षेत्र में विशेष ज्ञान व अनुभव होता है।

विनियोगों के नियामक तत्त्व

अधिकोषों के विनियोगों को बैंकिंग अधिनियम, केन्द्रीय बैंक, सरकार व परम्पराएँ नियमित व नियन्त्रित करती हैं। हमारे देश में अधिकोषों के विनियोगों पर निम्नांकित प्रतिबन्ध लगे हुए हैं :—

(i) एक व्यापारिक अधिकोष केवल प्रन्यास कार्य, किसी सम्पत्ति के प्रशासन, सेफ डिपोजिट वाल्ट की सुविधा प्रदान करने व बैंकिंग व्यवसाय से मिलते-जुलते कार्यों के लिए सहायक प्रमण्डलों का निर्माण कर सकता है।

(ii) एक अधिकोष अन्य प्रमण्डलों में अपनी दत्तपूंजी व संचित कोष के 30% अथवा सम्बन्धित प्रमण्डल की दत्तपूंजी के 30% (दोनों में जो भी कम हो) से अधिक राशि का विनियोजन नहीं कर सकता अर्थात् इस राशि से अधिक राशि के अंशपत्रों व ऋण पत्रों को अपने नाम से नहीं खरीद सकता।

(iii) प्रत्येक अधिकोष को वर्ष की प्रत्येक तिमाही के अन्तिम शुक्रवार को अपने कुल दायित्वों का कम-से-कम 75% भाग सम्पत्ति के रूप में भारत में रखना पड़ता है,

(iv) एक अधिकोष स्वर्ण व रजत के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय नहीं कर सकता अर्थात् अन्य वस्तुओं में अपने कोषों का विनियोजन नहीं कर सकता और

(v) एक अधिकोष केवल वैयक्तिक प्रयोग के लिए स्थायी सम्पत्ति का निर्माण अथवा क्रय कर सकता है। विनियोग की दृष्टि से वह इनका क्रय-विक्रय नहीं कर सकता।

विनियोगों की सम्भावित जोखिमें

जब एक अधिकोष अपने संसाधनों का प्रतिभूतियों में विनियोग करता है तो उसे (1) साख व (2) आय की जोखिमों का सामना करना पड़ता है। साख की जोखिम राजकीय प्रतिभूतियों में सर्वाधिक रहती है। उदाहरणार्थ जब किसी देश में सरकार पलट जाती है तो नई सरकार पूर्ववर्ती सरकार के दायित्वों के निर्वाह से इन्कार कर सकती है। इसके अतिरिक्त जब किसी सरकार की करारोपण शक्ति कमजोर हो जाती है वह अपनी प्रतिभूतियों का भुगतान करने में असमर्थ रहती है। निजी प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों में विवेकपूर्ण ढंग से विनियोजन करने पर साख की इतनी जोखिम नहीं रहती है क्योंकि इन प्रमण्डलों के असफल हो जाने पर अंशधारियों व ऋणदाताओं विशेषतः प्राथमिकता प्राप्त ऋणदाताओं को इनकी सम्पत्ति में से कुछ-न-कुछ अंश अवश्य मिलता है।

आय की जोखिम लगभग प्रत्येक विनियोग में रहती है। उदाहरणार्थ मूल्य-वृद्धि की अवस्था में एक सरकार अपनी अनुवर्ती प्रतिभूतियों की ब्याज दर में वृद्धि कर सकती है अथवा उनका बट्टे पर निर्गमन कर सकती है। इन दोनों ही अवस्थाओं में पूर्ववर्ती विनियोजकों को अपेक्षाकृत कम आय प्राप्त होती है। नई प्रतिभूतियों की निर्गमन विधि अथवा ब्याज दर में परिवर्तन न होने पर भी मूल्य-वृद्धि के कारण विनियोजकों की वास्तविक आय में कमी आ सकती है।

इन जोखिमों से बचने के लिए एक अधिकोष विकेन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण करता है। इस नीति के अन्तर्गत एक अधिकोष विविध उद्योगों की विविध प्रकार की प्रतिभूतियों में अपने संसाधनों का विनियोजन करता है ताकि किसी एक उद्योग के संकटग्रस्त होने पर उसके कोषों पर अधिक दुष्प्रभाव न पड़ सके। विनियोजन के समय वह प्रतिभूतियों की ब्याज/लाभांश तिथियों में भी अन्तर रखने का प्रयास करता है ताकि उसे नियमित रूप से कुछ-न-कुछ धनराशि प्राप्त होती रहे।

विनियोग के सामान्य सिद्धांत

एक अधिकोष अपने संसाधनों के विनियोग के समय कुछ सिद्धान्तों का पालन करता है जिन्हें विनियोग के सामान्य सिद्धान्त कहा जाता है। इन सिद्धान्तों का मोटे तौर

पर वित्तीय व सामाजिक सिद्धान्तों मे विभाजन किया जा सकता है। वित्तीय सिद्धान्तो में निम्नांकित सिद्धान्तों की गणना की जाती है।

(1) सुरक्षा का सिद्धान्त :—बैंक मुख्यतः जन निक्षेपों का विनियोजन करते हैं। वे इन्हें एक प्रन्यासी के रूप में प्राप्त करते हैं। अतएव इनकी सुरक्षा का उन पर नैतिक व वैधानिक दायित्व होता है। इन दायित्वो की रक्षा के लिए वे 'सुरक्षा प्रथम' के सिद्धान्त का पालन करते हैं। सुरक्षा के अभाव में बैंक पर 'रन' प्रारम्भ हो जाता है जो उसके पतन का कारण बन सकता है। सुरक्षा से आशय यह है कि विनियोजित राशि मे किसी प्रकार का ह्रास नही होना चाहिए व उनसे अच्छी आय मिलती रहनी चाहिए। इस सिद्धान्त की रक्षार्थ वे अपने विनियोगो मे विविधता लाते हैं और सुदृढ़ वित्तीय क्षेत्रों मे विनियोग करते हैं।

(ii) तरलता का सिद्धान्त :—बैंकों के अधिकांश निक्षेप मांग पर देय होते हैं और जो मांग पर देय नही होते हैं उनको भी ऋणो के रूप में मांग की जा सकती है। जमाकर्ता अपने निक्षेपो को नक़द राशि के समकक्ष समझता है और आशा करता है कि उसे आवश्यकता के समय अपने अधिकोष से जमा राशि मिल जाएगी। उसके इस विश्वास की रक्षार्थ अपने ससाधनो का इस प्रकार से विनियोजन करना चाहिए कि वह अपने ग्राहकों की मांग को हर समय पूरा कर सके। संसाधनो की तरलता के लिए वह अपने काफी ससाधनों को नकद साख, स्वर्ण, सरकारी प्रतिभूतियो, याचना-राशि आदि मे लगाता है व कुछ पैसा सदैव अपने पास रखता है।

(iii) आय की समुचितता का सिद्धान्त :—बैंको की भी व्यावसायिक उपक्रमो में गणना की जाती है। अतएव अन्य उपक्रमो की भांति उनसे भी यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने वित्तीय व्यवहारो से समुचित मात्रा मे आय प्राप्त करेंगे इसके अतिरिक्त ऋणो एवं विनियोगो मे प्राप्त आय से ही वे अपने सारे दायित्वो का निर्वाह करते हैं। इन सारी अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु उन्हें अपने ससाधनों के विनियोग के समय आय की समुचितता व निरंतरता पर ध्यान देना पड़ता है। इस सिद्धान्त की रक्षार्थ उन्हें सुरक्षा व तरलता के साथ तालमेल बैठाना पड़ता है क्योंकि कुछ विनियोग तरलता की दृष्टि से अच्छे होते हैं व कुछ आय व सुरक्षा की दृष्टि से।

सामाजिक सिद्धान्त :—बैंक धन के विनियोजन के समय केवल आर्थिक दृष्टिकोण को अपने समक्ष नहीं रखते हैं। आज उन्हें भी सामाजिक विकास का एक आवश्यक उपकरण माना जाता है और उनसे इस उत्तरदायित्व के निर्वाह की आशा की जाती है। अतएव वे अपने विनियोगो के समय वित्तीय सिद्धान्तो के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्यों पर भी विचार करते हैं और अपनी विनियोग नीति का इस प्रकार से निर्माण करते हैं कि वह सामाजिक अपेक्षाओं की पूर्ति कर सके। उदाहरणार्थ युद्ध काल में अधिकोषों को प्रतिरक्षा तैयारियों के लिए अपने साधन सुलभ करने पड़ते हैं और सार्वजनिक हित के लिए लाभदायकता की कसौटी का भी कुछ सीमा तक बलिदान करना पड़ता है। भारत मे प्राथमिक क्षेत्रों व समाज के कमजोर वर्गों को आज इसी नीति के अन्तर्गत ऋण दिये जा रहे हैं।

प्रश्न

1. अधिकोषो के लाभकारी विनियोगों को प्रभावित करने वाले तत्वो का वर्णन कीजिए।

2. अधिकोष अपने कोषों का किन लाभकारी क्षेत्रों में विनियोजन करते हैं? समझाइए।
3. एक अधिकोष की विनियोग नीति के प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए व इसके नियामक तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. विपत्रों में विनियोजन से क्या लाभ हैं? समझाइए।
5. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए:
   (i) बिल मार्केट योजना (ii) विनियोग सिद्धान्त
   (iii) प्रतिभूतियों मे विनियोजन के लाभ।

6

ऋण, अग्रिम एवं गारण्टी

(Loans, Advances & Guarantee)

महत्व

ऋण एवं अग्रिम लाभकारी प्रयोगों का दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इनसे अधिकोषों को सर्वाधिक आय प्राप्त होती है। इन्ही से अधिकोष अपने समस्त खर्चों की पूर्ति करते हैं, जमाकर्ताओं को ब्याज का भुगतान करते हैं और संचित कोषों का निर्माण करते हैं। ऋण एवं अग्रिमों से देश के व्यापार और उद्योगों को भी सम्बल प्राप्त होता है क्योंकि अधिकांश ऋण इसी वर्ग को स्वीकृत किये जाते हैं।

ऋण, एवं अग्रिमों में अन्तर

प्रकृति की दृष्टि से ऋण एवं अग्रिमों में कोई अन्तर नहीं किया जा सकता किन्तु प्रक्रिया की दृष्टि से दोनों में कुछ अन्तर है। उदाहरणार्थ ऋण अग्रिमों का एक भाग होता है, इसके लिए ऋणी का पृथक् ऋण खाता खोला जाता है और ऋणी पूर्व स्वीकृत शर्तों के अनुसार स्वीकृत राशि का आहरण करता है। अग्रिमों के लिए पृथक् खाता खोलने की आवश्यकता नहीं होती है। उसकी प्रविष्टियाँ ऋणी के चालू खाते में कर दी जाती हैं।

प्रत्येक ऋण का अपने आप में एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अतएव दो ऋणों को परस्पर मिलाया नहीं जा सकता। जब एक अधिकोष अपने किसी पूर्व ऋणी को कालान्तर में दूसरा ऋण स्वीकृत करता है तो वह इस ऋण के लिए पृथक् ऋण खाता खोलता है। ऋण व्यक्तिगत साख अथवा वस्तुओं की प्रतिभूति पर स्वीकृत किये जाते हैं। व्यक्तिगत साख पर स्वीकृत ऋणों को स्वच्छ ऋण (Clean credit) कहा जाता है व शेष ऋणों को सुरक्षित ऋण कहा जाता है।

ऋण-पद्धति

ऋण एवं अग्रिमों की स्वीकृति के लिए अधिकोष व ऋणी में एक अनुबन्ध किया जाता है जिसके अन्तर्गत ऋण की अधिकतम राशि, अवधि, ब्याज दर व भुगतान की शर्तें तय की जाती हैं। इस अनुबन्ध में गिरवी रखी गई प्रतिभूतियों का भी वर्णन किया जाता है व साक्ष्य स्वरूप दो व्यक्तियों के हस्ताक्षर भी करवाए जाते हैं।

ऋणों का वर्गीकरण

अधिकोष ऋणों को सुरक्षा, परिपक्वता, भुगतान अवधि, उद्देश्य आदि की दृष्टि से निम्नांकित वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(1) सुरक्षित एवं असुरक्षित ऋण :—जो ऋण किसी विशिष्ट सम्पत्ति (स्थायी सम्पत्ति, माल-गोदाम की रसीद, प्रन्यास रसीद, जहाजी रसीद, अंशपत्र एवं ऋणपत्र, बीमापत्र,

सयंत्र आदि) के विबन्धन अथवा किसी व्यक्ति या संस्था की गारण्टी पर स्वीकृत किये जाते हैं उन्हें सुरक्षित ऋण कहा जाता है। जब प्रार्थी की आर्थिक स्थिति दुर्बल होती है, जब उसकी आय प्रार्थित ऋणों के अनुपात में कम होती है अथवा जब वह ख्याति प्राप्त व्यक्ति नहीं होता है तो अधिकोष सामान्यतः ऋणों की सुरक्षार्थ सम्पत्ति अथवा गारण्टी की मांग करते है। कुछ ऋण परम्पराओं के कारण भी सुरक्षित ऋणों के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं। जब किसी सम्पत्ति को गिरवी रखा जाता है तो ऋणदाता अधिकोष उसका अपने पक्ष में हस्तातरण करवा लेता है ताकि उसका उस सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार हो जाय। सम्पत्ति को स्वीकार करते समय अधिकोष उसकी विपणन साध्यता पर विचार करता है और उचित सीमान्तर रखता है। दीर्घकालीन ऋण सदैव सुरक्षित ऋणों के रूप में स्वीकृत किये जाते है क्योंकि परिपक्वता की अवधि जितनी लम्बी होती है ऋणों के शोधन की सम्भावना उतनी ही कम हो जाती, होती चली जाती है।

जब सुरक्षित ऋणों का परिपक्व तिथि पर शोधन नहीं हो पाता है तो ऋणदाता अधिकोष गिरवी रखी गई सम्पत्ति को बेचकर अपने ऋणों का शोधन कर लेता है और आधिक्य को उसके स्वामी को लौटा देता है। जब विक्रीत राशि कम रह जाती है तो शेष देय राशि की वसूली के लिए बैंक को ऋणी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। किसी व्यक्ति की गारण्टी पर ऋण स्वीकृत करने पर ऋणदाता अधिकोष सम्बन्धित प्रत्याभू से अपने ऋण की ब्याज-सहित वसूली कर सकता है।

सुरक्षित ऋणों के शोधन मे सामान्यतः अधिकोषो को किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि यथोचित सीमान्तर के कारण ऋणदाता अधिकोष की स्थिति ऋणी की अपेक्षा सदैव श्रेष्ठ रहती है फिर भी सुरक्षित ऋण ऋण शोधन की गारण्टी नहीं देते हैं।

जब ऋणी अपने ऋणों की सुरक्षार्थ न कोई सम्पत्ति गिरवी रखता है और न उसके शोधन के लिए किसी प्रत्याभू से गारण्टी दिलवाता है तो ऐसे ऋणों को असुरक्षित ऋण कहा जाता है। इन्हे स्वच्छ ऋण भी कहा जाता है। असुरक्षित ऋण प्रार्थी की ईमानदारी, पूर्व इतिहास, आय, आर्थिक स्थिति, व्यावसायिक सुदृढ़ता, ऋणों की मात्रा आदि के आधार पर स्वीकृत किये जाते हैं। ऐसे कुछ ऋण राजकीय नीति के कारण भी स्वीकृत किये जाते हैं। किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान या व्यक्ति के दिवालिया घोषित किये जाने पर ऋणदाता अधिकोष को उसके सामान्य ऋणदाताओं में शामिल कर लिया जाता है। अतः अधिकोषों को अपने असुरक्षित ऋणों का एक अंश अवश्य प्राप्त हो जाता है।

(2) अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण :—जिन ऋणों की अवधि एक वर्ष या इससे कम होती है उन्हें अल्पकालीन ऋण कहा जाता है। अल्पकालीन ऋण सामान्यतः 30, 60, या 90 दिनों के लिए स्वीकृत किये जाते हैं। मांग पर देय ऋणों की भी अल्पकालीन ऋणों में गणना की जाती है। जो ऋण 1 से 5 वर्ष की अवधि के लिए स्वीकृत किये जाते हैं उन्हे मध्यकालीन ऋण कहा जाता है व 5 वर्ष से अधिक अवधि वाले ऋणों को दीर्घकालीन ऋण कहा जाता है। इन्हे सावधि ऋण भी कहा जाता है। ये ऋण व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुविधापूर्वक करते हैं। आजकल अधिकोष दीर्घकालीन ऋण भी स्वीकृत करते हैं।

(3) किश्तों में भुगतान योग्य ऋण :—ऋणों का भुगतान एक या अनेक किश्तों में किया जा सकता है। जिस ऋण का भुगतान एक ही किश्त में किया जाता है उसे एकल

(straight) ऋण भी कहा जाता है। इस ऋण का भुगतान ऋण की परिपक्व तिथि पर किया जाता है, किन्तु ब्याज का भुगतान परिपक्व तिथि, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक भी किया जा सकता है। जब ऋणों का किश्तो मे भुगतान किया जाता है तो सामान्यतः प्रत्येक किश्त की राशि बराबर रखी जाती है। किश्त त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक हो सकती है। किश्तो का निर्धारण करते समय ऋणी की आय, चालू पूंजी, परियोजना निर्माण अवधि आदि का भी ध्यान रखा जाता है। देय ब्याज का भुगतान प्रत्येक किश्त के साथ किया जाता है।

(4) उत्पादक व उपभोक्ता ऋण :—जो ऋण उत्पादक-कार्यों के लिए स्वीकृत किये जाते हैं उन्हे उत्पादक ऋण कहा जाता है और जो ऋण दीर्घजीवी उपभोक्ता वस्तुओं यथाकार, साइकिल, रेडियो, पंखा, फ्रिज, कूलर आदि के क्रय-हेतु स्वीकृत किए जाते हैं उन्हें उपभोक्ता ऋण कहा जाता है। आजकल भवन-निर्माण, विवाह आदि कार्यों के लिए भी उपभोक्ता ऋण स्वीकृत किए जाते हैं। ऋणों का यह वर्गीकरण दोषपूर्ण है क्योंकि ऋणी ऋण प्राप्त करने के पश्चात् उसका किसी भी कार्य में प्रयोग कर सकता है अथवा प्रार्थना-पत्र में गलत उद्देश्य बता सकता है। अधिकोष सामान्यतः उत्पादक ऋणो को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि ऐसे ऋणों का समय पर अथवा समय से पूर्व ही शोधन हो जाता है।

ऋणों के कुछ विशिष्ट स्वरूप

अधिकोष नाना प्रकार के ऋण स्वीकृत करते हैं जिनमें से मुख्य निम्नांकित हैं :—

(1) याचना राशि (Call money) :—ये ऋण माँग पर देय होते हैं। अतएव इनके शोधन के लिए पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं पडती है। सामान्यतः ये ऋण अत्यल्प समय (24 घण्टे) के लिए स्वीकृत किये जाते हैं और इनकी ब्याज दर बैंक दर से भी कम होती है। याचना-राशि की गणना नकद कोषों के समकक्ष की जाती है क्योंकि आवश्यकता के समय ऋणदाता अधिकोष इन ऋणों का अविलम्ब शोधन कर लेता है। इस विशिष्टता के कारण इन ऋणों को 'सुरक्षा की दूसरी पंक्ति' भी कहा जाता है। इन ऋणो के कारण ऋणदाता अधिकोष अपने अतिरेक कोषो के विनियोजन व लाभार्जन में समर्थ हो जाते हैं व ऋणी व्यक्ति या संस्था को सामान्य ब्याज दर पर ऋण प्राप्त हो जाते हैं। विदेशों मे इस प्रकार के ऋण सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों व अधिकोषो को स्वीकृत किये जाते हैं किन्तु हमारे देश में यह सुविधा अभी तक केवल अधिकोषों को प्राप्त है।

(2) नकद साख (Cash credit) :—इस व्यवस्था के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष अपने ऋणों को एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित राशि ऋण स्वरूप स्वीकृत कर देता है। इस स्वीकृत राशि को नकद साख सीमा (cash credit limit) कहा जाता है। ऋणी अपनी आवश्यकतानुसार स्वीकृत राशि का सम्भागों में आहरण करता रहता है; उसे न तो एक साथ सम्पूर्ण राशि का आहरण करना पडता है और न सम्पूर्ण राशि पर ब्याज देना पडता है। इन ऋणो पर ब्याज केवल आहरित राशि पर आहरण तिथि से लागू होता है। इस विशिष्टता के कारण ऋणी इस ऋण को बहुत पसन्द करते हैं।

सामान्यतः ये ऋण व्यक्तियो को प्रतिभूतियो, तैयार माल या अचल सम्पत्तियो की जमानत पर स्वीकृत किये जाते हैं। व्यक्तिगत जमानत की अवस्था में प्रतिभूओं को बॉण्ड भरने पड़ते हैं अथवा प्रोनोट लिखने पड़ते हैं।

एक ऋणी ऋण अवधि के समाप्त होने से पूर्व अपने खाते में कभी भी धन जमा करवा सकता है किन्तु इन जमाओं पर उसे कोई ब्याज नहीं मिलता है। ऋण अवधि समाप्त होने पर ऋणी को ऋण राशि का ब्याज सहित भुगतान करना पड़ता है। ऋणी के असमर्थ रहने पर उसके प्रत्याभू से भुगतान की मांग की जाती है। प्रत्याभू के असमर्थ रहने पर अधिकोष को ऋणी के विरुद्ध न्यायालय मे दावा प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। न्यायालीय कार्यवाही मे ऋणदाता अधिकोष को नाना प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं। अतएव वह ऋण स्वीकृति के समय ऋणी से यह अनुबन्ध कर लेता है कि ऋण-शोधन के लिए न्यायालीय कार्यवाही करने पर उसे उस कार्यवाही का व्यय भी वहन करना पड़ेगा।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष ऋण अवधि में न स्वीकृत राशि को अन्य किसी कार्य में प्रयुक्त कर सकता है और न उसे अनुपयुक्त राशि पर ऋणी से ब्याज मिलता है। इन दोनों सीमाओं के कारण उसे वित्तीय हानि का भय बना रहता है। अतएव अपनी सम्भावित हानि को कम करने के लिए वह ऋण स्वीकृति के समय ऋणी से यह अनुबन्ध कर लेता है कि उसे कम-से-कम 25 या 50% राशि पर ब्याज अवश्य देना पड़ेगा चाहे वह उस राशि का प्रयोग करे या न करे। इस शर्त के कारण ऋणी केवल आवश्यक मात्रा मे ही ऋण स्वीकृत करवाता है। हमारे देश में ऋणदाता अधिकोष अपने ऋणियों से वचनबद्धता शुल्क लेते हैं जो स्वीकृत राशि पर 1% की दर से लिया जाता है। इस ऋण की ब्याज दर सामान्य ऋणों की ब्याज दर से कुछ अधिक होती है फिर भी व्यापारियों व उद्योगपतियों में यह ऋण काफी लोकप्रिय है और अधिकोषों के कम-से-कम 75% ऋण नकद साख के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं।

(3) अधिविकर्ष (Overdraft):—जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक को उसके निवेदन पर उसके चालू खाते में जमा राशि से अधिक राशि आहरित करने का अधिकार दे देता है तो इस सुविधा को अधिविकर्ष की सुविधा व आहरित राशि को अधिविकर्ष कहा जाता है। यह सुविधा अल्पकाल के लिए दी जाती है और यह प्रतिभूतियों की जमानत अथवा ग्राहक की साख पर स्वीकृत की जाती है और स्वीकृति के समय उसकी उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भी आहरित राशि पर आहरण तिथि से ब्याज लिया जाता है।

व्यावहारिक दृष्टि से नकद साख व अधिविकर्ष में कोई अन्तर नहीं है किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से दोनों में मौलिक भेद है क्योंकि अधिविकर्ष एक अस्थायी व्यवस्था होती है जबकि नकद साख स्थायी व्यवस्था होती है; अधिविकर्ष चालू खाते में स्वीकृत किया जाता है जबकि नकद साख के लिए पृथक् खाता खोला जाता है, अधिविकर्ष की ब्याज दर नकद साख पर देय ब्याज से कम होती है और नकद साख के लिए ऋणी से जमानत ली जाती है जबकि अधिविकर्ष ग्राहक की व्यक्तिगत साख पर भी स्वीकृत किया जा सकता है।

सुविधा की समाप्ति :—ऋणदाता अधिकोष नकद साख व अधिविकर्ष की सुविधा को कभी भी समाप्त कर सकता है किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसे ऋणी को समुचित सूचना देनी पड़ती है और समुचित सूचना की प्राप्ति से पूर्व लिखे गये उसके समस्त धनादेशों का भुगतान करना पड़ता है। समुचित समय का निर्धारण प्रत्येक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में

किया जाता है। जब ऋणों की सुरक्षार्थ जमा करवाई गई प्रतिभूतियों का बाजार मूल्य कम हो जाता है तो ऋणदाता अधिकोष स्वीकृत राशि से कम राशि आहरण करने पर भी अधिविकर्ष व नकद साख की सुविधा समाप्त कर सकता है किन्तु ऐसा करने से पूर्व भी उसे समुचित सूचना देनी पड़ती है। जब अधिविकर्ष/नकद साख हेतु एक निश्चित अवधि के लिए अनुबन्ध किया जाता है तो ऋणी द्वारा अनुबन्ध की शर्तों का पालन करते रहने पर ऋणदाता अधिकोष उस अवधि की समाप्ति के पूर्व अनुबन्ध को समाप्त नहीं कर सकता।

(4) आवर्ती साख (Revolving credit) :—यह साख एक निश्चित अवधि के लिए स्वीकृत की जाती है। ऋणी इस अवधि में अपनी आवश्यकतानुसार पूर्व स्वीकृत साख में से आहरण करता रहता है और सुविधानुसार (ऋण अवधि में) ऋण का भुगतान करता रहता है। जब ऋणों का पूर्णतः शोधन हो जाता है तो स्वीकृत साख पुनः अपने मूल बिन्दु पर पहुँच जाती है। इस विशिष्टता के कारण ही इस साख को आवर्ती साख कहा जाता है। उदाहरणार्थ रामलाल का अधिकोष उसे 6 माह के लिए 50,000 की आवर्ती साख स्वीकृत करता है। रामलाल 15 दिन पश्चात् इस साख के अन्तर्गत 25,000 रुपये का आहरण करता है। इस आहरण के साथ ही आवर्ती साख 25,000 रुपये रह गई किन्तु रामलाल कुछ दिनों पश्चात् 25,000 रुपये अपने ऋण खाते में जमा करवा देता है। इस राशि के जमा करवाते ही वह पुनः 50 000 रु. के आहरण का अधिकारी बन जाता है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत आहरण व जमा का यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है। ग्राहक को न तो प्रत्येक आहरण के लिए पृथक् अनुबन्ध की आवश्यकता पड़ती है और न पूर्ववर्ती अनुबन्ध का नवीनीकरण करवाना पड़ता है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष को सम्पूर्ण आवर्ती साख को ग्राहक के लिए सुरक्षित रखना पड़ता है व ब्याज केवल आहरित राशि पर आहरण तिथि से लेना पड़ता है। इस दुविधापूर्ण स्थिति के कारण उसे ब्याज की क्षति होती है। अतएव वह क्षतिपूर्ति के निमित्त इस साख के लिए सामान्य से अधिक ब्याज लेता है।

ऋण स्वीकृति में अपेक्षित सावधानियाँ

अधिकोष जमाकर्ताओं के निक्षेपों को न्यासी के रूप में काम में लेते हैं। इस महान् उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए उन्हें निम्नांकित सावधानियों को काम में लेना पड़ता है :—

(1) सुरक्षा :—अधिकोष ब्याज की अपेक्षा मूलधन की सुरक्षा को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि मूल के सुरक्षित रहने पर ब्याज तो मिलता ही रहता है। जब एक अधिकोष ब्याज का प्रलोभन करता है तो उसे मूलधन व ब्याज दोनों से हाथ धोना पड़ सकता है। अतएव ऋण स्वीकृति से पूर्व ऋणदाता अधिकोष प्रार्थी की वित्तीय सुदृढ़ता, भावी आय, सम्भावित जोखिम आदि पर भली-भांति विचार करता है। व्यक्तिगत साख के आधार पर ऋण स्वीकृत करते समय इन तत्वों पर विचार करना और भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि ऋणी के दिवालिया हो जाने पर ऋणदाता अधिकोष के पास अपने ऋणों के शोधन के लिए भौतिक सम्पत्ति के रूप में कुछ भी नहीं होता है।

(2) तरलता :—अधिकोषों के अधिकांश निक्षेप माँग पर देय होते हैं। अतः प्रत्येक अधिकोष अपने कोषों की तरलता को बनाये रखने का प्रयास करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वे मुख्यतः सुरक्षित अल्पकालीन ऋण स्वीकृत करते हैं और उनके लिए ऐसी प्रतिभूतियाँ स्वीकार करते हैं जिनकी विपणन साध्यता सार्वदेशिक व सार्वकालिक होती हैं और जिन पर ऋणी का निर्विवाद अधिकार होता है। इसके अतिरिक्त ग्राहक की स्थिति कमजोर होने पर अथवा प्रतिभूतियों के मूल्यों में ह्रास होने पर ऋणदाता अधिकोष को ऋण की मात्रा कम करने अथवा अतिरिक्त प्रतिभूतियों के माँगने का भी अधिकार सुरक्षित रखना चाहिए।

(3) उद्देश्य :—ऋणदाता अधिकोष ऋण स्वीकृत करने से पूर्व ऋण के उद्देश्यों के बारे में भी जाँच करते हैं। वे सामान्यतः सट्टे व अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण नहीं देते हैं क्योंकि ऐसे ऋण अशोध्य होते हैं। उत्पादक कार्यों के लिए ऋण स्वीकृत करते समय वे देश की साख-नीति का भी ध्यान रखते हैं अन्यथा उन्हें अनावश्यक रूप से केन्द्रीय अधिकोष का कोप-भाजन बनना पड़ता है। उपभोक्ता ऋण स्वीकृत करने से पूर्व ऋणदाता अधिकोष ऋण को खरीदी जाने वाली वस्तु का बीमा करवाने का आदेश देता है। बैंक इस बीमा-पत्र का अपने पक्ष में अभिहस्ताकन करवा लेते हैं और ऋण की अन्तिम पाई के भुगतान तक खरीदी गई वस्तुओं पर अपना वैधानिक अधिकार रखते हैं।

(4) विकेन्द्रित ऋण :—अधिकोष अपने ऋणों में विविधता लाने का प्रयास करते हैं अर्थात् वे अनेक इकाइयों व अनेक उद्योगों को ऋण देते हैं। इस विविधता के कारण वे अवसाद जैसी विकट स्थिति का आसानी से सामना कर लेते हैं और एक उद्योग या एक प्रतिष्ठान की प्रतिकूल वित्तीय स्थिति बैंक पर अधिक दुष्प्रभाव नहीं डाल सकती।

(5) समुचित आय :—अधिकोषों को अपने ग्राहकों से प्राप्त निक्षेपों पर ब्याज देना पड़ता है, अंशधारियों को लाभांश देना पड़ता है, अपने कर्मचारियों को वेतन देना पड़ता है व अन्य अनेक खर्चों की पूर्ति करनी पड़ती है। इन सब खर्चों की पूर्ति मुख्यतः प्राप्त ब्याज से ही होती है। अतः अधिकोषों को ऋण स्वीकृति के समय प्राप्य एवं देय ब्याज दरों पर विचार करना पड़ता है व इन दोनों में यथेष्ठ अन्तर रखना पड़ता है। यथेष्ठता एक सापेक्षिक शब्द है। अतः इसे अंकों में परिभाषित नहीं किया जा सकता किन्तु सामान्यतः इन दोनों दरों में $2\frac{1}{2}\%$ तक अन्तर रखा जा सकता है। समुचित आय की सुरक्षार्थ अधिकोष प्रतिस्पर्द्धा व सस्ती साख-नीति से भी बचने का प्रयास करते हैं।

(6) आनुपातिक ऋण :—अधिकोष अपने संसाधनों के अनुपात में ऋण स्वीकृत करते हैं। जब एक अधिकोष अपने संसाधनों से अधिक मात्रा में ऋण स्वीकृत कर देता है व उसे अतिरिक्त जोखिम का बँटवारा करने वाला कोई नहीं मिलता है तो वह संसाधनों के अभाव में अपने ग्राहकों की माँग को पूरा नहीं कर पाता है। फलतः ग्राहकों का अपने अधिकोष पर से विश्वास उठ जाता है और वे अपने निक्षेपों का तीव्रगति से आहरण प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसा अधिकोष अपने ग्राहकों की इस माँग को पूरा करने में असमर्थ रहता है और अन्ततोगत्वा धराशायी हो जाता है।

(7) यथोचित सीमान्तर :—अधिकोष स्वीकृत ऋणों व ऋणों की सुरक्षार्थ रखी गई प्रतिभूतियों के मूल्यों में यथोचित सीमान्तर भी रखते हैं। सीमान्तर निश्चित करते समय देय ब्याज-राशि पर भी विचार किया जाता है। सामान्यतः प्रतिभूतियों के मूल्यों के

50% से अधिक ऋण स्वीकृत नहीं किए जाते हैं किन्तु परम प्रतिभूतियों की जमानत पर 80% तक ऋण स्वीकृत किए जा सकते है। वस्तुओं की प्रतिभूतियो पर ऋण देते समय चयनित साख नियन्त्रण के अन्तर्गत निर्धारित सीमान्तर का ध्यान रखा जाता है। ऋण स्वीकृति के पश्चात् ऋणदाता अधिकोष प्रतिभूतियों के बाजार मूल्यो की जानकारी प्राप्त करता रहता है और उनके मूल्यों में कमी आने पर ऋणी से अतिरिक्त प्रतिभूतियो की मांग करता है।

(8) भुगतान क्षमता :—ऋण स्वीकृत करते समय ऋणदाता अधिकोष ऋणी की भुगतान क्षमता पर भी विचार करता है। इस दृष्टि से वह ऋणी की आय, व्यापार की प्रकृति व व्यापार पद्धति पर विचार करता है। आय की दृष्टि से ऋणी (i) स्थायी आय वाला, (ii) व्यवसायी, (iii) व्यापारी (एकाकी, साझेदार व प्रमण्डल) व अन्य व्यक्ति हो सकता है। स्थायी आय सेवा, वृत्ति, पेंशन अथवा पूर्वजो द्वारा संचित सम्पत्ति से प्राप्त हो सकती है। सेविवर्गीय व्यक्तियों की आय उनके निधन पागलपन, अनिवार्य सेवानिवृत्ति या बेकारी के कारण किसी भी समय बन्द हो सकती है। अतः अधिकोष इन्हें सामान्यतः असुरक्षित ऋण स्वीकृत नहीं करते हैं। असुरक्षित ऋणो की अवस्था में उनके जीवन का बीमा करवाया जाता है और बीमा-पत्र का बैंक के पक्ष में अभिहस्तांकन करवाया जाता है। पूर्वजों द्वारा संचित सम्पत्ति से आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियो को ऋण तो स्वीकृत किये जा सकते हैं, किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त प्रतिभूतियों को श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता क्योंकि पूर्वजो की सम्पत्ति पर पुत्रो व पौत्रो का समान रूप से अधिकार होता है। इस कठिनाई से बचने के लिए प्रस्तावित सम्पत्ति को स्वीकार करते समय परिवार के समस्त पुरुष सदस्यों की सहमति लेनी पड़ती है। व्यवसायी व्यक्ति की आय अच्छी हो सकती है, किन्तु ऋणदाता अधिकोष को उससे सम्मोहित नहीं होना चाहिए क्योंकि हो सकता है प्रार्थी को आय-प्राप्ति के अनुपात मे खर्च भी करना पड रहा हो। सही निर्णय लेने के लिए ऋणदाता अधिकोष को व्यापार की प्रकृति, वार्षिक लाभ की मात्रा, कुल दायित्व, चालू पूंजी, दायित्वो के भुगतान के लिए प्राप्य ससाधनों आदि पर विचार करना चाहिए। एक कमीशन एजेन्ट मे प्राप्त ऋण प्रस्ताव प्राप्त होने पर ऋणदाता अधिकोष को एजेन्ट व मालिक की सम्पत्तियों का पृथक् से वर्गीकरण करना चाहिए। व्यापार-पद्धति भी भुगतान क्षमता पर प्रकाश डालती है। जब एक व्यक्ति उधार माल खरीदकर नकद बेचता है तो उसके पास पर्याप्त मात्रा में चालू पूंजी रहती है किन्तु इस प्रकार की प्रचलित पूंजी भुगतान क्षमता का पक्का प्रमाण नहीं होती है। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति विपत्रो की स्वीकृति द्वारा अपने दायित्वों का भुगतान करता है तो उसकी भुगतान क्षमता ज्ञात करने के लिए उसके देय विपत्रो की जांच की जानी चाहिए।

(9) चारित्रिक गठन :—ऋण स्वीकृति से पूर्व ऋणदाता अधिकोष प्रार्थी की चारित्रिक विशेषताओं से भी आश्वस्त होना चाहता है। ईमानदारी, गाम्भीर्य, तत्परता, अटूट लगन, स्थिर प्रकृति आदि एक व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं। ईमानदार व्यक्ति अपने दायित्वो की रक्षा करने का भरसक प्रयास करते हैं जबकि बेईमान व्यक्ति सम्पन्न होते हुए भी ऋणो के भुगतान को टाल सकते हैं, सम्पत्ति को गिरवी रखने के पश्चात् भी उसका अनुचित विधि से विक्रय कर सकता है अथवा उसे पुनः गिरवी रख सकता है या हो सकता है कि उन्हें गिरवी रखते समय भी अनुचित तरीके से प्राप्त किया

हो। इसी प्रकार चंचल व्यक्ति स्वभाव से अधीर होते हैं। ऐसे व्यक्ति एक कार्य को पूरा करने से पूर्व ही दूसरा कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। इनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे किसी कार्य को आद्योपान्त कर सकेंगे। जुआरियों व सटोरियों को भी ऋण-स्वीकृति की दृष्टि से श्रेष्ठ ऋणी नहीं माना जा सकता। इन दुर्गुणों के आवेग से ग्रस्त होने पर इन्हें भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता है और वे अपना सर्वनाश कर लेते हैं।

(10) ऋण उपयोग की क्षमता :—ऋण स्वीकृत करते समय अधिकोष ऋणों के उपयोग की सम्भावनाओं पर भी विचार करते हैं ताकि संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग हो सके और अधिकाधिक जरूरतमंद लोगों को साख-सुविधा प्राप्त हो सके। इस दृष्टि से वे केवल सुदृढ़ परियोजनाओं के लिए ऋण स्वीकृत करते है। वे अधूरी व आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर परियोजनाओं को पुनर्विचार के लिए वापस कर देते हैं अथवा उनके लिए ऋण नहीं देते हैं।

(11) पर्याप्त पूंजी—ऋण स्वीकृत करते समय प्रार्थी की पूंजी पर भी विचार किया जाता है क्योंकि अपर्याप्त पूंजी वाला व्यवसायी सदैव वित्तीय संकटों से घिरा रहता है और अन्ततोगत्वा वह सकट उसे ले डूबता है। पर्याप्त पूंजी वाले व्यक्तियों को भी उनकी पूंजी से अधिक का ऋण नहीं दिया जाता है किन्तु विशिष्ट योजनाओं/व्यवसायों मे इस नियम का उल्लंघन भी किया जा सकता है। एक प्रमण्डल को ऋण स्वीकृत करते समय उसके सीमा नियमों, अन्तर्नियमों व पूर्व वर्षों के हानि-लाभ खातों व तुलनपत्रों का अध्ययन किया जाता है। इन प्रलेखों की सहायता से उसे प्रार्थी प्रमण्डल के उद्देश्यों, संचालकों के अधिकार, प्रमण्डल की पूंजी, दायित्वों, परिसम्पत्तियों आदि का ज्ञान हो जाता है।

(12) राजकीय व्यवस्थाएं—ऋण देते समय अधिकोषों को विभिन्न वैधानिक व्यवस्थाओं का पूर्णतः पालन करना चाहिए। इस दृष्टि से बैंकिंग अधिनियम की निम्नोक्त व्यवस्थाएं उल्लेखनीय हैं :—

(i) एक अधिकोष प्रमण्डल को उसकी 30% दत्त पूंजी या अपनी दत्त पूंजी व संचित कोष के 30% (दोनों में से जो भी कम हो) से अधिक उधार नहीं दे सकता;
(ii) एक अधिकोष अपने अंशपत्रों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं दे सकता;
(iii) एक अधिकोष अपने संचालकों को असुरक्षित ऋण या अग्रिम स्वीकृत नहीं कर सकता;
(iv) एक अधिकोष ऐसे प्रतिष्ठानों या निजी प्रमण्डलों को असुरक्षित ऋण नहीं दे सकता जिनमें उसके किसी संचालक का साझेदार या प्रत्याभू के रूप में हित होता है और
(v) एक अधिकोष ऐसे व्यक्तियों को भी ऋण स्वीकृत नहीं कर सकता जिनकी अधिकोष के किसी संचालक ने गारण्टी दी हो।

ऋण-नीति

ऋण कार्यों के निर्विघ्न संचालन के लिए प्रत्येक अधिकोष की अपनी एक ऋण-नीति होती है। इस ऋण-नीति का निर्माण संचालक-मण्डल द्वारा किया जाता है। वे इस नीति के निर्माण के समय अधिकोष के प्रमुख अधिकारियों से परामर्श करते हैं और उसमें

वैधानिक व्यवस्थाओं व राजकीय दर्शन का समावेश करते हैं। इन दोनों कार्यों से बैंक की ऋण-नीति में निखार आ जाता है और वह ज्यादा व्यावहारिक बन जाती है। एक अधिकोष की प्रत्येक शाखा को इस नीति का अक्षरशः पालन करना पड़ता है किन्तु विशिष्ट परिस्थितियों से कुछ शाखाओं को अपवाद स्वरूप इसके क्रियान्वयन में कुछ छूट दी जा सकती है।

एक अच्छी ऋण-नीति के आधारभूत तत्व

एक अधिकोष अपनी ऋण-नीति को आदर्श रूप देने का प्रयास करता है ताकि प्रत्येक परिस्थिति में यह बैंक अधिकारियों का मार्गदर्शन करती रहे और अधिकोष के ऋण कार्यों का इच्छित दिशाओं में संचालन होता रहे। सामान्यतः एक अच्छी ऋण-नीति में निम्नांकित तत्वों का समावेश किया जाता है :—

(1) लिखित :—ऋण-नीति लिखित अथवा मौखिक हो सकती है किन्तु लिखित नीति को श्रेयस्कर माना जाता है क्योंकि इस नीति के क्रियान्वयन, मूल्यांकन व संशोधन में सुविधा रहती है। शाखा बैंकिंग प्रणाली के अन्तर्गत लिखित-नीति अपरिहार्य मानी जाती है क्योंकि *इस प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न शाखाएं प्रधान अथवा क्षेत्रीय कार्यालय से* अपनी समस्याओं व शंकाओं के निवारणार्थ तत्काल सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाती हैं और विलम्ब की अवस्था में शाखा के व्यवसाय व प्रतिष्ठा को आघात पहुँचने की सम्भावना रहती है। इस नीति का बराबर मूल्यांकन व संशोधन होता रहना चाहिए ताकि इसमें आवश्यक लोच बनी रहे।

(2) कार्य क्षेत्र का निर्धारण :—यह ऋण-नीति का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। कार्य क्षेत्र का निर्धारण व्यापारिक अथवा भौगोलिक अथवा दोनों आधारों पर किया जाता है। व्यापारिक आधार के अन्तर्गत प्रत्येक शाखा के लिए संचलन क्षेत्रों (areas to operation) का निर्धारण कर दिया जाता है और वे इन निर्धारित क्षेत्रों के लिए ही ऋण देती हैं। उदाहरणार्थ कृषि विकास शाखाएं (Agricultural Development Branches) केवल कृषि ऋणों का वितरण करती हैं और क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों की शाखाएं मुख्यतः *सीमान्त किसानों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों, ग्रामीण कारीगरों आदि को ऋण देती हैं जबकि* अन्य शाखाएं समाज के समस्त जरूरतमंद लोगों को साख-सुविधाएं प्रदान करती हैं। भौगोलिक आधार के अन्तर्गत प्रत्येक शाखा कार्यालय का भौगोलिक क्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है और वह अपने क्षेत्र के निवासियों को ही ऋण स्वीकृत करती है। सामान्यतः इन दोनों आधारों पर ही एक कार्यालय का कार्य क्षेत्र निश्चित किया जाता है।

(3) ऋणों की विविधता :—प्रत्येक ऋण नीति में उन कार्यों का समावेश किया जाता है जिनके लिए ऋण स्वीकृत किये जा सकते हैं। ऋणों की विविधता जोखिम की मात्रा को कम करती है। अतएव ऋण नीति में अनेक प्रकार के ऋणों यथा उपभोक्ता ऋण, उत्पादक ऋण, कृषि ऋण, औद्योगिक ऋण, शिक्षा ऋण आदि का समावेश किया जाता है। संचालक मण्डल अपने अधिकोष के वित्तीय संसाधनों, कर्मचारियों की संख्या, प्रशिक्षण व कुशलता, सामाजिक आवश्यकता व राजकीय नीति को दृष्टिगत रखते हुए ऋण नीति में विविध ऋणों का समावेश करता है और उनकी स्वीकृति विविध योजनाएं बनाता है।

(4) विनियम योग्य प्रतिभूतियाँ व सीमान्तर :—ऋणों की सुरक्षा की दृष्टि से ऋण-नीति का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है। अतएव ऋण-नीति में इस बात का स्पष्टतः उल्लेख किया जाता है कि बैंक को ऋणों की सुरक्षार्थ कौन-कौन-सी प्रतिभूतियाँ स्वीकार्य होंगी, उनके स्वीकार करने की विधि क्या होगी और ऋण-राशि व प्रतिभूतियों के मूल्य में कितना सीमान्तर रखा जाएगा ? आजकल प्रतिभूतियों की अपेक्षा ऋणी के चारित्रिक गठन और परियोजना की उत्पादिता पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। फिर भी सुरक्षित ऋणों की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

(5) ऋण अवधि व मात्रा :—अधिकोषों के अधिकांश निक्षेप मांग पर देय होते हैं। इस विशिष्टता के कारण नीति निर्माताओं को ऋण-नीति में ऋणों की अवधि व मात्रा भी निर्धारित करनी पड़ती है। अवधि की दृष्टि से बैंक ऋण अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन हो सकते हैं। हमारे देश में अधिकोष मुख्यतः अल्पकालीन ऋण स्वीकृत करते आए हैं। कुछ समय से वे मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण भी स्वीकृत करने लगे हैं। अवधि के साथ साथ ऋण-नीति कुछ अवस्थाओं में ऋण की मात्रा भी निर्धारित करती है। उदाहरणार्थ क्षेत्रिय ग्रामीण अधिकोष एक सीमा से अधिक ऋण नहीं दे सकते। इसी प्रकार विभेदात्मक ब्याज दर के अन्तर्गत भी एक सीमा तक ही ऋण दिए जाते हैं। अन्य क्षेत्रों में भी कुल लागत का एक प्रतिशत ही ऋण स्वरूप स्वीकृत किया जाता है; शेष राशि के विनियोजन की ऋणी से अपेक्षा की जाती है। मात्रा के अन्तर्गत उसकी वितरण विधि भी निश्चित की जाती है अर्थात् ऋण एक मुश्त दिया जाएगा या किश्तों में दिया जाएगा व ऋण वितरण से पूर्व किन औपचारिकताओं को पूर्ण करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ उच्च अध्ययन ऋण किश्तों में दिए जाते हैं व पशुओं के क्रय-हेतु स्वीकृत ऋणों का भुगतान सीधे विक्रेता को किया जाता है।

(6) ब्याज दर :—ऋण-नीति में विभिन्न प्रकार के ऋणों पर देय ब्याज दर का भी उल्लेख किया जाता है। दरें निश्चित होने पर न अधिकारियों पर अनुचित दबाव पड़ता है और न वे किसी साथ भेद-भाव कर सकते हैं। ब्याज दरों की निश्चितता से ऋणी को भी ऋण भार का पता लग जाता है। कभी-कभी बैंक अधिकारियों को ब्याज दरों के निर्धारण में स्वविवेक का अधिकार दे दिया जाता है किन्तु इसकी अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है। आजकल रिजर्व बैंक भी विभिन्न ऋणों के लिए ब्याज-दर का निर्धारण करती है।

(7) भुगतान विधि :—भुगतान विधि भी अच्छी ऋण-नीति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। यह तत्त्व इस बात को स्पष्ट करता है कि ऋण राशि की वापसी कब व कैसे होगी ? ऋणों की वापसी परियोजना के कार्यारम्भ अथवा उद्देश्य समाप्ति हो सकती है। उदाहरणार्थ अध्ययन ऋणों की वापसी अध्ययन समाप्ति या विद्यार्थी के नौकरी पर लगने पर प्रारम्भ होती है। ऋणों की वापसी एक-मुश्त अथवा किश्तों में हो सकती है और देय ब्याज का भुगतान भी प्रत्येक किश्त के साथ करना पड़ता है। एक अच्छी ऋण नीति में ऋणों की नवीनीकरण प्रक्रिया का भी उल्लेख किया जाता है।

(8) अधिकारों का निर्धारण :—एक अच्छी ऋण-नीति शाखा व्यवस्थापकों की अधिकतम ऋण सीमा का भी निर्धारण करती है। इससे विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है और कार्यप्रणाली में सुगमता आती है। विकेन्द्रीकरण के कारण शाखा

अधिकारियों को भी अपनी पूर्ण दक्षता के साथ कार्य करने का अवसर मिलता है और प्रधान/क्षेत्रीय कार्यालय पर कार्य का दबाव कम पड़ता है।

(9) राजकीय नीतियों के साथ तालमेल :—एक अधिकोष को अपनी ऋण-नीति का राजकीय नीति के साथ तालमेल स्थापित करना पड़ता है क्योंकि अब अधिकोष आर्थिक उपक्रम के साथ-साथ सामाजिक विकास के भी उपकरण माने जाते हैं। अपनी इस नवीन भूमिका के निर्वाह हेतु उन्हें अपनी ऋण-नीति में सरकारी दर्शन के साथ अनिवार्यतः तालमेल बैठाना पड़ता है है। भारत में यह कथन शत-प्रतिशत सही है क्योंकि हमारे बैंकिंग उद्योग के बहुत बड़े भाग पर सरकार का अधिकार है।

ऋण सीमा को प्रभावित करने वाले तत्त्व

व्यापारिक अधिकोष ऋण-स्वीकृति में सर्वथा स्वतन्त्र नहीं होते हैं। निम्नांकित तत्त्व उसकी ऋण प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं :—

(1) वैधानिक व्यवस्थाएं :—एक देश की वैधानिक व्यवस्थाएं अधिकोषों की ऋण सीमाओं को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ बैंकिंग अधिनियम की धारा 21 के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक किसी अधिकोष विशेष अथवा समस्त अधिकोषों को अपनी ऋण एवं अग्रिम नीति निर्धारित करने का आदेश दे सकता है। धारा 21(2) के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक निम्नांकित विषयों में से किसी एक अथवा समस्त पर निर्देश दे सकता है :—

(i) ऋण किन कार्यों के लिए दिया जाएगा और किन कार्यों के लिए नहीं;
(ii) किसी व्यक्ति, व्यक्ति समूह, फ़र्म अथवा प्रमण्डल को दिए जाने वाले अग्रिम की अधिकतम सीमा क्या होगी और इस सीमा का कैसे निर्धारण कैसे किया जाएगा;
(iii) किसी एक फ़र्म, कम्पनी आदि की ओर से बैंक द्वारा दी गई गारण्टी की अधिकतम सीमा;
(iv) *सुरक्षित अग्रिमों के विषय में प्रतिभूति तथा अग्रिम राशि के मध्य कितना* अन्तर रखना आवश्यक है और
(v) ब्याज की दर तथा अन्य शर्तें जिन पर वित्तीय सहायता या गारण्टी दी जाएगी।

रिज़र्व बैंक अपने ये निर्देश चयनात्मक साख नियन्त्रण के अन्तर्गत देता है।

(2) राजकीय आर्थिक दर्शन—राजकीय आर्थिक दर्शन भी ऋण सीमाओं का निर्धारण करता है। उदाहरणार्थ हमारे देश में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों, अनुसूचित व जनजातियों के नागरिकों व समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लिए सरकार द्वारा ऋणों की अधिकतम सीमाओं का निर्धारण किया गया है। इन निर्देशों के अन्तर्गत व्यापारिक अधिकोषों *को अपने कुल ऋणों में से 40% ऋण प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों व 1%* ऋण अनुसूचित व जनजाति के नागरिकों को स्वीकृत करने पड़ते हैं और ग्रामीण व अर्द्ध ग्रामीण शाखाओं से यह अपेक्षा की गई है कि वे अपने दो तिहाई ऋण कमजोर वर्गों को दें।

(3) विशिष्ट संस्थाओं की भूमिका :—कुछ विशिष्ट संस्थाएं भी ऋण सीमा के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। हमारे देश में राष्ट्रीय साख परिषद् (National Credit Council) को यह विशिष्ट स्थान उपलब्ध है। यह संस्था उपलब्ध साधनों एवं प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए

ऋणों एवं अग्रिमों व विनियोगों के लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करती है और अधिकोषों की ऋण एवं विनियोग नीतियों में समन्वय स्थापित करती है।

(4) विभिन्न योजनाएं :—विभिन्न ऋण योजनाएं भी ऋण सीमाओं का निर्धारण करती हैं। उदाहरणार्थ विभेदात्मक ब्याज दर के अन्तर्गत एक ग्रामीण व शहरी नागरिक को क्रमशः 2,000 व 3,000 रुपये का का ऋण स्वीकृत किया जा सकता है। इसी प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष भी भूमिहीन कृषि श्रमिकों, सीमान्त किसानों, ग्रामीण कारीगरों आदि को एक बार में 2,000 रुपये से अधिक की साख स्वीकृत नहीं कर सकते। अन्य वर्गों के लिए रिजर्व बैंक अपनी साख-प्रसार व साख-नियन्त्रण नीति के अन्तर्गत समय-समय पर निर्देश देता रहता है। स्वच्छ ऋणों की मात्रा परियोजना अवधि, अपेक्षित व्यय व रिजर्व बैंक से प्राप्त निर्देशों पर आश्रित रहती है। सामान्यतः अपेक्षित व्यय का 75% ऋणों के रूप में स्वीकृत किया जाता है। अनुसूचित व जनजातियों के लिए यह प्रतिशत कुछ ऊँचा भी हो सकता है।

(5) अधिकोष पूंजी व संचित कोष :—पूंजी व ऋणों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि संकट के समय एक अधिकोष अपनी पूंजी व संचित कोषों से ही अपने ग्राहकों को भुगतान करता है। अतएव एक अधिकोष के पास जितनी ज्यादा पूंजी व संचित कोष होती हैं वह उतनी ही अधिक मात्रा में ऋणों की जोखिम उठा सकता है। अधिक संसाधनों वाले अधिकोष जोखिम को अधिकता के अतिरिक्त अपने ऋणों में विविधता भी ला सकते हैं।

(6) निक्षेपों की प्रकृति :—एक अधिकोष के निक्षेपों की प्रकृति व मात्रा भी ऋण सीमाओं को प्रभावित करती हैं। जिस अधिकोष को अनुपाततः दीर्घकालीन ऋण अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं उसकी ऋण-नीति सामान्यतः उदार होती है। वह लम्बे समय के लिए बड़े ऋणों को सहज ही स्वीकृत कर सकता है।

(7) अर्थव्यवस्था की प्रकृति :—एक अधिकोष के कार्य क्षेत्र की आर्थिक अवस्था भी उसके ऋणों की मात्रा को प्रभावित करती है। एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था अधिकोषों उदार ऋण-नीति के लिए प्रोत्साहित करती है जबकि कमजोर व रुग्ण अर्थव्यवस्था उन्हें कठोर ऋण-नीति के लिए बाध्य करती है। इस नीति के अन्तर्गत वे ऋण स्वीकृत करते समय फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं।

(8) मौद्रिक एवं अर्थ-नीतियां :—देश की मौद्रिक एवं अर्थ-नीति भी ऋणों की मात्रा को प्रभावित करती है। जब अधिकोषों को आवश्यकता के समय केन्द्रीय अधिकोष से ऋण सुलभ हो जाते हैं अथवा जब केन्द्रीय अधिकोष ऋणों के मामले में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हस्तक्षेप नहीं करता है तो व्यापारिक अधिकोष उदार ऋण-नीति का पालन करते हैं।

(9) कार्य क्षेत्र की आवश्यकता :—एक अधिकोष को अपने कार्य क्षेत्र की आवश्यकताओं का अनिवार्यतः ध्यान रखना पड़ता है अन्यथा उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। उदाहरणार्थ कृषि बहुल क्षेत्र में कार्यरत अधिकोषों को कृषकों की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने ऋणों की मात्रा निर्धारित करनी होगी अन्यथा व्यवसाय के अभाव में वे टूट जायेंगे।

गारण्टी अथवा प्रत्याभूति
(Guarantee)

परिभाषा :

गारण्टी एक वचन अथवा प्रतिज्ञा होती है जिसके अन्तर्गत ऋणी से भिन्न व्यक्ति (प्रत्याभू) यह प्रतिज्ञा करता है कि ऋणी द्वारा ऋण का शोधन न करने पर वह ऋणी के दायित्वों की पूर्ति करेगा। इस प्रकार गारण्टी व्यक्तिगत जमानत का ही एक सुधरा हुआ रूप है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 की धारा 126 के अनुसार गारण्टी, "तीसरे पक्ष द्वारा अपने वचन अथवा दायित्व के पूर्ण न करने पर उस वचन अथवा दायित्व को पूर्ण करने के लिए किया गया अनुबन्ध है।" इसी धारा की व्यवस्थानुसार गारण्टी लिखित अथवा मौखिक हो सकती है। इंगलैण्ड में फ्राड अधिनियम (Statute of Frauds) की धारा 4 के अनुसार गारण्टी का लिखित होना आवश्यक है।

विशेषताएं :

एक गारण्टी अनुबन्ध में निम्नांकित विशेषताएं पाई जाती हैं :—

(i) यह अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक हो सकता है। लिखित गारण्टी का कोई औपचारिक स्वरूप नहीं होता है। अतएव इसे किसी भी रूप में लिखा जा सकता है किन्तु उस लेख से यह स्पष्टतः प्रकट होना चाहिए कि प्रत्याभू ने ऋणी की असमर्थता की अवस्था में उसके दायित्व को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की है। अधिकोष लिखित गारण्टी को वरीयता प्रदान करते हैं।

(ii) इस अनुबन्ध के अन्तर्गत तीन पक्ष होते हैं—प्रमुख ऋणी, ऋणदाता व प्रत्याभू। जो व्यक्ति गारण्टी देता है उसे प्रत्याभू, जिसके लिए गारण्टी दी जाती है उसे मूल ऋणी व जिसको गारण्टी दी जाती है उसे ऋणदाता कहा जाता है। प्रत्याभू केवल प्रमुख ऋणी की असमर्थता में उसके दायित्व के लिए दायी होता है। ऋण शोधन का प्रारम्भिक दायित्व प्रमुख ऋणी का ही होता है।

(iii) इस अनुबन्ध के अन्तर्गत दो स्पष्ट व एक गर्भित अनुबन्ध होता है। स्पष्ट अनुबन्धों में से एक प्रमुख व दूसरा सहायक अनुबन्ध होता है। प्रमुख अनुबन्ध प्रमुख ऋणी व ऋणदाता के मध्य सम्पन्न किया जाता है व सहायक अनुबन्ध ऋणदाता व प्रत्याभू के मध्य सम्पन्न किया जाता है। प्रथम अनुबन्ध के अभाव में द्वितीय अनुबन्ध अर्थहीन होता है। गर्भित अनुबन्ध प्रत्याभू व मूल ऋणी के मध्य पाया जाता है।

(iv) गारण्टी सम्पूर्ण ऋण राशि अथवा उसके किसी एक भाग के लिए दी जा सकती है।

गारण्टी की आवश्यकता :

गारण्टी अनुबन्ध की निम्नांकित अवस्थाओं में आवश्यकता पड़ती है :—

(i) जब ऋणी अपने ऋणों की सुरक्षार्थ व्यक्तिगत जमानत के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की सम्पत्ति प्रस्तुत करने में असमर्थ होता है और ऋणदाता अधिकोष उसकी व्यक्तिगत जमानत से संतुष्ट नहीं होता है;

(ii) जब प्रार्थी द्वारा ऋणों की सुरक्षार्थ प्रस्तावित सम्पत्ति प्रस्तावित ऋणों की सुरक्षा के लिए अपर्याप्त होती है और

(iii) जब जमानत स्वरूप रखी गई सम्पत्ति के मूल्य में सीमान्तर से अधिक ह्रास हो जाने पर बैंक द्वारा अतिरिक्त सम्पत्ति की मांग की जाती है व ऋणी उस मांग को पूरा करने में असमर्थ रहता है।

गारण्टी के प्रकार :

प्रत्याभू की दृष्टि से गारण्टी को विशिष्ट व चालू गारण्टी में विभक्त किया जा सकता है। जब किसी विशिष्ट ऋण के लिए गारण्टी दी जाती है तो उसे विशिष्ट गारण्टी कहा जाता है। इस गारण्टी के अन्तर्गत प्रार्थित ऋण को एक स्वतन्त्र ऋण के रूप में स्वीकृत किया जाता है; इसे पूर्ववर्ती या अनुवर्ती ऋणों से सम्बद्ध नहीं किया जाता है। जब ऋणी इस विशिष्ट ऋण का शोधन कर देता है तो प्रत्याभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

चालू गारण्टी एक ग्राहक के सम्पूर्ण नाम शेष के लिए दी जाती है। यह गारण्टी एक निश्चित अवधि के लिए दी जाती है और गारण्टी देते समय ऋण की अधिकतम सीमा भी निश्चित कर दी जाती है। इस गारण्टी के अन्तर्गत ऋणी अपनी आवश्यकतानुसार अपने खाते में से आहरण करता रहता है व सुविधानुसार खाते में धन जमा करवाता रहता है। प्रत्याभू केवल खाते में अन्तिम शेष देय राशि के लिए दायी होता है। जब ऋणी स्वीकृत ऋण की अधिकतम सीमा पर पहुँच जाता है तो प्रत्याभू की पूर्व स्वीकृति के बिना उसे ऋण स्वीकृत नहीं किया जा सकता। जब ऋणदाता अधिकोष इस सीमा का अतिक्रमण करता है तो अपने इस कार्य से होने वाली क्षति के लिए वह स्वयं उत्तरदायी होता है।

जब चालू गारण्टी दी जाती है तो ऋण स्वीकृति से पूर्व एक ग्राहक के समस्त खातों का शेष एक विशिष्ट खाते में स्थानांतरित कर दिया जाता है। इस स्थानांतरण के पश्चात् यदि ग्राहक का खाता स्वीकृत गारण्टी से अधिक या उसके बराबर नाम शेष प्रदर्शित करता है तो ऋणदाता अधिकोष उस खाते को बन्द कर देता है अन्यथा वह गारण्टी की शर्तों के उल्लंघन का भागी बनता है।

जब एक ग्राहक का खाता अधिकतम ऋण सीमा तक पहुँच जाता है तो वह अपने नाम से दूसरा खाता खोलने का अधिकारी होता है। इस खाते में जमा राशि पर प्रत्याभू का न कोई अधिकार होता है और न वह इस खाते के नाम शेष के लिए उत्तरदायी होता है।

गारण्टी के लाभ :

गारण्टी अनुबन्ध द्वारा ऋणी व ऋणदाता समान रूप से लाभान्वित होते हैं। इस अनुबन्ध के कारण ऋणी को अपने व्यवसाय के संचालनार्थ सुविधापूर्वक वांछित मात्रा में पूँजी प्राप्त हो जाती है व ऋणदाता अधिकोष को ऋण राशि के भुगतान के लिए समुचित आश्वासन प्राप्त हो जाता है। इस अनुबन्ध के अन्तर्गत दोनों ही पक्ष लाभार्जन करते हैं। बैंक को ब्याज के रूप में आय प्राप्त होती है और ऋणी को व्यावसायिक विविधता व चतुरता के कारण आय-वृद्धि का एक अच्छा अवसर प्राप्त होता है।

अपेक्षित सावधानियाँ :

गारण्टी अनुबन्ध के समय व उसके पश्चात् ऋणदाता अधिकोष से निम्नांकित सावधानियों की अपेक्षा की जाती है :

(1) लिखित अनुबन्धः—ऋणदाता अधिकोष को केवल लिखित गारण्टी स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि मौखिक गारण्टी को आवश्यकता के समय न्यायालय में प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन होता है। इसके अतिरिक्त अनुबन्ध का स्वरूप इतना स्पष्ट व व्यापक होना चाहिए कि अधिकोष के हितों की रक्षा हर अवस्था में की जा सके। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिकोष को अपने विधि-विशेषज्ञों की सहायता से एक सर्व-उद्देश्यीय गारण्टी प्रपत्र तैयार करवाना चाहिए। इस प्रपत्र की व्यूह-रचना सतर्क व सुदृढ़ होनी चाहिए ताकि प्रत्याभू किसी भी अवस्था में अपने दायित्व से इन्कार न कर सकें।

(2) प्रत्याभू की अनुबन्ध-क्षमताः—जिन व्यक्तियों में अनुबन्ध क्षमता होती है केवल वे ही गारण्टी का अनुबन्ध कर सकते हैं अर्थात् पागल, अवयस्क, दिवालिए व अन्य अक्षम व्यक्ति बैंक के साथ गारण्टी अनुबन्ध नहीं कर सकते। सक्षम व्यक्तियों के साथ भी गारण्टी अनुबन्ध करते समय अधिकोष को अनेक सावधानियों का पालन करना पड़ता है। साझीदारों, विवाहित महिलाओं व प्रमण्डलों के साथ अनुबन्ध करते समय विशेष सावधानियों की आवश्यकता पड़ती है।

एक साझीदार अपने फर्म के नाम से केवल उस अवस्था में गारण्टी दे सकता है जबकि (1) फ़र्म ने उसे इस कार्य हेतु अधिकृत किया हो अथवा (2) फ़र्म सामान्य रूप से गारण्टी का कार्य करता हो। अतएव किसी साझीदार फ़र्म से गारण्टी लेने से पूर्व अधिकोष को (i) साझीदारी संलेख का अवलोकन करना चाहिए (ii) गारण्टी फ़र्म के नाम से लेनी चाहिए (iii) अनुबन्ध पर समस्त साझीदारों के हस्ताक्षर करवाने चाहिए व (iv) किसी एक साझी द्वारा गारण्टी प्रस्ताव करने पर उसके अधिकार-पत्र का अवलोकन करना चाहिए। गारण्टी के पश्चात् यदि किसी साझीदार का निधन हो जाय अथवा कोई साझीदार फ़र्म से अलग हो जाय तो अधिकोष को फ़र्म से गारण्टी अनुबन्ध के बारे में राय माँगनी चाहिए और अनुबन्ध के यथावत् चालू न रखे जाने की अवस्था में शेष साझीदारों से नया अनुबन्ध करना चाहिए।

एक विवाहित महिला में गारण्टी अनुबन्ध करने की क्षमता होती है किन्तु ऋणों का भुगतान न होने पर महिला प्रत्याभू की केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति (स्त्री धन) को उसके वचन या दायित्व पूर्ति के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि स्त्री धन पर पहले से ही किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा हुआ हो तो उस सम्पत्ति को भी ऋण शोधन-हेतु काम में नहीं लिया जा सकता। अतएव महिलाओं से गारण्टी लेने से पूर्व ऋणदाता अधिकोष को इस पहलू पर अवश्य विचार करना चाहिए।

विवाहित महिला से उसके किसी सम्बन्धी के ऋण के लिए गारण्टी नहीं लेनी चाहिए क्योंकि ऐसे ऋणों के अशोधन की अवस्था में वह न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत कर सकती है कि उस पर गारण्टी के लिए अनुचित दबाव डाला गया था। स्वतन्त्र सहमति के अभाव में ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हो जाएगा। अतएव जब अधिकोष किसी महिला से उसके किसी रिश्तेदार के लिए गारण्टी लेना चाहे तो उसे उस महिला को उस सौदे की प्रकृति से पूर्णतः अवगत कर देना चाहिए और उससे यह लिखित प्रमाण-पत्र भी लेना चाहिए कि वह अनुबन्ध के लिए स्वतन्त्र सहमति दे रही है व उसने इस सम्बन्ध में अपने विधि-विशेषज्ञ से राय ले ली है। इस प्रमाण-पत्र पर उसके विधि-विशेषज्ञ के भी हस्ताक्षर करवा लेने चाहिए।

एक प्रमण्डल भी गारण्टी दे सकता है किन्तु प्रमण्डल को प्रत्याभू के रूप में स्वीकार करने से पूर्व ऋणदाता अधिकोष को उसके सीमा-नियमों व अन्तर्नियमों का अध्ययन करना चाहिए व उस प्रस्ताव का अवलोकन करना चाहिए जिसके द्वारा उसे गारण्टी देने के लिए अधिकृत किया गया है। यदि सीमा नियमों व अन्तर्नियमों में गारण्टी व्यवसाय प्रतिबन्धित हो या इस सम्बन्ध में स्पष्ट अनुमति न हो तो ऋणदाता अधिकोष को ऐसे प्रमण्डल की गारण्टी स्वीकार नहीं करनी चाहिए। यदि जाँच के पश्चात् यह सिद्ध हो जाये कि प्रमण्डल गारण्टी देने के लिए अधिकृत है तो अधिकोष को उसके पिछले कुछ वर्षों के तुलन पत्रों का अध्ययन करना चाहिए, गारण्टी अनुबन्ध पत्र पर प्रस्ताव या अन्तर्नियमों की व्यवस्थानुसार संचालकों व अन्य अधिकारियों के हस्ताक्षर करवाने चाहिए और उनके हस्ताक्षरों के नीचे प्रमण्डल की मोहर अंकित करवानी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके अधिकोष को पंजीकृत प्रमण्डलों से ही गारण्टी लेनी चाहिए क्योंकि अपंजीकृत प्रमण्डलों की सम्पत्ति या सदस्यों से गारण्टी की राशि की वसूली में उन्हें अनेक दुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

संयुक्त व पृथक् दायित्वः—जब एक गारण्टी अनुबन्ध में अनेक व्यक्तियों को प्रत्याभू बनाया जाता है तो ऋणदाता अधिकोष को संयुक्त व पृथक् दायित्व वाली गारण्टी स्वीकार करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की गारण्टी उसे अधिक संरक्षण प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त उसे अनुबन्ध-पत्र पर समस्त प्रत्याभुओं के हस्ताक्षर करवाने चाहिए। जब कोई एक व्यक्ति अनुबन्ध-पत्र पर हस्ताक्षर करने से मना कर देता है अथवा किसी एक व्यक्ति के हस्ताक्षर न होने पर भी जब अधिकोष गारण्टी स्वीकार कर लेता है तो ऐसी गारण्टी व्यर्थ हो जाती है क्योंकि शेष व्यक्ति यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उन्होंने इस विश्वास के साथ अनुबन्ध पर हस्ताक्षर किये थे कि उन्हें उस व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ भागीदार बनाया जा रहा है जिनके अनुबन्ध पत्र पर हस्ताक्षर नहीं हैं। अतएव अधिकोष को अनुबन्ध में वर्णित समस्त व्यक्तियों से हस्ताक्षर करवाने चाहिए और किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर न करने पर नया अनुबन्ध तैयार करवाया जाना चाहिए।

ऋणी से सम्बन्धी सूचनाओं का उद्घाटनः—प्रत्याभू गारण्टी देने से पूर्व ऋणी की आर्थिक स्थिति आदि के बारे में ऋणदाता अधिकोष से जानकारी माँग सकता है व बैंक को उन समस्त तथ्यों की सही-सही जानकारी देना अनिवार्य होता है जिनकी उसे जानकारी होती है। यदि अधिकोष किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपा लेता है अथवा उसके बारे में मिथ्या-भाषण करता है तो गारण्टी का अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 142 व 143 की यह स्पष्ट व्यवस्था है कि यदि बैंक प्रत्याभू के प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर नहीं देता है अथवा दोहरे अर्थ वाले उत्तर देता है और प्रत्याभू उन उत्तरों के आधार पर गारण्टी देना स्वीकार कर लेता है तो इस प्रकार से दी गई गारण्टी अवैधानिक होगी। यदि अधिकोष उत्तर देने की बजाय चुप रहता है और उस चुप्पी के कारण कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन नहीं हो पाता है तो वह चुप्पी बैंक की अनाचरणी का द्योतक होती है और फलस्वरूप अनुबन्ध अवैध हो जाता है। एक अधिकोष केवल पूछने पर ही महत्वपूर्ण तथ्यों के उद्घाटन के लिए उत्तरदायी होता है और वह उन अन्य समस्त सूचनाओं को देने के लिए बाध्य नहीं है जिनका ग्राहक की साख पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है अथवा जो सम्बन्धित गारण्टी से असम्बद्ध है। सूचना देते समय बैंक को अनर्गल व अप्रामाणिक

सूचनाएँ नही देनी चाहिए क्योंकि यदि बैंक ऐसी बात कह देता है जो उसे नही कहनी चाहिए थी अथवा ऐसी बात कहने से चूक जाता है जो उसे अवश्य कहनी चाहिए थी तो वचनदाता अपने वचन की पूर्ति के लिए मना कर सकता है।

सुदृढ़ आर्थिक स्थितिः—अक्षम व्यक्तियों द्वारा दी गई गारण्टी व्यावहारिक दृष्टि से अर्थहीन होती है। अतएव अधिकोषों को गारण्टी स्वीकार करने से पूर्व प्रस्तावित प्रत्याभू की वित्तीय स्थिति व व्यावसायिक प्रतिष्ठा की भली प्रकार से जाँच कर लेनी चाहिए। जब प्रत्याभू बैंक का ग्राहक होता है तो उसकी वित्तीय स्थिति के बारे में अपने साख विभाग से सूचना प्राप्त की जा सकती है और ग्राहक न होने की अवस्था में उसके द्वारा प्रस्तुत सन्दर्भों (References) से आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। ऋणदाता अधिकोष को गारण्टी प्रस्ताव को स्वीकार करने के पश्चात् भी प्रत्याभू की वित्तीय स्थिति पर बाराबर दृष्टि रखनी पड़ती है। यदि बैंक को यह ज्ञात हो जाय कि प्रत्याभू अपने दायित्व से मुक्त होने के लिए अपनी सम्पत्ति का विक्रय/हस्तांतरण कर रहा है तो उसे ऐसे अनुबन्ध को तत्काल समाप्त कर देना चाहिए व ऋणों की वसूली के लिए कार्यवाही प्रारम्भ करनी चाहिए।

महत्वपूर्ण परिवर्तन :—अनुबन्ध प्रपत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पर परिवर्तनों पर समस्त प्रत्याभुओं के आद्याक्षर (Initials) करवा लेने चाहिए। वे हस्ताक्षर उसकी सहमति के सूचक होते हैं। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 133 की व्यवस्थानुसार यदि अनुबन्ध में प्रत्याभू की सहमति बिना कोई परिवर्तन किया जाता है तो वह अपने दायित्व की पूर्ति से मना कर सकता है। यदि प्रत्येक प्रत्याभू ने पृथक्-पृथक् राशि के लिए अनुबन्ध किया हो तो इस प्रकार से अनुबन्धित राशियों में केवल सम्बन्धित प्रत्याभू ही परिवर्तन कर सकता है।

एक से अधिक अनुबन्ध :—यदि एक व्यक्ति एक ऋणी के अनेक ऋणों के लिए प्रत्याभू का कार्य करे तो हर नए अनुबन्ध मे उससे यह स्पष्टतः लिखवा लेना चाहिए कि उसके पूर्ववर्ती अनुबन्ध यथावत् चालू रहेंगे और अनुवर्ती अनुबन्ध पूर्ववर्ती अनुबन्धों की प्रतिस्थापना नही कर रहा है।

प्रतिफल :—गारण्टी प्रतिफल के बदले में ही स्वीकृत की जानी चाहिए अन्यथा अनुबन्ध व्यर्थ हो जाएगा। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 127 के अनुसार प्रत्याभू अथवा प्रमुख ऋणी के लिए किया गया कोई भी कार्य प्रतिफल कहलाता है।

गारण्टी की राशि :—प्रमुख ऋणी द्वारा भुगतान न करने पर प्रत्याभू उसके ऋणों के शोधन के लिए उत्तरदायी होता है। अतएव अनुबन्ध में गारण्टी की राशि का स्पष्ट शब्दों मे उल्लेख करना चाहिए। अनुबन्ध करते समय प्रत्याभू से यह भी स्पष्ट करवा लेना चाहिए कि वह ग्राहक के सम्पूर्ण ऋण की गारण्टी ले रहा है अथवा उसके किसी एक अंश की गारण्टी ले रहा है। राशि के साथ अवधि का भी स्पष्टतः उल्लेख किया जाना चाहिए।

प्रत्याभू के हस्ताक्षर :—ऋणदाता अधिकोष को अपनी उपस्थिति में गारण्टी पत्र पर प्रत्याभू/प्रत्याभुओं से हस्ताक्षर करवाने चाहिए व उनको प्रमाणित भी करना चाहिए ताकि भविष्य में जाली हस्ताक्षरों के तर्क पर प्रत्याभू अपने दायित्वों से बचने का प्रयास न कर सके।

गारण्टी अनुबन्ध के पश्चात् की सावधानियाँ :—ऋणदाता अधिकोष से अपने हितों की रक्षार्थ गारण्टी-अनुबन्ध के पश्चात् निम्नांकित सावधानियाँ अपेक्षित हैं :—

(1) अवधि समाप्ति पर ऋणों पर अंकुश :—यदि गारण्टी एक निश्चित अवधि के लिए दी गई हो तो ऋणदाता अधिकोष को उस अवधि के पश्चात् प्रमुख ऋणी को उस खाते में और ऋण स्वीकृत नहीं करने चाहिए क्योंकि प्रत्याभू अवधि पार स्वीकृत ऋणों के भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होता है।

(2) प्रत्याभू का निधन :—यदि गारण्टी अवधि में प्रत्याभू का निधन हो जाए तो ऋणदाता अधिकोष को इस आशय की सूचना मिलते ही मूल ऋणी का खाता बन्द कर देना चाहिए किन्तु यदि अनुबन्ध से प्रत्याभू के निधन के पश्चात् भी खाते को चालू रखने की व्यवस्था की गई हो तो ऋणदाता अधिकोष को ऐसे खाते को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। यदि अधिकोष प्रत्याभू के निधन की सूचना मिलने के पश्चात् भी ऋणी का खाता चालू रखता है और उसमें अतिरिक्त ऋण स्वीकृत करता है तो इन अतिरिक्त ऋणों का शोधन के प्रत्याभू के उत्तराधिकारी अथवा उसकी सम्पत्ति से नहीं किया जा सकता।

कभी-कभी गारण्टी अनुबन्ध में यह प्रावधान कर दिया जाता है कि प्रत्याभू के निधन की अवस्था में उसके उत्तराधिकारियों के लिए बैंक को इस तथ्य से अवगत करना आवश्यक नहीं होगा। यह प्रावधान बैंक की दृष्टि से अत्यन्त खतरनाक होता है। अतएव, उसे इस अनुच्छेद को गारण्टी अनुबन्ध में शामिल नहीं रखना चाहिए। इस प्रावधान के शामिल करने पर ऋणदाता अधिकोष को स्वयं प्रत्याभू के जीवन पर निगाह रखनी पड़ती है और उसकी जीवनलीला के समाप्त होने पर उसका खाता बन्द करना पड़ता है।

(3) प्रत्याभू का पागलपन :—यदि गारण्टी अवधि में प्रत्याभू पागल हो जाय तो उसके पागलपन की सूचना मिलते ही ऋणदाता अधिकोष को ऋण खाता बन्द कर देना चाहिए। यदि अनुबन्ध में इस सम्बन्ध में सूचना न देने की व्यवस्था हो तो भी उसे इसकी प्रामाणिक जानकारी मिलते ही खाता बन्द कर देना चाहिए। प्रत्याभू के पागल हो जाने की अवस्था में उसकी सम्पत्ति से केवल उतनी राशि वसूल की जा सकती है जो सूचना प्राप्ति के समय ऋणी के नाम थी।

(4) प्रत्याभू का दिवालिया होना :—प्रत्याभू के दिवालियापन की सूचना मिलते ही ऋणदाता अधिकोष को अपनी ऋणी का खाता बन्द कर देना चाहिए व उससे भुगतान की माँग करनी चाहिए। प्रमुख ऋणी के मना करने पर उसे प्रत्याभू की सम्पत्ति से ऋणों की वसूली के लिए कार्यवाही करनी चाहिए। दावा प्रस्तुत करते समय उसे प्रमुख ऋणी से प्राप्त उन प्रतिभूतियों पर विचार नहीं करना चाहिए जिनकी राशि उसे अभी प्राप्त नहीं हुई है। यदि दावा प्रस्तुत करने के पश्चात् उसे ऐसी प्रतिभूतियों से कोई राशि प्राप्त हो तो उसे न्यायालय को इस तथ्य से अविलम्ब अवगत करना चाहिए। जब न्यायालय किसी दिवालिए प्रत्याभू को मुक्त कर देता है तो वह अपने समस्त उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता है।

जब संयुक्त प्रत्याभुओं में से कोई प्रत्याभू दिवालिया हो जाता है तो शेष प्रत्याभुओं को सम्पूर्ण दायित्वों का भुगतान करना पड़ता है, किन्तु दिवालिए प्रत्याभू के पृथक् अथवा पृथक् व संयुक्त रूप से दायी होने पर उसकी सम्पत्ति को ऋण-शोधन के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(5) प्रत्याभू का समामेलन :—एक संस्थागत प्रत्याभू का किसी अन्य संस्था या प्रमण्डल में समामेलन होने वाला हो तो ऋणदाता अधिकोष को उसके द्वारा प्रदत्त गारण्टी को समाप्त मान लेना चाहिए व अपने ऋण के शोधन की कार्यवाही प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

(6) कपटपूर्ण प्राथमिकता :—जब एक ऋणी कपटपूर्ण प्राथमिकता द्वारा अपनी सम्पत्ति व वस्तुओं का किसी अन्य व्यक्ति या संस्था को विक्रय/हस्तांतरण कर देता है तो हस्तांतरी को उन सम्पत्तियों पर वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है। ऋणी के समापन या दिवालियापन की अवस्था में हस्तांतरी को प्राप्त सम्पत्ति व वस्तुओं को अधिकृत प्रापक या अवसायक को सौंपना पड़ता है। यह व्यवस्था ऋणदाता अधिकोष पर भी लागू नहीं होती है। अधिकोष को ऋणी के इस कदाचार से बचने के लिए व अपने हितों की रक्षार्थ ऋणी के प्रत्याभू को भुगतान प्राप्ति-तिथि से 6 माह तक अपने दायित्व से मुक्त नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ 'अ' एक अधिकोष का ऋणी है और 'ब' उसका प्रत्याभू है। वह अपने प्रत्याभू को दायित्व मुक्त करने के लिए 1.8.81 को अपने ऋणों का (सक्षम न होने पर भी) शोधन कर देता है और 15.8.81 को न्यायालय में दिवालिया घोषित किये जाने के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर देता है। अ का यह कार्य कपटपूर्ण प्राथमिकता कहलाएगा और ऋणदाता अधिकोष को अ से प्राप्त राशि को उसके अवसायक को लौटानी होगी।

भारतीय प्रसंविदा अधिनियम की धारा 54 के अनुसार जब एक ऋणी निम्नांकित स्थितियों में अपनी सम्पत्ति का हस्तांतरण करता है, भुगतान करता है, अपने ऊपर कोई दायित्व लेता है अथवा लेनदार की ओर से या उस पर कोई न्याय-सम्बन्धी करता है तो उसका यह कार्य प्रापक के विरुद्ध सकपट प्राथमिकता माना जाता है :—

(i) यदि ऋणी सम्पत्ति के हस्तांतरण अथवा भुगतान के समय अपने ऋणों को अपने साधनों से देय तिथि पर चुकाने में असमर्थ हो,

(ii) हस्तांतरण अथवा भुगतान ऋणदाता के पक्ष में किया गया हो,

(iii) हस्तांतरण अथवा भुगतान उस ऋणदाता को अन्य ऋणदाता या ऋणदाताओं की तुलना में प्राथमिकता देने की इच्छा से किया गया हो तथा

(iv) हस्तांतरण या भुगतान-तिथि के पश्चात् ऋणी व्यक्ति/प्रमण्डल ने 3 माह के भीतर दिवालिया घोषित किये जाने या 6 माह के भीतर समापन के लिए आवेदन किया हो।

गारण्टी की समाप्ति

गारण्टी को निम्नांकित अवस्थाओं में समाप्त माना जाता है :—

(1) शर्तें पूरी होने पर :—यदि गारण्टी अनुबन्ध में अनुबन्ध समाप्ति की शर्तों का उल्लेख किया गया हो तो इन शर्तों की पूर्ति पर अनुबन्ध स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

(2) देय राशि के भुगतान पर :—जब प्रत्याभू मूल ऋणी द्वारा देय राशि का भुगतान कर देता है तो गारण्टी समाप्त समझी जाती है।

(3) गारण्टी की वापसी पर :—प्रत्याभू अपनी विशिष्ट अथवा चालू गारण्टी को वापस भी ले सकता है। विशिष्ट गारण्टी ऋण-राशि के भुगतान से पूर्व वापस ली जा सकती है। जब अधिकोष गारण्टी राशि का मूल ऋणी को भुगतान कर देता है तो प्रत्याभू

अपने वापसी के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता। चालू गारण्टी की अवस्था में प्रत्याभू अपनी गारण्टी को ऋणी के खाते में गारण्टी-राशि के जमा होने से पूर्व ले सकता है। जब इस राशि को ऋणी के खाते में प्रविष्टि कर दी जाती है तो न प्रत्याभू अपनी गारण्टी को वापस ले सकता है, न अधिकोष उसके खाते में जमा राशि को कम कर सकता है और न उसके खाते पर लिखे गए धनादेशों का अनादरण कर सकता है।

जब ऋणदाता अधिकोष को गारण्टी की वापसी की सूचना मिलती है तो वह पंजीकृत पत्र द्वारा अपने ग्राहक को इस तथ्य से सूचित करता है। स्थानीय ग्राहक होने पर इसकी सूचना पीओन पुस्तिका द्वारा भी दी जा सकती है। ग्राहक चाहे तो अपने पुराने खाते के स्थान पर नया खाता खोल सकता है।

(4) *अवधि समाप्ति पर :—*जब गारण्टी एक निश्चित अवधि के लिए दी जाती है तो उस अवधि की समाप्ति के साथ ही गारण्टी का अनुबन्ध भी समाप्त हो जाता है। इस गारण्टी को नवीनीकरण द्वारा अथवा नूतन अनुबन्ध द्वारा पुनः चालू किया जा सकता है।

(5) *प्रत्याभू की असमर्थता :—*यदि प्रत्याभू गारण्टी अवधि में पागल हो जाता है, दिवालिया घोषित कर दिया जाता है अथवा मर जाता है तो इन घटनाओं की तिथियों में गारण्टी निरस्त समझी जाती है।

प्रत्याभू के अधिकार

एक प्रत्याभू को गारण्टी अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष, प्रमुख ऋणी व सह-प्रत्याभू विरुद्ध निम्नांकित अधिकार प्राप्त होते हैं।

(1) *ऋणदाता अधिकोष :—*एक प्रत्याभू ऋणदाता अधिकोष से किसी भी समय अपने दायित्व के बारे में सूचना माँग सकता है व ऋणदाता अधिकोष को उसे यह सूचना अनिवार्यतः देनी पड़ती है। किन्तु इस अधिकार के अन्तर्गत वह अधिकोष को प्रमुख ऋणी के सम्पूर्ण सौदों के प्रकटीकरण के लिए बाध्य नहीं कर सकता और न वह स्वयं ग्राहक के खातों को देखने का अधिकारी होता है।

(2) *प्रमुख ऋणी :—*प्रत्याभू ऋणदाता अधिकोष से प्रमुख ऋणी द्वारा देय राशि के शोधन के लिए निवेदन कर सकता है। इस निवेदन के प्रत्युत्तर में जब प्रमुख ऋणी देय राशि का भुगतान नहीं करता है तो वह अपनी ओर से देय-राशि का भुगतान कर देता है और प्रमुख ऋणी के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है। वह वैधानिक कार्यों के लिए ऋणदाता अधिकोष का नाम भी सम्बद्ध कर सकता है। ग्राहक के दिवालिया हो जाने पर वह अपने भुगतान की राशि उसकी सम्पत्ति से वसूल कर सकता है। जब प्रत्याभू देय राशि के भुगतान की स्वीकृति मात्र देता है तब भी उसे ऋणी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त होता है। जब ऋणदाता अधिकोष और प्रत्याभू दोनों देय राशि के लिए दावा प्रस्तुत करते हैं तो भुगतान में अधिकोष को प्राथमिकता प्राप्त होती है।

ऋण-शोधन के पश्चात् प्रमुख ऋणी द्वारा बैंक के पास जमा करवाई गई सम्पत्तियों। प्रतिभूतियों पर प्रत्याभू का अधिकार हो जाता है चाहे इन प्रतिभूतियों को अनुबन्ध के पूर्व, अनुबन्ध के समय अथवा अनुबन्ध के पश्चात् ही जमा करवाया गया हो, किन्तु ऋणी की आंशिक गारण्टी की अवस्था में उसका इन प्रतिभूतियों पर केवल आनुपातिक अधिकार हो पाता है।

विशिष्ट गारण्टी की अवस्था में प्रत्याभू गारण्टी-राशि के भुगतान के पूर्व कभी भी अपनी गारण्टी को वापस ले सकता है। इसी प्रकार चालू गारण्टी के अन्तर्गत दी गई गारण्टी को वह गारण्टी राशि के खाते मे जमा करने से पूर्व वापस ले सकता है। सामान्यतया गारण्टी वापस लेने से पूर्व प्रत्याभू को एक माह का नोटिस देना पड़ता है ताकि ऋणदाता अधिकोष अपने ऋणी ग्राहक के विरुद्ध समुचित कार्यवाही कर सके व ऋणी भी अन्य गारण्टी का प्रबन्ध कर सके।

(3) सह-प्रत्याभू :—संयुक्त गारण्टी की अवस्था में जब एक प्रत्याभू अपने हिस्से से अधिक राशि का भुगतान कर देता है तो वह आधिक्य की सह-प्रत्याभुओं से अनुपाततः वसूली कर सकता है। यदि प्रमुख ऋणी ने किसी प्रत्याभू/प्रत्याभुओं के पास प्रतिभूतियाँ जमा करवाई हों तो उन सबको एक स्थान पर एकत्र कर लिया जाता है और उनके विक्रय से प्राप्त राशि को अनुबन्ध की शर्तानुसार समस्त प्रत्याभुओं में बाँट दिया जाता है। एक सह-प्रत्याभू के दिवालिया हो जाने पर उससे देय राशि की माँग नहीं की जाती है।

प्रत्याभू का दायित्व:—गारण्टी अनुबन्ध के अन्तर्गत प्रत्याभू का द्वितीयक दायित्व होता है। अतएव मूल ऋणी द्वारा ऋण का भुगतान न करने पर ही प्रत्याभू के ऊपर भुगतान का दायित्व आता है। इस दायित्व के अन्तर्गत उसे मूल व ब्याज का भुगतान करना पड़ता है। आंशिक गारण्टी की अवस्था में उसका यह दायित्व भी आंशिक होता है। संयुक्त गारण्टी की अवस्था में दायित्व का निर्धारण अनुबन्ध की प्रकृति के आधार पर पृथक्, संयुक्त अथवा पृथक् व सयुक्त हो सकता है।

ऋणदाता अधिकोष के अधिकार

गारण्टी अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष को निम्नांकित अधिकार प्राप्त हैं :

(1) दावा करने का अधिकार :—ग्राहक द्वारा देय-राशि का भुगतान करने पर उसे प्रत्याभू से देय-राशि प्राप्त करने का अधिकार होता है। जब प्रत्याभू देय-राशि के भुगतान में असमर्थ रहता तो उसे प्रत्याभू के विरुद्ध न्यायालय मे दावा प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। यह दावा मूल धन व ब्याज के लिए किया जाता है।

(2) प्रत्याभू की सम्पत्ति या उत्तराधिकारी से वसूली का अधिकार :—प्रत्याभू के निधन अथवा दिवालिएपन की स्थिति मे बैंक को गारण्टी खाते को तत्काल बन्द करने व ऋणी से देय राशि की माँग करने का अधिकार होता है। जब ग्राहक भुगतान करने से मना कर देता है तो बैंक को मृत अथवा दिवालिए प्रत्याभू की सम्पत्ति अथवा उसके उत्तराधिकारी से देय-राशि को वसूल करने का अधिकार होता है।

(3) प्रतिभूतियों पर ग्रहणाधिकार :—यदि ऋणी ने अधिकोष के पास प्रतिभूतियाँ जमा करवा रखी हों तो ऋणों के अशोध्य रह जाने पर अधिकोष को उन पर ग्रहणाधिकार प्राप्त हो जाता है।

प्रत्याभू के दायित्व की समाप्ति

एक प्रत्याभू निम्नांकित अवस्थाओं में अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है :—

(i) जब ऋणी देय-राशि का भुगतान कर देता है।

(ii) जब अधिकोष किसी कारणवश ऋणी को अपने दायित्व से मुक्त कर देता है।

(iii) जब प्रत्याभू की सहमति के बिना अनुबन्ध में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए जाते हैं और प्रत्याभू उन पर अपनी सहमति नहीं देता है।

(iv) जब अधिकोष मिथ्यावचन, मौन, कपट अथवा अन्य इसी प्रकार के कृत्यों द्वारा प्रत्याभू को गारण्टी देने के लिए प्रेरित करता है।

(v) जब बैंक की असावधानी से प्रत्याभू को हानि होती है तो प्रत्याभू असावधानी-जनित हानि तक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(vi) जब ऋणदाता अधिकोष ऋणी द्वारा जमा करवाई प्रतिभूतियों को उसे लौटा देता है तो प्रत्याभू लौटाई गई प्रतिभूतियों के मूल्य के बराबर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(vii) जब संयुक्त प्रत्याभुओं में से किसी एक प्रत्याभू को मुक्त कर दिया जाता है शेष प्रत्याभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु जब अधिकोष अपने इस अधिकार को काम में लेते समय शेष प्रत्याभुओं के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने के अपने अधिकार को सुरक्षित रखता है तो शेष प्रत्याभुओं का दायित्व यथावत् बना रहता है। इस प्रकार जब प्रत्याभू पृथक्-पृथक् रूप से दायी होते हैं तो किसी एक प्रत्याभू को मुक्ति मिलने पर भी शेष प्रत्याभू अपने दायित्वों के प्रति यथावत् उत्तरदायी बने रहते हैं।

अवयस्क के लिए गारण्टी

एक अवयस्क व्यक्ति में अनुबन्ध क्षमता का अभाव होता है। अतः उसे न प्रमुख ऋणी बनाया जा सकता है और उसके लिए वैध गारण्टी दी जा सकती है। उसके लिए दी गई गारण्टी व्यर्थ होती है। चूँकि ऋण शोधन के लिए अवयस्क के विरुद्ध कोई वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकती। अतएव उसके प्रत्याभू के विरुद्ध भी कोई कार्यवाही की जा सकती क्योंकि उसका दायित्व तो द्वितीयक होता है। यदि प्रत्याभू गारण्टी के समय अवयस्क को स्वीकृत ऋण की सुरक्षार्थ कुछ प्रतिभूतियाँ जमा करवाता है तो ऋणदाता अधिकोष को उन प्रतिभूतियों पर भी कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है; उसे उन प्रतिभूतियों को उनके स्वामियों को लौटाना पड़ता है। इन वैधानिक कठिनाइयों के कारण जब एक अधिकोष किसी अवयस्क को गारण्टी पर ऋण देता है तो वह प्रत्याभू से यह लिखित वचन ले लेता है कि यदि प्रमुख ऋणी से वैधानिक परिसीमन, अयोग्यता या असमर्थता के कारण ऋण-राशि का शोधन न हो सका तो अशोध्य ऋणों के लिए मैं व्यक्तिशः उत्तरदायी होऊँगा। इस प्रतिज्ञा से प्रत्याभू वस्तुतः क्षतिपूरक या प्रमुख ऋणी बन जाता है और इसलिए अशोध्य ऋणों के लिए उसके विरुद्ध कार्यवाही भी की जा सकती है।

प्रतिज्ञापत्रों व बिलों द्वारा गारण्टी :—कभी-कभी प्रत्याभू गारण्टी प्रपत्र की पूर्ति करने की अपेक्षा प्रतिज्ञापत्रों व बिलों के माध्यम से गारण्टी देना पसन्द करते हैं। जब प्रतिज्ञापत्र द्वारा गारण्टी दी जाती है तो उसे संयुक्त व पृथक् दायित्व वाले प्रतिज्ञापत्र के रूप में लिखा जाता है और इस पर ऋणी और प्रत्याभू को हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। प्रत्याभू अपने हस्ताक्षरों के आगे प्रत्याभू शब्द भी लिखता है। ये प्रतिज्ञापत्र सदैव मांग पर देय लिखे जाते हैं और ऋण स्वीकृति से पूर्व ऋणदाता अधिकोष इनका अपने पक्ष में पृष्ठांकन करवा लेता है।

प्रतिज्ञापत्र केवल विशिष्ट गारण्टी के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। जब चालू गारण्टी के लिए प्रतिज्ञापत्र का प्रस्ताव किया जाता है तो ऋणदाता अधिकोष प्रतिज्ञापत्र के साथ एक मेमोरेण्डम और लेता है। इस मेमोरेण्डम में प्रतिज्ञापत्र के उद्देश्य, गारण्टी के प्रकार व सामान्य गारण्टी प्रपत्र की शर्तों का उल्लेख किया जाता है।

दीर्घकालीन ऋणों की अवस्था में प्राप्त प्रतिज्ञापत्रों का 3 वर्ष के पश्चात् नवीनीकरण करवा लिया जाता है। किन्तु नवीनीकरण के पूर्व पुराने प्रतिज्ञापत्र को नष्ट नहीं किया जाता है क्योंकि हो सकता है कि समस्त प्रत्याभू नवीन प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर न करें।

जब विपत्रों द्वारा गारण्टी दी जाती है तो प्रत्याभू ऋणी द्वारा आलेखित विपत्र को स्वीकार कर लेता है।

प्रतिज्ञापत्र अथवा विपत्र द्वारा गारण्टी देने पर समस्त पक्षों को वे ही अधिकार व कर्त्तव्य प्राप्त होते हैं जो औपचारिक गारण्टी देने पर प्राप्त होते हैं। अतएव ऋणदाता अधिकोष को अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। अधिकोष इन प्रलेखों का यथाविधि धारक होता है। अतएव उसे भुगतान तिथि पर इन विलेखों को लेखक/स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।।

कमजोर वर्गों के लिए संस्थागत गारण्टी :—

अब व्यापारिक अधिकोष समाज के कमजोर वर्गों को भी स्वच्छ ऋण स्वीकृत करते हैं। इन ऋणों की 'निक्षेप बीमा व गारण्टी निगम' (Deposit Insurance and Guarantee Corporation) द्वारा की जाती है। निगम ने इस हेतु 3 गारण्टी-लघु-ऋण गारण्टी योजना, वित्तीय निगम गारण्टी योजना व सेवा सहकारी समिति योजना-योजनाएं बनाई हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत वह क्रमशः व्यापारिक व क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों, राज्य वित्त-निगमों व सहकारी संस्थाओं द्वारा स्वीकृत ऋणों की गारण्टी देता है।

रिज़र्व बैंक और गारण्टी :—

रिजर्व बैंक समय-समय पर देश में कार्यरत व्यापारिक अधिकोषों को गारण्टी के सम्बन्ध में निर्देश देता रहता है और अधिकोषों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उन निर्देशों का अक्षरशः पालन करेंगे। उदाहरणार्थ रिजर्व बैंक ने अपनी साख-नीति के अन्तर्गत व्यापारिक अधिकोषों को यह निर्देश दे रखा है। कि वे लघु ऋणियों (small borrowers) से 5,000 रुपये तक के उत्पादक ऋणों के लिए कोई गारण्टी नहीं लेंगे और यह राशि उन्हें परियोजना की जीवन-क्षमता (Viability) के आधार पर दे दी जाये। दुर्भाग्यवश इस निर्देश का अभी तक पालन नहीं किया जा सका है और लगभग सभी ऋणों के लिए गारण्टी/प्रतिभूतियों की मांग की जाती है।

: प्रश्न :

1. मार्जिन राशि, नकद साख, अधिविकर्ष और अवर्ती साख पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
2. ऋण स्वीकृत के समय ऋणदाता अधिकोष से किन सावधानियों की अपेक्षा की जाती है? संक्षेप में समझाइए।
3. एक अच्छी ऋण-नीति के आधारभूत तत्वों को समझाइए।
4. गारण्टी की परिभाषा दीजिए और उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

5. गारण्टी अनुबन्ध के समय व अनुबन्ध के पश्चात् काम में ली जाने वाली सावधानियों का वर्णन कीजिए।
6. सकपट प्राथमिकता, प्रत्याभू के दायित्व की समाप्ति, प्रत्याभू के अधिकार, प्रतिज्ञापत्र द्वारा गारण्टी व रिजर्व बैंक और व्यक्तिगत गारण्टी पर टिप्पणियाँ लिखिए।

7

बैंक ऋण एवं सहायक प्रतिभूतियाँ

(Bank Loans & Collateral Securities)

सामान्यतः अधिकोष अपने ग्राहकों को सुरक्षित ऋण स्वीकार करते हैं। इन ऋणों के लिए प्रदत्त प्रतिभूतियों को सहायक प्रतिभूति (collateral security) कहा जाता है। मूलतः एक ऋणी अपने ऋणों के शोधन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। अतएव इन प्रतिभूतियों का उपयोग केवल उसके असामर्थ्य की अवस्था में किया जाता है। इसीलिए इन्हें सहायक प्रतिभूतियाँ कहा जाता है। इन प्रतिभूतियों को मोटे रूप से (i) स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों (ii) माल के अधिकार पत्रों व (iii) अन्य प्रतिभूतियों में विभक्त किया जाता है। प्रथम वर्ग में परम प्रतिभूतियों, प्रमण्डलों के अंशपत्रों व ऋणपत्रों को शामिल किया जाता है। माल के अधिकार-पत्रों में रेल्वे रसीद, जहाजी बिल्टी, डॉक वारण्ट, प्रन्यास रसीद आदि की गणना की जाती है और तृतीय वर्ग में बीमा-पत्र मूल्य धातुओं, माल, चल-अचल सम्पत्ति, आभूषण आदि को शामिल किया जाता है। ऋणदाता अधिकोष इन प्रतिभूतियों पर ग्रहणाधिकार (Lien), गिरवी (Pledge), उप आधीयन (Hypothecation) व बन्धक (Mortgage) के रूप में अपना अधिकार करता है।

ग्रहणाधिकार (Lien)

परिभाषा :—ग्रहणाधिकार एक अधिकार है जिसके अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष अपने ऋणों के अशोधित रह जाने पर ग्राहक द्वारा जमा करवाई गई प्रतिभूतियों को ऋणों के पूर्ण शोधन तक रोकने का अधिकारी होता है। यह अधिकार उन सम्पत्तियों पर लागू होता है जो उसे बैंकर के रूप में सामान्य व्यावसायिक क्रम में वैधानिक रूप से प्राप्त होती हैं व जो किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट नहीं होती हैं। यह बैंक का एक गर्भित अधिकार है। अतएव इस अधिकार के क्रियान्वयन के लिए विशेष अनुबन्ध की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

प्रकार :—ग्रहणाधिकार सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है। सामान्य ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत अधिकोष अपने किसी भी अशोधित ऋण के लिए व्यावसायिक क्रम में प्राप्त सम्पत्ति को रोक सकता है किन्तु विशेष ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत वह केवल अशोधित ऋण की जमानत स्वरूप प्राप्त सम्पत्ति को ही रोक सकता है।

अधिकार :—ग्रहणाधिकार गर्भित गिरवी माना जाता है। अतएव बैंक अपने दोषी ग्राहक को समुचित व न्यायोचित सूचना देकर अपने ऋणों के शोधनार्थ को की गई चल सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है किन्तु इस अधिकार के अन्तर्गत वह न तो अचल सम्पत्ति

का विक्रय कर सकता है और न विशेष प्रयोजनार्थ जमा करवाई गई सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है।

गिरवी (Pledge)

परिभाषा : किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन की जमानत के रूप में रखी गई चल सम्पत्तियों को गिरवी कहा जाता है। सम्पत्तियों के वास्तविक स्वामी, उनके अभिकर्ता, सह-स्वामी, वैध अधिकारी व हितग्राही इन सम्पत्तियों को गिरवी रख सकते हैं किन्तु गिरवी रखते समय इन सम्पत्तियों पर उनका वास्तविक या वैधानिक अधिकार होना चाहिए। गिरवी के अन्तर्गत सम्पत्ति की वास्तविक अथवा सांकेतिक सुपुर्दगी आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ जब ऋणी अपने माल-गोदाम की चाबी बैंक को सौंप देता है तो उसकी इस क्रिया को सांकेतिक सुपुर्दगी कहा जाता है। जब एक अधिकोष निर्दोष भाव से अन्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को गिरवी रखकर ऋण दे देता है तो ऐसी गिरवी (pledge) भी वैध मानी जाती है।

ऋणदाता के कर्त्तव्य :—गिरवी के अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह (i) गिरवी रखी गई सम्पत्ति को अन्य सम्पत्तियों के साथ नहीं मिलाएगा (ii) अनुबन्ध की शर्तों का अक्षरशः पालन करेगा (iii) गिरवी रखी गई सम्पत्तियों का असंगत (Inconsistent) उपयोग नहीं करेगा (iv) सम्पत्ति की पूरी देख-भाल करेगा और (v) विक्रय से प्राप्त अतिरिक्त राशि को सम्पत्ति के स्वामी को लौटा देगा। जब एक अधिकोष गिरवी रखी गयी सम्पत्ति की पूरी तरह से देख-भाल नहीं करता है तो उसे हानि की अवस्था में क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है।

ऋणदाता के अधिकार :—ऋणदाता अधिकोष को इस अनुबन्ध के अन्तर्गत अनेक अधिकार प्राप्त हैं यथा (i) वह न्यायोचित व समुचित सूचना के पश्चात् अपने ऋणों के शोधनार्थ गिरवी रखी गई सम्पत्तियों को बेच सकता है (ii) सम्पूर्ण ऋण राशि के प्राप्त न होने पर शेष राशि के लिए दावा कर सकता है (iii) सम्पत्ति को बेचे बिना भी अपनी राशि के लिए न्यायालय में दावा प्रस्तुत कर सकता है और सम्पत्ति को न्यायालय के निर्देशानुसार बेच सकता है (iv) अनुबन्ध में मिथ्यावर्णन करने पर अनुबन्ध को किसी भी समय खण्डित कर सकता है (v) ऋण-शोधन हेतु किये गये समस्त अतिरिक्त खर्चों को ग्राहक से वसूल कर सकता है व (vi) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने पर उससे हानि-पूर्ति की मांग कर सकता है व वास्तविक राशि वसूल कर सकता है।

सम्पत्ति के ग्रहण-सम्बन्धी अधिकार को काम में लेने के लिए अधिकोष को विशेष अनुबन्ध करना पड़ता है और इस अधिकार को केवल ऋणी की सम्पत्ति पर ही प्रयुक्त कर सकता है। जब उसे जमानत के लिए अन्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति प्राप्त होती है तो वह उस सम्पत्ति पर अपने इस अधिकार को काम में नहीं ला सकता।

आधीयन (Hypothecation)

परिभाषा :—चल सम्पत्ति के बन्धक को आधीयन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत ऋणी अपनी सम्पत्ति के अधिकार-पत्रों को ऋणदाता को सौंप देता है किन्तु सम्पत्ति उसके पास यथावत् बनी रहती है। अधिकार-पत्रों के हस्तान्तरण के समय ऋणी से एक पत्र लिखवाया जाता है जिसे आधीयन-पत्र (Letter of hypothecation) कहा जाता है। इस पत्र द्वारा वह ऋणदाता अधिकोष को यह वचन देता है कि मांगने पर वह जमानत वाली

सम्पत्ति को बैंक को सौंप देगा। प्राधीयन के अन्तर्गत सामान्यतः कच्चे, अर्द्ध-निर्मित व निर्मित माल आदि को प्रतिभूति स्वरूप रखा जाता है अथवा ऐसी चल-सम्पत्ति की जमानत दी जाती है जिसका भौतिक हस्तांतरण असुविधाजनक होता है।

ऋणदाता के अधिकार :—प्राधीयन के अन्तर्गत स्वीकृत ऋण जब अशोधित रह जाते हैं तो ऋणदाता अधिकोष को ऋणी के विरुद्ध न्यायालय मे दावा प्रस्तुत करना पड़ता है और वह न्यायालय पूर्वादेश पर ही जमानती सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है। जब सम्पत्ति के विक्रय से पूर्ण राशि का शोधन नही हो पाता है तो न्यायालय उसे ऋणी से शेष राशि भी दिलवाता है।

गिरवी व प्राधीयन :—गिरवी और प्राधीयन चल-सम्पत्ति की जमानत पर स्वीकार किये जाते हैं किन्तु फिर भी दोनों मे दो महत्वपूर्ण अन्तर पाये जाते हैं। गिरवी के अन्तर्गत माल के अधिकार-पत्र व माल को ऋणदाता को सौंपना पड़ता है किन्तु प्राधीयन के अन्तर्गत उसे केवल अधिकार-पत्रों को सौंपा जाता है और गिरवी के अन्तर्गत ऋणदाता अपने ऋणों के शोधन हेतु गिरवी रखे गए माल को न्यायालय की पूर्वाज्ञा बिना बेच सकता है किन्तु प्राधीयन के अन्तर्गत उसे न्यायालय की पूर्वाज्ञा लेनी पड़ती है अर्थात् ऋणी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करना पड़ता है।

प्रभार (Charge)

प्रभार एक अधिकार है जो ऋणदाता को ऋणी की अचल सम्पत्ति पर प्राप्त होता है सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के अनुसार अचल सम्पत्ति किसी वैधानिक अथवा व्यक्तिगत कारण से किसी ऋण की जमानत के रूप में ऋणदाता को हस्तांतरित कर दी जाती है तो हस्तांतरित सम्पत्ति पर हस्तांतरी को जो अधिकार प्राप्त होता है उसे प्रभार कहा जाता है। (धारा 100) प्रभार के अन्तर्गत सम्पत्ति मे निहित हितो का हस्तांतरण नहीं होता है व प्रभार और बन्धक एक साथ उत्पन्न नही होते हैं।

विशेषताएं—प्रभार की कुछ मूलभूत विशेषताएं हैं यथा (i) प्रभार अचल सम्पत्ति पर उत्पन्न होता है (ii) प्रभार पक्षकारों के आचरण अथवा वैधानिक व्यवस्थाओं के कारण उत्पन्न होता है (iii) प्रभार किसी दायित्व के कारण उत्पन्न होता है और (iv) प्रभार-युक्त सम्पत्ति उस दायित्व की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होती है।

प्रकार :—प्रभार चल अथवा अचल हो सकता है। जब प्रभार समस्त वर्तमान एवं भावी सम्पत्तियो पर उत्पन्न किया जाता है, व्यवसायिक क्रम मे इन सम्पत्तियो का बराबर रूप बदलता रहता है और ऋणी को प्रभारित सम्पत्ति को प्रभार-पत्र में निर्दिष्ट घटना के घटित होने तक काम मे लेने का अधिकार होता है तो ऐसे प्रभार को चल प्रभार कहा जाता है। स्थिर प्रभार किसी विशिष्ट व स्थिर सम्पत्ति पर उत्पन्न होता है। चल प्रभार भी किसी घटना विशेष के घटित होने पर स्थिर प्रभार में बदल सकता है।

प्रभार व बन्धक :—प्रभार व बन्धक दोनों ही अचल सम्पत्ति पर उत्पन्न होते हैं किन्तु इन दोनो मे निम्नांकित अन्तर पाए जाते हैं :—

(i) प्रभार के अन्तर्गत सम्पत्ति में निहित हित पर उसके स्वामी का यथावत अधिकार बना रहता है जबकि बन्धक के अन्तर्गत सम्पत्ति में निहित हित का हस्तांतरण हो जाता है (ii) प्रभार सम्बन्धित पक्षकारों के आचरण या राजनियमों के प्रभावी होने पर उत्पन्न होता है जबकि बन्धक केवल पारस्परिक समझौते द्वारा उत्पन्न हो सकता है

का विक्रय कर सकता है और न विशेष प्रयोजनार्थ जमा करवाई गई सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है।

गिरवी (Pledge)

परिभाषा : किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन की जमानत के रूप में रखी गई चल सम्पत्तियों को गिरवी कहा जाता है। सम्पत्तियों के वास्तविक स्वामी, उनके अभिकर्ता, सह-स्वामी, वैध अधिकारी व हितग्राही इ सम्पत्तियों को गिरवी रख सकते हैं किन्तु गिरवी रखते समय इन सम्पत्तियों पर उनका वास्तविक या वैधानिक अधिकार होना चाहिए। गिरवी के अन्तर्गत सम्पत्ति की वास्तविक अथवा सांकेतिक सुपुर्दगी आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ जब ऋणी अपने माल-गोदाम की चाबी बैंक को सौंप देता है तो उसकी इस क्रिया को सांकेतिक सुपुर्दगी कहा जाता है। जब एक अधिकोष निर्दोष भाव से अन्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को गिरवी रखकर ऋण दे देता है तो ऐसी गिरवी (pledge) भी वैध मानी जाती है।

ऋणदाता के कर्त्तव्य :—गिरवी के अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह (i) गिरवी रखी गई सम्पत्ति को अन्य सम्पत्तियों के साथ नहीं मिलाएगा (ii) अनुबन्ध की शर्तों का अक्षरशः पालन करेगा (iii) गिरवी रखी गई सम्पत्तियों का असंगत (Inconsistent) उपयोग नहीं करेगा (iv) सम्पत्ति की पूरी देख-भाल करेगा और (v) विक्रय से प्राप्त अतिरिक्त राशि को सम्पत्ति के स्वामी को लौटा देगा। जब एक अधिकोष गिरवी रखी गयी सम्पत्ति की पूरी तरह से देख-भाल नहीं करता है तो उसे हानि की अवस्था में क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है।

ऋणदाता के अधिकार :—ऋणदाता अधिकोष को इस अनुबन्ध के अन्तर्गत अनेक अधिकार प्राप्त हैं यथा (i) वह न्यायोचित व समुचित सूचना के पश्चात् अपने ऋणों के शोधनार्थ गिरवी रखी गई सम्पत्तियों को बेच सकता है (ii) सम्पूर्ण ऋण राशि के प्राप्त न होने पर शेष राशि के लिए दावा कर सकता है (iii) सम्पत्ति को बेचे बिना भी अपनी राशि के लिए न्यायालय में दावा प्रस्तुत कर सकता है और सम्पत्ति को न्यायालय के निर्देशानुसार बेच सकता है (iv) अनुबन्ध में मिथ्यावर्णन करने पर अनुबन्ध को किसी भी समय खण्डित कर सकता है (v) ऋण-शोधन हेतु किये गये समस्त अतिरिक्त खर्चों को ग्राहक से वसूल कर सकता है व (vi) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने पर उनसे हानि-पूर्ति की माँग कर सकता है व वास्तविक राशि वसूल कर सकता है।

सम्पत्ति के क्रय-सम्बन्धी अधिकार को काम में लेने के लिए अधिकोष को विशेष अनुबन्ध करना पड़ता है और इस अधिकार को केवल ऋणी की सम्पत्ति पर ही प्रयुक्त कर सकता है। जब उसे जमानत के लिए अन्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति प्राप्त होती है तो वह उस सम्पत्ति पर अपने इस अधिकार को काम में नहीं ला सकता।

आधीयन (Hypothecation)

परिभाषा :—चल सम्पत्ति के बन्धक को आधीयन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत ऋणी अपनी सम्पत्ति के अधिकार-पत्रों को ऋणदाता को सौंप देता है किन्तु सम्पत्ति उसके पास यथावत् बनी रहती है। अधिकार-पत्रों के हस्तान्तरण के समय ऋणी से एक पत्र लिखवाया जाता है जिसे आधीयन-पत्र (Letter of hypothecation) कहा जाता है। इस पत्र द्वारा वह ऋणदाता अधिकोष को यह वचन देता है कि माँगने पर वह जमानत वाली

सम्पत्ति को बैंक को सौंप देगा । प्राधीयन के अन्तर्गत सामान्यतः कच्चे, अर्द्ध-निर्मित व निर्मित माल आदि को प्रतिभूति स्वरूप रखा जाता है अथवा ऐसी चल-सम्पत्ति की जमानत दी जाती है जिसका भौतिक हस्तांतरण असुविधाजनक होता है।

ऋणदाता के अधिकार :—प्राधीयन के अन्तर्गत स्वीकृत ऋण जब अशोधित रह जाते हैं तो ऋणदाता अधिकोष को ऋणी के विरुद्ध न्यायालय में दावा प्रस्तुत करना पड़ता है और वह न्यायालय पूर्वादेश पर ही जमानती सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है। जब सम्पत्ति के विक्रय से पूर्ण राशि का शोधन नहीं हो पाता है तो न्यायालय उसे ऋणी से शेष राशि भी दिलवाता है।

गिरवी व प्राधीयन :—गिरवी और प्राधीयन चल-सम्पत्ति की जमानत पर स्वीकार किये जाते हैं किन्तु फिर भी दोनो में दो महत्वपूर्ण अन्तर पाये जाते हैं। गिरवी के अन्तर्गत माल के अधिकार-पत्र व माल को ऋणदाता को सौंपना पड़ता है किन्तु प्राधीयन के अन्तर्गत उसे केवल अधिकार-पत्रों को सौंपा जाता है और गिरवी के अन्तर्गत ऋणदाता अपने ऋणो के शोधन हेतु गिरवी रखे गए माल को न्यायालय की पूर्वाज्ञा बिना बेच सकता है किन्तु प्राधीयन के अन्तर्गत उसे न्यायालय की पूर्वाज्ञा लेनी पड़ती है अर्थात् ऋणी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करना पड़ता है।

प्रभार (Charge)

प्रभार एक अधिकार है जो ऋणदाता को ऋणी की अचल सम्पत्ति पर प्राप्त होता है सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के अनुसार अचल सम्पत्ति किसी वैधानिक अथवा व्यक्तिगत कारण से किसी ऋण की जमानत के रूप में ऋणदाता को हस्तांतरित कर दी जाती है तो हस्तांतरित सम्पत्ति पर हस्तांतरी को जो अधिकार प्राप्त होता है उसे प्रभार कहा जाता है। (धारा 100) प्रभार के अन्तर्गत सम्पत्ति में निहित हितों का हस्तांतरण नहीं होता है व प्रभार और बन्धक एक साथ उत्पन्न नहीं होते हैं।

विशेषताएं—प्रभार की कुछ मूलभूत विशेषताएं हैं यथा (i) प्रभार अचल सम्पत्ति पर उत्पन्न होता है (ii) प्रभार पक्षकारों के आचरण अथवा वैधानिक व्यवस्थाओं के कारण उत्पन्न होता है (iii) प्रभार किसी दायित्व के कारण उत्पन्न होता है और (iv) प्रभार-युक्त सम्पत्ति उस दायित्व की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होती है।

प्रकार :—प्रभार चल अथवा अचल हो सकता है। जब प्रभार समस्त वर्तमान एवं भावी सम्पत्तियों पर उत्पन्न किया जाता है, व्यावसायिक क्रम में इन सम्पत्तियों का बराबर रूप बदलता रहता है और ऋणी को प्रभारित सम्पत्ति को प्रभार-पत्र में निर्दिष्ट घटना के घटित होने तक काम में लेने का अधिकार होता है तो ऐसे प्रभार को चल प्रभार कहा जाता है। स्थिर प्रभार किसी विशिष्ट व स्थिर सम्पत्ति पर उत्पन्न होता है। चल प्रभार भी किसी घटना विशेष के घटित होने पर स्थिर प्रभार में बदल सकता है।

प्रभार व बन्धक :—प्रभार व बन्धक दोनो ही अचल सम्पत्ति पर उत्पन्न होते हैं किन्तु इन दोनो में निम्नांकित अन्तर पाए जाते हैं :—

(i) प्रभार के अन्तर्गत सम्पत्ति में निहित हित पर उसके स्वामी का यथावत अधिकार बना रहता है जबकि बन्धक के अन्तर्गत सम्पत्ति में निहित हित का हस्तांतरण हो जाता है (ii) प्रभार सम्बन्धित पक्षकारों के आचरण या राजनियमों के प्रभावी होने पर उत्पन्न होता है जबकि बन्धक केवल पारस्परिक समझौते द्वारा उत्पन्न हो सकता है

(iii) बन्धक एक निश्चित अवधि के लिए होता है जबकि प्रभार शाश्वत हो सकता है (iv) प्रभार निश्चित या अनिश्चित राशि के लिए हो सकता है जबकि बन्धक सदैव एक निश्चित राशि के लिए होता है और (v) प्रभार अधिक व्यापक होता है क्योंकि प्रत्येक प्रभार में बन्धक अन्तर्निहित होता है जबकि प्रत्येक बन्धक प्रभार नहीं होता है।

प्रभार व ग्रहणाधिकार :—प्रभार व ग्रहणाधिकार में भी कुछ अन्तर पाए जाते हैं यथा (i) प्रभार केवल अचल सम्पत्ति पर उत्पन्न होता है जबकि ग्रहणाधिकार चल सम्पत्ति पर प्राप्त होता है (ii) ग्रहणाधिकार के लिए सम्पत्ति का कब्जे में होना आवश्यक होता है किन्तु प्रभार के लिए ऐसा आवश्यक नहीं है (iii) प्रभार पक्षकारों के पारस्परिक समझौते अथवा राजनियमों के कारण उत्पन्न होता है जबकि ग्रहणाधिकार सदैव राजनियमों के कारण उत्पन्न होता है।

बन्धक (Mortgage)

परिभाषा :—जब एक ऋणी अपने ऋण अथवा वित्तीय दायित्व वाले वचन के निष्पादन की जमानत के रूप में अपनी किसी विशिष्ट अचल सम्पत्ति का अधिकार ऋणदाता को सौंप देता है तो उसकी इस क्रिया को बन्धक कहा जाता है। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम (Transfer of Property Act), 1882 की धारा 58 की व्यवस्थानुसार, "किसी वर्तमान अथवा भावी ऋण के भुगतान को सुरक्षार्थ अथवा किसी वित्तीय दायित्व वाले वचन की रक्षार्थ किसी विशेष अचल सम्पत्ति में निहित हित का हस्तांतरण बन्धक है।"[1] सम्पत्ति के हस्तांतरकर्ता व हस्तांतरी को क्रमशः बन्धककर्ता (Martgagor) व बन्धक-गृहीता (Martgagee) कहा जाता है और अनुबन्ध व देय-राशि को क्रमशः बन्धक विलेख (Mortgage deed) और बन्धक राशि (Mortgage money) कहा जाता है। बन्धक राशि में मूलधन व ब्याज दोनों शामिल होते हैं।

विशेषताएं :—उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर बन्धक निम्नांकित विशेषताएं होती हैं :—

(i) बन्धक किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन-निष्पादन की सुरक्षार्थ किया जाता है (ii) इसके अन्तर्गत किसी अचल सम्पत्ति में निहित हित का हस्तांतरण किया जाता है (iii) हस्तांतरित सम्पत्ति विशिष्ट व निश्चित होती है अर्थात् इसका आसानी से विभेदीकरण किया जा सकता है (iv) बन्धक रखी गई सम्पत्ति का ऋणदाता के पक्ष में हस्तांतरण आवश्यक नहीं है (v) बन्धक-हेतु एक प्रलेख लिखा जाता है जिसे बन्धक-प्रलेख कहा जाता है (vi) बन्धक रखी गई सम्पत्ति को किराए पर दिया जा सकता है व प्राप्त आय से ऋण राशि व देय ब्याज की वसूली भी जा सकती है (vii) मूलधन व ब्याज के भुगतान के पश्चात् सम्पत्ति में निहित हित व बन्धककर्ता को वापस प्राप्त हो जाते हैं (viii) जब एक सम्पत्ति के अनेक स्वामी होते हैं तो सह-स्वामी केवल अपने हित का हस्तांतरण कर सकता है और (ix) चल सम्पत्ति के बन्धक को आधीयन कहा जाता है।

बन्धक के प्रकार :—सामान्यतः बन्धकों को निम्नांकित वर्गों में बांटा जाता है :—

---

1. The transfer of an interest in specific immovable property for the purpose of securing the payment of money or to be advanced by way of loan an existing or future debt, or the performance of engagement which may give rise to a pecuniary liability.

Transfer of Property Act 1882 sec 58.

(i) सरल बन्धक (Simple mortgage) :—इस बन्धक में अथवा बन्धककर्ता अपने अधिकोष को यह वचन देता है कि वह ऋण राशि भुगतान कर देगा और साथ ही ऋणदाता को यह अधिकार देता है कि ऋण का भुगतान न होने पर वह बन्धक रखी गई सम्पत्ति का विक्रय करवा कर अपने ऋण शोधन कर सकेगा। इस बन्धक के अन्तर्गत बन्धक रखी गई सम्पत्ति ऋणी के अधिकार में रहती है। अतएव ऋणदाता को सम्पत्ति का विक्रय न्यायालय की सहायता से करवाना पड़ता है। इस बन्धक की मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं :—

(i) ऋणी ऋण के भुगतान के लिए व्यक्तिशः प्रतिज्ञा करता है (ii) बन्धक रखी गई सम्पत्ति ऋणी के अधिकार में रहती और ऋणदाता को केवल उसमें निहित अधिकारो का अन्तरण किया जाता है (iii) इसके अन्तर्गत ऋणदाता को बन्धक सम्पत्ति से न तो कोई आय होती है और न वह उस सम्पत्ति को जब्त कर सकता है (iv) सम्पत्ति का विक्रय न्यायालय की सहायता से किया जाता है।

(ii) शर्तपूर्ण विक्रय बन्धक (Mortgage by conditional sale)

परिभाषा—इस बन्धक के अन्तर्गत बन्धककर्ता ऋण स्वीकृति के समय अपनी अचल सम्पत्ति को कुछ शर्तों के साथ ऋणदाता को तदर्थ आधार पर बेच देता है। इसीलिए इसे शर्तपूर्ण विक्रय वाला बन्धक कहा जाता है। ऋणी अपनी सम्पत्ति को इस शर्त के साथ बेचता है कि देय तिथि तक ऋणों का शोधन न होने पर सम्पत्ति का विक्रय पूर्ण व अन्तिम मान लिया जाएगा, भुगतान की अवस्था मे विक्रय व्यर्थ माना जाएगा और गिरवी रखी गई सम्पत्ति के वैधानिक अधिकार उसे वापस कर दिए जायेंगें।

विशेषताएं—इस बन्धक में निम्नांकित विशेषताएं पाई जाती हैं :—

(i) इसके अन्तर्गत ऋणी अपनी सम्पत्ति का सशर्त विक्रय करता है। यह विक्रय अस्थाई अथवा तदर्थ प्रकृति का होता है (ii) इस बन्धक-हेतु विक्रयनामा लिखा जाता है जिसे विशिष्ट स्वरूप के कारण बन्धक पत्र मान लिया जाता है (iii) गिरवी रखी गई सम्पत्ति पर ऋणी का यथावत् अधिकार बना रहता है और ऋणदाता को केवल उसका वैधानिक अधिकार दिया जाता है (iv) ऋणी ऋण के भुगतान के लिए व्यक्तिशः दायी नही होना है। अतएव ऋणों के भुगतान के लिए उसके विरुद्ध कोई दावा प्रस्तुत नही किया जा सकता (v) देय-तिथि पर भुगतान कर दिए जाने पर ऋणी का विक्रीत सम्पत्ति पर पुनः अधिकार हो जाता है अन्यथा वह अन्तिम रूप से ऋणदाता के अधिकार में चली जाती है (vi) बन्धक-गृहीता बन्धक अवधि में सम्पत्ति का विक्रय नहीं कर सकता (vii) सौ रुपये से अधिक का बन्धक होने पर ऋणदाता को उसका अपने पक्ष में पंजीकरण करवाना पड़ता है (viii) इसके अन्तर्गत ऋणदाता को सरल व लाभसहित बन्धकों का एक साथ लाभ मिलता है और (ix) ऋणी के अशोधित रह जाने पर ऋणदाता सम्पत्ति को अपने अधिकार में लेता है और ऋणी के पुनर्कब्जे की सम्भावनाओं को समाप्त करने के लिए न्यायालय से विमोचन निषेध (Foreclosure) के आदेश लेता है।

(iii) सलाभ बन्धक (Usutructuarp Mortgage) :—जब ऋणी ऋणों के पूर्ण शोधन तक अपनी सम्पत्ति को वैधानिक व भौतिक रूप से ऋणदाता को सौंप देता है तो उस बन्धक को सलाभ बन्धक कहा जाता है। इस बन्धक के अन्तर्गत ऋणदाता को बन्धक अवधि में गिरवी रखी गई सम्पत्ति से आय प्राप्त करने व उससे देय-राशि के शोधन

बन्धकी और बन्धक गृहीता के अधिकार :—एक बन्धक अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋणी व ऋणदाता को क्रमशः निम्नांकित अधिकार मिलते हैं :

ऋणी के अधिकार :—एक ऋणी (i) ऋण अवधि में गिरवी रखी गई सम्पत्ति व उससे सम्बद्ध प्रलेखों का निरीक्षण और अवलोकन कर सकता है, (ii) ऋणों के सम्पूर्ण शोधन के पश्चात् गिरवी रखी गई सम्पत्ति व उसके प्रलेखों को वापस ले सकता है व सम्पत्ति का अपने नाम में पुनः हस्तांतरण करवा सकता है। ऋणदाता उसके इस अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, (iii) जब गिरवी रखी गई सम्पत्ति ऋणी के अधिकार में रहती है तो वह उससे प्राप्य आय को काम में लेने का अधिकारी होता है। उसे इस आय का ऋणदाता को हिसाब देने की आवश्यकता नहीं होती है और (iv) जब ऋणदाता गिरवी रखी सम्पत्ति में बन्धक अवधि में किसी प्रकार का सुधार कर देता है अथवा वृद्धि कर देता है तो ऋणी को इस नव स्वरूप में अपनी सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है किन्तु उसे इस अधिकार के लिए ऋणदाता के व्यय का पुनर्भरण (Reimbursement) करना पड़ता है।

बन्धक गृहीता के अधिकार :—ऋणदाता को सामान्यतः निम्नांकित अधिकार प्राप्त हैं :

(i) विमोचन-रोध अधिकार :—जब ऋणी देय-तिथि पर अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ रहता है तो ऋणदाता न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है कि उसे गिरवी रखी गई सम्पत्ति पर पूर्ण व अन्तिम रूप से अधिकार दे दिया जाय और ऋणी को उस सम्पत्ति से सर्वथा वंचित कर दिया जाय। ऋणदाता के इस अधिकार को विमोचन-रोध अधिकार (Right of foreclosure) कहा जाता है।

(ii) सम्पत्ति के विक्रय का अधिकार :—जब बन्धकी समय पर ऋण का भुगतान नहीं करता है तो ऋणदाता न्यायालय से गिरवी रखी सम्पत्ति को बेचने का आदेश प्राप्त कर सकता है। उसे यह अधिकार अवर्गीकृत, साधारण व अंग्रेजी बन्धकों में प्राप्त होता है।

(iii) वाद प्रस्तुत करने का अधिकार :—भुगतान में त्रुटि करने पर ऋणदाता निम्नांकित अवस्थाओं में ऋणी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत कर सकता है :—

(i) जब बन्धकी ऋण के भुगतान के लिए व्यक्तिशः उत्तरदायी होता है (ii) जब ऋणदाता को गिरवी रखी गई सम्पति को अपने कब्जे में लेने का अधिकार होता है (iii) जब दैवी प्रकोप आदि से गिरवी रखी गई सम्पत्ति अंशतः या पूर्णतः नष्ट हो गई हो और जब (iv) गिरवी रखी गई सम्पति ऋणी की असावधानी से नष्ट हो जाती है।

(iv) व्यय वसूली का अधिकार :—जब ऋणदाता बन्धक सम्पत्ति को विनाश से बचाने के लिए, बन्धकी के स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों के संरक्षण के लिए, अपने बन्धक हित की सुरक्षा के लिए व पट्टे (Lease) के नवीनीकरण के सम्बन्ध में कोई न्यायोचित व्यय करता है तो वह उसकी वसूली ऋणी से कर सकता है और ऋणी के मना करने पर उसके विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

सहायक प्रतिभूतियाँ और सामान्य सावधानियाँ :—इन प्रतिभूतियों को जमानत स्वरूप स्वीकार करते समय ऋणदाता अधिकोष निम्नांकित सावधानियों को काम में लेता है :

(i) पर्याप्त सीमान्तर :—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रतिभूतियों के मूल्यों में प्रायः उतार-चढाव आते रहते हैं। जब किसी सम्पत्ति के मूल्य मे गिरावट आती है तो बैंक को अपने ऋणों की वसूली में कठिनाई आती है। इसके अतिरिक्त अचल सम्पत्तियो की देखभाल पर भी उसे कुछ पैसा खर्च करना पड़ता है। इन कठिनाइयों से बचने के लिए ऋणदाता अधिकोष सम्पत्ति के बाजार मूल्य और प्रस्तावित ऋणराशि में समुचित अन्तर रखता है। सीमान्तर की राशि सम्पत्ति की प्रकृति, बाजार दशा और केन्द्रीय बैंक से प्राप्त निर्देशों के परिप्रेक्ष्य में तय की जाती है। जब सम्पत्ति के मूल्य मे अत्यधिक गिरावट आ जाती है तो ऋणदाता अधिकोष ऋणी से अतिरिक्त प्रतिभूति की मांग करता है।

(ii) विक्रय-साध्यता :—समुचित सीमान्तर के अतिरिक्त बैंक प्रस्तावित प्रतिभूतियो की विपणन साध्यता पर भी विचार करता है क्योंकि बैंकों के संसाधनों की तरलता प्रतिभूतियों की विपणन साध्यता पर भी आश्रित रहती है। इस दृष्टि से स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों, स्वर्ण, माल आदि मे अत्यधिक विक्रय साध्यता पाई जाती है।

(iii) लिखित अनुबन्ध :—ऋण देने से पूर्व बैंक ऋणी से लिखित अनुबन्ध करता है क्योंकि इससे दोनों पक्षो को ऋण की शर्तें स्पष्ट हो जाती हैं और आवश्यकता के समय बैंक अपने अनुकूल शर्तों का भी समावेश करवा सकता है। सामान्यतया अधिकोष निम्नांकित शर्तें विशेष रूप से शामिल करवाते हैं : ऋणी यथोचित सीमान्तर बनाए रखेगा, सम्पत्ति के मूल्य मे गिरावट आने पर अतिरिक्त प्रतिभूति जमा करवा देगा, क्लेटन नियम लागू नहीं होगा व सम्पत्ति के विक्रय से प्राप्त राशि को शेष ऋणो के शोधन के लिए प्रयुक्त किया जा सकेगा। लिखित अनुबन्ध के कारण बैंक को गिरवी रखी गई प्रतिभूतियों पर वैधानिक अधिकार प्राप्त हो जाता है।

प्रमुख प्रतिभूतियाँ

व्यापारिक अधिकोष अपने ऋणो को सुरक्षार्थ मुख्यतः स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियाँ, माल, अचल सम्पत्ति व माल के अधिकार पत्रो को जमानत स्वरूप स्वीकार करते हैं। स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों को स्वीकार करने पर अधिकोषों को निम्नांकित लाभ प्राप्त होते हैं :

1. प्रचुर विक्रय साध्यता :—अनुमोदित प्रतिभूतियों में असीम विक्रय साध्यता पाई जाती है क्योंकि स्कन्ध बाजारो के माध्यम से इनका वांछित समय पर आवश्यक मात्रा मे विक्रय किया जा सकता है। जब एक प्रतिभूति का अनेक स्कन्ध बाजारों मे क्रय-विक्रय किया जाता है तो उसकी विक्रय-साध्यता मे कई गुणी वृद्धि हो जाती है। जब एक ऋणी ऐसी प्रतिभूतियों की जमानत पर लिये गये ऋण का भुगतान नहीं कर पाता है तो बैंक इन प्रतिभूतियों को बेचकर अपने ऋण की वसूली कर लेता है।

2. मूल्य-निर्धारण में आसानी :—इन प्रतिभूतियो का विक्रय मूल्य समाचार-पत्रों मे रोजाना छापा जाता है। समाचार-पत्रो की सहायता से इनकी मूल्य प्रवृत्ति का पता लग जाता है जो उसको सीमान्तर निर्धारण में सहायता करती है। आवश्यकता पड़ने पर निर्गमिक प्रमण्डल से भी मूल्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन सब सुविधाओं के कारण इन प्रतिभूतियों के मूल्य का आसानी से पता लगाया जा सकता है।

3. मूल्य-स्थिरता :—राजकीय प्रतिभूतियों व अच्छे निजी प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों

के मूल्य सामान्यतः स्थिर रहते हैं। अतएव इनकी जमानत पर ऋण देने में बैंक को कोई हानि नहीं होती है।

4. *हस्तांतरणशीलता* :—इनमें से अधिकांश प्रतिभूतियाँ विनिमय साध्य होती हैं। अतएव इन्हें मात्र सुपुर्दगी अथवा अभिहस्ताकन व सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित किया जा सकता है। अर्थात् इनके हस्तांतरण में न्यूनतम औपचारिकताएं करनी पड़ती हैं और सद्विश्वास के साथ ग्रहण करने पर इनका धारक यथाविधि धारक बन जाता है।

5. *स्वामित्व निर्धारण* :—इन सम्पत्तियों के वास्तविक स्वामी का आसानी से पता लगाया जा सकता है क्योंकि आदिष्ट प्रतिभूतियों के धारक के पास स्वत्व-सम्बन्धी प्रमाण होता है और वाहक प्रतिभूतियों के धारकों को क़ानून द्वारा वास्तविक स्वामी माना जाता है।

6. *ऋण सुविधा* :–केन्द्रीय अधिकोष प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की जमानत पर व्यापारिक अधिकोषों को ऋण देता है। इस सुविधा के कारण उनके समापनों में तरलता बनी रहती है।

7. *नियमित आय* :—इन प्रतिभूतियों से बैंक को नियमित रूप से लाभांश व ब्याज के रूप में आय प्राप्त होती रहती है व कभी-कभी बोनस-अंशों के रूप में पूंजीगत आय भी मिल जाती है।

अपेक्षित सावधानियां :—स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों के उपर्युक्त लाभों को प्राप्त करने हेतु ऋणदाता अधिकोष से निम्नांकित सावधानियां अपेक्षित हैं :

(i) जालसाजी से बचने के लिए हस्तांतरक से अपनी उपस्थिति में हस्ताक्षर करवाने चाहिए (ii) अंशतः दत्त अंशपत्रों को जमानत स्वरूप स्वीकार नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा करना आवश्यक हो तो उस पर निरंक पृष्ठांकन करवा लेना चाहिए ताकि आवश्यकता के समय उनका विक्रय किया जा सके (iii) निर्गमक प्रमण्डल को अपने अधिकारों की तत्काल सूचना दे देनी चाहिए और (iv) एक ही प्रमण्डल की प्रतिभूतियों को जमानत स्वरूप स्वीकार नहीं करना चाहिए। उनमें विविधता लानी चाहिए।

स्कन्ध-विनिमय प्रतिभूतियों के अन्तर्गत ऋणदाता अधिकोषों को निम्नांकित प्रतिभूतियां प्राप्त होती हैं :—

(1) परम प्रतिभूतियां (Gilt Edged Securities)

केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों व अर्द्ध सरकारी संस्थाओं (नगर निगम, विद्युत-निगम, नगर न्यास आदि) द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों को परम प्रतिभूतियां कहा जाता है। इन प्रतिभूतियों को श्रेष्ठतम माना जाता है क्योंकि (i) इनके भुगतान की सरकार द्वारा गारण्टी दी जाती है (ii) इन्हें आसानी से स्कन्ध बाजार में बेचा जा सकता है (iii) इनके मूल्य में काफी स्थिरता रहती है (iv) ऋणदाता को ब्याज के रूप में नियमित रूप में आय प्राप्त होती रहती है (v) ऋण देते समय न्यूनतम औपचारिकताएं करनी पड़ती हैं और (vi) ये विनिमय साध्य होती हैं।

परम प्रतिभूतियों का मुख्यतः निम्नांकित रूपों में निर्गमन किया जाता है :

(i) *वाहक-ऋण पत्र (Bearer Bonds)* :—इन प्रतिभूतियों के धारक को इनका वास्तविक स्वामी माना जाता है; मात्र सुपुर्दगी द्वारा इनका स्वामित्व परिवर्तन हो जाता है; धारक को परिपक्व तिथि पर देय ब्याज व मूलधन प्राप्त हो जाता है। इनकी

प्रतिलिपि निर्गमित नहीं की जाती है। अतएव धारक को इनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

(ii) अन्तर्लिखित स्कन्ध (Inscribed Stock) :—ये प्रतिभूतियां दीर्घकाल के लिए निर्गमित की जाती हैं; सार्वजनिक ऋण कार्यालय इनका पूर्ण रेकार्ड रखता है, इनका हस्तांतरण के लिए ऋण कार्यालय के समक्ष हस्तांतरण प्रलेख प्रस्तुत करना पड़ता है और इनके ब्याज का हर छठे माह भुगतान कर दिया जाता है। इनकी प्रतिभूति पर ऋण देने से पूर्व बैंक को इनका अपने पक्ष में हस्तांतरण करवाना चाहिए।

(iii) प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory note) :—इनका निर्गमन विशिष्ट कार्यों के लिए किया जाता है, सामान्यतः इनका पृष्ठांकन हस्तांतरण प्रलेख द्वारा किया जाता है किन्तु कभी-कभी मात्र सुपुर्दगी द्वारा भी स्वामित्व परिवर्तन सम्भव होता है। इन पर निर्गमक के रूप में किसी उच्च अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं और देय ब्याज का हर छठे माह भुगतान कर दिया जाता है।

(2) अंश-पत्र (Share Certificates)

अंश-पत्रों को अधिकोष अच्छी प्रतिभूति मानते हैं क्योंकि (i) इनके बाजार मूल्य का आसानी से पता चल जाता है। बाजार मूल्य अधिकतम ऋण-राशि व सीमान्तर के निर्धारण में सहायक होते हैं (ii) इनमें असीम विपणन साध्यता होती है। जब एक अंश-पत्र का अनेक स्कन्ध-बाजारों में क्रय-विक्रय किया जाता है तो विक्रयशीलता में और भी वृद्धि हो जाती है (iii) इनके स्वामित्व का आसानी से पता लग जाता है। कठिनाई के समय सम्बन्धित प्रमण्डल से भी पूछताछ की जा सकती है (iv) इनके वास्तविक मूल्य, पूर्व प्रभारों व यथार्थता का भी आसानी से पता लगाया जा सकता है (v) इनका हस्तांतरण पृष्ठांकन व सुपुर्दगी मात्र द्वारा किया जा सकता है (vi) आवश्यकता के समय इनकी प्रतिभूति पर किसी अन्य अधिकोष या केन्द्रीय बैंक से ऋण लिया जा सकता है (vii) अच्छे प्रमण्डलों के अंश-पत्रों पर प्रतिवर्ष लाभांश व कभी-कभी बोनस भी मिलता है।

अंशपत्रों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकृत करते समय अधिकोष (i) प्रार्थी के स्वामित्व की जानकारी प्राप्त करता है क्योंकि हो सकता है वह जब्त किए हुए, चुराए हुए या निर्गमक प्रमण्डल के ग्रहणाधिकार वाले अंशपत्रों का प्रस्ताव कर रहा हो (ii) अंशपत्रों का मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन के समय वह निर्गमक प्रमण्डल के व्यवसाय, प्रबन्ध, वार्षिक लेखे, पूर्व घोषित लाभांश, लाभार्जन शक्ति व मूल्यों के उच्चावचनों पर विचार करता है (iii) प्रमण्डल द्वारा निर्गमित विभिन्न प्रतिभूतियों की प्रकृति का अध्ययन करता है। जब एक प्रमण्डल केवल साधारण अंशपत्रों का निर्गमन करता है तो उसके अंशपत्रों का मूल्य उन प्रमण्डलों के साम्य-अंशपत्रों से अधिक होता है जिन्होंने पूर्वाधिकार अंशपत्रों व ऋणपत्रों का भी निर्गमन कर रखा होता है (iv) सीमान्तर का निर्धारण करता है। सट्टे व अस्थिर लाभांश वाली प्रतिभूतियों का सीमान्तर अपेक्षाकृत ज्यादा रखा जाता है। इस सम्बन्ध में वह रिजर्व बैंक से प्राप्त निर्देशों का भी ध्यान रखता है (v) निजी प्रमण्डलों के अंशपत्रों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं देता है क्योंकि वे अहस्तांतरणीय होते हैं (vi) गैर अनुसूचित (Non listed) अंशपत्रों को भी स्वीकार नहीं करता है क्योंकि इनकी विक्रयशीलता कम होती है और इनके मूल्यों को आसानी से

प्राप्त नहीं किया जा सकता (vii) अंशतः दत्त (Partly paid up) अंशपत्रों को स्वीकार करने से पूर्व निर्गमक प्रमण्डल से इस आशय का प्रमाण पत्र लिया जाता है कि वे जब्तशुदा अंशपत्र नहीं हैं और उनके विरुद्ध कोई राशि बकाया नहीं है। (viii) ऋण स्वीकृत करने से पूर्व प्रार्थी से निक्षेप मेमो (Memorandum of deposit) लेता है। यह प्रलेख गिरवी का स्पष्ट प्रमाण-पत्र होता है और इसमें ऋण के उद्देश्यों व दोनों पक्षों के अधिकारों व कर्तव्यों का उल्लेख रहता है (ix) अंशपत्रों को अपने अधिकार में ले लेता है व उन पर ऋणी से निरंक पृष्ठांकन (blank endorsement) करवा लेता है। इन्हें केवल ऋण शोधन पर ऋणी को लौटाया जाता है। इससे पहले लौटाने पर जालसाजी का डर रहता है। (x) ऋण-स्वीकृति के पश्चात् निर्गमक प्रमण्डल को अपने हितों से अवगत करता है ताकि उसका उन अंशपत्रों पर अनुक्रमिक ऋणदाताओं की तुलना में पूर्वाधिकार बना रहे व ग्राहक किसी बहाने से अंशपत्रों की प्रतिलिपि प्राप्त न कर सके। पंजीकरण के अभाव में ऋणदाता अधिकोष को न नवीन अंशों (बोनस या सामान्य अंश) के निर्गमन की सूचना प्राप्त होती है और न प्रमण्डल के पुनर्गठन की। (xi) उनके मूल्यों पर बराबर दृष्टि रखता है।

अंश पत्रों में एक बहुत बड़ी कमी भी पाई जाती है। इनके मूल्यों में स्थिरता नहीं पाई जाती है। कभी-कभी इनके मूल्यों में इतनी असामान्य गिरावट आती है कि यथोचित सीमान्तर के बावजूद भी अधिकोषों को ऋणी से अतिरिक्त प्रतिभूति (कवर) की मांग करनी पड़ती है। हो सकता है ऋणी आसानी से इस मांग को न माने।

(3) ऋण-पत्र (Debentures)

व्यापारिक अधिकोष ऋणपत्रों को श्रेष्ठ प्रतिभूति मानते हैं क्योंकि (i) सामान्यतः ये निर्गमक प्रमण्डल की किसी विशिष्ट अथवा सम्पूर्ण सम्पत्ति के आधार पर निर्गमित किए जाते हैं (ii) इन पर नियमित रूप से ब्याज मिलता है और (iii) प्रमण्डल के अवसायन की अवस्था में इनकी प्राथमिक ऋणों में गणना की जाती है।

ऋण-पत्रों की जमानत पर सामान्यतः उनके निर्गमक प्रमण्डलों को ही ऋण स्वीकृत किए जाते हैं। अतएव किसी प्रमण्डल से ऋण प्रस्ताव आने पर ऋणदाता अधिकोष (i) उसके सीमा नियमों व अन्तर्नियमों की सहायता से उसके ऋण लेने के अधिकारों की जांच करता है (ii) उस प्रस्ताव का अवलोकन करता है जिसके अन्तर्गत उसे ऋण-पत्र निर्गमित करने के लिए अधिकृत किया गया था (iii) ऋण स्वीकृति की अवस्था में प्रमण्डल के साथ ऋण अनुबन्ध करता है। इस अनुबन्ध पर प्रमण्डल की सील लगाई जाती है और कम से कम दो संचालक हस्ताक्षर करते हैं (iv) चालू प्रभार की अवस्था में प्रमण्डल में यह लिखित आश्वासन लिया जाता है कि ऋण अवधि में ऋण-पत्रों में वर्णित सम्पत्ति पर किसी अन्य बैंक या व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं होगा (v) ऋण-स्वीकृति के पश्चात् ऋण-पत्र एवं संलग्न कूपन को अपने अधिकार में लेता है (vi) प्रादिष्ट ऋण-पत्रों का ऋण तिथि से 21 दिनों के भीतर-भीतर प्रमण्डल पंजीयक के पास अपने पक्ष में पंजीकरण करवाता है और (vii) ऋणी प्रमण्डल के वार्षिक लेखों का नियमित रूप से अवलोकन करता है व उसकी वित्तीय स्थिति से असंतुष्ट होने पर भुगतान की मांग करता है और भुगतान प्राप्त न होने की अवस्था में प्रभारित सम्पत्ति का विक्रय करता है।

स्थाई निक्षेप रसीद (Fixed Deposit Receipt)

व्यापारिक अधिकोष अपनी स्थाई निक्षेप रसीद को श्रेष्ठतम प्रतिभूति मानते हैं क्योंकि (i) अहस्तांतरणशीलता के कारण इसके स्वामी का आसानी से पता लग जाता है। (ii) ऋणदाता अधिकोष को इस पर ग्रहणाधिकार प्राप्त हो जाता है और (iii) देय तिथि पर ऋणों का शोधन हो जाता है। जब यह रसीद ऋण-अवधि से पूर्व परिपक्व हो जाती है तो अधिकोष को रसीद से प्राप्त राशि से अपने ऋणों के शोधन का अधिकार होता है।

इस रसीद की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकृत करते समय ऋणदाता अधिकोष (i) केन्द्रीय बैंक द्वारा अधिकृत ऋण सीमा का ध्यान रखता है (ii) ऋण देने से पूर्व रसीदी टिकट लगवाकर ऋणी से रसीद के भुगतान (Discharge) की भरपाई करवा लेता है (iii) अपने ग्रहणाधिकार के बारे में स्थाई निक्षेप पंजिका में आवश्यक नोट लगा देता है (iv) संयुक्त निक्षेपों की अवस्था में समस्त प्रापकों से हस्ताक्षर करवा लेता है और (v) किसी अन्य व्यक्ति को रसीद की प्रतिभूति पर ऋण देते समय उसके स्वामी से समजन (set off) का लिखित अधिकार ले लेता है।

मूल्यवान धातुएं (Valuable Metals)

स्वर्ण और रजत की मूल्यवान धातुओं में गणना की जाती है। इन धातुओं की श्रेष्ठ प्रतिभूतियों में गणना की जाती है क्योंकि (i) इनके विपणन के लिए बाजार सदैव उपलब्ध रहता है (ii) इनके भण्डारण के लिए न्यूनतम स्थान की आवश्यकता होती है (iii) इनके भौतिक नियंत्रण के लिए न्यूनतम औपचारिकताओं की आवश्यकता पड़ती है (iv) इनकी शुद्धता की आसानी से जांच की जा सकती है और (v) इनके बाजार-मूल्यों का आसानी से पता लगाया जा सकता है।

इन धातुओं की प्रतिभूति पर ऋण देते समय (i) काफी सीमान्तर रखा जाता है क्योंकि इनके मूल्यों में बराबर उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। (ii) इनकी शुद्धता, तौल, अंकित चिन्ह व टकसाल आदि का विवरण लिपिबद्ध किया जाता है और उस पर ऋणी के हस्ताक्षर करवाए जाते हैं (iii) ऋणों के उद्देश्य का पता लगाया जाता है क्योंकि इनकी प्रतिभूति पर केवल व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऋण दिया जाता है और (iv) इन्हें केवल सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों से स्वीकार किया जाता है।

स्वर्णाभूषण (Gold Ornaments)

स्वर्णाभूषणों को अधिकोष अच्छी प्रतिभूति नहीं मानते क्योंकि (i) आभूषणों विशेषतः जड़ाऊ गहनों की शुद्धता व भार का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता (ii) आभूषणों का विवरण आसानी से लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता (iii) इनके स्वामित्व का आसानी से निर्धारण नहीं किया जा सकता और (iv) सोने के मूल्य में परिवर्तन होने पर इनके मूल्य में भी परिवर्तन हो जाता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण अधिकोष आभूषणों की प्रतिभूति पर केवल सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों को ऋण देते हैं, (ii) ऋण देने से पूर्व ऋणी से इस आशय का प्रमाण-पत्र ले लिया जाता है कि प्रस्तावित आभूषणों पर उसका एकमात्र वैध अधिकार है (iii) स्त्री धन (मंगल सूत्र आदि) को गिरवी रखने से पूर्व ऋणी की पत्नी की स्पष्ट सहमति ली जाती है

(iv) अभिकर्ता को ऋण देने से पूर्व उससे यह प्रमाण-पत्र लिया जाता है कि वह अपने स्वामी की स्पष्ट अनुमति से आभूषणों की प्रतिभूति पर ऋण ले रहा है (v) बेली की ओर से ऋण प्रस्ताव आने पर उससे इस आशय की लिखित घोषणा करवानी पड़ती है कि बेलर ने उसे गहनों को गिरवी रखने के लिए अधिकृत कर दिया है (vi) आभूषणों की शुद्धता का किसी निष्पक्ष मूल्यांकक से प्रमाण-पत्र लिया जाता है और उसे गहनों के साथ रखा जाता है (vii) सीमान्त काफी ऊँचा रखा जाता है (viii) आभूषणों का विवरण 'स्वर्ण एवं आभूषण गिरवी पंजिका' में लिखा जाता है व उस पर ऋणी के हस्ताक्षर करवाए जाते हैं (ix) ऋण स्वीकृति के पश्चात् आभूषणों को एक थैले में रखा जाता है, उसके मुख पर सम्पूर्ण विवरण अंकित किया जाता है और तत्पश्चात् उसे तिजोरी में रखा जाता है। जड़ाऊ आभूषणों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकृत नहीं किए जाते हैं क्योंकि उनके धात्विक अंश का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता और बहुमूल्य जवाहिरातों की विपणन साध्यता सीमित होती है।

जल जहाज (Ships)

व्यापारिक अधिकोष जल जहाजों को एक अच्छी प्रतिभूति नहीं मानते हैं क्योंकि (i) जहाजों का ह्रास (depreciation) अन्य सम्पत्तियों की तुलना में जल्दी होता है (ii) उनके डिजाइनों में तीव्र गति से परिवर्तन होते हैं जिससे उनकी उपयोगिता समय से पूर्व ही समाप्त हो जाती है (iii) जहाजी यातायात अब एक अनिश्चित व्यवसाय बन गया है (iv) विदेशों में लिये गये ऋणों के शोधन के लिए उन्हें विदेशी बन्दरगाहों पर रोका जा सकता है (v) जहाज का मालिक अपने जहाज को विदेशों में किसी भी नागरिक को बेच सकता है और (vi) जब एक जहाज को अपने गंतव्य स्थल तक पहुँचाने के लिए जहाज की प्रतिभूति पर ऋण दिया जाता है तो ऐसे ऋणदाता का उस जहाज पर प्रथम ग्रहणाधिकार होता है।

फिर भी अधिकोष जहाजों की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं किन्तु ऋण देने से पूर्व वे इस तथ्य से आश्वस्त होते हैं कि (i) जहाज का भारतीय जहाज पंजीकरण अधिनियम 1841 के अन्तर्गत पंजीकरण हो चुका है (ii) जहाज का बीमा करवाया जा चुका है व बीमापत्र का उसके पक्ष में अभिहस्तांकन हो चुका है (iii) जहाजी अभिकर्ता की ख्याति अच्छी है (iv) ऋण प्रलेखों में कोई कमी नहीं है (v) कम-से-कम 51% जहाज गिरवी रखा गया है (vi) उसका असामान्य रूप से ह्रास नहीं हुआ है और (vii) ऋण की सूचना अमण्डल पंजीयक को दी जा चुकी है। इस सूचना के अभाव में गिरवी व्यर्थ मानी जाती है। असामान्य ह्रास की जाँच अनुवर्तिक ऋणों के समय की जाती है।

जहाजी बिल्टी (Bill of Lading)

अधिकोष जहाजी बिल्टी को एक अच्छी प्रतिभूति नहीं मानते हैं क्योंकि (i) कभी-कभी जाली बिल्टी के आधार पर ऋण ले लिया जाता है (ii) उसमें अंकित वस्तुओं की इकाइयों या मात्रा में जालसाजी से वृद्धि कर दी जाती है (iii) निर्यातक नकली या घटिया किस्म का माल भेज सकता है और (iv) जहाजी बिल्टी पूर्णतः विनिमय साध्य प्रलेख नहीं होता है।

फिर भी जहाजी बिल्टी की प्रतिभूति पर ऋण दिए जाते हैं। इसकी प्रतिभूति पर ऋण देते समय अधिकोष (i) आयातक से जहाजी बिल्टी की दोनों प्रतियाँ ले लेता है।

दोनों प्रतियों के न मिलने पर वह जहाज के मास्टर को अपने हितो से अविलम्ब सूचित करता है अन्यथा उसके साथ कपटपूर्ण व्यवहार की आशंका रहती है (ii) आयातक से बिल्टी पर निरंक पृष्ठांकन करवा लेता है ताकि जहाजी भाड़े व अन्य खर्चों का भार उस पर न पड़े (iii) आयातित माल पर अपने अधिकार की पुष्टि के लिए आयातक से अपने पक्ष में उप प्राधीयन-पत्र (Letter of hypothecation) लिखवा लेता है (iv) आवेष्टन प्रमाण पत्र (Packer's Certificate) की सहायता से बिल्टी में अंकित माल का मिलान करता है (v) माल के बीमा-पत्र की जाँच करता है और यह देखता है कि वह हर प्रकार से पूर्ण है (vi) बिल्टी में 'अन्य शर्तें चार्टर पार्टी के अनुसार' वाक्यांश होने पर चार्टर पार्टी की अन्य शर्तों का अवलोकन करता है (vii) ऋण स्वीकृति पर माल से सम्बन्धित प्रपत्रों यथा निर्यात बिल, आवेष्टन प्रमाण पत्र, उद्गम प्रमाण-पत्र, बीमा-पत्र, जहाजी बिल्टी आदि को अपने अधिकार मे लेता है (viii) माल के बन्दरगाह पर पहुँचने पर आयातक को ट्रस्ट रसीद देता है अथवा माल-गोदाम अधिकारियो के पक्ष मे बिल्टी का पृष्ठांकन करता है और आयातक से भुगतान प्राप्त होने पर सुपुर्दगी आदेश देता है।

रेल्वे रसीद (Railway Receipt)

रेल्वे रसीद की गणना माल के अधिकार पत्रों मे की जाती है व उसके पृष्ठांकन द्वारा उसमें अंकित माल का हस्तांतरण किया जा सकता है। फिर भी अधिकोष इसे एक अच्छी प्रतिभूति नहीं मानते हैं क्योंकि (i) क्षतिपूरक बॉण्ड के आधार पर रेल्वे रसीद के बिना भी माल की सुपुर्दगी ली जा सकती है (ii) रेल्वे रसीद विनिमय साध्य संलेख नही है अतएव अधिकोष इनका यथा-विधि धारक नही बन सकते (iii) इनमें केवल प्रेषित माल की इकाइयों की संख्या व भार अंकित किया जाता है। रेल्वे अधिकारी माल की गुणवत्ता के बारे में कोई गारण्टी नही देते हैं। इनकी प्रतिभूति पर ऋण स्वीकार करने से पूर्व ऋणदाता अधिकोष (i) रेल्वे अधिकारियों से उसकी वास्तविकता की पुष्टि करवाता है (ii) रेल्वे रसीद का अपने पक्ष में पृष्ठांकन करवाता है (iii) ग्रहणाधिकार (Lien) को प्रमाणित करने के लिए ऋणी से उप प्राधीयन पत्र लिखवाता है और ऋण स्वीकृति के पश्चात् रेल्वे अधिकारियो को अपने अधिकार से सूचित करता है अन्यथा क्षतिपूरक बॉण्ड के आधार पर माल छुड़वाया जा सकता है। ऐसी अवस्था मे बैंक को न्यायालीय कार्यवाही में अपना समय व धन खराब करना पड़ेगा।

राजकीय आपूर्ति बिल (*Government Supply Bills*)

आपूर्ति बिलो को अधिकोष एक अच्छी प्रतिभूति नहीं मानते हैं क्योंकि (i) इन बिलों के आधार पर उन्हे विक्रीत माल पर कोई अधिकार प्राप्त नही होता है (ii) इन्हे विनिमय साध्य संलेख नहीं माना जाता है (iii) इनके साथ संलग्न निरीक्षण नोट, बीजक आदि स्वामित्व सम्बन्धी प्रलेख नहीं माने जाते हैं (iv) इन बिलों में अंकित माल ऋण स्वीकृति के पूर्व राजकीय विभागों में पहुँच चुका होता है और उसका उपभोग भी हो चुका होता है और (v) ऋणो के अशोधित रह जाने पर आदेशक विभाग के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाती।

फिर भी इन बिलो की प्रतिभूति पर अधिकोषों द्वारा ऋण स्वीकृत किए जाते हैं किन्तु ऋण-स्वीकृति के पूर्व वे (i) माल पर प्रभार उत्पन्न करने हेतु ऋणी से अपने पक्ष में

उप प्राधीयन पत्र लिखवा लेते हैं (ii) निरीक्षण नोट, प्रादेश पत्र, बीजक आदि को इन बिलों के साथ संलग्न करवाते हैं (iii) क्रेता विभाग को अपने ग्रहणाधिकार की सूचना देते हैं और (iv) ऋणी को केवल नकद साख की सुविधा देते हैं। यह सुविधा ज्यादा-से-ज्यादा 90 दिनों के लिए दी जाती है।

जीवन बीमा पत्र (Life Ins urance Policies)

कुछ समय पूर्व तक बीमा-पत्रों को हेय प्रतिभूति माना जाता था। श्री जे॰ डब्ल्यू॰ गिलबर्ट ने तो स्पष्टतः लिखा है कि बीमा-पत्रों की प्रतिभूति पर कभी भी ऋण स्वीकार नहीं करने चाहिए। आजकल इसे एक अच्छी प्रतिभूति माना जाता है क्योंकि (i) लाभ सहित बीमा-पत्रों में प्रतिवर्ष बोनस की राशि जुड़ती रहती है। फलतः प्रत्येक बोनस की घोषणा के साथ इनकी कुल राशि में वृद्धि होती चली जाती है (ii) ऋणी के भुगतान से पूर्व ऋणी की मृत्यु हो जाने पर ऋणदाता अधिकोष को अभिहस्तांकन के कारण अपनी सम्पूर्ण राशि का भुगतान प्राप्त हो जाता है (iii) बीमा-पत्र के समर्पण मूल्य में वर्ष-प्रति-वर्ष वृद्धि होती जाती है (iv) समर्पण मूल्य का बीमा प्रमण्डल से किसी भी समय भुगतान प्राप्त किया जा सकता है और (v) पुनर्अभिहस्तांकन के कारण ऋण-राशि की तरलता बनी रहती है।

बीमा एक सम्पूर्ण सद्विश्वास का अनुबन्ध होता है और बीमित व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने पर अथवा गलत सूचनाएँ देने पर यह अनुबन्ध (प्रथम दो वर्षों में) कभी भी रद्द किया जा सकता है। इस जोखिम के कारण ऋणदाता अधिकोष ऋण स्वीकृति के समय निम्नांकित सावधानियों को काम में लेता है :

(i) दो वर्ष से कम पुराने बीमा-पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं देता है (ii) विदेशी बीमा-पत्रों की स्थिति में उनके निर्गमक प्रमण्डलों की वित्तीय स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करता है (iii) प्रार्थी के बीमा योग्य हित की जाँच करता है (iv, केवल जीवन बीमा-पत्रों को प्रतिभूति स्वरूप स्वीकार करता है क्योंकि अन्य बीमा-पत्र प्रतिभूति की दृष्टि से व्यर्थ होते हैं (v) निश्चित अवधि वाले (Endowment policies) बीमा-पत्रों पर ऋण देता है (vi) प्रब्याजी रसीद की सहायता से देय प्रब्याजी के भुगतान की जानकारी प्राप्त करता है (vii) भावी भुगतानों को नियमितता पूर्वक करने के लिए ऋणी से लिखित वचन लेता है (viii) सुरक्षा की दृष्टि से यह वचन लेता है कि उसके द्वारा प्रीमियम का भुगतान न होने पर अधिकोष को उसकी ओर से भुगतान करने व उसके नाम लिखने का अधिकार होगा (ix) समर्पण मूल्य व प्रार्थित ऋण-राशि का तुलनात्मक अध्ययन करता है व इनके मध्य कम-से-कम 20% सीमान्तर रखता है (x) बीमा प्रमण्डल से बीमित व्यक्ति की आयु का अनुमोदन करवाता है (xi) बीमा-पत्र की शर्तों विशेषतः प्रतिबन्धात्मक शर्तों का अध्ययन करता है (xii) अपने पक्ष में बीमा-पत्र का अभिहस्तांकन करवाता है (xiii) ऋणी से पुनर्अभिहस्तांकन का अधिकार लेता है (xiv) मनोनयन युक्त बीमा-पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण देते समय मनोनीत व्यक्ति से भी अभिहस्तांकन पर हस्ताक्षर करवाता है और (xv) उन बीमा-पत्रों को स्वीकार नहीं करता है जिन्हें एक पति या पत्नी ने अपने बच्चों व पत्नी/पति के लाभ के लिए लिया है। इन बीमा-पत्रों की गणना प्रन्यास सम्पत्ति में की जाती है।

डॉक वारण्ट (Dock Warrant)

व्याख्या :—डॉक वारण्ट मालगोदाम में माल जमा करवाने की रसीद होती है।

इस पर गोदाम अधिकारी अथवा व्हार फ़िंगर के हस्ताक्षर होते हैं और इसमें जमा करवाए गए माल का सम्पूर्ण विवरण दिया जाता है। वह प्रलेख जमाकर्ता अथवा उसके आदिष्ट व्यक्ति को माल की सुपुर्दगी का वचन देता है। जब माल का स्वामी अपने माल की अन्य किसी व्यक्ति को सुपुर्दगी दिलवाना चाहता है तो उसे इस रसीद का आदिष्ट व्यक्ति के पक्ष मे पृष्ठांकन करना पडता है। डॉक वारण्ट की माल के अधिकार पत्रों मे गणना की जाती है। अतएव इनके हस्तांतरण द्वारा इनमे वर्णित माल पर हस्तांतरी का पूर्ण अधिकार हो जाता है।

सावधानियाँ :—व्यापारिक अधिकोष इस रसीद की जमानत पर ऋण देते हैं किन्तु ऋण देने से पूर्व (i) रसीद का अपने पक्ष मे पृष्ठांकन करवाते हैं (ii) सम्बन्धित माल गोदाम व डॉक कम्पनी को इस तथ्य से अवगत करता है (iii) माल गोदाम अधिकारी से यह प्रमाण-पत्र लेते हैं कि माल गोदाम का केवल संदर्भगत माल के किराए के भुगतान के लिए जमा माल पर ग्रहणाधिकार होगा।

दायित्व :—ऋणों के भुगतान पर बैंक माल गोदाम अधिकारी को माल की सुपुर्दगी का आदेश देता है। जब एक ऋणी ऋणों के शोधन से पूर्व अपने माल को निकालना चाहता है तो उसे अपने बैंक को न्यास रसीद देनी पड़ती है। इस रसीद के स्वीकार करने की स्थिति में बैंक उसके पक्ष में सुपुर्दगी-आदेश लिख देता है। माल के बिकने पर ऋणी सबसे पहले अपने बैंक ऋणों का भुगतान करता है अन्यथा उसे दण्ड का भागी बनना पड़ता है।

गोदाम अधिकारी का प्रमाण-पत्र
(Warehouse-keeper's Certificate)

यह प्रमाण-पत्र माल-गोदाम मे माल जमा करवाने पर गोदाम अधिकारी द्वारा निर्गमित किया जाता है। यह प्रलेख यह प्रमाणित करता है कि प्रलेख मे वर्णित माल प्रमाण-पत्र जारी करने वाले माल-गोदाम में जमा है और निर्गमन के लिए जमाकर्ता के निर्देशों की प्रतीक्षा मे है। यह माल के सुपुर्दगी का वचन नही देता है। अतएव माल-गोदाम में से माल निकलवाने के लिए जमाकर्ता को या तो सुपुर्दगी आदेश देना पड़ता है अथवा माल-गोदाम अधिकारी से वारण्ट प्राप्त करना पड़ता है। कुछ गोदाम प्रमाण-पत्र की अपेक्षा रसीद देते हैं। भारतीय माल विक्रय अधिनियम की धारा 2 के अनुसार इस प्रमाण-पत्र व रसीद की गणना माल के अधिकार-पत्रों में की जाती है, किन्तु इनकी विनिमय साध्यता के बारे मे अलग राज्यों में अलग-अलग नियम बने हुए हैं।

इन प्रमाण-पत्रों के आधार पर भी बैंक ऋण देते हैं। इनकी जमानत पर ऋण देते समय उन्हें उन्हीं सावधानियों का पालन करना पड़ता है जिनकी डॉक वारण्ट की जमानत पर ऋण देते समय अपेक्षा की जाती है।

सुपुर्दगी आदेश (Delivery Order)

माल गोदाम मे जमा करवाए गए माल के निर्गम के लिए जो आदेश दिया जाता है उसे सुपुर्दगी आदेश कहा जाता है। इस आदेश मे जमाकर्ता अपना अथवा अपने प्रतिनिधि का नाम अंकित करता है। इस आदेश के प्रस्तुतीकरण पर प्रस्तुतकर्ता को माल की डिलीवरी दे दी जाती है। इस आदेश का पृष्ठांकन अथवा सुपुर्दगी अथवा दोनों द्वारा हस्तांतरण किया जा सकता है। बैंक इन आदेशों की जमानत पर भी ऋण देते है, किन्तु

ऐसा करने से पूर्व वे आदेशों में वर्णित माल का अपने पक्ष में हस्तांतरण करवा लेते हैं और ऋणी के शोधन पर अपनी ओर से गोदाम अधिकारी को सुपुर्दगी आदेश देते हैं। ऋण स्वीकृति से पूर्व वे ग्राहक की ईमानदारी, साख व माल की प्रकृति पर भी विचार करते हैं।

अचल सम्पत्ति (Immovable Property)

भूमि, भवन, संयन्त्र आदि की अचल सम्पत्ति में गणना की जाती है। ऋणी की दृष्टि से अधिकोष भूमि व भवन को श्रेष्ठ प्रतिभूति नहीं मानते हैं क्योंकि (i) उत्तराधिकार नियमों की जटिलताओं, विभिन्न परम्पराओं और वैधानिक प्रतिबन्धों के कारण भूमि व भवन का आसानी से स्वामित्व परिवर्तन नहीं किया जा सकता (ii) इनके स्वामित्व की सही जानकारी आसानी से नहीं मिलती है क्योंकि इन सम्पत्तियों के वैधानिक प्रलेख ऋणी को न्यासी, आजीवन किराएदार या मोरगेजी के रूप में प्राप्त हो सकते हैं और इन पर भूतकालीन विक्रय की समस्त प्रविष्टियाँ अंकित नहीं होती हैं अथवा ऋणी के पास अपने नाम से अधिकार-पत्र होता ही नहीं है (iii) स्थाई सम्पत्ति की जमानत पर ऋण स्वीकृत करना व्ययसाध्य कार्य है क्योंकि अधिकोष प्रस्तावित सम्पत्ति की जाँच करवाता है, उसका स्वयं निरीक्षण करता है, मूल्यांकन करवाता है, मानचित्र बनवाता है और अन्य आवश्यक औपचारिकताओं को पूर्ण करवाता है। ऋणी की वित्तीय स्थिति ठीक न होने पर वह इन सब कार्यों के लिए भी ऋणग्रस्त रहता है (iv) इनकी विपणनशीलता सीमित होती है क्योंकि इनके लिए हर समय बाजार उपलब्ध नहीं होता है और इनके विक्रय से पूर्व बैंक को न्यायालय से डिक्री लेनी पड़ती है। यह कार्य भी अत्यन्त जटिल व व्ययसाध्य होता है (v) इनके मूल्य का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि मूल्य-निर्धारण के समय अनेक तत्वों यथा आर्थिक विकास की सम्भावना, सार्वजनिक संस्थाओं से दूरी, यातायात के साधनों की बहुलता, बिजली, पानी व सड़क की सुविधा, भूमि की उर्वरा शक्ति, सिंचाई के साधन आदि पर विचार करना पड़ता है (v) ऋण स्वीकृति के पश्चात् इनकी देखभाल पर काफी पैसा खर्च करना पड़ता है अन्यथा इनका ह्रास बड़ी जल्दी होता है।

संयंत्रों को भी श्रेष्ठ प्रतिभूति नहीं माना जाता है क्योंकि (i) संयंत्रों की डिजाइन में आए दिन परिवर्तन होते रहते हैं (ii) नए आविष्कारों के कारण पुराने उपयोगी संयंत्र भी बेकार हो जाते हैं (iii) उनकी शेष चलन अवधि का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है और (iv) ऋण स्वीकृति के पश्चात् उनकी उचित देखभाल करनी पड़ती है अन्यथा जंग लग जाने की सम्भावना रहती है।

उपर्युक्त कमियों के बावजूद भी अधिकोष इन सम्पत्तियों की जमानत पर ऋण स्वीकृत करते हैं किन्तु ऋण-स्वीकृति के पूर्व (i) प्रार्थी के स्वामित्व के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाती है (ii) मीयादी भूमि पर ऋण देने से पूर्व ऋणी से इस आशय का वचन-पत्र लिया जाता है कि वह समय पर मीयाद राशि का भुगतान करता रहेगा और भुगतान की रसीद बैंक के पास जमा करवाता रहेगा व ऐसा न करने पर बैंक को मीयाद राशि जमा करवाने व उसे ऋणी के नाम लिखने का अधिकार होगा (iii) प्रस्तावित सम्पत्ति का निरीक्षण व मूल्यांकन किया जाता है व उसका मानचित्र बनवाया जाता है (iv) प्रस्तावित सम्पत्ति का बीमा करवाया जाता है व ऋणी को उसके सामयिक नवीनीकरण के लिए वचनबद्ध किया जाता है (v) पूर्व प्रभारों का पता लगाया जाता है और

पूर्व प्रभारों की अवस्था मे सम्पत्ति के मूल्य व प्रभारों के परिप्रेक्ष्य में ऋण राशि का निर्धारण किया जाता है (vi) ऋण-स्वीकृति हेतु बन्धक पत्र तैयार करवाया जाता है और वैधानिक प्रलेखों को अपने अधिकार मे लिया जाता है। इन प्रलेखों को ऋण शोधन के पश्चात् ही लौटाया जाता है अन्यथा ऋणी इनके आधार पर अन्य किसी अधिकोष से अतिरिक्त ऋण ले सकता है और प्रथम ऋणदाता के अधिकार को अनुगामी ऋणदाता के पक्ष मे स्थगित करवा सकता है।

संयन्त्रो की जमानत पर ऋण देने से पूर्व उनके बनावट (make), क्रय-तिथि व वर्तमान स्थिति की जाँच करवाई जाती है, उनका वर्तमान विक्रय-मूल्य ज्ञात किया जाता है, ऋणी को उनकी बीमा के लिए वचन-बद्ध किया जाता है और ऋणी से बन्धक पत्र लिखवाया जाता है। ऋण-स्वीकृति के पश्चात् कार्यशाला पर इस आशय की सूचना अंकित करवाई जाती है कि कारखाने के सयंत्र बैंक के पास गिरवी रखे हुए हैं। चल-यन्त्रों (कार, जीप, बस आदि) पर भी इसी आशय की सूचना अंकित की जाती है, यथा बैंक ऑफ बड़ौदा के सौजन्य से या *Hypothecated to State Bank of India*।

माल (Goods)

कृषि व औद्योगिक उत्पादों की अधिकोष अच्छी प्रतिभूतियो में गणना करते हैं क्योंकि (i) अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यो में अपेक्षाकृत स्थिरता रहती है (ii) आवश्यकता के समय इन पदार्थों विशेषतः अनिवार्य वस्तुओ को आसानी से व अच्छे मूल्यो पर बेचा जा सकता है (iii) इन वस्तुओ की प्रतिभूति पर अल्पकाल के लिए ऋण स्वीकृत किए जाते हैं। अतः अधिकोषो के संसाधनो में तरलता बनी रहती है और (iv) इन वस्तुओ का मूल्यांकन सुगमतापूर्वक हो जाता है व दलालो और समाचार-पत्रो तथा व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर इनके मूल्यों में होने वाले परिवर्तनो का भी आसानी से पता लग जाता है। इस सुविधा के कारण समुचित सीमान्तर बनाए रखने मे सहायता मिलती है।

इन वस्तुओं की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकृत करते समय अधिकोष (i) अनिवार्य वस्तुओ को प्राथमिकता देते हैं (ii) शीघ्रनाशी वस्तुओ की अवस्था में उनकी नई फसल को स्वीकार करते हैं (iii) व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऋण देते हैं (iv) भण्डार-गृहो की संरचना व उसकी वर्तमान स्थिति का अवलोकन करते हैं (v) शीघ्रनाशी वस्तुओं के लिए शीत-भण्डारण की व्यवस्था की माग करते हैं (vi) रिजर्व बैंक की चयनात्मक साख नीति के अनुसार वस्तुएं स्वीकार करते हैं व सीमान्तर रखते हैं (vii) माल व माल गोदाम का बीमा करवाते हैं (viii) माल को गिरवी रखने के लिए प्रलेख तैयार करवाते है (ix) प्रस्तावित भण्डार-गृह की अधिकतम क्षमता ज्ञात करने के लिए उसका अनुमापन करवाता है (x) माल को इस प्रकार से रखवाता है कि भण्डार-गृह की पूर्ण क्षमता का उपयोग किया जा सके और (xi) माल को भण्डार-गृह मे रखवाने से पूर्व उसका नमूने के आधार पर अथवा शत प्रतिशत निरीक्षण किया जाता है। गिरवी रखी गई वस्तुओं पर अधिकार वास्तविक हस्तान्तरण द्वारा अथवा ग्राहक के माल गोदाम की चाबी की सुपुर्दगी द्वारा किया जाता है। जब अधिकोष भण्डार-गृह की चाबी लेता है तो इस बात से भी आश्वस्त होता है कि उसकी दूसरी चाबी नहीं है। जब न माल का हस्तांतरण सम्भव होता है और न भण्डारण-गृह की चाबी लेना ही सम्भव होता है तब अधिकोष

अपने ग्राहक को खुली नकद साख (Open Cash credit) की सुविधा प्रदान करता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राहक अपनी सुविधानुसार माल जमा करता रहता है व निकालता रहता है किन्तु उसे मालगोदाम के बाहर इस आशय की प्लेट लगानी पड़ती है कि माल गोदाम में रखा हुआ माल बैंक के पास गिरवी रखा हुआ है।

ऋण-स्वीकृति के पश्चात् ऋणदाता अधिकोष का सक्षम अधिकारी समय-समय पर माल गोदाम का आकस्मिक निरीक्षण करता है (ii) माल गोदाम में से माल क्रमवार निकाला जाता है अन्यथा अन्त में निम्न कोटि के माल के बचने की आशंका रहती है (iii) माल बैंक के किसी सक्षम अधिकारी के लिखित आदेश पर निकाला जाता है (iv) माल-गोदाम की चाबी बैंक कार्यालय में सक्षम अधिकारी के पास रहती है और (v) निकाले गए माल की समुचित प्रविष्टियाँ की जाती हैं।

इन वस्तुओं की प्रतिभूति पर ऋण देते समय ऋणदाता अधिकोष को कुछ असुविधाओं का भी सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ (i) कृषि-पदार्थों का अभी तक प्रमापीकरण व वर्गीकरण नहीं हुआ है। ये कमियाँ धोखेबाजी को प्रोत्साहित करती हैं (ii) बैंक कर्मचारी प्रलोभनों के वशीभूत होकर सुपुर्दगी आदेशों का अक्षरशः पालन नहीं करते हैं और आदेशित मात्रा से अधिक वस्तुओं का निर्गमन कर देते हैं (iii) ऋणी भी बहुधा कम मात्रा में अथवा प्रस्तावित वस्तुओं के स्थान पर अन्य सस्ती वस्तुएँ भण्डार-गृह में रखने का प्रयास करते हैं और (iv) समय के साथ-साथ शीघ्रनाशी पदार्थों के गुण व रूप में विकृति आ जाती है। समुचित भण्डार-व्यवस्था के अभाव में विनाश का यह क्रम द्रुत गति से चालू हो जाता है।

प्रश्न

1. एक ऋणदाता अधिकोष सहायक प्रतिभूतियों पर किस रूप में अधिकार प्राप्त करता है ? किन्हीं दो का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. ग्रहणाधिकार, प्रभार और गिरवी पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
3. बन्धक की परिभाषा दीजिए और उसके किन्हीं तीन स्वरूपों का वर्णन कीजिए।
4. अचल सम्पत्ति के विरुद्ध ऋण स्वीकार करते समय बैंक द्वारा की जाने वाली कार्यवाही और सावधानियों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. सुरक्षित ऋण देते समय किन सामान्य सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए ? माल के अधिकार पत्रों की जमानत पर ऋण देते समय किन जोखिमों का सामना करना पड़ता है ?
6. गोदाम में रखे गुड़ व मयुक्त स्टाम्प वाली कम्पनी के अंशों के विरुद्ध ऋण देते समय बैंक को किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?
7. एक ग्राहक अपने बैंक से एक लाख रुपया उधार लेना चाहता है। वह निम्नांकित में से एक धरोहर प्रस्तुत कर सकता है : (i) 2 लाख रुपए की जीवन बीमा पालिसी (ii) एक प्रसिद्ध कम्पनी के अंश जिनका बाजार मूल्य 2 लाख रुपया है (iii) एक आधुनिक भवन जिसका मानव मूल्य 1·5 लाख रुपया है और (iv) गोदाम में रखा हुआ 2 लाख रुपये के मूल्य का गेहूँ। बैंकर को कौनसी धरोहर स्वीकार करनी चाहिए ? तर्क-सहित उत्तर दीजिए।

8

साख-पत्र

(Letters of Credit)

साखपत्रों का आशय सामान्यतः व्यापारिक साखपत्रों से होता है क्योंकि व्यक्तिगत साखपत्र अपेक्षाकृत कम लिखे जाते हैं। मॉरिस मेगरा के शब्दों में, "साखपत्र एक लिखित वचन होता है जिसके द्वारा निर्गमक अधिकोष माल के विक्रेता से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह उस पर साखपत्र की शर्तानुसार लिखे गए विपत्रों का भुगतान कर देगा बशर्ते कि ऐसे विपत्रों के साथ खरीदे गए माल के अधिकार पत्र संलग्न किए गए हो।" इस परिभाषा के अनुसार साख पत्र की निम्नांकित विशेषताएं होती हैं :—

(i) साखपत्र एक लिखित प्रतिज्ञा होती है;

(ii) सामान्यतः इनका निर्गमन किसी अधिकोष द्वारा किया जाता है;

(iii) निर्गमक अधिकोष इसके द्वारा किसी व्यक्ति की साख स्वीकृति की सिफारिश करता है;

(iv) निर्गमक अधिकोष विक्रेता या ऋणदाता को नकद भुगतान या उसके विपत्र के भुगतान की प्रतिज्ञा करता है;

(v) विपत्रों के साथ माल के अधिकार-पत्रों का संलग्न करना जरूरी होता है और

(vi) साखपत्र के अनेक पक्ष होते हैं।

साखपत्रों की प्रकृति :—साखपत्र अविनिमय साध्य एवं अहस्तांतरणीय संलेख होते हैं। अतएव जब एक धारक से उसका साखपत्र खो जाता है अथवा उसे चुरा लिया जाता है और उसका अनधिकृत व्यक्ति को भुगतान कर दिया जाता है तो भुगतानकर्ता साखार्थी के विरुद्ध दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब एक साखपत्र के आधार पर विक्रेता के जाली हस्ताक्षरों से कोई विपत्र लिखा जाता है अथवा उसे साखपत्र की शर्तानुसार नहीं लिखा जाता है और उसका भुगतान कर दिया जाता है तो ऐसे विपत्र के भुगतान के लिए परक्रामक अधिकोष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

साखपत्रों के प्रकार :—साखपत्रों को मोटे रूप से निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है :

(A) **वैयक्तिक साखपत्र** :—वस्तुतः इन साखपत्रों को साखपत्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके क्रेताओं को इनका मूल्य अग्रिम जमा करवाना पड़ता है। ये साखपत्र व्यक्तिगत कार्यों के लिए निर्गमित किए जाते हैं। इनके निम्नांकित उप विभाग होते हैं :—

(i) गश्ती साखपत्र :—इन साखपत्रों का भुगतान एक मुश्त अथवा किश्तों में निर्गमक अधिकोष की किसी भी शाखा से प्राप्त किया जा सकता है। इसी विशेषता के कारण इन्हें गश्ती साखपत्र कहा जाता है। इन साखपत्रों में इनकी कुल देय राशि व चलन अवधि का अंकन किया जाता है। साखपत्र का धारक पत्र की अधिकतम राशि से अधिक भुगतान नहीं ले सकता और उसे यह भुगतान पत्र की चलन अवधि में ही लेना पड़ता है। अतएव इस अवधि की समाप्ति पर इस पत्र की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। गश्तीपत्र के साथ उसके क्रेता को एक परिचय-पत्र भी दिया जाता है। इस परिचय-पत्र पर क्रेता को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। कुछ अधिकोष हस्ताक्षरों के अतिरिक्त धारक का फोटो भी लगवाते हैं। शाखा व्यवस्थापक क्रेता के हस्ताक्षरों व फ़ोटो का सत्यापन करता है। क्रेता जिस शाखा से भुगतान प्राप्त करना चाहता है उसके समक्ष गश्ती पत्र व अपना परिचय-पत्र प्रस्तुत करता है। शोधी अधिकोष इच्छित राशि का भुगतान करने से पूर्व गश्तीपत्र की पीठ के रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है व प्रमाण स्वरूप प्रविष्टि के समक्ष धारक के हस्ताक्षर करवाता है। इन हस्ताक्षरों का परिचय-पत्र पर किए गए हस्ताक्षरों से मिलना आवश्यक होता है। भुगतान के पश्चात् शोधी अधिकोष गश्तीपत्र व परिचय-पत्र धारक को सौंप देता है और भुगतान की राशि निर्गमक शाखा के नाम लिख देता है और उसे इस आशय की सूचना दे देता है। जब गश्तीपत्र की अन्तिम किश्त का भुगतान किया जाता है तब शोधी कार्यालय साखपत्र व परिचय-पत्र को अपने पास रख लेता है, भुगतान के पश्चात् इन्हें निरस्त कर देता है और तत्पश्चात् इन्हें निर्गमक शाखा के पास भेज देता है।

गश्ती साखपत्र के क्रेता को अपने साखपत्र की राशि निर्गमक अधिकोष के पास या तो अग्रिम जमा करवानी पड़ती है या उसके भुगतान की गारण्टी देनी पड़ती है। कभी-कभी गारण्टी के साथ प्रतिभूतियाँ भी जमा करवानी पड़ती हैं। ये प्रतिभूतियाँ अतिरिक्त सुरक्षा का कार्य करती हैं। क्रेता अपनी गारण्टी द्वारा यह प्रतिज्ञा करता है कि वह साखपत्रों की राशि का मांगने पर या एक पूर्व निर्धारित तिथि पर भुगतान कर देगा। जब साखपत्रों के लिए गारण्टी दी जाती है। तो उन्हें गारण्टी युक्त साखपत्र कहा जाता है।

(ii) गश्ती नोट :—कभी-कभी गश्ती साख पत्रों के साथ गश्ती नोट भी निर्गमित किए जाते हैं। जब ये नोट निर्गमित किए जाते हैं तब परिचय-पत्रों के निर्गमन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। ये गश्ती नोट ही परिचय-पत्र का कार्य करते हैं। निर्गमक अधिकोष गश्ती साख पत्र गश्ती नोटों की संख्या व उनका अभिदान (Denominations) अंकित कर देता है और उस पर क्रेता के हस्ताक्षर करवा लेता है। क्रेता को इन नोटों का भी अग्रिम मूल्य जमा करवाना पड़ता है। गश्ती नोट विभिन्न अभिदानों में छपवाए जाते हैं। अतएव ग्राहक को अपने प्रार्थना पत्र में इच्छित अभिदानों का उल्लेख करना पड़ता है। निर्गमक अधिकोष इन नोटों के निर्गमन से पूर्व इनकी पीठ पर क्रेता का नाम लिख देता है। पीठ पर शोधी अधिकोषों के नामांकन के लिए भी स्थान होता है जिसकी पूर्ति भुगतान के समय की जाती है। धारक को भुगतान प्राप्त करने के लिए इन नोटों को इच्छित शाखा में प्रस्तुत करना पड़ता है। शोधी अधिकोष इन नोटों पर पावनार्थ प्रविष्टि करके इन्हें अपने पास रख लेता है किन्तु साखपत्र को ग्राहक को लौटा देता है। शोधी अधिकोष भुगतान के पश्चात् अपने भुगतान की सूचना निर्गमक अधिकोष को अविलम्ब

देता है। प्रन्तिनोट का म भुगतान करने वाला अधिकोष धारक के गश्ती साखपत्र को भी अपने पास रख लेता है और उसे निरस्त करके निर्गमक अधिकोष के पास भेज देता है।

(iii) यात्री धनादेश (Travellers cheques) :—ये स्वदेशी अथवा विदेशी मुद्राओं मे निर्गमित किए जाते हैं। जब किसी व्यक्ति को इन धनादेशों की आवश्यकता होती है तो उसे अपने इच्छित अधिकोष के समक्ष इनके निर्गमन हेतु प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पडता है व प्रार्थनापत्र के साथ ही खरीदे जाने वाले धनादेशों की राशि जमा करवानी पड़ती है। ये धनादेश उसी अधिकोष से खरीदे जाते हैं जिसकी प्रार्थी के गन्तव्य स्थलों पर शाखाएं होती हैं अथवा उनके भुगतान के लिए कोई वैकल्पिक व्यवस्था होती है। जब एक व्यक्ति यात्रा पर जाता है तो चोरी, जेबकटी व डाके की जोखिमो से बचने के लिए इनका क्रय करता है।

यात्री धनादेश भिन्न-भिन्न अभिदानों के बनाए जाते हैं व प्रत्येक विशिष्ट अभिदान वाले धनादेश का रंग व साज-सज्जा भी भिन्न होती है। प्रार्थी को जिस वर्ग के धनादेशों की जितनी आवश्यकता होती है उसका नाम व मात्रा अपने अधिकोष को बता देता है और अधिकोष तदनुसार उनका निर्गमन कर देता है। इन धनादेशो पर इनकी चलन अवधि भी अंकित की जाती है। अधिकृत अवधि मे भुगतान न कर लेने पर ये अधिकोष अवैध हो जाते हैं और तत्पश्चात् इनकी राशि केवल निर्गमक अधिकोष से प्राप्त की जा सकती है। इन धनादेशों को खरीदते समय क्रेता को निर्गमक अधिकोष के व्यवस्थापक या अन्य किसी अधिकारी के समक्ष प्रत्येक धनादेश पर पूर्व निर्दिष्ट स्थान पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं व बैंक का सक्षम अधिकारी इनकी पुष्टि करता है। इनके भुगतान के समय क्रेता को पुनः अपने हस्ताक्षर बनाने पडते हैं। शोधी अधिकोष इन हस्ताक्षरों का पूर्व हस्ताक्षरो से मिलान करता है और दोनो हस्ताक्षरों मे भिन्नता होने पर भुगतान करने से मना कर देता है।

जब एक क्रेता अपने समस्त यात्री धनादेशों का प्रयोग नही कर पाता है तो वह अप्रयुक्त धनादेशों को निर्गमक शाखा को लौटाने व उनका मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी होता है। जब किसी क्रेता से यात्री धनादेश खो जाते हैं तो क्षतिपूरक बाण्ड भरकर देने पर उसे खोए हुए धनादेशों का भी मूल्य मिल जाता है।

विदेशी यात्री धनादेश की अग्रिम राशि चालू विनिमय दर से जमा की जाती है व चालू दर से ही इनका भुगतान किया जाता है।

(iv) गश्ती धनादेश (Circular cheques) :—गश्ती धनादेश व्यक्तिगत साख-पत्रों का एक नवीन स्वरूप है। इन धनादेशो को विदेशों मे बेचने के लिए तैयार किया जाता है। निर्गमक अधिकोष इन्हें विक्रय-हेतु अपनी विदेशी शाखाओं के पास भेज देते हैं और ये शाखाएं इन धनादेशों को उन व्यक्तियों को बेच देते हैं जो निर्गमक अधिकोष के देश मे यात्रा पर जाना चाहते हैं। ये धनादेश भी भिन्न-भिन्न अभिदानों के होते हैं और प्रत्येक अभिदान के धनादेश का रंग व आकृति भी भिन्न होती है। जब एक शाखा कार्यालय इनका विक्रय करता है वो इन पर प्रमाण स्वरूप अपनी मोहर व विक्रय की तारीख अंकित कर देता है। इन धनादेशो का विक्रय नकद किया जाता है और विक्रेता शाखा बेचे गए धनादेशों की संख्या, अभिदान व उनके क्रेता के नाम से निर्गमक अधिकोष को सूचित कर देता है। इनके पार्श्व भाग पर निर्गमक अधिकोष की शाखाओं एवं अभिकर्ता

अधिकोषों के नाम मुद्रित रहते हैं। क्रेता मुद्रित कार्यालयों में से किसी कार्यालय से अपने धनादेश की राशि प्राप्त कर सकता है। जब इन धनादेशों पर शाखाओं के नाम मुद्रित नहीं होते हैं तो क्रेता को उनकी पृथक से एक सूची दी जाती है। ये धनादेश निर्गमक अधिकोष के देश की मुद्रा में बेचे जाते हैं। और सामान्यतः पुस्तिका के रूप में निर्गमित किए जाते हैं।

(v) क्रेडिट कार्ड (*Credit card*) :—क्रेडिट कार्ड ग्राहकों को उपभोक्ता साख स्वीकृत करने का एक सलेख होता है। ये कार्ड धारक की साख के परिचायक होते हैं और इनके आधार पर धारक अनुबन्धित संस्थाओं से कार्ड में अंकित राशि तक का माल उधार खरीद सकता है। विदेशों में इन कार्डों का बड़ा चलन है। भारत में भी कुछ अधिकोष क्रेडिट कार्ड का निर्गमन करते हैं।

क्रेडिट कार्ड के निर्गमन से पूर्व निर्गमक अधिकोष अपने भावी कार्ड धारक की साख की जांच करता है और जब वह प्रार्थी की साख को पूर्व निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप पाता है तो उसे अपना क्रेडिट कार्ड दे देता है। ये कार्ड सामान्यतः 6 माह से 1 वर्ष के लिए जारी किए जाते हैं। इस अवधि की समाप्ति पर कार्डधारी को साख का पुनर्वीक्षण किया जाता है और उसके परिप्रेक्ष्य में कार्ड की अधिकतम साख सीमा में वृद्धि या कमी कर दी जाती है अथवा कार्ड पूर्णतः निरस्त कर दिया जाता है। ये कार्ड एक निश्चित् राशि के लिए निर्गमित किए जाते हैं। अतएव धारक को एक समय में इसमें अंकित राशि से अधिक राशि की वस्तुएं/सेवाएं नहीं मिल सकतीं। जब एक विक्रेता इस सीमा का अतिक्रमण करता है तो वह ऐसा अपनी स्वयं की जोखिम पर करता है।

क्रेडिट कार्ड की योजना को चालू करने से पूर्व एक अधिकोष को अपने ग्राहकों की साख का सर्वेक्षण करवाना पड़ता है और अपने क्षेत्र के विक्रेताओं से कार्ड के आधार पर साख स्वीकृत करने का अनुबन्ध करना पड़ता है। ये विक्रेता कार्डधारियों को उनके कार्ड पर उपभोक्ता सामग्री/सेवा दे देते हैं और बैंक से प्राप्त विक्रय-पत्रों पर उनकी आवश्यक प्रविष्टियां कर उन्हें बैंक को लौटा देते हैं। निर्गमक अधिकोष इन विक्रय-पत्रों के आधार पर विक्रेता व कार्डधारी के खातों में आवश्यक प्रविष्टियां कर देता है।

निर्गमक अधिकोष इन विक्रय-पत्रों के आधार पर प्रत्येक कार्डधारी के पास उसका मासिक हिसाब भेजता है व एक निश्चित् अवधि में देय-राशि के भुगतान का आग्रह करता है। भुगतान के लिए कुछ अनुग्रह दिवस भी स्वीकृत किए जाते हैं। जो कार्डधारी विलम्ब से भुगतान करते हैं उनसे कार्ड की स्वीकृत राशि पर ब्याज व सेवा शुल्क लिया जाता है। इस योजना के माध्यम से अधिकोषों को अपने व्यवसाय में वृद्धि करने का एक अवसर प्राप्त होता है किन्तु यह एक व्यय साध्य योजना है।

वैयक्तिक साखपत्रों के भुगतान में अपेक्षित सावधानियां :—शोधी अधिकोष इन साखपत्रों के भुगतान से पूर्व निम्नांकित सावधानियों को काम में लेता है :

(i) यथार्थता :—एक साखपत्र का भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष उसकी यथार्थता की जांच करता है। इस हेतु वह ग्राहक द्वारा बनाए गए हस्ताक्षरों को प्रधान कार्यालय से प्राप्त हस्ताक्षरों से मिलान करता है। निर्गमक अधिकोष से प्राप्त 'बैंक एडवाइस' भी इसमें सहायक सिद्ध हो सकती है।

(ii) राशि :—साखपत्र एक निश्चित् राशि के लिए लिखे जाते हैं। अतः भुगतान से पूर्व उनके पूर्व भुगतानों व शेष भुगतान योग्य राशि की जांच करनी पड़ती है।

अधिकतम राशि से अधिक भुगतान करने पर आधिक्य के लिए शोधी अधिकोष व्यक्तिशः दायी होता है। कुछ साखपत्र एक निश्चित अभिदान के होते हैं और उनका भुगतान उनके अभिदानानुसार ही किया जाता है। अतएव ऐसे साखपत्रों की राशि की जाँच की आवश्यकता नहीं होती है।

(iii) अवधि :—साखपत्र एक निश्चित अवधि के लिए निर्गमित किए जाते हैं। उस अवधि के पश्चात् उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है और अवधि पार साखपत्रों का भुगतान केवल निर्गमक अधिकोष द्वारा किया जाता है। अतएव शोधी अधिकोष को भुगतान के लिए प्रस्तुत साख-पत्रों की अन्तिम तिथि पर अवश्य ध्यान देना पड़ता है।

(iv) प्रापक का परिचय :—साखपत्र अहस्तांतरणशील होते हैं। अतएव इनके भुगतान से पूर्व शोधी अधिकोष को उनके प्रापक के स्वामित्व के बारे में सन्तुष्ट होना पड़ता है। प्रापक की यथार्थता उसके नमूने के हस्ताक्षरों, परिचय-पत्र पर लगाए गए फ़ोटो व अन्य सम्बन्धित प्रश्नों की सहायता से ज्ञात की जा सकती है।

व्यावसायिक साख-पत्र (Business Letters of Credit) के पक्ष

व्यावसायिक साखपत्र सामान्यतः आयात-निर्यात की सुविधार्थ निर्गमित किए जाते हैं और इनके निम्नांकित पाँच पक्ष होते हैं :—

(i) उद्घाटक (Opener) : जिस व्यक्ति के आवेदन पर साख खोली जाती है उसे साख का खुलवाने वाला कहा जाता है। सामान्यतः उद्घाटक माल का आयातक होता है। यह साखपत्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है क्योंकि इस व्यक्ति की प्रेरणा पर ही साखपत्र का निर्गमन किया जाता है। इसे Accredited Bayer व Account Party भी कहा जाता है। स्वीकृत साख के भुगतान के लिए अन्ततोगत्वा यही व्यक्ति उत्तरदायी होता है।

(ii) निर्गमक अधिकोष (Issuing Banker) :—जो अधिकोष साख खोलता है उसे निर्गमक या साख खोलने वाला अधिकोष कहा जाता है। यह अधिकोष विदेशी विनिमय में कार्य करने वाला अधिकोष होता है और आयातक के देश अथवा अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक केन्द्र पर कार्य करता है। यह अधिकोष साख के लाभार्थी को अभिकर्ता अधिकोष के माध्यम से सूचित करता है और अभिकर्ता या परक्रामक अधिकोष के माध्यम से उसका भुगतान करता है।

(iii) अभिकर्ता अधिकोष (Correspondant Bank) :—यह अधिकोष सामान्यतः लाभार्थी के देश में कार्य करता है। यह अधिकोष लाभार्थी को साख की शर्तों से अवगत करता है। यह अधिकोष सामान्यतः निर्गमक अधिकोष का प्रधान शाखा कार्यालय अथवा कोई अभिकर्ता होता है। यह अधिकोष चाहे तो साख के भुगतान की अपनी ओर से गारन्टी भी दे सकता है। जब पुष्टियुक्त साखपत्र लिखे जाते हैं तब उनके भुगतान के लिए यह अधिकोष भी उत्तरदायी होता है। यह अधिकोष निर्यातक के विपत्रों का निर्गमक अधिकोष की ओर से भुगतान करता है अथवा उन पर अपनी स्वीकृति देता है और निर्यातक से प्राप्त प्रलेखों को निर्गमक अधिकोषों के पास भेज देता है।

(iv) लाभार्थी (Beneficiary) :—जो व्यक्ति साख-पत्र की शर्तों के अनुसार विपत्र लिखता है और खोली गई साख के अन्तर्गत भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी होता है उसे लाभार्थी कहा जाता है। सामान्यतः माल का निर्यातक ही साख का लाभार्थी होता है। इसे स्वीकृत साख की शर्तों के अनुसार विपत्र लिखने व उसकी शर्तों के पालन करवाने

का अधिकार होता है। लाभार्थी सदैव पुष्टिकृत साख खुलवाने का प्रयास करता है क्योंकि ऐसी साख उसे सदैव पूर्ण संरक्षण प्रदान करती है। लाभार्थी जब जहाज/रेल/वायुयान पर माल लदवाता है तो आयातक पर विपत्र लिखता है, उसके साथ सम्बद्ध प्रलेख लगाता है और उसे परक्रामक अधिकोष के पास भुगतान/स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है।

(५) परक्रामक अधिकोष (Negotiating Bank) :—यह अधिकोष निर्गमक अधिकोष का अभिकर्ता अथवा लाभार्थी का अधिकोष होता है। सामान्यतः इस अधिकोष की आवश्यकता नहीं पड़ती है किन्तु जब अभिकर्ता अधिकोष निर्यातक के नगर में नहीं होता है तब निर्यातक को सुविधायें ऐसे अधिकोष की नियुक्ति करनी पड़ती है। यह अधिकोष अपनी सेवाओं का मूल्य अभिकर्ता अधिकोष से व अभिकर्ता अधिकोष इन शुल्कों को निर्गमक अधिकोष से वसूल करता है। यह अधिकोष निर्यातक के विपत्र का भुगतान करता है अथवा उस पर अपनी स्वीकृति देता है। ये दोनों कार्य वह तभी करता है जबकि वह विपत्र की पूर्णता व साख की शर्तों के अनुपालन की ओर से पूर्णतः आश्वस्त हो जाता है। यह अधिकोष भुगतान शुदा या स्वीकृत विपत्रों को अभिकर्ता अधिकोष के समक्ष प्रस्तुत करता है और उससे तत्काल या परिपक्व तिथि पर भुगतान ले लेता है। जब निर्गमक अधिकोष किसी साख को निरस्त कर देता है तो परक्रामक अधिकोष निरस्तीकरण के आदेश की प्राप्ति के पश्चात् विक्रेता के किसी भी विपत्र का न तो भुगतान करता है और न ही उस पर अपनी स्वीकृति देता है।

व्यावसायिक साखपत्रों के प्रकार :—व्यावसायिक साखपत्रों को मुख्यतः निम्नांकित भागों में बाँटा जाता है :—

(१) मुक्त व लेख्य साखपत्र (Open & Documentary Letters of Credit):—जब साख-पत्र का निर्गमक अधिकोष साखपत्र के अन्तर्गत लिखे जाने वाले विपत्रों की स्वीकृति के लिए अपनी ओर से कोई शर्त नहीं रखता है तो ऐसे साख पत्र को शर्तहीन, खुला या मुक्त साख-पत्र कहा जाता है। इस प्रकार की साख स्वीकृत करने वाले अधिकोष को अपनी राशि की वसूली के लिए विपत्र के विभिन्न पक्षों की साख, आर्थिक स्थिति आदि पर आश्रित रहना पड़ता है। जब निर्गमक अधिकोष साख-पत्र में विपत्र के साथ माल के अधिकार-पत्रों यथा जहाजी बिल्टी, बीजक, उद्गम का प्रमाण पत्र आदि को संलग्न करने की शर्त लगा देता है तो उस साख पत्र को प्रलेखीय साख-पत्र कहा जाता है। इस साख पत्र के निर्गमक अधिकोष की स्थिति काफी सुदृढ़ रहती है क्योंकि अनादरण की अवस्था में निर्गमक अधिकोष अपने ऋणों की वसूली के लिए संलग्न प्रलेखों का हस्तांतरण कर सकता है अथवा आयातित माल का विक्रय कर सकता है।

(ii) निश्चित एवं आवर्ती राशि का साख पत्र (Fixed & Revolving amount, Letters of credit) :—जब एक अधिकोष एक निश्चित राशि व निश्चित अवधि वाला साख पत्र निर्गमित करता है और उस राशि के आहरण के पश्चात् जब साख पत्र स्वतः ही समाप्त हो जाता है तो उस साख पत्र को निश्चित राशि वाला साखपत्र कहा जाता है। इस पत्र के अन्तर्गत स्वीकृत राशि को एक मुश्त अथवा किश्तों में आहरित किया जा सकता है। आवर्ती साख वाले साखपत्रों का निर्गमन भी एक निश्चित राशि व निश्चित अवधि के लिए किया जाता है किन्तु इनके जीवन काल में इनके नवीनीकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जब इन साखपत्रों के अन्तर्गत लिखे गए किसी विपत्र का निर्गमक अधिकोष

भुगतान कर देता है तो स्वीकृत आवर्ती साख आनुपातिक रूप से कम हो जाती है किन्तु जब साखपत्र का खुलवाने वाला विपत्र की राशि अपने अधिकोष के पास जमा करवा देता है तो स्वीकृत साख पुनः अपने मूल बिन्दु पर पहुँच जाती है। इस प्रवृत्ति के कारण ही इन्हें आवर्ती साख-पत्र कहा जाता है।

(iii) प्रतिसंहार्य व अप्रतिसंहार्य साखपत्र (Revocable & Irrevocable letters of credit) :—जब निर्गमक अधिकोष स्वीकृत साख को स्वविवेक से किसी भी निरस्त अथवा परिवर्तित करने के लिए अधिकृत होता है तो उस साख को प्रतिसंहार्य साख व साखपत्र को प्रतिसंहार्य साखपत्र कहा जाता है। सामान्यतः निर्गमक अधिकोष अपने ग्राहकों के साथ इतना निर्मम व्यवहार नहीं करता है और एक साखपत्र को निरस्त करने से पूर्व उसके क्रेता को विश्वास में लेता है और निरस्तीकरण की सूचना देने से पूर्व उसके पास जितने भी विपत्र पहुँचते है उनका वह भुगतान कर देता है। जब निर्गमक अधिकोष अपने साखपत्र के निरस्तीकरण की सूचना परक्रामक अधिकोष को दे देता है तो उस सूचना प्राप्ति के पश्चात् वह निरस्त साखपत्र के अन्तर्गत निर्गमित किसी भी विपत्र की कटौती नहीं कर सकता। अप्रतिसंहार्य साखपत्र को भी निरस्त किया जा सकता है किन्तु उसके निरस्तीकरण अथवा संशोधन से पूर्व निर्गमक अधिकोष को सभी पक्षों की सहमति लेनी पड़ती है। मूल साखपत्र को निरस्त/संशोधित करने से पूर्व उसे लाभार्थी से वापस ले लिया जाता है। निर्यातक की दृष्टि से अप्रतिसंहार्य साखपत्र श्रेष्ठतर माने जाते हैं क्योंकि इन साखपत्रों के निर्गमन पर वह माल के निर्माण/एकत्रीकरण में निःशंक जुट जाता है, भुगतान के लिए निश्चित रहता है व स्वीकृत विपत्रों को अच्छी दर पर बेच सकता है।

(iv) पुष्टिकृत व अपुष्टिकृत साख-पत्र (Confirmed & Unconfirmed letters of credit) :—जब निर्गमक अधिकोष के निर्देश पर अभिकर्ता अधिकोष साख की पुष्टि कर देता है अर्थात् अपनी ओर से भुगतान की गारण्टी दे देता है तो उस साख को पुष्टिकृत साख व साखपत्र को पुष्टिकृत साखपत्र कहा जाता है। पुष्टिकृत साख अप्रतिसंहार्य होती है। साख की पुष्टि करते समय अभिकर्ता अधिकोष साखपत्र पर यह अंकित करता है कि हम हमारे ऊपर निर्देशानुसार लिखे गए व प्रस्तुत किए गए विपत्रों के भुगतान की गारण्टी देते हैं। जब अभिकर्ता अधिकोष साख की पुष्टि नहीं करता है तो ऐसी साख को अपुष्टिकृत साख व ऐसे साखपत्रों को अपुष्टिकृत साखपत्र कहा जाता है। *पुष्टिकृत साखपत्र निर्यातक की दृष्टि से श्रेष्ठतम होते हैं क्योंकि ये साखपत्र उसे इस बात* से आश्वस्त करते हैं कि देय-तिथि पर उसके विपत्रों का भुगतान अवश्यमेव हो जाएगा। इस साख के कारण उसका अपने विपत्रों पर किसी प्रकार का कोई दायित्व नहीं रहता है जबकि अपुष्टिकृत साख की अवस्था में उसका प्रासंगिक दायित्व बना रहता है।

(v) दायित्वहीन व दायित्वपूर्ण साखपत्र (With & without recourse letters of credit) :—जब निर्यातक साखपत्र में अपनी ओर से यह शर्त लगा देता है कि अनादरण की अवस्था में वह साखपत्र के अन्तर्गत लिखे गए विपत्रों के भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा तो ऐसी साख को दायित्वहीन साख व ऐसे साखपत्रों को दायित्वहीन साखपत्र कहा जाता है। जब ऐसे विपत्रों का अनादरण हो जाता है तो परक्रामक/अभिकर्ता अधिकोष माल के अधिकार-पत्रों को अपने अधिकार में ले लेता है, सम्बन्धित माल को छुड़वा लेता है व उसके विक्रय द्वारा विपत्र की राशि की वसूली का प्रयास करता है।

जब विपत्र की सम्पूर्ण राशि की वसूली नहीं हो पाती है तो अभिकर्ता/परक्रामक अधिकोष को आयातक के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने का भी अधिकार होता है। जब निर्यातक अनादरण की अवस्था में विपत्र की राशि को लौटाने का दायित्व लेता है तो उस साख को दायित्वपूर्ण साख कहा जाता है।

(vi) हस्तान्तरणीय व अहस्तान्तरणीय साख-पत्र (Transferable & Non-transferable letters of credit) :—जब लाभार्थी को अपनी साख को पूर्णतः या अंशतः अभिहस्तांकन का अधिकार प्राप्त होता है तो उस साख को हस्तांतरणीय साख कहा जाता है। यह साख लाभार्थी के निर्देश पर खोली जाती है और साखपत्र में लाभार्थी के नाम के आगे 'अथवा अभिहस्तांकिती' शब्द अंकित किया जाता है। लाभार्थी के निर्देश पर अभिकर्ता अधिकोष आदेशित व्यक्ति के पक्ष में साखपत्र का निर्गमन कर देता है। सामान्यतः यह साख मध्यस्थ व्यापारियों द्वारा खुलवाई जाती है। मध्यस्थ व्यापारी अपनी साख को मूल उत्पादक के पक्ष में हस्तांतरित करता है किन्तु यह कार्य अत्यन्त गोपनीय ढंग से किया जाता है अर्थात् साख के हस्तांतरण के समय न मूल उत्पादक को वास्तविक आयातक का पता लग पाता है और न आयातक को मूल उत्पादक का पता लग पाता है। जब मूल उत्पादक अपने साखपत्र के आधार माल-सम्बन्धी प्रलेखों को भुगतान हेतु प्रस्तुत करता है तो अभिकर्ता अधिकोष उनका भुगतान कर देता है व तदुपरान्त उत्पादक के बीजक का मध्यस्थ के बीजक से प्रतिस्थापन करता है और उसे अन्य प्रलेखों के साथ आयातक के पास भेज देता है। जब अभिकर्ता अधिकोष को आयातक से भुगतान प्राप्त हो जाता है तो उसमें से अपना व्यय, शुल्क व उत्पादक को दी गई राशि काट लेता है और शेष राशि का मध्यस्थ को भुगतान कर देता है। जिस साख-पत्र में साख हस्तांतरण की सुविधा नहीं होती है उसे अहस्तांतरणीय साख-पत्र कहा जाता है।

प्रलेखीय साख की प्रक्रिया (Procedure of Documentary credit)

प्रलेखीय साख-प्रक्रिया को निम्नांकित छः भागों में बाँटा जा सकता है :—

(1) साखपत्र के लिए आवेदन करना :—साखपत्र के निर्गमन के लिए आयातक को अपने अधिकोष के समक्ष एक लिखित आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। वह इस आवेदन को अपनी इच्छा से अथवा निर्यातक के निर्देश पर प्रस्तुत करता है। इस आवेदन-पत्र को 'लेटर ऑफ रिक्वेस्ट' अथवा 'साख-पत्र के लिए आवेदन-पत्र' कहा जाता है। यह प्रार्थना पत्र अधिकोषों से निःशुल्क प्राप्त होता है। आवेदक को साख का क्रेता कहा जाता है और जिस अधिकोष से आवेदन किया जाता है उसे निर्गमक अधिकोष कहा जाता है। आवेदक को इस पत्र पर प्रचलित नियमानुसार राजस्व टिकट लगाने पड़ते हैं और आवेदन-पत्र के साथ आयात अनुज्ञा-पत्र व विदेशी मुद्रा के भुगतान का अनुमति-पत्र लगाना पड़ता है।

प्रार्थनापत्र में प्रार्थी को साखपत्र की समस्त शर्तों व अन्य आवश्यक तथ्यों का स्पष्टतः उल्लेख करना पड़ता है अन्यथा भविष्य में किसी भी विषय पर विवाद उठ सकता है। सामान्यतः इस प्रार्थना-पत्र में निम्नांकित तथ्यों का उल्लेख किया जाता है :—

(i) साखपत्र की विभिन्न शर्तें व तत्सम्बन्धी अन्य विवरण;
(ii) लाभार्थी का नाम व पता;
(iii) माल की मात्रा व प्रकृति;

PROFORMA OF LETTER OF REQUEST

The Agent,
National & Grindlays Bank,
New Delhi.
No........ Date...........

Dear sir,

I request you to open by cable, on my account a confirmed, irrevocable credit with the Bank of ....…port ....in favour of Messrs..................., there, for a sum not exceeding of .... subject to the conditions appended hereto, available by their draft at 60 days' sight on yourself, if accompanied by the following documents :

1. Full set 'on boara' bills of lading made out to shipper's order & endorsed by them in blank;
2. Commercial invoices;
3. Insurance Policy covering marine and war risks, including that of floating mines;
4. In respect of shipment c. i. f. January-February next, of two hundred tous of glycerine, Commercially pare, port.... .... to..........at I ....per ton.

I hereby engage to keep you provided with funds to meet drafts drawn regularly hereunder and to cover you for the amount of all commissions, charges & expenses incurred. The goods or relative documents are to be held by you as a security for the payment of the said drafts & charges. In the event of my failing to provide you with the requisite funds you are hereby authorised without notice or waiting for my assent, to sell the goods & apply the net proceeds against the drafts. And I undertake to pay you the sum required to clear any deficiency remaining after such sale.

Yours Truely
R. K. Khanna
Manager
A. B. C. Pvt. Ltd.

(iv) आयातित माल का सम्पूर्ण विवरण (वस्तु नाम, मात्रा, गुण, मूल्य, आवेष्टन, उद्गम स्थान आदि);

(v) विक्रय की शर्तें यथा लागत व भाड़ा; लागत, बीमा व भाड़ा; जहाज पर निःशुल्क लदान आदि;

(vi) सामान लदवाने का समय, माल लदवाने की किश्तें;

(vii) सलग्न किए जाने वाले अधिकार-पत्रों का पूर्ण विवरण;

(viii) विपत्र की प्रकृति-दर्शनी या सावधि, डी० ए० या डी० पी०;

(ix) साखपत्र की सूचना भेजने की विधि—तार/पत्र

(x) क्या आयातक को निर्गमक अधिकोष का संवाददाता अधिकोष स्वीकार्य है? यदि नहीं, तो वैकल्पिक संवाददाता अधिकोष का नाम;

(xi) साखपत्र की समाप्ति की तारीख;

(xii) विपत्र के आहार्यी का नाम;

(xiii) क्या अभिकर्ता अधिकोष द्वारा साख की पुष्टि अनिवार्य है;

(xiv) जहाजी मार्ग का नाम और

(xv) अन्य विशिष्ट अनुदेश।

(ii) साख पत्र का निर्गमन :—निर्गमक अधिकोष साखपत्र के निर्गमन से पूर्व प्राप्त साख आवेदन-पत्र का आद्योपान्त अवलोकन करता है। जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि आवेदन-पत्र सही भरा गया है और प्रार्थना-पत्र द्वारा (i) अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य चेम्बर द्वारा निर्धारित आचरण संहिता (ii) विदेशी विनिमय नियंत्रण के नियमों और (iii) बैंक के नियमों का पालन हो रहा है तो वह इच्छित साख-पत्र का निर्गमन कर देता है और उसकी मूल प्रति निर्यातक के देश में कार्यरत अपने प्रतिनिधि अधिकोष के पास आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज देता है। निर्गमक अधिकोष अपने साख-पत्र में इस तथ्य का उल्लेख कर देता है कि अन्य बातों के समान रहने पर इस साख-पत्र पर अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य चेम्बर की आचार संहिता लागू होगी। निर्यातक अधिकोष का प्रतिनिधि अधिकोष साखपत्र के खुलने की सूचना निर्यातक के अधिकोष के पास और निर्यातक का अधिकोष इसे अपने सम्बन्धित ग्राहक के पास भेज देता है। जब प्रतिनिधि अधिकोष को साख की पुष्टि हेतु कहा जाता है तो वह उसकी पुष्टि भी करता है।

(iii) निर्यातक द्वारा प्रलेख तैयार करना : निर्यातक को ज्यों ही साख खुलने की सूचना मिलती है त्योंही वह आयातकर्ता के निर्देशानुसार माल का आयोजन करता है, उसका रेल, जहाज या वायुयान द्वारा लदान करवाता है और आहार्य पर पूर्व निर्धारित शर्तानुसार एक विनिमय-पत्र लिखता है। वह इस विनिमय पत्र के साथ बीजक, बीमा प्रमाण-पत्र, उद्गम का प्रमाण-पत्र गुणवत्ता व भार प्रमाण-पत्रादि व जहाजी/रेल्वे बिल्टी भी संलग्न करता है। निर्यातक इस बिल को अपने अधिकोष को दे देता है और वह इसे प्रतिनिधि अधिकोष के पास भुगतान/स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है। जब प्रतिनिधि अधिकोष इस बिल का भुगतान कर देता है तो वह भुगतान की राशि को निर्गमक अधिकोष के नाम लिख देता है और निर्गमक अधिकोष इस राशि को उसके खाते में जमा कर लेता है।

(iv) निर्गमक अधिकोष को प्रलेख भेजना :—भुगतान या स्वीकृति के पश्चात् प्रतिनिधि अधिकोष विपत्र से सलग्न प्रलेखों को निर्गमक अधिकोष के पास भेज देता है। जब प्रतिनिधि अधिकोष विपत्र का भुगतान कर देता है तो वह इन प्रलेखों के साथ डेबिट नोट (कमीशन आदि के लिए) भी सलग्न कर देता है। प्राप्ति पर निर्यातक अधिकोष इन प्रलेखों की जाँच करता है और सही पाने पर अभिकर्ता अधिकोष को पावती-पत्र भेजता है अन्यथा उसे शिकायती-पत्र भेजता है।

(v) आयातक को प्रलेख भेजना :—निर्गमक अधिकोष प्राप्त प्रलेखों को आयातक को सौंप देता है। इन प्रलेखों को सुपुर्द करने से पूर्व वह आयातक से अनुबन्ध की शर्तानुसार माल का भुगतान लेता है या अपने पक्ष मे लिखित/पृष्ठांकित विनिमय पत्र लेता है या इसके खाते मे उतनी राशि नाम लिख देता है।

(vi) आयातक द्वारा माल छुड़वाना :—जब आयातक को माल सम्बन्धी प्रलेख मिल जाते हैं तो वह उन्हे बन्दरगाह अधिकारियो के समक्ष प्रस्तुत करता है और माल की सुपुर्दगी लेता है। यदि माल की सुपुर्दगी के समय उसे माल कम मिलता है अथवा टूटी-फूटी अवस्था में मिलता है तो वह सुपुर्दगी रजिस्टर में इस आशय का नोट लगा देता है और क्षतिपूर्ति के लिए सम्बन्धित विभागों के विरुद्ध दावा करता है।

व्यापारिक साख-पत्र व अधिकोषों का दायित्व :—व्यापारिक साखपत्रों के सम्बन्ध मे निर्गमक अधिकोष व अभिकर्ता अधिकोष का विशेष दायित्व होता है। निर्गमक अधिकोष एक प्रमुख पक्षकार के रूप मे कार्य करता है। अतएव उसका यह दायित्व होता है कि वह साखपत्र के आधार पर लिखे गए विपत्रों के भुगतान व स्वीकृति की समुचित व्यवस्था करे। यह व्यवस्था अभिकर्ता अधिकोष के माध्यम से की जाती है। अभिकर्ता अधिकोष का यह दायित्व है कि वह साखपत्र की शर्तानुसार लिखे गए विपत्रों पर स्वीकृति दे अथवा उसका अविलम्ब भुगतान करे। शर्तें पूरी न होने पर वह स्वीकृति/भुगतान के लिए मना कर सकता है। अखण्डनीय साखपत्र की अवस्था में निर्गमक अधिकोष का यह दायित्व हो जाता है कि साखपत्र के सशोधन/निरस्तीकरण से पूर्व सभी पक्षों की सहमति ले ले अन्यथा प्रस्तावित कदम के परिणामों के लिए वह स्वयं उत्तरदायी होगा।

साखपत्रों का महत्त्व :—व्यावसायिक दृष्टि से प्रलेखीय साख का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि यह साख आयातक व निर्यातक दोनो के लिए उपादेय होती है और अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार की अभिवृद्धि मे सहायता करती है। इससे आयातक को निम्नांकित लाभ होते हैं :—

(i) शर्तों के अनुरूप माल की प्राप्ति :—प्रलेखीय साख के कारण आयातक निर्यातक से अपनी कुछ महत्त्वपूर्ण शर्तों यथा माल की किस्म, गुणवत्ता, बीमा, उद्गम, यात्रा-मार्ग, माल भेजने का साधन आदि का अनुपालन करवाने मे समर्थ हो जाता है क्योंकि इन शर्तों की पूर्ति पर ही अभिकर्ता अधिकोष निर्यातक को माल का भुगतान करता है अथवा उसके विपत्र को स्वीकार करता है। उसे इन शर्तों-सम्बन्धी समस्त प्रमाण-पत्र अपने विपत्र के साथ संलग्न करने पड़ते हैं और जब शोधी अधिकोष इनकी विश्वसनीयता व साखपत्र की अन्य शर्तों की पूर्ति से आश्वस्त हो जाता है तभी वह निर्यातक के विपत्र का भुगतान करता है।

(ii) माल की रवानगी की निश्चितता :—प्रलेखीय विपत्र के साथ रेलवे रसीद, जहाजी बिल्टी आदि सलग्न की जाती है जो माल के लदान का विश्वसनीय प्रमाण होती

है। अतएव आयातक को माल के एक निश्चित समय तक पहुँचने का पूर्ण विश्वास रहता है इस निश्चितता के कारण वह अनुकूल अवसर आने पर जहाजी बिल्टी के आधार पर अपने माल को गन्तव्य स्थल पर पहुँचने से पूर्व भी बेच सकता है।

(iii) उदार शर्तों पर माल का मिलना :—प्रलेखीय साख 'नकद भुगतान' के समकक्ष होती है। अतएव प्रलेखीय साख के अन्तर्गत उसे सामान्यतः नकद छूट मिलने की सम्भावना रहती है व निर्यातक पर नैतिक दबाव डालने पर वस्तुओं की दर में भी कुछ कमी की सम्भावना रहती है।

(iv) मितव्ययी पद्धति :—भुगतान की यह पद्धति अन्य पद्धतियों से सस्ती है और बड़ी बड़ी धन राशियों का सुगमतापूर्वक व बिना किसी जोखिम के स्थानान्तरण किया जा सकता है।

प्रलेखीय साख से निर्यातक निम्न प्रकार से लाभान्वित होते हैं :

(i) भुगतान की निश्चितता :—इस साख के अन्तर्गत निर्गमक अधिकोष निर्यातक को माल के भुगतान का आश्वासन देता है। बैंक यह आश्वासन अपने ग्राहक की साख व आर्थिक व्यवहारों के आधार पर देता है। जब अखण्डनीय और पुष्टिकृत साख स्वीकृत की जाती है तब भुगतान की स्थिति और भी निश्चित हो जाती है क्योंकि इस साख को उसकी सहमति के बिना निरस्त नहीं किया जा सकता।

(ii) अविलम्ब भुगतान :—इस पद्धति के अन्तर्गत निर्यातक को जहाज पर माल लदवाते ही अपने माल का पूरा पैसा मिल जाता है, उसे माल के गन्तव्य स्थल पर पहुँचने तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जब माल उधार बेचा जाता है तो उसे अपने सावधि विपत्र पर अभिकर्ता अधिकोष से अविलम्ब स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। वह इस स्वीकृत विपत्र को किसी भी अधिकोष/व्यक्ति से कटौती करवा सकता है और आवश्यक धनराशि प्राप्त कर सकता है।

(iii) अधिकोषों से अग्रिम वित्त की प्राप्ति :—प्रलेखीय साख निर्यातक की ऋण शोधन क्षमता में वृद्धि कर देती है। अतः इस साख के आधार पर उसे अपने अधिकोष से ऋण अथवा 'प्रथम पर आधारित द्वितीय' साख प्राप्त हो जाती है। यह साख अभिकर्ता अधिकोष द्वारा पूर्व स्वीकृत साख के आधार पर, निर्यातक की प्रेरणा पर, उसके आपूर्तिकर्ता के पक्ष में खोली जाती है।

(iv) हस्तान्तरण जोखिम की समाप्ति :—जब प्रलेखीय साख खोल दी जाती है तो सामान्यतः उसका भुगतान अवश्यमेव किया जाता है क्योंकि इस साख का भुगतान न करने पर देश के बैंकिंग उद्योग की प्रतिष्ठा को विदेशों में आघात लगता है। इसलिए जब विनिमय नियन्त्रण कानून में संशोधन किया जाता है तो उन संशोधनों को पुराने अनुबन्धों पर लागू नहीं किया जाता है। इस प्रकार इस साख के अन्तर्गत हस्तान्तरण जोखिम न्यूनतम रहती है।

प्रलेखीय साख का व्यापारिक अधिकोषों व अन्य उद्योगों के लिए भी विशेष महत्त्व है। बैंकों को इस साख के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। उनकी इस भूमिका के कारण उनके व्यवसाय में वृद्धि होती है और उनका विदेशी विनिमय विभाग उन्नत होने लगता है। इसकी भूमिका औद्योगिक विकास व विदेशी व्यापार को भी प्रोत्साहन प्रदान करती है।

स्वीकृति साख (Acceptance credit) :—

जब एक आयातक को विदेशी विपत्र के आधार पर साख स्वीकृत की जाती है तो साख को स्वीकृति साख कहा जाता है। इस साख के अन्तर्गत निर्यातक आयातक पर एक विपत्र लिखता है और माल-सम्बन्धी प्रलेख इससे संलग्न कर देता है। यह विपत्र 'स्वीकृति पर प्रलेख' (Doeuments Against Acceptance) अथवा 'भुगतान पर प्रलेख' (Documents Against Payment) हो सकता है। जब दर्शनी विपत्र लिखा जाता है तो वह 'भुगतान पर प्रलेख' होता है अन्यथा 'स्वीकृति पर प्रलेख' हो जाता है। इस विपत्र की स्वीकृति अथवा भुगतान का कार्य आयातक के बैंक द्वारा किया जाता है क्योंकि इस प्रकार की स्वीकृति को श्रेष्ठतम माना जाता है और भुगतान में निश्चितता रहती है।

विपत्र पर स्वीकृति देने से पूर्व आयातक का अधिकोष आयातित माल को बन्धक अथवा न्यास स्वरूप रखने का अनुबन्ध कर लेता है। प्रथम अवस्था में आयातित माल स्वीकारक के अधिकार में रहता है और आयातक सुविधानुसार भुगतान करके अपना माल छुड़वाता रहता है। द्वितीय अवस्था में माल की सुपुर्दगी ग्राहक को कर दी जाती है किन्तु उससे एक पत्र ले लिया जाता है जिसे न्यास पत्र कहा जाता है। इस पत्र द्वारा आयातक यह लिखित घोषणा करता है कि आयातित माल पर स्वीकारक अधिकोष का अधिकार है। वह तो माल को केवल न्यास स्वरूप रख रहा है और माल के बिकते ही वह माल का भुगतान कर देगा।

कभी-कभी आयातक स्वयं अपने अधिकोष पर विपत्र लिखता है स्वीकृति के पश्चात् उसकी कटौती करवाता है और कटौती से प्राप्त राशि निर्यातक को भेजता है अथवा स्वीकृत विपत्र को निर्यातक को भेज देता है। ऐसा तब किया जाता है जब निर्यातक अग्रिम भुगतान के लिए दबाव डालता है।

: प्रश्न :

1. अधिकोषों द्वारा निर्गमित किए जाने वाले विभिन्न साखपत्रों की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए और इनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(लखनऊ बी. कॉम., 1974)

2. अन्तर बताइए :
   (i) यात्री साखपत्र एवं गश्ती साखपत्र
   (ii) पुष्टिकृत साख एवं आवर्ती साख
   (iii) प्रलेखी साख एवं लन्दन स्वीकृति साख

(राज. वि वि., बी कॉम, 1961)

3. अन्तर लिखिए :
   (i) प्रतिसंहार्य एवं अप्रतिसंहार्य साख
   (ii) यात्री साख-पत्र तथा यात्री चैक

(राजस्थान, बी. कॉम., 1964)

4. विभिन्न प्रकार के साखपत्रों की व्याख्या कीजिए (राजस्थान बी. कॉम,1965)

9

विनिमय साध्य विलेख

(NEGOTIABLE INSTRUMENTS)

परिभाषा :—विनिमय साध्य विलेखों को परिभाषित करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है। विभिन्न लेखकों ने इन विलेखों की परिभाषा देने का प्रयास किया है किन्तु *अधिकांश परिभाषाएँ असंतोषजनक ही प्रमाणित हुई हैं।*

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 13 (i) के अनुसार "एक विनिमय साध्य विलेख" से तात्पर्य एक प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory Note), बिल (Bills of Exchange) अथवा चैक से है जिसका भुगतान वाहक को अथवा आदेशानुसार हो सकता है।[1] विनिमय साध्य विलेखों की सरलतम परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि "जिन विलेखों का परक्रामण किया जा सके उन्हें विनिमय साध्य विलेख कहा जाता है।" किन्तु *यह परिभाषा अपने आप में पूर्ण नहीं है।* विलिस (Willis) महोदय ने इन विलेखों की परिभाषा देते हुए कहा कि विनिमय साध्य विलेख "वह विलेख है जिसके प्राप्त को विलेख को सद्विश्वास एवं प्रतिफल स्वरूप प्राप्त करने पर विलेख की सम्पत्ति पर अधिकार हो *जाता है चाहे हस्तांतरक का अधिकार दूषित ही हो।*"[2] इस परिभाषा में भी विनिमय साध्य विलेखों की सम्पूर्ण विशेषताओं का समावेश नहीं हो पाया है। अतः इसे भी विनिमय साध्य विलेख की आदर्श परिभाषा नहीं कहा जा सकता। थॉमस (Thomas) द्वारा "बैंकिंग सिद्धान्त" में दी गई परिभाषा को विनिमय साध्य विलेखों की उपलब्ध परिभाषाओं में श्रेष्ठतम माना जाता है. अतः उस परिभाषा को उद्धृत करना उपयुक्त होगा। थॉमस के अनुसार—"विनिमय साध्य विलेखों का तात्पर्य उन विलेखों से है जिनका विधि या विधि द्वारा मान्यता प्राप्त प्रथाओं द्वारा सुपुर्दगी अथवा सुपुर्दगी एवं पृष्ठांकन द्वारा इस प्रकार से हस्तांतरण हो जाता है कि धारक (हस्तांतरी) अपने नाम से इन विलेखों का दावा प्रस्तुत कर सकता है व मूल्य एवं सद्विश्वासपूर्वक प्राप्त करने पर वह इन विलेखों में निहित संपत्ति का स्वामी बन जाता है, चाहे हस्तांतरक का उस पर अधिकार दूषित ही हो।"[3]

---

1. "A Negotiable Instrument means a promissory note, bill of exchange or cheque payable either to order or to bearer."
2. One, the property which is acquired by one who takes it bonafide and for value—not withstanding any defect in title of the person from whom he took it. —Willis, Negotiable Settlements.
3. A negotiable instrument is one which is by a legally recognised custom of trade or law, transferable by delivery or by endorsement and delivery in such circumstances that (a) the holder of it for the timebeing may sell on it in his own name and (b) the property in it passes free from equities to a bonafide transferee for value, not withstanding any defect in the title of the transferor. —Thomas, Principles of Banking.

विनिमय साध्य विलेख के आवश्यक लक्षण
(Essential Features of Negotiable Instrument)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित आवश्यक विशिष्टताओं (Salient Features) वाले विलेखों को विनिमय साध्य विलेखों की संज्ञा दी जा सकती है :—

1. स्वामित्व का हस्तांतरण (Transfer of Ownership) :—विनिमय साध्य विलेखों का हस्तांतरण नकद राशि की भांति किया जाता है। यह हस्तांतरण विधि अथवा विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व्यापारिक प्रथाओ द्वारा मान्यता प्राप्त होता है। इस प्रकार के हस्तांतरण द्वारा हस्तांतरी विलेख एवं उसमे निहित संपत्ति का स्वामी बन जाता है।

वाहक विलेख का हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी द्वारा व आदिष्ट विलेखों का हस्तांतरण पृष्ठांकन और सुपुर्दगी द्वारा सम्पन्न किया जाता है। अन्य संपत्तियो के पंजीकरण की भांति इन विलेखों के हस्तांतरण का न्यायालय मे पंजीकरण नही करवाना पड़ता। कभी-कभी आदिष्ट विलेखों का हस्तांतरण भी बिना पृष्ठांकन के हो जाता है। इस प्रकार का हस्तांतरण सामान्यतया संपत्ति के बँटवारे के समय किया जाता है व विधि एवं न्यायालीय निर्णयों द्वारा मान्यता प्राप्त है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख की धारा 43 इस प्रकार के परक्रामण की अनुमति देता है व राय रामकिशोर बनाम रामप्रसाद मिश्र विवाद (1952) में दिया गया निर्णय उस वैधानिक प्रावधान की पुष्टि करता है। इस विवाद के महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे—

राय रामकिशोर को बँटवारे मे कुछ प्रतिज्ञा-पत्र प्राप्त हुए किन्तु जिस व्यक्ति (राय अमरनाथ) के पक्ष में उनका निर्गमन या पृष्ठांकन हुआ था उससे इन प्रतिज्ञा-पत्रों पर राय रामकिशोर के पक्ष मे पृष्ठांकन नही करवाया जा सका। फलतः प्रतिज्ञा-पत्रों के लेखक (राम प्रसाद मिश्र) ने देय तिथि पर उनका भुगतान नही किया। राय रामकिशोर ने न्यायालय मे रामप्रसाद के विरुद्ध दावा प्रस्तुत किया व न्यायालय ने उसे सन्दर्भगत प्रतिज्ञा-पत्रों का भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी घोषित किया।

विनिमय साध्य विलेखो का हस्तांतरण उनकी देय-तिथि अथवा उनके भुगतान या अन्य किसी विधि से शोधन तक ही सम्भव होता है। उनके भुगतान या अन्य विधि से शोधित होने के पश्चात् उनका परक्रामण संभव नही होता है, किन्तु एक विपत्र का स्वीकारक देय-तिथि से पूर्व भुगतान किए विपत्र को पुनः चलन मे डाल सकता है।

2. वैधानिक स्वामित्व (Lawful Ownership) :—विलेख का हस्तांतरी विलेख के हस्तांतरण के पश्चात् विलेख का वैधानिक अधिकारी बन जाता है, अतः वह हस्तांतरित विलेख के अनादरण पर विलेख की राशि के शोधन के लिए (भुगतान न होने पर) न्यायालय मे अपने नाम से दावा प्रस्तुत कर सकता है। उसे अपने स्वामित्व-संबंधी अधिकार को न्यायालय में प्रमाणित करने की आवश्यकता नही पड़ती। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (जी) की यह स्पष्ट व्यवस्था है कि "अन्यथा प्रमाणित न होने तक एक विलेख का धारक उसका यथाविधि धारक माना जायेगा बशर्ते कि उसने विलेख को उसके स्वामी, लेखक या स्वीकारक अथवा ऐसे किसी व्यक्ति से जिसके पास वह सुरक्षित पड़ा हो, कपटपूर्ण तरीके या अवैधानिक प्रतिफलस्वरूप प्राप्त न किया हो। धारक के अधिकारों पर विवाद उठने पर उसे ही यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वह सन्दर्भगत विलेख का यथाविधि धारक है।"

9

विनिमय साध्य विलेख

(NEGOTIABLE INSTRUMENTS)

परिभाषा :—विनिमय साध्य विलेखों को परिभाषित करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है। विभिन्न लेखकों ने इन विलेखों की परिभाषा देने का प्रयास किया है किन्तु अधिकांश परिभाषाएँ असंतोषजनक ही प्रमाणित हुई हैं।

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 13 (i) के अनुसार "एक विनिमय साध्य विलेख" से तात्पर्य एक प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory Note), बिल (Bills of Exchange) अथवा चैक से है जिसका भुगतान वाहक को अथवा आदेशानुसार हो सकता है।[1] विनिमय साध्य विलेखों की सरलतम परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि "जिन विलेखों का परक्रामण किया जा सके उन्हें विनिमय साध्य विलेख कहा जाता है।" किन्तु यह परिभाषा अपने आप में पूर्ण नहीं है। विलिस (Willis) महोदय ने इन विलेखों की परिभाषा देते हुए कहा कि विनिमय साध्य विलेख "वह विलेख है जिसके प्रापक को विलेख को सद्विश्वास एवं प्रतिफल स्वरूप प्राप्त करने पर विलेख की सम्पत्ति पर अधिकार हो जाता है चाहे हस्तांतरक का अधिकार दूषित ही हो।"[2] इस परिभाषा में भी विनिमय साध्य विलेखों की सम्पूर्ण विशेषताओं का समावेश नहीं हो पाया है। अतः इसे भी विनिमय साध्य विलेख की आदर्श परिभाषा नहीं कहा जा सकता। थॉमस (Thomas) द्वारा "बैंकिंग सिद्धान्त" में दी गई परिभाषा को विनिमय साध्य विलेखों की उपलब्ध परिभाषाओं में श्रेष्ठतम माना जाता है, अतः उस परिभाषा को उद्धृत करना उपयुक्त होगा। थॉमस के अनुसार—"विनिमय साध्य विलेखों का तात्पर्य उन विलेखों से है जिनका विधि या विधि द्वारा मान्यता प्राप्त प्रथाओं द्वारा सुपुर्दगी अथवा सुपुर्दगी एवं पृष्ठांकन द्वारा इस प्रकार से हस्तांतरण हो जाता है कि धारक (हस्तांतरी) अपने नाम से इन विलेखों का दावा प्रस्तुत कर सकता है व मूल्य एवं सद्विश्वासपूर्वक प्राप्त करने पर वह इन विलेखों में निहित संपत्ति का स्वामी बन जाता है, चाहे हस्तांतरक का उस पर अधिकार दूषित ही हो।"[3]

---

1. *"A 'Negotiable instrument' means a promissory note, bill of exchange or cheque payable either to order or to bearer."*
2. One, the property which is acquired by one who takes it bonafide and

विनिमय साध्य विलेख के आवश्यक लक्षण
(Essential Features of Negotiable Instrument)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित आवश्यक विशिष्टताओं (Salient Features) वाले विलेखों को विनिमय साध्य विलेखों की संज्ञा दी जा सकती है :—

1. स्वामित्व का हस्तांतरण (Transfer of Ownership) :—विनिमय साध्य विलेखों का हस्तांतरण नकद राशि की भांति किया जाता है। यह हस्तांतरण विधि अथवा विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व्यापारिक प्रथाओं द्वारा मान्यता प्राप्त होता है। इस प्रकार के हस्तांतरण द्वारा हस्तांतरी विलेख एवं उसमे निहित संपत्ति का स्वामी बन जाता है।

धारक विलेख का हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी द्वारा व आदिष्ट विलेखों का हस्तांतरण पृष्ठांकन और सुपुर्दगी द्वारा सम्पन्न किया जाता है। अन्य संपत्तियों के पंजीकरण की भांति इन विलेखो के हस्तांतरण का न्यायालय मे पंजीकरण नही करवाना पड़ता। कभी-कभी आदिष्ट विलेखो का हस्तांतरण भी बिना पृष्ठांकन के हो जाता है। इस प्रकार का हस्तांतरण सामान्यतया संपत्ति के बँटवारे के समय किया जाता है व विधि एवं न्यायालीय निर्णयों द्वारा मान्यता प्राप्त है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख की धारा 43 इस प्रकार के परक्रामण की अनुमति देता है व राय रामकिशोर बनाम रामप्रसाद मिश्र विवाद (1952) में दिया गया निर्णय उस वैधानिक प्रावधान की पुष्टि करता है। इस विवाद के महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे—

राय रामकिशोर को बँटवारे मे कुछ प्रतिज्ञा-पत्र प्राप्त हुए किन्तु जिस व्यक्ति (राय अमरनाथ) के पक्ष में उनका निर्गमन या पृष्ठांकन हुआ था उसमे इन प्रतिज्ञा-पत्रों पर राय रामकिशोर के पक्ष मे पृष्ठाकन नही करवाया जा सका। फलतः प्रतिज्ञा-पत्रों के लेखक (राम प्रसाद मिश्र) ने देय तिथि पर उनका भुगतान नही किया। राय रामकिशोर ने न्यायालय मे रामप्रसाद के विरुद्ध दावा प्रस्तुत किया व न्यायालय ने उसे सन्दर्भगत प्रतिज्ञा-पत्रों का भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी घोषित किया।

विनिमय साध्य विलेखो का हस्तान्तरण उनकी देय-तिथि अथवा उनके भुगतान या अन्य किसी विधि से शोधन तक ही सम्भव होता है। उनके भुगतान या अन्य विधि से शोधित होने के पश्चात् उनका परक्रामण संभव नही होता है, किन्तु एक विपत्र का स्वीकारक देय-तिथि से पूर्व भुगतान किए विपत्र को पुनः चलन मे डाल सकता है।

2. वैधानिक स्वामित्व (Lawful Ownership) :—विलेख का हस्तांतरी विलेख के हस्तांतरण के पश्चात् विलेख का वैधानिक अधिकारी बन जाता है, अतः वह हस्तांतरित विलेख के अनादरण पर विलेख की राशि के शोधन के लिए (भुगतान न होने पर) न्यायालय मे अपने नाम से दावा प्रस्तुत कर सकता है। उसे अपने स्वामित्व-संबंधी अधिकार को न्यायालय में प्रमाणित करने की आवश्यकता नही पड़ती। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (जी) की यह स्पष्ट व्यवस्था है कि "अन्यथा प्रमाणित न होने तक एक विलेख का धारक उसका यथाविधि धारक माना जायेगा बशर्ते कि उसने विलेख को उसके स्वामी, लेखक या स्वीकारक अथवा ऐसे किसी व्यक्ति से जिसके पास वह सुरक्षित पड़ा हो, कपटपूर्ण तरीके या अवैधानिक प्रतिफलस्वरूप प्राप्त न किया हो। धारक के अधिकारों पर विवाद उठने पर उसे ही यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वह सन्दर्भगत विलेख का यथाविधि धारक है।"

3. श्रेष्ठतर अधिकार (Better Title) :—एक विलेख को सद्विश्वास, प्रतिफल एवं सावधानी पूर्वक प्राप्त करने पर उसके हस्तांतरी को विलेख पर हस्तांतरक से श्रेष्ठतर अधिकार प्राप्त होता है, अर्थात् उसका विलेख पर सम्पूर्ण स्वामित्व हो जाता है चाहे हस्तांतरक ने उसे अवैधानिक तरीके से प्राप्त किया हो या वह उसे कहीं पर पड़ा हुआ मिला हो।

यदि धारक किसी विलेख को प्रतिफलस्वरूप प्राप्त न करे या यदि वह यह जानते हुए भी हस्तांतरक को प्रतिफल दे देवे कि हस्तांतरित विलेख पर उसका अधिकार दूषित है या उसके अधिकारों के संबंध में जानकारी प्राप्त न करे तो इस प्रकार के हस्तांतरी को प्राप्त विलेख पर उसके हस्तांतरक से श्रेष्ठतर अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ अ, ब को एक वाहक-विपत्र देता है। अ वह विपत्र कहीं से चुराकर लाया था। अतः अ का उस विपत्र पर वैध अधिकार नहीं हो सकता। ब उस विपत्र को अ से प्रतिफल के बदले में लेता है व विपत्र लेते समय उसे अ के अधिकारों पर तनिक भी सन्देह नहीं होता है। इस अवस्था में ब देय तिथि पर उस विपत्र के स्वीकारक से विपत्र की राशि पाने का अधिकारी होगा चाहे कालान्तर में यह प्रमाणित हो जाय कि अ सन्दर्भगत विपत्र को चुराकर लाया था जबकि अन्य वस्तुओं के क्रेताओं को खरीदी गई वस्तुएँ उनके स्वामियों को लौटानी पड़ती हैं भले ही उन्होंने उन वस्तुओं को प्रतिफल के बदले में व पूर्ण सावधानी एवं सद्-विश्वास के साथ खरीदा हो।

4. मुद्रा में देय (Payable in Cash) : —विनिमय साध्य विलेख हमेशा आहार्यी अथवा देनदार (Drawee) को मुद्रा में भुगतान करने का आदेश देते हैं। जो विलेख मुद्रा से अतिरिक्तवस्तुओं वस्तुओं में भुगतान का आदेश देते हैं उन्हे किसी भी अवस्था मे विनिमय साध्य विलेख नहीं माना जा सकता। जब विनिमय साध्य विलेखों का प्रस्तुतकर्ता अपने विलेखो का अन्य वस्तुओ मे भुगतान प्राप्त करना स्वीकार कर लेता है तभी इनका वस्तुओं में भुगतान किया जा सकता है। धनादेश पोस्टल आर्डर, अंश-पत्र, जमा रसीद, पेंशन अधिपत्र आदि विलेखो का भुगतान मुद्रा मे किया जाता है किन्तु फिर भी इन्हें विनिमय साध्य विलेख नहीं माना जा सकता क्योंकि ये हस्तांतरणशील नहीं होते हैं। जहाजी बिल्टी, रेलवे रसीद, डाक वारण्ट आदि को भी विनिमय साध्य विलेख नहीं माना गया है क्योंकि इनका भुगतान मुद्रा में नहीं किया जाता है। ये विलेख केवल उनमें वर्णित वस्तुओं की सुपुर्दगी का आदेश देते हैं।

5. लिखित (Written) :—विनिमय साध्य विलेख लिखित रूप मे होते है। इनमें मौखिक शब्दो का कोई महत्त्व नहीं है। निश्चित राशि व निश्चित समय पर इनके द्वारा भुगतान होना है।

6. सद्भावना (Good faith) :—विनिमय साध्य विलेखों मे सद्भावना का होना परमावश्यक है।

7. भुगतानों का माध्यम (Medium of payment) :—विनिमय साध्य विलेखों का उपयोग विभिन्न ऋणो एवं दायित्वों के भुगतान हेतु किया जाता है। अतएव यह विनिमय का माध्यम है।

8. यथा-विधि धारी के अधिकार (Right of holder in due course) :— इसमें यथाविधि-धारी ऋणो पर अपने नाम में दावा प्रस्तुत कर सकता है।

क्या एक विनिमय साध्य विलेख को अविनिमय साध्य बनाया जा सकता है ?

एक विनिमय साध्य विलेख की विनिमय साध्यता उसके आलेखन या पृष्ठांकन के समय समाप्त की जा सकती है। भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 13 का स्पष्टीकरण "अ" यह स्पष्ट करता है कि एक प्रतिज्ञा-पत्र, विपत्र व धनादेश के आलेखन के समय उसके हस्तांतरण को प्रतिबंधित करने या प्रतिबंध सम्बन्धी इशारा करने पर उसकी विनिमय साध्यता समाप्त हो जाती है।

सामान्यतया, बैंक राजकीय राशि के प्रेषण के समय अपने "बैंक ड्राफ्ट" पर "अहस्तांतरणशील" की मोहर अंकित कर देते हैं। इस मोहर के फलस्वरूप सन्दर्भगत बैंक ड्राफ्ट का अन्य किसी व्यक्ति को हस्तांतरण नहीं किया जा सकता। ठीक इसी प्रकार से एक विलेख का लेखक अपने धनादेश, विपत्र अथवा प्रतिज्ञा-पत्र के प्रापक के नाम के आगे "केवल" (Only) शब्द को अंकित करके अपने विलेख की विनिमय साध्यता को समाप्त कर सकता है।

लेखक के अतिरिक्त पृष्ठांकक भी पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकित विलेख की विनिमय साध्यता को समाप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ :

"केवल रामरतन को भुगतान किया जाय।" —श्यामरतन

संदर्भगत विलेख का यह अंतिम पृष्ठांकन होगा क्योंकि इस पृष्ठांकन के पश्चात् किए गए समस्त पृष्ठांकन व्यर्थ होते हैं व इस विलेख की राशि केवल रामरतन को ही मिल सकेगी। रामरतन भी इस विलेख की सम्पत्ति का किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में हस्तांतरण नहीं कर सकता।

क्या अविनिमय साध्य विलेखों को विनिमय साध्य बनाया जा सकता है ?

अविनिमय साध्य विलेखों की भाषा में समुचित परिवर्तन करके उन्हें विनिमय साध्य बनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक विलेख को इस प्रकार से लिखा जावे कि उसका लेखक उसकी सुपुर्दगी के पश्चात् यह न कह सके कि वह विलेख विनिमय साध्य नहीं था तो उस विलेख को अविनिमय साध्य होते हुए भी विनिमय साध्य माना जायेगा। अविनिमय साध्य विलेखों को यह विनिमय साध्यता विबन्धन (Estoppel) के कारण प्राप्त होती है। (कोलोनियल बैंक बनाम कोडी 1890)।

आई ओ यू (I owe you) सामान्यतया अविनिमय साध्य विलेख होता है किन्तु उसका लेखक चाहे तो उसे भी विनिमय साध्य बना सकता है। इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए उसे केवल विलेख की भाषा में किंचित परिवर्तन करना पड़ता है। उदाहरणार्थ :— I. o. u. Rs. 200/- to be paid on the 2nd Jan. 1967 (बुक्स बनाम एल्किन्स 1836)। अब यह विलेख आई. ओ. यू. से प्रतिज्ञा-पत्र बन गया है।

विनिमय साध्य विलेखों के प्रकार (Kinds of Negotiable Instruments) :— मान्यता के आधार पर विनिमय साध्य विलेखों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है (1) विधि सम्मत और (2) न्यायालीय निर्णय व व्यापारिक प्रथाओं द्वारा सम्मत। न्यायालीय निर्णय केवल उन विलेखों को मान्यता प्रदान करते हैं जिन्हें व्यापारिक प्रथाओं द्वारा विनिमय साध्य विलेख माना जाता है। इन विलेखों में भी विधि सम्मत विलेखों की समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं।

बिल (Bill of Exchange), प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory Note) व चैक (Cheque) विधि-सम्मत विनिमय साध्य विलेख है जबकि बैंक नोट, कोषागार-विपत्र, बैंक ड्राफ्ट, लाभांश अधिपत्र, अंश अधिपत्र, गश्ती नोट, वाहक ऋण-पत्र, वाहक-बॉण्ड आदि न्यायालयों द्वारा घोषित विनिमय साध्य विलेख हैं।

विलेखों की देय-तिथि (Due date of Instruments) :—चैकों की कोई परिपक्व तिथि नहीं होती है क्योंकि उनके अदार्यी (Drawee) बैंकों को उनके प्रस्तुतीकरण पर अनिवार्यतः भुगतान करना पड़ता है। केवल प्रतिज्ञा-पत्रों एवं बिलों की देय-तिथि की गणना करनी पड़ती है। विलेखों की देय-तिथि को ही परिपक्व तिथि कहा जाता है। इस तिथि से पूर्व भुगतान के लिए किया गया प्रस्तुतीकरण अनियमित माना जाता है (विफिन बनाम रॉबर्ट्स)।

देय-तिथि की दृष्टि से सलेखों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, यथा (i) दर्शनी अथवा माँग पर देय विलेख, (ii) तिथि पश्चात् विलेख एवं (iii) दर्शन पश्चात् विलेख। प्रथम भाग में आने वाले विलेखों को जब उनके स्वीकारक, लेखक या आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो उन्हें उनका तत्काल भुगतान करना पड़ता है। अत: इस प्रकार के विलेखों की परिपक्व तिथि की गणना की आवश्यकता नहीं होती है। इन विलेखों के भुगतानकर्ताओं को अनुग्रह दिवसों का लाभ भी प्राप्त नहीं होता है।

तिथि पश्चात् देय विलेखों की देय-तिथि की गणना उन पर अंकित तिथि से उनकी अवधि तक की जाती है व उसमें तीन दिन अतिरिक्त जोड़ दिए जाते हैं। इन अतिरिक्त दिवसों को अनुग्रह दिवस (Days of grace) कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि 1 फरवरी 1981 को 61 दिन की अवधि वाला एक तिथि पश्चात् बिल लिखा जावे तो उसकी देय तिथि 6 अप्रेल, 1981 होगी (27 दिन फरवरी + 31 दिन मार्च + 3 दिन अप्रेल + 3 अनुग्रह दिवस = 6 अप्रेल)।

दर्शन पश्चात् विपत्रों की परिपक्व तिथि की गणना उनकी स्वीकृति की तारीख से, अस्वीकृति की अवस्था में आलोकन (Noting) की तारीख से व प्रमाणन की अवस्था में प्रमाणन (Protesting) की तारीख से की जाती है (21) व दर्शन पश्चात् प्रतिज्ञा-पत्रों की परिपक्व-तिथि की गणना उनके प्रस्तुतीकरण (दर्शन) की तारीख से की जाती है (21) और दोनों ही विलेखों की परिपक्व-तिथि की गणना करते समय 3 अनुग्रह दिवस जोड़े जाते हैं।

गणना की विधि :- सावधिक विलेखों (तिथि पश्चात्, दर्शन पश्चात् अथवा घटना पश्चात्) की अवधि दिनों अथवा महीनों में अंकित की जाती है। अवधि की गणना के लिए भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम में निम्नांकित प्रावधान किए गए हैं :—

1. यदि विलेख की अवधि महीनों में अंकित की गई हो तो उस विलेख की परिपक्व-तिथि की गणना के लिए विलेख की तिथि अथवा स्वीकृति की तिथि (जैसी भी परिस्थिति हो) से पूरे मास गिन लिये जायेंगे व उसमें 3 दिन अनुग्रहस्वरूप जोड़ दिये जायेंगे। उदाहरणार्थ, यदि 30 सितम्बर को एक माह बाद देय-तिथि पश्चात् बिल लिखा जावे तो उसकी देय-तिथि (30 अक्टूबर+3 दिन) = 2 नवम्बर होगी।

2. यदि विलेख ऐसी तिथि को लिखा जावे अथवा स्वीकृत किया जावे जो भुगतान वाले महीने में आये ही नहीं तो उस मास की अंतिम तारीख को ही परिपक्व-तिथि मान

ली जायेगी व उसमे 3 अनुग्रह दिवस जोड़ दिये जायेंगे। उदाहरणार्थ - यदि 29 जनवरी, 1981 को एक माह के लिए एक तिथि पश्चात् बिल लिखा जावे तो उसकी भुगतान तिथि (28 फरवरी+3 अनुग्रह दिवस) 3 मार्च होगी।

यदि 30 अगस्त को 3 माह पश्चात् देय एक बिल स्वीकृत किया जाये तो उसकी परिपक्व तिथि 3 दिसम्बर (30 सितम्बर+31 अक्टूबर+30 नवम्बर+3 अनुग्रह दिवस) होगी। 31 अगस्त को स्वीकृत किए गए बिल की देय-तिथि भी 3 दिसम्बर होगी क्योंकि नवम्बर मे 31 दिन नही होते।

दिनों पश्चात् विलेखों की देय-तिथि की गणना :—यदि तिथि पश्चात् अथवा घटना पश्चात् विलेख दिनों के लिए लिखा जाये तो तिथि की गणना करते समय उस पर अंकित तिथि को शामिल नही किया जाता है। उदाहरणार्थ—यदि एक तिथि पश्चात् विलेख 15 जनवरी को लिखा जाये तो उसकी देय तिथि की गणना 16 जनवरी से की जायेगी व 3 दिन अनुग्रह स्वरूप जोड दिए जायेंगे। यदि किसी विलेख मे भुगतान के लिए माह की मध्यावधि को चुना गया हो तो ऐसे विलेखो की परिपक्व-तिथि उस माह की 15 तारीख होगी। उदाहरणार्थ—यदि एक तिथि पश्चात् विपत्र का लेखक उसके स्वीकारक को यह आदेश दे कि वह सन्दर्भगत विपत्र का भुगतान फरवरी या मार्च के मध्य कर दे तो यह माना जायेगा कि उसने 15 फरवरी या 15 मार्च को भुगतान करने का आदेश दिया है। इस अवधि में 3 दिन अतिरिक्त जोड़े जायेंगे।

दर्शन पश्चात् विलेखों की परिपक्व-तिथि की गणना उनकी दर्शन-तिथि (प्रतिज्ञा-पत्रो के लिए) स्वीकृति, अस्वीकृति, आलोकन या प्रमाणन की तारीख से की जाती है। इस विभेद के अतिरिक्त दर्शन पश्चात् विलेखों की परिपक्व-तिथि की गणना भी तिथि पश्चात् विलेखो की देय-तिथि की भाँति ही की जाती है।

यदि दर्शन पश्चात् बिल को सम्मानार्थ स्वीकार किया गया हो तो परिपक्व-तिथि की गणना सम्मानार्थ स्वीकृति की तारीख से की जाती है। (23)

अशुद्ध या बिना तिथि वाले विलेख :—यदि किसी तिथि पश्चात् विलेख पर तारीख अंकित न की गई हो तो ऐसे विलेख की देय-तिथि की गणना उसकी आलेखन तिथि से की जाती है। दर्शन पश्चात् बिलेखो पर स्वीकृत या दर्शन के समय तारीख न लगाने पर उनकी परिपक्वता की तिथि की गणना उनकी दर्शन-तिथि से की जाती है। एक विलेख पर आलेखन या स्वीकृति या दर्शन की तिथि (जैसी भी स्थिति हो) विलेख का कोई भी पक्षकार अंकित कर सकता है व अन्यथा प्रमाणित न होने तक इस प्रकार से अंकित की गई तारीख को प्रमाणित माना जाता है। (118 a)

यदि किसी विलेख पर ऐसी तारीख अंकित की गई हो (आलेखन या स्वीकृति के समय) जिसका उस माह में अस्तित्व हो न हो तो परिपक्वता की तिथि की गणना निकटतम शुद्ध तिथि से की जाती है। उदाहरणार्थ—यदि एक तिथि पश्चात् बिल पर क्रम से 31 जून, 31 सितम्बर या 30 फरवरी अंकित कर दिया जाय तो उसकी देय-तिथि की गणना क्रमशः 30 जून, 30 सितम्बर व 28 या 29 फरवरी से की जायेगी। यदि दर्शन पश्चात् बिलो को स्वीकार करते समय स्वीकारक इस प्रकार की गलती कर दे तो उसका निराकरण भी इसी विधि से होगा।

जब देय-तिथि सार्वजनिक अवकाश होता है :—यदि किसी विलेख की देय-तिथि (अनुग्रह दिवस सहित) को सार्वजनिक अवकाश आ जावे तो ऐसे विलेख के भुगतानकर्ता का एक अनुग्रह दिवस समाप्त हो जाता है अर्थात् उसे अपने विलेख का भुगतान उसकी देय-तिथि से एक दिन पूर्व करना पड़ता है। भारत मे रविवार व भारत सरकार द्वारा राज-पत्र मे घोषित अन्य अवकाशो को सार्वजनिक अवकाश माना जाता है। हमारे देश मे सार्वजनिक व बैंक अवकाश मे कोई विभेद नही किया गया है अतः यदि किसी विलेख का देनदार कोई बैंक हो व देय-तिथि को बैंक का अवकाश हो तो विलेख के धारक को ऐसे विलेख का भुगतान बैंक से भी देय-तिथि से एक दिन पूर्व प्राप्त हो जायेगा।

एक साथ दो सार्वजनिक अवकाश आ जाने पर उन अवकाशों का लाभ विलेख के देनदार (Drawee) को प्राप्त होता है। अर्थात् उसे एक या एक से अधिक अतिरिक्त अनुग्रह दिवस प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—यदि किसी विलेख की भुगतान तिथि 31 दिसम्बर हो और 31 दिसम्बर व 1 जनवरी सार्वजनिक अवकाश हो तो ऐसे विलेख की भुगतान तिथि 2 जनवरी मानी जायेगी।

किश्तों में भुगतान योग्य विलेख :

किश्तो मे भुगतान योग्य प्रतिज्ञा-पत्रो के लेखक को प्रत्येक किश्त के भुगतान के समय 3 अनुग्रह दिवस प्राप्त होते हैं क्योकि भुगतान की दृष्टि से ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र को प्रत्येक किश्त पर एक पृथक् प्रतिज्ञा-पत्र माना जाता है। किश्तो मे भुगतान योग्य बिलो पर भी यही व्यवस्था लागू होती है।

विदेशी विलेखों को भुगतान तिथि :—

विदेशो मे अनुग्रह दिवसों की परम्परा को लगभग समाप्त कर दिया गया है। अतः विदेशी विलेखो की देय तिथि की गणना करते समय अनुग्रह दिवस केवल उस अवस्था मे जोड़े जाते हैं जबकि भुगतान स्थल के नियम इन दिनों के जोड़ने की अनुमति देते हों अन्यथा देय-तिथि की गणना केवल विलेख की अवधि के आधार पर की जाती है। भुगतान कर्ता को 3 दिनो की अतिरिक्त अवधि प्राप्त नही हो सकेगी।

विनिमय साध्य विलेखो का प्रतिफल (Consideration)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के प्रावधानो के अनुसार प्रतिफल-विहीन अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं। परक्राम्य विलेख भी अनुबन्धो का प्रतिनिधित्व करते है, अतः प्रत्येक परक्राम्य विलेख से सम्बन्धित व्यवहार अनिवार्यतः प्रतिफल पर आधारित होना चाहिए तथा यह प्रतिफल न्यायोचित व मूल्यवान होना चाहिए। अवैध प्रतिफल पर आधारित व्यवहार व्यर्थ होता है। मूल्यवान प्रतिफल का तात्पर्य ऐसे प्रतिफल से होता है जिसे मुद्रा मे प्रकट किया जा सके।

यद्यपि एक विलेख की सार्थकता के लिए न्यायोचित व मूल्यवान प्रतिफल अनिवार्य है किन्तु उसकी यथेष्टता अनिवार्य नहीं होती है। फलतः यदि न्यायालय मे यह प्रमाणित कर दिया जावे कि प्रतिवादी ने विलेख प्रतिफल के बदले मे लिखा था तो न्यायालय उसे विलेख की राशि के भुगतान के लिए दोषी ठहराएगा, वह प्रतिफल की यथेष्टता को विवाद का विषय नही बनायेगा। उदाहरणार्थ यदि राम एक 3,000 रुपये के बिल को सम्पूर्ण सद्‌विश्वास के साथ 2,500 रुपये मे खरीदे तो इस बिल के देनदार (Drawee)

को देय तिथि पर राम को बिल की सम्पूर्ण राशि का भुगतान करना होगा। वह न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत नही कर सकता कि राम ने बिल वल 2,500 रुपये (अपर्याप्त प्रतिफल) में खरीदा था, अतः वह केवल 2,500 रुपये के लिए ही दायी है।

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (अ) की व्यवस्थानुसार अन्यथा प्रमाणित न होने तक यह माना जाता है कि एक सलेख सम्बन्धी प्रत्येक व्यवहार प्रतिफल के बदले में किया गया था।[1] न्यायालय मे संलेख का कोई भी पक्षकार इस गर्भित मान्यता को चुनौती दे सकता है व चुनौती प्राप्त होने पर विलेख के धारक को यह प्रमाणित करना पडता है कि वह उस विलेख का यथाविधि धारक है, 118 (जी)।

विभिन्न पक्षकारों का प्रतिफल सम्बन्धी दायित्व :

यदि एक विलेख का लेखक प्रतिफल के बदले में किसी विलेख को लिखे व यदि विलेख के आलेखन के समय अथवा आलेखन के पश्चात् उसे विलेख की सम्पूर्ण राशि न मिले तो वह अपने निकटस्थ पक्षकार के प्रति केवल प्राप्त प्रतिफल के लिए दायी होगा। विलेख के अन्य पक्षों पर भी यही व्यवस्था लागू होगी (44)। उदाहरणार्थ ख ने क से यह निवेदन किया कि वह सी को 500 रुपये का भुगतान कर दे व उस भुगतान के बदले मे उस पर 3 माह का एक सावधिक विपत्र लिख दे। क ने ख का यह प्रस्ताव मान लिया व ख पर प्रस्ताव की शर्तानुसार एक विपत्र लिख दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। विपत्र की स्वीकृति के पश्चात् क ने ग को केवल 400 रुपये भुगतान किया, फलतः देय तिथि पर ख ने विपत्र का अनादरण कर दिया। क ने ख के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। ख ने अपने बचाव में यह तर्क दिया कि 'उसे क से केवल 400 रुपये का प्रतिफल प्राप्त हुआ है, अतः वह क को केवल 400 रुपये के भुगतान का दायी है।" प्रस्तुत विवाद मे न्यायालय ख की मान्यता की पुष्टि करेगा व उसे 400 रुपये के लिए दायी ठहराएगा।

यदि एक विलेख को वस्तुगत प्रतिफल के बदले मे लिखा जाये व उन वस्तुओ का अतिरिक्त या सहायक जाच के बिना मूल्यांकन किया जा सके और विलेख के लेखक या स्वीकारक को पूर्ण प्रतिफल प्राप्त न हो सके तो विलेख के विभिन्न पक्ष विलेख के लेखक या स्वीकारक से केवल उसके द्वारा प्राप्त प्रतिफल के बराबर धनराशि पाने के अधिकारी होते हैं। यदि अतिरिक्त जांच के बिना मूल्यांकन असम्भव हो तो विलेख के लेखक या स्वीकारक विलेख की सम्पूर्ण राशि के लिए दायी होगा किन्तु अप्राप्त प्रतिफल के लिए उसे पृथक् वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होगा। वह दोनो तथ्यो को एक साथ मिला नही सकता (45)। उदाहरणार्थ क ने ग को 2,000 रुपये का कपडा बेचा व सम्पूर्ण कपड़े को दो बराबर गांठो मे बांध दिया और गाठो की सुपुर्दगी से पूर्व उसने ग पर 2,000 रुपये का एक विपत्र लिखा जिस पर ग ने अपनी स्वीकृति दे दी। जब क ने ग को माल की सुपुर्दगी दी तो उसे केवल एक गाठ ही दी। इस गाठ के मूल्यांकन के लिए जाच की आवश्यकता नहीं थी, अतः ग केवल 1,000 रुपये के लिए ही दायी होगा। वह देय तिथि पर विपत्र को अनादरित कर देगा व क को 1,000 रुपये दे देगा।

---

1. That every negotiable instrument was made or drawn for consideration and that every such instrument when it has been accepted endorsed, negotiated or transferred was accepted, endorsed, negotiated or transferred for consideration [118(a)].

क ने ख को 2,000 रुपये का माल बेचा व उस पर इस राशि का एक विपत्र लिखा जिसे ख ने स्वीकार कर लिया। जब माल को खोला गया तो पता लगा कि वह आदेशित माल से निम्न कोटि का था। इस अवस्था में ख को देय तिथि पर अपने विपत्र का भुगतान करना पड़ेगा अन्यथा वह 2,000 रुपये की राशि के लिए न्यायालय द्वारा दायी ठहरा दिया जायेगा क्योंकि प्रस्तुत स्थिति में जांच के बिना यह पता नहीं लगाया जा सकता कि वस्तुतः उसे कितने रुपये का प्रतिफल प्राप्त हुआ था।

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम प्रतिफल विहीन विलेखों के आलेखन की भी अनुमति देता है परन्तु इस प्रकार के विलेखो के भुगतान के लिए सम्बन्धित पक्ष दायी नहीं होते हैं। धारा 43 का यह स्पष्टीकरण आदेश है कि "यदि एक विलेख का आलेखन, पृष्ठांकन, हस्तांतरण या स्वीकृति प्रतिफल के बिना सम्पन्न की जावे अथवा ऐसे प्रतिफल के बदले में सम्पन्न की जावे जो मूर्त-रूप न ले सके तो विलेख के विभिन्न पक्ष परस्पर विलख की राशि के लिए दायी नहीं होंगे, किन्तु ऐसे विलेख का प्रतिफल के बदले में हस्तांतरण करने पर उसका समूल्य धारक व उसके अनुवर्ती पक्ष विलेख के हस्तांतरक या उसके किसी भी पूर्व पक्ष से विलेख की राशि पाने के अधिकारी होते है।" इस व्यवस्था के दो अपवाद भी हैं :—

1. यदि किसी पक्ष की सहायतार्थ एक विलेख लिखा जाये, स्वीकार किया जाये या पृष्ठांकित किया जाये और वह व्यक्ति उस विलेख का देय-तिथि पर भुगतान कर दे तो वह भुगतान की राशि की उन पक्षों से माग नही कर सकता जो उसकी सहायतार्थ उस विलेख के पक्ष बने थे।

2. यदि एक विलेख के किसी पक्ष ने विलेख के अन्य पक्षो को प्रतिफल के बदले में विलेख के आलेखन, बेचान या हस्तांतरण के लिए प्रेरित किया हो व बाद में उसका पूरा या आंशिक प्रतिफल न दिया हो तो वह अन्य पक्षों से अपने द्वारा भुगतान की गई राशि से अधिक राशि वसूल नहीं कर सकता।

पक्षकारों की क्षमता

1. वयस्क (Major) :—जिन व्यक्तियों मे अनुबन्ध क्षमता होती है केवल वे विनिमय साध्य विलेखों का आलेखन, पृष्ठांकन एवं हस्तांतरण कर सकते हैं व उन पर अपनी स्वीकृति दे सकते हैं। ये व्यक्ति अपने इन कार्यों के परिणामो के लिए दायी होते हैं व अन्य पक्षों को भी उनके कार्यों के परिणामो के लिए दायी ठहरा सकते हैं।

2. अभिकर्त्ता (Agent) :—एक व्यक्ति चाहे तो विलेखो के आलेखन, पृष्ठांकन, हस्तांतरण अथवा स्वीकृति के लिए अपने किसी अभिकर्ता को अधिकृत कर सकता है। एक अधिकृत अभिकर्ता के कार्यों के लिए उसका स्वामी दायी होता है किन्तु स्वामी को दायी बनाने के लिए उसे विलेखो के आलेखन, पृष्ठांकन, स्वीकृति आदि के समय अपनी हैसियत को स्पष्ट करना पड़ता है अन्यथा उन कार्यों के परिणामो के लिए वह व्यक्तिशः दायी होता है।

जिस अभिकर्ता को केवल विपत्र लिखने के लिए अधिकृत किया जाता है अपने स्वामी की ओर से न किसी विपत्र को स्वीकार कर सकता है और न किसी विपत्र का पृष्ठांकन कर सकता है। इन कार्यों के सम्पादन के लिए उसे अपने स्वामी से स्पष्ट आदेश लेने पड़ते हैं।

जब किसी व्यक्ति को व्यापार करने अथवा ऋणों के सग्रहण व भुगतान के लिए अभिकर्ता नियुक्त किया जाता है, वह अपने स्वामी की ओर से स्वामी पर लिखे गये विपत्रों को न स्वीकार कर सकता है और न उनका (पक्ष में लिखे गये विपत्रों का) पृष्ठांकन कर सकता है।

3. पागल व अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति :—अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों एवं पागलों मे अनुबन्ध क्षमता का अभाव होता है, अतः ऐसे व्यक्ति विलेखों सम्बन्धी कार्यों के लिए सक्षम नही माने जाते हैं। जब ऐसे व्यक्ति किसी विलेख को लिख देते है, स्वीकार कर लेते हैं अथवा उसका पृष्ठांकन कर देते हैं तो वे इन कार्यो के लिए व्यक्तिशः दायी नही होते है। *यदि एक अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति कभी-कभी स्वस्थ हो जाता* है तो वह स्वस्थता की अवधि मे विलेखो के लिखने, स्वीकारने या बेचान के लिए सक्षम होता है। फलतः विलेख के अनादरण पर उसे दायी ठहराया जा सकता है। यदि ऐसे व्यक्ति को न्यायालय द्वारा अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति घोषित कर दिया जावे तो वह स्वस्थता की अवधि मे भी विलेख-सम्बन्धी कार्य करने के लिए सक्षम नही होता है। फलतः ऐसा व्यक्ति विलेखों के आलेखन, पृष्ठांकन, स्वीकृति आदि के लिए दायी नही होता है।

4. अवयस्क (Minor) :—अवयस्क व्यक्ति में भी अनुबन्ध क्षमता का अभाव होता है, किन्तु फिर भी वह स्वतन्त्र रूप से अथवा संयुक्त रूप से विलेखों का आलेखन, पृष्ठांकन व बेचान कर सकता है और उन पर अपनी स्वीकृति भी दे सकता है।

जब एक अवयस्क व्यक्ति किसी विलेख को लिखता है या उस पर अपनी स्वीकृति देता है अथवा उसका पृष्ठांकन करता है तो इन कार्यो से वह विलेख व्यर्थ नहीं बनता है। अनुबन्ध क्षमता के अभाव के कारण वह (अवयस्क) स्वयं इन विलेखो से सम्बन्धित कार्यों के लिए दायी नही होता है किन्तु विलेख के अन्य पक्ष अपने दायित्वो के निर्वाह के लिए दायी होते हैं। यदि वे अपने कर्तव्यों का निर्वाह न करें तो उनके विरुद्ध न्यायालीय कार्यवाही की जा सकती है। निम्नांकित उदाहरण स्थिति की स्पष्टता मे सहायक सिद्ध होंगे—

1. यदि एक अवयस्क द्वारा लिखे गए विपत्र को कोई व्यक्ति स्वीकार करले या उसके द्वारा लिखे गये प्रतिज्ञा-पत्र का कोई व्यक्ति पृष्ठांकन कर दे व देय-तिथि पर वह विलेख अनादरित हो जाय तो क्रमशः स्वीकारक व पृष्ठांकक के विरुद्ध विलेख की राशि के भुगतान के लिए वैधानिक कार्यवाही की जा सकती है।

2. जब एक वयस्क व अवयस्क संयुक्त रूप मे एक विपत्र स्वीकार करते हैं अथवा एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं और देय-तिथि पर उनका अनादरण हो जाता है तो केवल वयस्क व्यक्ति विपत्र या प्रतिज्ञा-पत्र की राशि के लिए दायी होगा।

3. यदि एक विपत्र या प्रतिज्ञा-पत्र का प्रापक अवयस्क हो तो वह उसके भुगतान के लिए विलेख के अन्य पक्षो के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही कर सकता है।

5 प्रमण्डल (Company) :—एक प्रमण्डल अथवा निगम (Corporation) एक विपत्र तभी लिख सकता है, स्वीकार कर सकता है व उसका पृष्ठांकन कर सकता है, जबकि उसके अन्तर्नियम (Articles of Association) उसे इन कार्यों के सम्पादन की अनुमति देते हो। अन्तर्नियमो द्वारा निषेध किए जाने पर वह इन कार्यों का वैध रूप मे सम्पादन नही कर सकता।

6. विनिमय साध्य विलेखों सम्बन्धी धारणाएं—भारतीय परकाम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 व 119 ने परकाम्य विलेखो के प्रतिफल, तिथि, स्वीकृति, हस्तांतरण, पृष्ठांकन क्रम, यथाविधि-धारक व अनादरण के सम्बन्ध में कुछ मान्यताएं स्वीकृत की हैं। इन तथ्यो पर विवाद न उठने पर न्यायालय अपना निर्णय इन मान्यताओं के आधार पर ही देता है किन्तु अन्यथा प्रमाणित होने पर ये मान्यताएं व्यर्थ हो जाती हैं व प्रस्तुत प्रमाण के आधार पर विवादग्रस्त विषय का निर्णय दिया जाता है। जो पक्ष इन मान्यताओं का प्रतिवाद करता है सामान्यतः उसे ही अपने प्रतिवाद की पुष्टि करनी पड़ती है। ये मान्यताएं निम्नांकित हैं—

1. प्रतिफल (Consideration)—प्रत्येक विलेख प्रतिफल स्वरूप लिखा गया था व प्रतिफल के बदले में ही उसे स्वीकार किया जाता है, हस्तांतरित किया जाता है और पृष्ठांकित किया जाता है अर्थात यह माना जायेगा कि एक विलेख सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहारों का आधार प्रतिफल होता है। एक पक्ष द्वारा प्रतिफल के अस्तित्व से इन्कार करने पर उसे अपने कथन की पुष्टि करनी पड़ती है। पुष्टि न होने पर अधिनियम द्वारा स्वीकृत मान्यता यथावत बनी रहती है।

2. तिथि (Date)—एक विलेख पर तिथि अंकित करना अनिवार्य नही होता है किन्तु किसी विलेख पर तिथि अंकित होने पर उसे अन्यथा प्रमाणित न होने तक सही माना जाता है अर्थात यह माना जाता है कि उस विलेख को उसी तारीख को लिखा गया था, भले ही उसे उस तारीख को न लिखा गया हो।

यथोचित समय में स्वीकृति (Timely Acceptance)—यदि किसी विलेख पर स्वीकृति की तारीख अंकित न हो किन्तु उस पर आलेखन की तारीख अंकित हो तो यह माना जायेगा कि उस विपत्र को आलेखन के पश्चात् यथोचित समय मे व परिपक्वता की तिथि से पूर्व स्वीकार कर लिया गया था। स्वीकृति की तारीख अंकित होने पर विवाद का निर्णय अंकित तारीख के अनुसार किया जाता है

4. परक्रामण का समय एवं पृष्ठांकन का क्रम (Time of Negotiation and Sequence of the Endorsement) यदि एक विलेख के परक्रामण के समय हस्तांतरक ने कोई तिथि अंकित न की हो तो यह माना जायेगा कि उस विलेख का हस्तांतरण उसकी परिपक्व तिथि से पूर्व किया गया था व यदि किसी विलेख पर अनेक पृष्ठांकन हों तो यह माना जायेगा कि सदर्भगत विलेख का उसी क्रम मे पृष्ठांकन किया गया था जिस क्रम मे उस पर पृष्ठांकन अंकित है। यदि पृष्ठांकनो के नीचे तारीख अंकित हो तो पृष्ठांकनो का क्रम तारीखों के आधार पर निर्धारित किया जायेगा।

5. यथेष्ठ मुद्रांक (Adequate Stamp Duty)—यदि कोई विलेख खो जाय तो यह माना जायेगा कि जिस समय वह विलेख खोया था उस समय उस पर यथेष्ट मात्रा मे मुद्रांक लगे हुए थे। यह मान्यता धनादेशों पर लागू नही होती है क्योंकि भारत मे धनादेशो पर मुद्रांक नही लगाये जाते हैं।

6. यथाविधि धारक (Holder in due course)—एक विलेख का धारक यथाविधि-धारक माना जाता है। यदि कोई पक्ष पर प्रतिवाद पक्ष प्रस्तुत करे कि धारक ने विलेख को अवैध तरीके से प्राप्त किया है तो विलेख के धारक को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि उसने विलेख को प्रतिफल स्वरूप, सद्विश्वास व सावधानीपूर्वक और उसकी परिपक्वता की तिथि से पूर्व प्राप्त किया था।

7. अनादरण (Dishonour)— यदि एक विलेख का अनादरण हो जाय व उसका धारक विलेख के प्रमाणन के पश्चात अनादरित विलेख की राशि की वसूली के लिए न्यायालय मे दावा प्रस्तुत करे तो न्यायालय अन्यथा प्रमाणित न होने तक अनादरण के तथ्य को मान्यता प्रदान करेगा।

8 विबन्धन (Estoppel)—अधिनियम की धारा 120, 121 व 122 विबन्धन का प्रावधान करती है। इन प्रावधानों के कारण परक्राम्य विलेखो से सम्बन्धित व्यक्ति अपने विलेख के कुछ तथ्यो का प्रमाण प्रस्तुत करने पर भी इन्कार नही कर सकते, यथा —

1. एक विलेख के यथाविधि-धारक द्वारा विलेख की राशि की वसूली के लिए न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करने पर उसका लेखक (प्रतिज्ञा-पत्र, धनादेश व विपत्र) व एक विपत्र के लेखक का सम्मानार्थ स्वीकारक यह नही कह सकता कि आलेखन के समय विलेख वैध नही था (120)।

2. इसी प्रकार यथाविधि-धारक द्वारा न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करने पर एक प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक व एक विपत्र का स्वीकारक इस तथ्य से इन्कार नही कर सकता कि जिस दिन विलेख लिखा गया था उस दिन उसके प्रापक मे विलेख को पृष्ठांकित करने की क्षमता नहीं थी (121)।

3. एक अनुवर्ती पृष्ठांकक द्वारा न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर उसका पूर्ववर्ती पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षरों अथवा अपनी पृष्ठांकन क्षमता से इन्कार नही कर सकता अर्थात यह माना जायेगा कि पृष्ठाकन करते समय विलेख पर उसी ने हस्ताक्षर किये थे व उस दिन वह पृष्ठाकन के लिए पूर्णतः सक्षम था (122)।

विपत्र (Bill of Exchange)

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 5 के अनुसार "विपत्र एक शर्तहीन, लिखित व लेखक के हस्ताक्षरों युक्त विलेख होता है जिसके द्वारा लेखक एक निश्चित व्यक्ति को यह आदेश देता है कि वह उसे या उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति या विलेख के वाहक को एक निश्चित राशि का नकद भुगतान कर दे।"[1] इस परिभाषा को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए अधिनियम की धारा 19, 21, 22 व भारतीय मुद्रांक अधिनियम की धारा 13 और रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 का भी प्रयोग करना पड़ेगा। धारा 19 की व्यवस्थानुसार जिस विपत्र मे भुगतान के समय का उल्लेख न किया गया हो वह मांग पर देय होता है व धारा 21 और 22 की व्यवस्थानुसार तिथि पश्चात् एवं दर्शन पश्चात् विपत्रों का भुगतान उनकी परिपक्वता की तिथि पर किया जाता है व इस तिथि मे 3 दिन अनुग्रह स्वरूप और जोड़े जाते है। मुद्रांक अधिनियम की व्यवस्थानुसार प्रत्येक मावधि विपत्र पर मुद्रांक लगाना अनिवार्य होता है अन्यथा उसे साक्षी-स्वरूप नहीं रखा जा सकता। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 की व्यवस्थानुसार वाहक व दर्शनी (मांग पर देय) विपत्रों का एक साथ निर्गमन नही किया जा सकता। इस प्रकार के विपत्र

1. A "Bill of Exchange" is an instrument in writing Containing an Unconditional order signed by the maker, directing a certain person to pay a certain sum of money only to, or to the order of a certain person or to the bearer of the instrument"(Sec 5)

व्यर्थ होते हैं व इनका निर्गमन एक दण्डनीय अपराध माना गया है। केवल रिजर्व बैंक इस प्रकार के विपत्रों एवं प्रतिज्ञा पत्रों का निर्गमन कर सकता है। उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर एक विपत्र की निम्नलिखित विशिष्टताएँ होना है।:—

(i) लिखित प्रपत्र (Written Document) विपत्र सदा लिखित होता है। भुगतान के लिए दिए गए मौखिक आदेश की विपत्र में गणना नहीं की जा सकती। 'लिखित' शब्द को व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जिसका आशय लिपिबद्ध से है। अतः हाथ से लिखे हुए, टाइप किये हुए या प्रेस अथवा अन्य किसी विधि से मुद्रित आदेश को भी लिखित आदेश माना जाता है।

अधिनियम में विपत्र का कोई प्रारूप नहीं दिया गया है, अतः भुगतानकर्ता को किसी भी रूप में आदेश दिया जा सकता है। किन्तु उस आदेश में समस्त वैधानिक तत्वों के अभाव मे आदेश लिखित होने पर भी प्रभावशाली नहीं हो सकेगा।

विपत्र को हाथ से लिखते समय पेन्सिल अथवा स्याही का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु व्यवहार में गहरी व स्थाई स्याही का प्रयोग किया जाता है ताकि आदेश में आसानी से अनधिकृत परिवर्तन न किए जा सकें। पेन्सिल की लिखावट जालसाजी को प्रोत्साहित करती है।

विपय को दो भिन्न लिपियों में भी लिखा जा सकता है। विभिन्न लिपियों के कारण उसकी वैधानिकता पर कोई आंच नहीं आती है (*कालियान चेट्टी बनाम भोगविन*)।

(ii) लेखक द्वारा हस्ताक्षरित (Signed by Drawer)—विपत्र पर उसके लेखक को अनिवार्यतः हस्ताक्षर करने पड़ते हैं क्यों कि जिस विपत्र पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं होते हैं उसे न्यायालय विपत्र नहीं मानते हैं। अतः ऐसे विपत्र का धारक अपने विपत्र के आधार पर विपत्र के स्वीकारक के विरुद्ध न्यायालय में विपत्र की राशि के शोधनार्थ वैधानिक कार्यवाही नहीं कर सकता।

"हस्ताक्षर" शब्द को भी व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, अतः लेखक के अंगूठे के निशान या उसके द्वारा प्रयुक्त अन्य किसी चिन्ह की भी हस्ताक्षरों में गणना की जाती है।

भारत मे साक्षर व्यक्ति को विपत्र पर अनिवार्यतः अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। वह अंगूठा या अन्य किसी चिन्ह का प्रयोग नहीं कर सकता किन्तु वह चाहे तो अपने हस्ताक्षरों के स्थान पर अपने हस्ताक्षरों की मोहर का प्रयोग कर सकता है। मोहर का प्रयोग करते समय उसके अधिकृतप्रयोग की किसी गवाह द्वारा पुष्टि करवानी पड़ती है व मोहर का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को मोहर के नीचे अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।

एक लेखक चाहे तो अपने व्यावसायिक अथवा अन्य किसी नाम से भी विलेख पर हस्ताक्षर कर सकता है यथा "भारत ट्रेडिंग कम्पनी", "राधा–स्वामी" आदि। इस प्रकार से किए गए हस्ताक्षरों को न्यायालय मान्यता प्रदान करता है।

विपत्र का लेखक चाहे तो हस्ताक्षरों के लिए अपने अभिकर्ता को भी अधिकृत कर सकता है। अभिकर्ता प्रदत्त अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में अपने नाम से अथवा अपने प्रधान के नाम से हस्ताक्षर कर सकता है। अपने नाम से हस्ताक्षर करते समय उसे हस्ताक्षरों के नीचे अपनी हैसियत भी लिखनी पड़ती है अन्यथा विपत्र के अनादरण पर विपत्र की राशि के लिए वह व्यक्तिशः दायी बनता है।

यदि विपत्र का लेखक चाहे तो एक सादे कागज़ पर अपने हस्ताक्षर करके अथवा अपूर्ण विपत्र लिखकर भी दे सकता है। इस प्रकार के विपत्र का धारक विपत्र के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए स्वयमेव अधिकृत होता है व लेखक विपत्र पर लगे हुए मुद्रांक द्वारा अधिकृत राशि के भुगतान के लिए दायी होता है। यदि प्रापक या धारक मुद्रांक द्वारा अधिकृत राशि से अधिक राशि का विपत्र लिख दे व उसका यथाविधि-धारक को हस्तांतरण कर दे तो लेखक यथाविधि-धारक के प्रति सम्पूर्ण राशि के लिए दायी होता है।

लेखक चाहे तो एक विपत्र की स्वीकृति के पश्चात भी उस पर अपने हस्ताक्षर बना सकता है। इस प्रकार से हस्ताक्षरित विपत्र पूर्णतः वैधानिक होता है।

असाक्षर व्यक्ति विपत्र लिखते समय उस पर अपने अंगूठे का निशान लगा सकता है। दोनों प्रकार के निशानों की स्वतंत्र साक्षियों से पुष्टि करवानी पड़ती है ताकि बाद में विवाद के लिए कोई स्थान न रहे।

एक विपत्र के आहार्यी व पृष्ठांकक को विपत्र की स्वीकृति के पूर्व क्रमशः लेखक की अनुबंध क्षमता व उसके हस्ताक्षरों की वास्तविकता से आश्वस्त हो जाना चाहिए क्योंकि विपत्र के यथाविधि-धारक द्वारा न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर उन्हें लेखक की अनुबंध क्षमता व उसके हस्ताक्षरों की वास्तविकता को मानना ही होगा, वे इन तथ्यों से इन्कार नहीं कर सकते।

(iii) निश्चित लेखक (Drawer must be Certain)—विपत्र का लेखक एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए। अर्थात वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसका आवश्यकता के समय पता लगाया जा सके अथवा विपत्र का भुगतान न होने पर या स्वीकृत न होने पर उसे इन तथ्यों से सूचित किया जा सके।

(iv) शर्तहीन आदेश (Unconditional order)—धारा 5 की व्यवस्थानुसार विपत्र एक आदेश होता है। अतः विपत्र की शैली अनिवार्यतः आदेशात्मक होनी चाहिए। प्रार्थना के रूप में लिखे गए विपत्र को विपत्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि प्रार्थना को मानना या न मानना पूर्णतः ऐच्छिक होता है। लिटिल बनाम एलेक फोर्ड विवाद (1888) इस मत की पुष्टि करता है। इस विवाद में एलेक फोर्ड ने लिटिल पर इस प्रकार से एक विपत्र लिखा, "मि. लिटिल, कृपया इस विपत्र के वाहक को सात पौंड प्राप्त करने दीजिए व इस राशि को मेरे खाते में लिख दीजिए व मुझे उपकृत कीजिए। आपका विनीत दास—आर० एलेक फोर्ड। न्यायालय ने इसे विपत्र नहीं माना क्योंकि लेखक ने आहार्यी को विपत्र की राशि के भुगतान के लिए स्पष्ट आदेश नहीं दिया था, केवल उससे प्रार्थना की थी।

आदेश का अभिप्राय सौजन्यहीनता से नहीं होता है। अतः यदि एक विपत्र का लेखक उसके आहार्यी (Drawee) को विनयपूर्ण शब्दों में आदेश दे तो उस आदेश को वैध आदेश माना जायेगा। उदाहरणार्थ यदि कृष्णस्वरूप अपने क्रिणी रामस्वरूप को यह आदेश दे कि "कृपया दो माह पश्चात हनुमान अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को 500 रुपये का भुगतान कीजिए" तो उसे वैध आदेश माना जायेगा क्योंकि लेखक ने आहार्यी को भुगतान के लिए स्पष्ट आदेश दिया है। इंग्लैण्ड में निर्णीत एक विवाद (जे० रून्ड बनाम

वेब 1974)[1] के अनुसार भी सौजन्य-सूचक शब्दों का प्रयोग करने पर विपत्र की वैधता यथावत बनी रहती है।

लेखक का आदेश शर्त रहित होना चाहिए अर्थात विपत्र की राशि का भुगतान किसी अनिश्चित घटना अथवा किसी शर्त की पूर्ति से सम्बन्ध नहीं किया जाना चाहिए।

(v) निश्चित आहार्यी (Drawee must be certain)—बिल का आहार्यी एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए। विपत्र में आहार्यी का नाम न होने पर उसे अपूर्ण विपत्र माना जाता है व जब तक आहार्यी के नाम की पूर्ति नहीं की जाती है तब तक उसे परक्राम्य विलेख भी नहीं माना जाता है। इस प्रकार के विपत्र के स्वीकारक को न्यायालय में स्वीकारक के रूप में दायी नहीं ठहराया जा सकता। धारा 17 की व्यवस्थानुसार जब एक विपत्र का लेखक अपने ही ऊपर विपत्र लिखता है तो उस विपत्र का धारक उसे अपनी इच्छानुसार प्रतिज्ञा-पत्र या विपत्र मान सकता है व बाद में भुगतान तक वह प्रतिज्ञा-पत्र या विपत्र ही बना रहता है। ऐसे विलेख को विपत्र मानने पर उसका लेखक आहार्यी व स्वीकारक एक ही व्यक्ति होता है।

यदि देनदार का नाम स्पष्ट हो किन्तु उस स्थान पर उस नाम के अनेक व्यक्ति मौजूद हों तो जो व्यक्ति उस विपत्र को सबसे पहले स्वीकार कर लेता है वही उसका विधिवत स्वीकारक व आहार्यी माना जाता है भले ही उस पर वह विपत्र न लिखा गया हो।

एक विपत्र के अनेक देनदार हो सकते हैं किन्तु विपत्र को वैध बनाने हेतु उन्हें संयुक्त रूप से अथवा व्यक्तिगत रूप से विपत्र की राशि के लिए दायी बनाना पड़ता है। यदि एक विपत्र के विभिन्न देनदारों को वैकल्पिक रूप से दायी बनाया गया हो तो उस विपत्र को वैध विपत्र नहीं कहा जा सकता।

(vi) निश्चित राशि (Certain Amount)—विपत्र द्वारा केवल नकद राशि के भुगतान के लिए आदेश दिया जाना चाहिए व आदेशित राशि सुनिश्चित होनी चाहिए,यथा 500 रुपये का भुगतान कीजिए। फलतः विपत्र के लेखक द्वारा निम्नांकित प्रकार से दिया गया आदेश वैध नहीं माना जायेगा "65 रुपये व अन्य देय राशि का भुगतान कीजिए या श्यामसुन्दर को 500 रुपये का भुगतान कीजिए किन्तु भुगतान से पूर्व उसकी ओर निकलने वाली राशि काट लीजिए या अ जितनी राशि मांगे, उतनी दे दीजिए या विद्याधर को 5 बैल व 100 अंश-पत्रों का भुगतान कीजिए।

धारा 5 की व्यवस्थानुसार यदि एक व्यक्ति देय-राशि व ब्याज दर का उल्लेख करते हुए आदेश दे या विदेशी विपत्रों में विनिमय दर का उल्लेख कर दे तो आदेशित राशि अनिश्चित होते हुए भी निश्चित मानी जायेगी यथा 500 रुपये व उन पर 3 प्रतिशत की दर से देय ब्याज का भुगतान कीजिए या 500 पौण्ड का देय तिथि पर चालू विनिमय दर से भुगतान कीजिए।

(vii) निश्चित प्रापक (Certain Payee)—विपत्र का भुगतान किसी निश्चित व्यक्ति अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को दिलवाया जाना चाहिए। अतः विपत्र में प्रापक

1. Mr. Melson will of 5 lige Mr. Webb by paying to J. Rull or order twenty guineas on his a/c.

का या तो स्पष्टतः नाम लिखा जाना चाहिए अथवा उसका इस प्रकार से वर्णन किया जाना चाहिए कि उसे आसानी से पहचाना जा सके। जब विपत्र मे किसी प्रापक का नाम नही दिया जाता है तो उसे वाहक माना जाता है।

विपत्र का लेखक चाहे तो स्वयं को विपत्र का प्रापक बना सकता है। उदाहरणार्थ "मुझे या मेरे द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान कीजिए।"

यदि किसी विपत्र मे "आयकर या आदेश" प्रभृति वाक्यांश लिखे गए हों तो उस विपत्र को वैध माना जायेगा क्योंकि ऐसे शब्दो का तात्पर्य उनसे सम्बन्धित विभाग से होता है।

एक विपत्र मे प्रापक का नाम अंकित न होने पर उसका धारक उसमे अपना नाम अंकित कर सकता है व विपत्र का भुगतान प्राप्त कर सकता है।

यदि विपत्र मे वैकल्पिक प्रापकों के नाम हो तो ऐसे विपत्र को वैध विपत्र नहीं माना जायेगा क्योंकि ऐसी दशा मे विपत्र का प्रापक निश्चित नहीं होता है यथा विद्याधर, विद्यासागर या विद्यास्वरूप को भुगतान कीजिए।

केवल सावधि विपत्रों को वाहक विपत्रो के रूप में निर्गमित किया जा सकता है किन्तु दर्शनी विपत्रों को भी पृष्ठांकन द्वारा वाहक विपत्रों में परिवर्तित किया जा सकता है।

(viii) समुचित मात्रा में मुद्रांक (Adequate Stamp duty)—भारतीय मुद्रांक अधिनियम की धारा 13 के प्रावधानो के अनुसार प्रत्येक सावधि विपत्र पर यथेष्ट मात्रा मे मुद्रांक लगाने पड़ते हैं। जब तक विपत्र पर विधि द्वारा निर्धारित दर से मुद्रांक नहीं लगाया जाता है तब तक उसे न्यायालय में प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत नही किया जा सकता (35)। एक विपत्र पर निर्धारित दर से कम मुद्रांक लगाने पर वह केवल मुद्रांक द्वारा पूरित राशि के लिए ही वैध माना जाता है।

(ix) तिथि (It must be dated)—प्रत्येक प्रकार के विपत्र पर तिथि अंकित करना अनिवार्य नही है। केवल तिथि पश्चात विपत्रो पर ही तिथि लिखना आवश्यक होता है क्योंकि ऐसे विपत्रो की परिपक्वता तिथि की गणना उन पर अंकित तिथि से की जाती है।

एक विपत्र पूर्व तिथीय या उत्तर तिथीय (Post dated) भी हो सकता है। अतः उसके लेखक के लिए आलेखन दिवस वाली तिथि अंकित करना अनिवार्य नहीं होता है।

जिस विपत्र पर आलेखन के समय तारीख नही लगायी जाती है उस पर बाद मे भी तारीख अंकित की जा सकती है व इस प्रकार से अंकित तारीख अन्यथा प्रमाणित न होने तक वैध मानी जाती है (118 ब)। दर्शन पश्चात विपत्रों की परिपक्वता तिथि की गणना उनकी स्वीकृति की तारीख से की जाती है। अतः उन पर स्वीकृति की तारीख अंकित करना अनिवार्य होता है। यदि स्वीकारक स्वीकृति की तारीख लगाना भूल जावे तो विपत्र का धारक उस पर सही तारीख अंकित कर सकता है व अन्यथा प्रमाणित न होने तक धारक द्वारा स्वीकृति की लगाई गई तारीख सही मानी जाती है।

विपत्रों के प्रकार (Kinds of Bills of Exchange) :—

भुगतान स्थल, भुगतान की अवधि, प्रलेख, प्रतिफल व पूर्णता के आधार पर विपत्रों का इस प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

1. **स्वदेशी व विदेशी बिल**—जिस विलेख (प्रतिज्ञा-पत्र, विपत्र व धनादेश) को

भारत में लिखा जाता है व भारत में ही जिसका भुगतान किया जाता है या जो भारत में लिखा जाता है और भारत में रहने वाले किसी व्यक्ति पर लिखा जाता है उसे स्वदेशी विलेख कहा जाता है (11)। अधिनियम की उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार जिस विपत्र को भारत मे किसी भारतवासी पर लिखा जाये व जिसका भुगतान भारत मे हो उसे स्वदेशी विपत्र कहा जायेगा।

जो विपत्र भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों की पूर्ति नहीं करता उसे विदेशी विपत्र कहा जाता है।

विदेशी विपत्र हमेशा तीन प्रतियों मे लिखे जाते हैं। विपत्र की प्रत्येक प्रति पर अनुक्रमांक लगाये जाते हैं। शेष दो प्रतियों का प्रसंग दिया जाता है (ऐसा न करने पर प्रत्येक प्रति को एक स्वतंत्र विपत्र माना जाता है) व प्रत्येक प्रति पर यह लिखा जाता है कि किसी एक प्रति का भुगतान हो जाने पर शेष प्रतिया निष्प्रभावी होंगी अर्थात उनके भुगतान के लिए स्वीकारक, लेखक व अन्य पक्षो को बाध्य नहीं किया जा सकेगा। विपत्र की तीनो प्रतियो पर रसीदी टिकट लगाए जाते हैं किन्तु स्वीकृति केवल एक प्रति पर ही दी जाती है। विपत्र की तीनों को सयुक्त रूप से "सेट" कहा जाता है व प्रत्येक प्रति को "छाया" कहा जाता है। स्वीकृति या भुगतान के लिए प्रत्येक प्रति को पृथक-पृथक डाक से भेजा जाता है ताकि आहार्यी या स्वीकारक को एक प्रति अवश्य मिल जाय।

यदि एक व्यक्ति विदेशी विपत्र की विभिन्न प्रतियों को विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में स्वीकार कर ले या उनका पृष्ठांकन कर दे तो ऐसा स्वीकारक, पृष्ठांकक व अनुवर्ती पृष्ठांकक प्रत्येक प्रति की राशि के भुगतान के लिए दायी होता है।

जिस यथाविधि-धारक को विदेशी विपत्र की प्रति सबसे पहले प्राप्त हो जाती है, उसे अन्य यथाविधि-धारकों से विपत्र की शेष प्रतियाँ प्राप्त करने का अधिकार होता है।

अन्यथा प्रमाणित न होने तक विदेशी विलेखों के नियम भारतीय विलेखों के नियमो के समकक्ष माने जाते हैं (137)। विदेशी विलेखों के लेखकों के दायित्व का निर्धारण उनके आलेखन स्थान के नियमो द्वारा व स्वीकारको और पृष्ठाकको के दायित्वों का निर्धारण भुगतान स्थल के नियमानुसार होता है (134)। विदेशी विलेखों के अनादरित हो जाने पर अनादरण की सूचना की पर्याप्ता व अनादरण का निर्धारण भुगतान स्थल के नियमानुसार किया जाता है (135)। जब इस सम्बंध में कोई अनुबंध कर लिया जाता है तो इन तत्वों का निर्धारण उस अनुबंध के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।

यदि विदेशी विलेखो का आलेखन, पृष्ठाकन को उनकी स्वीकृति भारत के बाहर की जावे किन्तु भारतीय नियमो के अनुसार की जावे व बाद मे यह प्रमाणित हो जाय कि विलेख का अवैधानिक रूप से आलेखन, या पृष्ठांकन किया गया था अवैध रूप से उस पर स्वीकृति दी गई थी तो ऐसे विलेखों पर भारत में दुबारा स्वीकृति दे दी जावे या उनका पृष्ठांकन कर दिया जावे तो वह स्वीकृति या पृष्ठांकन वैध कहलाता है (136)।

2. दर्शनी, तिथि पश्चात व दर्शन पश्चात विपत्र—:

दर्शनी विपत्र :—आहार्यी को जिस विपत्र का भुगतान दर्शन करते ही करना पड़े उसे दर्शनी विपत्र कहा जाता है। ऐसे विपत्रों के भुगतान की कोई परिपक्वता तिथि नहीं होती है। इन्हें जिस दिन भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है, वही इनकी देय तिथि होती है। इन विपत्रों के देनदारों को अनुग्रह दिवस नहीं मिलते हैं।

यद्यपि इन विपत्रों की औपचारिक स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पड़ती है, किन्तु जब आहार्यी इन विपत्रों का भुगतान करता है तो यह मान लिया जाता है कि उसने भुगतान द्वारा संदर्भगत विपत्र पर अपनी स्वीकृति भी दे दी है क्योंकि स्वीकृति के बिना किसी भी आहार्यी को एक विपत्र की राशि के लिए देनदार नहीं बनाया जा सकता। इसी प्रकार जब इन विपत्रों का अनादरण हो जाता है तो यह माना जाता है कि इनका अस्वीकृति के कारण हुआ है।

इन विपत्रों पर परिसीमन नियम इन पर अंकित तिथि से लागू होता है।

तिथि पश्चात विपत्र :—तिथि पश्चात विपत्र सावधिक होते हैं अर्थात इनकी परिपक्वता तिथि इन पर अंकित अवधि के पश्चात आती है। इन विपत्रों की स्वीकृति की कानूनन आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु इनके प्रापक या धारक अपने हितों की सुरक्षार्थ इन विपत्रों पर भी स्वीकृति ले लेते है। तिथि पश्चात विपत्रों की परिपक्वता तिथि की गणना इन पर अंकित तिथि से की जाती है व भुगतानकर्ता को भुगतान के लिए 3 दिवस अनुग्रह स्वरूप प्राप्त होते हैं।

यदि इन विपत्रों पर देय-तिथि तक आहार्यी (Drawee) की स्वीकृति न ली जावे व देय-तिथि पर इनका अनादरण हो जाय तो यह माना जायेगा कि विपत्र का अनादरण अस्वीकृति के कारण हुआ।

दर्शनी विपत्र (प्रलेखीय)

TO BE PRESENTED THROUGH : State Bank of Bikaner & Jaipur, Sikar.

No Commission to be charged by the Bank at the destination

ACC. No. 18529 Bombay 11-8-81

THE CENTURY SPINNING & MANUFACTURING COMPANY LTD.

Rs. 2788·65

On demand please pay to STATE BANK OF INDIA or order the sum of Rupees two thousand seven hundred eighty eight and Paise sixty-five only for value received bill No. 19732 Motor Receipt No./Railway Receipt No. 343264.

For the Century Spg & Mfg. Co. Ltd.
Sd.......................
For Accountant

To
M/s. Rajiv & Company
Cloth Merchants, Nehru Marg,
SIKAR.

Important :
(i) Please consult the case-in-need before returning the draft.
(ii) No interest is to be charged from the drawee for 7 days from the date of presentation of the draft.

In case of need please refer to
M/s S.B. Trading Company,
Purohitji ka Katla,
JAIPUR-3.

Date of delivery 7-8-81 Cont. No. SBX 1,2,3,4

RETURN immediately, if unpaid after 20 days from the date of presentation.

दर्शन पश्चात विपत्र :—दर्शन पश्चात विपत्र भी सावधिक होते हैं किन्तु इनकी परिपक्वता तिथि की गणना इनकी स्वीकृति की तारीख से की जाती है। अतः दर्शन पश्चात विपत्रों के प्रापक या धारक को अपने विपत्रों को आहार्यी के समक्ष स्वीकृति के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है।

जिस दिन इन विपत्रों को स्वीकृत किया जाता है उसी दिन से इन पर परिसीमन नियम (Law of limitation) लागू होता है। सावधि विपत्रों (तिथि पश्चात एवं दर्शन पश्चात) को उनकी परिपक्वता तिथि पर अथवा परिपक्वता तिथि के पश्चात स्वीकार करने पर वे दर्शनी विपत्र बन जाते हैं और स्वीकारक को मांग करने पर उनका तत्काल भुगतान करना पड़ता है।

3. व्यापारिक एवं अनुग्रह विपत्र (Trade and Accomodation Bills)

जो विपत्र वस्तुओं के क्रय-विक्रय के आधार पर लिखे व स्वीकृत किये जाते हैं उन्हें व्यापारिक विपत्र कहा जाता है। ये विपत्र स्वदेशी, विदेशी, दर्शन पश्चात, सावधि, प्रलेखीय अथवा गैर प्रलेखीय हो सकते हैं। ये विपत्र स्वयं शोध्य होते हैं क्योंकि स्वीकारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह देय-तिथि तक खरीदे गये माल को बेचकर अपने विपत्र का भुगतान कर देगा। व्यापारिक बैंक सामान्यतः ऐसे विपत्रों की ही कटौती करते हैं।

अनुग्रह विपत्र बिल के किसी पक्ष की सहायतार्थ बिना प्रतिफल लिखे जाते हैं अथवा पृष्ठांकित किये जाते हैं। चूंकि इन विपत्रों का आधार प्रतिफल नहीं होता है अतः इनकी गणना व्यापारिक विपत्रों में नहीं की जाती है। अनुग्रह विपत्रों और व्यापारिक विपत्रों की शैली में कोई अन्तर नहीं होता है, अतः इन विपत्रों की प्रकृति का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता। इन विपत्रों को "काइट" विपत्र भी कहा जाता है।

दर्शनी विपत्र (अप्रलेखीय)

If not paid within 3 days of presentation, interest will be charged at 12%. The bank charges are to be recovered from the drawee.

Hari Ram Vinod Kumar
Cloth Merchant & Commission Agent
B. A. Market, Kapasia Bazar
AHMEDABAD-2

No. 1666 Date-10th Jan., 1981

Rs. 2,000/-

On demand please pay to the order of the Punjab National Bank, Sikar the sum of Rupees Two Thousand only against the delivery of R/R No. Nil dated Nil ex.......... ... ...to..................for.................

To
Messrs A. B & Company,
Cloth Merchant,
Tabela Road,
Sikar.

Yours Truly
For Hari Ram Vinod Kumar
Sd ....
Partner.... ....

यदि इन विपत्रों के धारकों को प्रतिफल बिना किसी दूसरे व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करने के लिए प्रेरित किया जावे व धारक प्रार्थी की इस बात को मान ले तो ऐसे धारक को विपत्र का सहायक (backer) कहा जाता है व उसकी इस क्रिया को विपत्र की सहायता (backing the bill) करना कहा जाता है।

भुगतानकर्ता का अधिकार :—जिस व्यक्ति की सहायतार्थ विपत्र लिया जाता है, स्वीकार किया जाता है या पृष्ठांकित किया जाता है वह विपत्र की देय-तिथि पर विपत्र की राशि के भुगतान की प्रतिज्ञा करता है। यदि देय-तिथि पर वह अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा न कर सके व सहायों या अन्य कोई पक्ष विपत्र का भुगतान कर दे तो उसे भुगतानकर्ता को भुगतान की राशि का भुगतान करना पड़ता है।

यथाविधि-धारक का अधिकार :—अनुग्रह विपत्रों से सम्बन्धित पक्ष एक दूसरे के प्रति दायी नहीं होते हैं, किन्तु इन विपत्रों का प्रतिफल स्वरूप पृष्ठांकन करने पर पृष्ठांकिती व उसके अनुवर्ती धारक विपत्र को अनादरित हो जाने पर विपत्र के पृष्ठांकक या किसी भी अन्य पक्ष से विपत्र की राशि पाने के अधिकारी होते हैं।

यदि इन विलेखों का देय-तिथि के पश्चात एक यथाविधि धारक को परक्रामण कर दिया जाय तो वह इस प्रकार से प्राप्त विपत्र की राशि के लिए विपत्र के किसी भी पक्ष को बाध्य कर सकता है। अनुग्रह विपत्रों के यथाविधि-धारक को प्राप्त यह अधिकार सामान्य अधिकारों का अपवाद है क्योंकि एक विपत्र के अनादरण के पश्चात पृष्ठांकित

To
M/s. Rajiv & Company
Cloth Merchants, Nehru Marg,
SIKAR.

Important :
(i) *Please consult the* case-in-need before returning the draft.
(ii) No interest is to be charged from the drawee for 7 days from the date of presentation of the draft.

In case of need please refer to M/s S.B. Trading Company, Purohitji ka Katla, JAIPUR–3.

Date of delivery 7–8–81   *Cont. No. SBX 1,2,3,4*

RETURN *immediately, if unpaid after 20 days from the date of* presentation.

दर्शन पश्चात विपत्र :—दर्शन पश्चात विपत्र भी सावधिक होते हैं किन्तु इनकी परिपक्वता तिथि की गणना इनकी स्वीकृति की तारीख से की जाती है। अतः दर्शन पश्चात विपत्रों के प्रापक या धारक को अपने विपत्रों को आहार्यी के समक्ष स्वीकृति के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है।

जिस दिन इन विपत्रो को स्वीकृत किया जाता है उसी दिन से इन पर परिसीमन नियम (Law of limitation) लागू होता है। सावधि विपत्रो (तिथि पश्चात एवं दर्शन पश्चात) को उनकी परिपक्वता तिथि पर अथवा परिपक्वता तिथि के पश्चात स्वीकार करने पर वे दर्शनी विपत्र बन जाते हैं और स्वीकारक को मांग करने पर उनका तत्काल भुगतान करना पड़ता है।

3. व्यापारिक एवं अनुग्रह विपत्र (Trade and Accomodation Bills)

जो विपत्र वस्तुओं के क्रय-विक्रय के आधार पर लिखे व स्वीकृत किये जाते हैं उन्हें व्यापारिक विपत्र कहा जाता है। ये विपत्र स्वदेशी, विदेशी, दर्शन पश्चात, सावधि, प्रलेखीय अथवा गैर प्रलेखीय हो सकते हैं। ये विपत्र स्वयं शोध्य होते है क्योंकि स्वीकारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह देय-तिथि तक खरीदे गये माल को बेचकर अपने विपत्र का भुगतान कर देगा। व्यापारिक बैंक सामान्यतः ऐसे विपत्रो की ही कटौती करते हैं।

अनुग्रह विपत्र बिल के किसी पक्ष की सहायतार्थ बिना प्रतिफल लिखे जाते हैं अथवा पृष्ठांकित किये जाते हैं। चूंकि इन विपत्रो का आधार प्रतिफल नहीं होता है अतः इनकी गणना व्यापारिक विपत्रों में नहीं की जाती है। अनुग्रह विपत्रों और व्यापारिक विपत्रो की शैली मे कोई अन्तर नहीं होता है, अतः इन विपत्रो की प्रकृति का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता। इन विपत्रो को "काइट" विपत्र भी कहा जाता है।

दर्शनी विपत्र (अप्रलेखीय)

If not paid within 3 days of presentation, interest will be charged at 12%. The bank charges are to be recovered from the drawee.

Hari Ram Vinod Kumar
Cloth Merchant & Commission Agent
B. A. Market, Kapasia Bazar
AHMEDABAD-2

No. 1666 Date-10th Jan., 1981

Rs. 2,000/-

On demand please pay to the order of the Punjab National Bank, Sikar the sum of Rupees Two Thousand only against the delivery of R/R No. Nil dated Nil ex.................to...............for...............

To
Messrs A. B & Company,
Cloth Merchant,
Tabela Road,
Sikar.

Yours Truly
For Hari Ram Vinod Kumar
Sd ....
Partner.........

यदि इन विपत्रों के धारकों को प्रतिफल बिना किसी दूसरे व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करने के लिए प्रेरित किया जावे व धारक प्रार्थी की इस बात को मान ले तो ऐसे धारक को विपत्र का सहायक (backer) कहा जाता है व उसकी इस क्रिया को विपत्र की सहायता (backing the bill) करना कहा जाता है।

भुगतानकर्ता का अधिकार :—जिस व्यक्ति की सहायतार्थ विपत्र लिखा जाता है, स्वीकार किया जाता है या पृष्ठांकित किया जाता है वह विपत्र की देय-तिथि पर विपत्र की राशि के भुगतान की प्रतिज्ञा करता है। यदि देय-तिथि पर वह अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा न कर सके व आहार्यी या अन्य कोई पक्ष विपत्र का भुगतान कर दे तो उसे भुगतान-कर्ता को भुगतान की राशि का भुगतान करना पड़ता है।

यथाविधि-धारक का अधिकार :—अनुग्रह विपत्रों में सम्बन्धित पक्ष एक दूसरे के प्रति दायी नहीं होते हैं, किन्तु इन विपत्रों का प्रतिफल स्वरूप पृष्ठांकन करने पर पृष्ठांकिती व उसके अनुवर्ती धारक विपत्र के अनादरित हो जाने पर विपत्र के पृष्ठांकक या किसी भी अन्य पक्ष से विपत्र की राशि पाने के अधिकारी होते हैं।

यदि इन विपत्रों का देय-तिथि के पश्चात् एक यथाविधि धारक को हस्तान्तरण कर दिया जाय तो वह इस प्रकार से प्राप्त विपत्र की राशि के लिए विपत्र के किसी भी पक्ष को बाध्य कर सकता है। अनुग्रह विपत्रों के यथाविधि-धारक को प्राप्त यह अधिकार सामान्य अधिकारों का अपवाद है क्योंकि एक विपत्र के अनादरण के पश्चात् पृष्ठांकित

विपत्रों के धारकों को हस्तांतरक के अधिकारों से श्रेष्ठतर अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। देय-तिथि से पूर्व अथवा देय-तिथि के पश्चात किए गए पृष्ठांकन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

लेखक का दायित्व :—यदि अनुग्रह विपत्रों को उनकी देय-तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत न किया जाये अथवा उनके अनादरण की सूचना उनके लेखकों को न दी जाये तो भी वे अपने दायित्वों के प्रति यथावत दायी बने रहते हैं क्योंकि उपर्युक्त कार्यों को न करने से अनुग्रह विपत्रों के लेखकों को कोई हानि नहीं होती है।

4. प्रलेखीय एवं गैर प्रलेखीय विपत्र (Documentary and Clean bills)

जिस विपत्र के साथ माल-सम्बन्धी प्रलेख—रेल्वे रसीद, जहाजी बिल्टी, बीजक, उद्गम का प्रमाण-पत्र आदि संलग्न होते हैं उसे प्रलेखीय विपत्र कहा जाता है। प्रलेखीय विपत्र स्वदेशी अथवा विदेशी हो सकते हैं। स्वदेशी व्यापार की दशा में विक्रेता अपने विपत्र को क्रेता के बैंक के पास क्रेता की स्वीकृति/भुगतान हेतु भेज देता है और वह विक्रेता के आदेशों की पूर्ति पर क्रेता को संलग्न प्रलेख देता है और स्वीकृति/भुगतान शुदा विपत्र को विक्रेता के पास भेज देता है। कभी-कभी विक्रेता ऐसे विपत्र को सीधे क्रेता के पास भी भेज देता है किन्तु ऐसा करने पर उसे बिल के अनादरण की जोखिम उठानी पड़ती है। विदेशी व्यापार की अवस्था में ये विपत्र क्रेता के प्रतिनिधि बैंक के समक्ष भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। वह क्रेता की ओर से इन पर स्वीकृति दे देता है और प्रलेखों को क्रेता के पास भेज देता है।

विपत्र के विभिन्न पक्षकार और उनका दायित्व :—सामान्यतया एक विपत्र के तीन पक्ष होते हैं—लेखक, आहार्यी (या देनदार) और प्रापक।

(क) लेखक (Drawer)—विपत्र के लिखने वाले को लेखक कहा जाता है। अनुग्रह विपत्रों का कोई भी व्यक्ति लेखक हो सकता है किन्तु व्यापारिक विपत्रों का लेखक सामान्यतः ऋणदाता या माल का विक्रेता होता है। एक अवयस्क भी विपत्र का लेखक हो सकता है व ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखे गये विपत्रों के स्वीकारक विपत्रों के भुगतान के लिए दायी होते हैं। एक व्यक्ति चाहे तो विपत्र लिखने के लिए अपने अभिकर्ता की भी नियुक्ति कर सकता है। इस प्रकार के अभिकर्ता द्वारा लिखा गया विपत्र भी पूर्णतः वैध होता है।

दायित्व (Liability)—एक विपत्र पर जब तक स्वीकृति नहीं दी जाती है तब तक उसका लेखक ही विपत्र की राशि के लिए प्रमुख ऋणी के रूप में दायी होता है किन्तु विपत्र की स्वीकृति के पश्चात् विपत्र का स्वीकारक प्रमुख ऋणी बन जाता है व शेष पक्ष केवल जमानतदार का कार्य करते हैं (37)। एक विपत्र के अनादरण पर (भुगतान न होने के कारण) उसके लेखक को विपत्र के धारक की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है बशर्ते कि उसे अनादरण की सूचना नियमानुसार दे दी गई हो (30)। इस प्रकार एक विपत्र के लेखक का दायित्व सशर्त होता है व उन शर्तों के पूर्ण होने पर ही उसे विपत्र की राशि के लिए दायी बनाया जा सकता है।

(ख) आहार्यी (Drawee)—जिस व्यक्ति को विपत्र की राशि के भुगतान के लिए आदेश दिया जाता है या जिस पर विपत्र लिखा जाता है उसे विपत्र का आहार्यी या देनदार कहा जाता है। विपत्र का देनदार एक व्यक्ति, फर्म या संस्था हो सकती है। एक विपत्र दो या दो से अधिक व्यक्तियों पर भी लिखा जा सकता है। ऐसे विपत्रों को संयुक्त

विपत्र कहा जाता है। विपत्र का देनदार निश्चित होना चाहिए क्योंकि वैकल्पिक देनदारी वाला विपत्र वैध विपत्र नही होता है।

जब विपत्र का आहार्यी विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे देता है व स्वीकृति के पश्चात उसे प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है या उसे स्वीकृति के तथ्य से सूचित कर देता है तो उसे स्वीकारक कहा जाता है। इस प्रकार विपत्र का आहार्यी व स्वीकारक एक ही व्यक्ति होता है किन्तु आहार्यी से अन्य व्यक्ति द्वारा स्वीकृति देने पर आहार्यी और स्वीकारक भिन्न व्यक्ति भी हो सकते हैं।

एक विपत्र को उसका आहार्यी, समस्त आहार्यी या उनके अधिकृत अभिकर्ता, आवश्यकता के लिए आहार्यी अथवा सम्मान के लिए स्वीकारक स्वीकार कर सकता है।

यदि एक लेखक अपने पर ही विपत्र लिखे तो उस विपत्र का प्रापक उसे प्रतिज्ञा पत्र या विपत्र मान सकता है। वी. वी. कागजी बनाम लक्ष्मन लाल विवाद भी इस मत की पुष्टि करता है।

दायित्व—जब तक विपत्र का आहार्यी विपत्र पर स्वीकृति नही देता है तब तक वह विपत्र की राशि के लिए दायी नहीं होता है। उसका दायित्व विपत्र की स्वीकृति के पश्चात प्रारम्भ होता है। विपत्र को स्वीकृति के पश्चात वह प्रमुख ऋणी बन जाता है व विपत्र की राशि के भुगतान के लिए विपत्र के समस्त पक्षों के प्रति दायी होता है। सशर्त स्वीकृति की दशा में शर्तों के पूर्ण होने पर वह विपत्र के प्रति दायी होता है।

जब किसी विपत्र का आहार्यी विपत्र की देय-तिथि के पश्चात उसे स्वीकार कर लेता है तो वह विपत्र की राशि के भुगतान के लिए दायी बन जाता है। ऐसे विपत्र का उसे तत्काल भुगतान करना पड़ता है (धारा 32)।

स्वीकारक को विपत्र की राशि के लिए दायी बनाने के लिए विपत्र को देय-तिथि पर उसके समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। यह दायित्व पूर्ण व शर्तविहीन होता है किन्तु अन्यथा अनुबन्ध होने पर दायित्व सशर्त भी हो सकता है। जब एक विपत्र का स्वीकारक दिवालिया हो जाता है या मर जाता है तो भी भुगतान के लिए दायी बना रहता है।

जब एक स्वीकारक विपत्र की देय-तिथि पर विपत्र का अनादरण कर देता है और फलस्वरूप किसी पक्ष को हानि हो जाती है तो उसे उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है (32)।

यदि एक विपत्र जाली नाम से लिखा गया हो व उसी नाम से और उसी लिखावट में उसका पृष्ठांकन किया गया हो तो ऐसे विपत्र का स्वीकारक विपत्र की राशि के लिए उसके यथाविधि धारी के प्रति दायी होता है।

यदि विपत्र की स्वीकृति के समय विपत्र पर जाली पृष्ठांकन हो व स्वीकारक को उसका पता हो या ऐसा मानने के लिए उसके पास पर्याप्त कारण हो तो विपत्र पर जाली पृष्ठांकन होते हुए भी वह विपत्र की राशि के लिए दायी होता है।

एक विपत्र का स्वीकारक विपत्र की स्वीकृति के पश्चात अपने दायित्वों से मुक्त होने के लिए यह तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकता कि विपत्र की वास्तविक तिथि को प्रापक में पृष्ठांकन की क्षमता नही थी (धारा 121)।

(ग) आवश्यकता के लिए आहार्यी (Drawee in case of need)—यह विपत्र का वैकल्पिक आहार्यी होता है। सामान्यतया विपत्र का लेखक विपत्र को लिखते समय ही

वैकल्पिक आहार्यी का नाम व पता अंकित कर देता है। लेखक के अतिरिक्त विपत्र का पृष्ठांकक भी वैकल्पिक आहार्यी का नाम व पता विपत्र में अंकित कर सकता है।

जब मूल आहार्यी विपत्र पर अपनी स्वीकृति देने से मना कर देता है तो उस विपत्र को स्वीकृति के लिए वैकल्पिक आहार्यी के समक्ष अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है। जब तक इस व्यक्ति के समक्ष विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है तब तक स्वीकृति सम्बन्धी प्रस्तुतीकरण पूर्ण नहीं माना जाता है।

आवश्यकता के लिए आहार्यी आलोकन व प्रमाणन के बिना भी एक विपत्र को स्वीकृत कर सकता है।

दायित्व :—आवश्यकता के लिए आहार्यी द्वारा स्वीकृत विपत्र को देय तिथि पर भुगतान के लिए सबसे पहले मूल आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब मूल आहार्यी विपत्र का भुगतान कर देता है तो वैकल्पिक स्वीकारक का विपत्र के प्रति कोई दायित्व नहीं होता है। जब मूल आहार्यी विपत्र का भुगतान नहीं करता है तब वैकल्पिक आहार्यी विपत्र की राशि के लिए दायी बन जाता है। इस राशि के लिए उसे दायी बनाने हेतु विपत्र के धारक को अपना विपत्र उसके समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है।

(घ) सम्मान के लिए स्वीकारक (Acceptor for honour)—जब एक विपत्र का आहार्यी विपत्र पर स्वीकृति नहीं देता है अथवा स्वीकृति के पश्चात बेहतर प्रतिभूति देने से मना कर देता है तो कोई भी व्यक्ति उस विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे सकता है किन्तु ऐसा स्वीकारक विपत्र की राशि के लिए पहले से ही दायी नहीं होना चाहिए। इस प्रकार स्वीकृति देने वाले व्यक्ति को सम्मान के लिए स्वीकारक कहा जाता है। यह व्यक्ति विपत्र के लेखक अथवा अन्य किसी पक्ष के सम्मानार्थ स्वीकृति दे सकता है।

यह स्वीकृति विपत्र के आलोकन व प्रमाणन के पश्चात दी जाती है। सम्मान के लिए स्वीकारक अपनी स्वीकृति विपत्र के धारक की सहमति से देता है व स्वीकृति देते समय उसे यह स्पष्ट करना पड़ता है कि वह किसके सम्मान के लिए विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे रहा है। जब ऐसा स्वीकारक अपनी स्वीकृति में किसी व्यक्ति विशेष के नाम का उल्लेख नहीं करता है तो यह माना जाता है कि उसने विपत्र के लेखक के सम्मानार्थ अपनी स्वीकृति दी थी। स्वीकृति के पश्चात सम्मान के लिए स्वीकारक को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। इस प्रकार की स्वीकृति के पश्चात अनादरित विपत्र पुनः प्राणवान बन जाता है।

सम्मान के लिए स्वीकृत विपत्र को उसकी देय-तिथि पर भुगतान के लिए सबसे पहले मूल आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब मूल आहार्यी प्रस्तुत विपत्र का अनादरण कर देता है तो उसका आलोकन व प्रमाणन करवाना पड़ता है। इन दोनों कार्यों की पूर्ति के पश्चात अनादरित विपत्र को भुगतान के लिए सम्मानार्थ स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रक्रिया को पूर्ण न करने पर सम्मान के लिए स्वीकारक अपनी स्वीकृति के प्रति दायी नहीं होता है।

सम्मान के लिए स्वीकारक जिस व्यक्ति के सम्मान के लिए विपत्र पर अपनी स्वीकृति देता है उसके बाद वाले व्यक्ति/व्यक्तियों के प्रति दायी नहीं होता है व उस व्यक्ति के सभी पूर्व पक्षकार सम्मान के लिए स्वीकारक की हानिपूर्ति के लिए दायी होते हैं।

सम्मान के लिए स्वीकारक एक अनादरित विपत्र के धारक के प्रति तभी दायी

होता है जबकि विपत्र को देय-तिथि के दूसरे दिन उसके पास भुगतान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाता है या उसके पास भेज दिया जाता है।

(ङ) प्रापक (Payee)—जिस व्यक्ति के पक्ष मे विपत्र लिखा जाता है उसे विपत्र का प्रापक कहा जाता है। एक विपत्र की राशि उसके प्रापक या प्रापक द्वारा आदिष्ट व्यक्ति को प्राप्त होती है।

प्रापक एक विपत्र का अनिवार्य पक्ष नही होता है क्योंकि यदि लेखक चाहे तो वह स्वय भी अपने विपत्र का प्रापक बन सकता है। ऐसी अवस्था में विपत्र के केवल दो ही पक्ष होगे—लेखक एवं आहार्यी। तृतीय पक्ष की भूमिका का लेखक स्वय निर्वाह करेगा।

(च) धारक (Holder)—जिस व्यक्ति को एक विपत्र को अपने नाम से अपने पास रखने व उसकी राशि प्राप्त करने का अधिकार होता है उसे विपत्र का धारक कहा जाता है। सामान्यतः लेखक, प्रापक व पृष्ठांकिती एक विपत्र के धारक होते हैं। एक विपत्र के खो जाने पर जिस व्यक्ति को ऐसा विपत्र प्राप्त होता है वह उसका धारक नही बन सकता बल्कि जिस व्यक्ति से विपत्र खोता है वह उसका धारक माना जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति एक विपत्र को चुराकर या डरा धमका कर प्राप्त करता है, वह उस विपत्र का धारक नही बन सकता क्योंकि उसे उस विपत्र को अपने नाम से अपने पास रखने व उसकी राशि पाने का अधिकार नही होता है।

(छ) पृष्ठांकक (Endorser)—जब एक विपत्र का धारक उसका किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन कर देता है तो उसे उस विपत्र का पृष्ठांकक कहा जाता है। एक विपत्र का उसकी देय तिथि तक बराबर पृष्ठांकन किया जा सकता है, अतः एक विपत्र के अनेक पृष्ठांकक हो सकते हैं। विपत्र के पृष्ठांकन के पश्चात उसका पृष्ठांकिती उसका धारक बन जाता है।

यदि एक विपत्र का धारक उसकी देय तिथि से पूर्व उसका किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष मे पृष्ठांकन कर देवे व देय-तिथि पर पृष्ठांकित विपत्र का अनादरण हो जावे तो वह ऐसे विपत्र के प्रत्येक अनुवर्ती धारक के प्रति विपत्र के अनादरण से होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए दायी होता है। पृष्ठांकक का यह दायित्व सशर्त होता है क्योंकि—

1. उसे अनादरण के लिए तभी दायी बनाया जा सकता है जबकि उसे अनादरण की यथाविधि सूचना दे दी गई हो।

2. सशर्त पृष्ठांकन की दशा मे उसे केवल प्रस्तावित शर्तों के पूर्ण होने पर ही दायी बनाया जा सकता है।

3. अन्य किसी प्रकार का अनुबन्ध करने पर उस अनुबंध के प्रावधानों द्वारा उसके दायित्व का निर्धारण होता है।

4. जब विपत्र का धारक पृष्ठांकन की पूर्व अनुमति के बिना अपने किसी पूर्व पक्ष का नाम काट देता है तो वह विपत्र के अनादरण पर धारक की क्षतिपूर्ति के लिए दायी नही होता है।

5. यदि पृष्ठांकक ने पृष्ठांकन करते समय क्षतिपूर्ति का दायित्व स्वीकार न किया हो तो वह क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होता है।

6. विपत्र के अनादरण पर पृष्ठांकक विपत्र की राशि के तत्काल भुगतान के लिए दायी होता है।

वैकल्पिक आहार्यी का नाम व पता अंकित कर देता है। लेखक के अतिरिक्त विपत्र का पृष्ठांकक भी वैकल्पिक आहार्यी का नाम व पता विपत्र में अंकित कर सकता है।

जब मूल आहार्यी विपत्र पर अपनी स्वीकृति देने से मना कर देता है तो उस विपत्र को स्वीकृति के लिए वैकल्पिक आहार्यी के समक्ष अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है। जब तक इस व्यक्ति के समक्ष विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है तब तक स्वीकृति सम्बन्धी प्रस्तुतीकरण पूर्ण नहीं माना जाता है।

आवश्यकता के लिए आहार्यी आलोकन व प्रमाणन के बिना भी एक विपत्र, को स्वीकृत कर सकता है।

दायित्व :—आवश्यकता के लिए आहार्यी द्वारा स्वीकृत विपत्र को देय तिथि पर भुगतान के लिए सबसे पहले मूल आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब मूल आहार्यी विपत्र का भुगतान कर देता है तो वैकल्पिक स्वीकारक का विपत्र के प्रति कोई दायित्व नहीं होता है। जब मूल आहार्यी विपत्र का भुगतान नहीं करता है तब वैकल्पिक आहार्यी विपत्र की राशि के लिए दायी बन जाता है। इस राशि के लिए उसे दायी बनाने हेतु विपत्र के धारक को अपना विपत्र उसके समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है।

(घ) सम्मान के लिए स्वीकारक (Acceptor for honour)—जब एक विपत्र का आहार्यी विपत्र पर स्वीकृति नहीं देता है अथवा स्वीकृति के पश्चात बेहतर प्रतिभूति देने से मना कर देता है तो कोई भी व्यक्ति उस विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे सकता है किन्तु ऐसा स्वीकारक विपत्र की राशि के लिए पहले से ही दायी नहीं होना चाहिए। इस प्रकार स्वीकृति देने वाले व्यक्ति को सम्मान के लिए स्वीकारक कहा जाता है। यह व्यक्ति विपत्र के लेखक अथवा अन्य किसी पक्ष के सम्मानार्थ स्वीकृति दे सकता है।

यह स्वीकृति विपत्र के आलोकन व प्रमाणन के पश्चात दी जाती है। सम्मान के लिए स्वीकारक अपनी स्वीकृति विपत्र के धारक की सहमति से देता है व स्वीकृति देते समय उसे यह स्पष्ट करना पड़ता है कि वह किसके सम्मान के लिए विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे रहा है। जब ऐसा स्वीकारक अपनी स्वीकृति में किसी व्यक्ति विशेष के नाम का उल्लेख नहीं करता है तो यह माना जाता है कि उसने विपत्र के लेखक के सम्मानार्थ अपनी स्वीकृति दी थी। स्वीकृति के पश्चात सम्मान के लिए स्वीकारक को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। इस प्रकार की स्वीकृति के पश्चात अनादरित विपत्र पुनः प्राणवान बन जाता है।

सम्मान के लिए स्वीकृत विपत्र को उसकी देय-तिथि पर भुगतान के लिए सबसे पहले मूल आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब मूल आहार्यी प्रस्तुत विपत्र का अनादरण कर देता है तो उसका आलोकन व प्रमाणन करवाना पड़ता है। इन दोनों कार्यों की पूर्ति के पश्चात अनादरित विपत्र को भुगतान के लिए सम्मानार्थ स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रक्रिया को पूर्ण न करने पर सम्मान के लिए स्वीकारक अपनी स्वीकृति के प्रति दायी नहीं होता है।

सम्मान के लिए स्वीकारक जिस व्यक्ति के सम्मान के लिए विपत्र पर अपनी स्वीकृति देता है उसके बाद वाले व्यक्ति/व्यक्तियों के प्रति दायी नहीं होता है व उस व्यक्ति के सभी पूर्व पक्षकार सम्मान के लिए स्वीकारक की हानिपूर्ति के लिए दायी होते हैं।

सम्मान के लिए स्वीकारक एक अनादरित विपत्र के धारक के प्रति तभी दायी

होता है जबकि विपत्र को देय-तिथि के दूसरे दिन उसके पास भुगतान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाता है या उसके पास भेज दिया जाता है।

(ड.) प्रापक (Payee)—जिस व्यक्ति के पक्ष मे विपत्र लिखा जाता है उसे विपत्र का प्रापक कहा जाता है। एक विपत्र की राशि उसके प्रापक या प्रापक द्वारा आदिष्ट व्यक्ति को प्राप्त होती है।

प्रापक एक विपत्र का अनिवार्य पक्ष नहीं होता है क्योंकि यदि लेखक चाहे तो वह स्वयं भी अपने विपत्र का प्रापक बन सकता है। ऐसी अवस्था में विपत्र के केवल दो ही पक्ष होंगे—लेखक एवं आहार्यी। तृतीय पक्ष की भूमिका का लेखक स्वयं निर्वाह करेगा।

(च) धारक (Holder)—जिस व्यक्ति को एक विपत्र को अपने नाम से अपने पास रखने व उसकी राशि प्राप्त करने का अधिकार होता है उसे विपत्र का धारक कहा जाता है। सामान्यतः लेखक, प्रापक व पृष्ठांकिती एक विपत्र के धारक होते हैं। एक विपत्र के खो जाने पर जिस व्यक्ति को ऐसा विपत्र प्राप्त होता है वह उसका धारक नहीं बन सकता बल्कि जिस व्यक्ति से विपत्र खोता है वह उसका धारक माना जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति एक विपत्र को चुराकर या डरा धमका कर प्राप्त करता है, वह उस विपत्र का धारक नहीं बन सकता क्योंकि उसे उस विपत्र को अपने नाम से अपने पास रखने व उसकी राशि पाने का अधिकार नहीं होता है।

(छ) पृष्ठांकक (Endorser)—जब एक विपत्र का धारक उसका किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन कर देता है तो उसे उस विपत्र का पृष्ठांकक कहा जाता है। एक विपत्र का उसकी देय तिथि तक बराबर पृष्ठांकन किया जा सकता है, अतः एक विपत्र के अनेक पृष्ठांकक हो सकते हैं। विपत्र के पृष्ठांकन के पश्चात उसका पृष्ठांकिती उसका धारक बन जाता है।

यदि एक विपत्र का धारक उसकी देय तिथि से पूर्व उसका किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन कर देवे व देय-तिथि पर पृष्ठांकित विपत्र का अनादरण हो जावे तो वह ऐसे विपत्र के प्रत्येक अनुवर्ती धारक के प्रति विपत्र के अनादरण से होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए दायी होता है। पृष्ठांकक का यह दायित्व सशर्त होता है क्योंकि—

1. उसे अनादरण के लिए तभी दायी बनाया जा सकता है जबकि उसे अनादरण की यथाविधि सूचना दे दी गई हो।

2. सशर्त पृष्ठांकन की दशा में उसे केवल प्रस्तावित शर्तों के पूर्ण होने पर ही दायी बनाया जा सकता है।

3. अन्य किसी प्रकार का अनुबन्ध करने पर उस अनुबंध के प्रावधानों द्वारा उसके दायित्व का निर्धारण होता है।

4. जब विपत्र का धारक पृष्ठांकक की पूर्व अनुमति के बिना अपने किसी पूर्व पक्ष का नाम काट देता है तो वह विपत्र के अनादरण पर धारक की क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होता है।

5. यदि पृष्ठांकक ने पृष्ठांकन करते समय क्षतिपूर्ति का दायित्व स्वीकार न किया हो तो वह क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होता है।

6. विपत्र के अनादरण पर पृष्ठांकक विपत्र की राशि के तत्काल भुगतान के लिए दायी होता है।

7. जब एक पृष्ठांकक किसी विपत्र के धारक की क्षतिपूर्ति कर देता है तो उसका उन समस्त प्रतिभूतियो पर अधिकार हो जाता है जो धारक के पास उस विपत्र की जमानत स्वरूप होती हैं। (डंकन बनाम नॉर्थ एण्ड साउथ वेल्स बैंक).

8. जब एक विपत्र का धारक किसी पृष्ठांकक का नाम उसे दायित्व से मुक्त करने के उद्देश्य से काट देता है तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

9. जब धारक किसी पृष्ठांकक की अनुमति के बिना उसके पूर्व पक्षों के विरुद्ध प्राप्य विपत्र को समाप्त कर देता है या क्षत-विक्षत कर देता है तो इस प्रकार का पृष्ठांकक विपत्र की राशि के लिए दायी नहीं रहता है। जब किसी पृष्ठांकक का नाम काटा जाता है तो वह स्वयं तो अपने दायित्व से मुक्त होता ही है; साथ ही उसके बाद वाले पृष्ठांकक भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

दायित्व सम्बन्धी कुछ अन्य नियम

एक विलेख (विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र या धनादेश) के सम्पूर्ण भुगतान या सतुष्टि तक उसके यथाविधि धारक के प्रति विलेख का प्रत्येक पूर्व पक्ष दायी होता है। पूर्व पक्षों में लेखक, स्वीकारक व समस्त पृष्ठांककों की गणना की जाती है व विलेख का यथाविधि धारक विलेख के किसी भी पक्ष को अथवा समस्त पक्षों को विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र व धनादेश की राशि के लिए दायी ठहरा सकता है। सक्षेप मे, यथाविधि धारक का प्रत्येक पूर्व पक्ष विलेख की राशि के लिए संयुक्त रूप से व व्यक्तिगत रूप से दायी होता है। (बसंत बनाम कोलाहल)

प्रत्येक धनादेश, विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक (स्वीकृति तक) विलेख का प्रमुख देनदार होता है। स्वीकृति के पश्चात विपत्र का स्वीकारक प्रमुख देनदार बन जाता है। प्रत्येक विलेख के अन्य पक्ष लेखक या स्वीकारक के लिए प्रत्याभू का कार्य करते है अर्थात स्वीकारक या लेखक के (प्रतिज्ञा-पत्र व धनादेश) भुगतान न करने पर ही वे भुगतान के लिए दायी होते हैं। लेखक पर स्वीकारक द्वारा भुगतान कर दिये जाने पर इन पक्षो का दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

अन्यथा अनुबंध न होने पर प्रत्येक प्रत्याभू अपने अनुवर्ती प्रत्याभू के लिए प्रमुख देनदार का कार्य करता है। अन्य किसी प्रकार का अनुबंध होने पर इनके दायित्व का निर्धारण उस अनुबंध के प्रावधानों के आधार पर किया जाता है। उदाहरणार्थ ए ने बी पर एक विपत्र लिखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया। स्वीकृति के पश्चात ए ने उस विपत्र का सी, सी ने डी व डी ने ई के पक्ष में पृष्ठांकन कर दिया। ई उस विपत्र का यथाविधि धारक था। इस विपत्र के अनादरण पर ई, ए, बी, सी, डी में से किसी भी एक व्यक्ति, कुछ व्यक्तियो या समस्त व्यक्तियों के विरुद्ध विपत्र की राशि के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है (नियम 1)। विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ए, प्रमुख देनदार था व स्वीकृति के पश्चात बी प्रमुख देनदार बन गया। ई व बी मे, बी प्रमुख देनदार, व ए, सी और डी उसके जमानती हैं। ई व ए मे ए प्रमुख देनदार है व सी और डी उसके जमानती हैं। ई व सी मे सी प्रमुख देनदार है व डी उसका जमानती है (38)।

यदि एक स्वीकृत विपत्र का धारक विपत्र के स्वीकारक को अनुबन्ध के अन्तर्गत उसके दायित्व से मुक्त कर दे या उसे अधिक समय दे दे (134, 135) तो विपत्र के अन्य पक्ष भी अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं किन्तु धारक चाहे तो अनुबन्ध में उन्हें अपने दायित्वो से मुक्त न करने का भी प्रावधान कर सकता है।

एक प्रतिज्ञा-पत्र का पृष्ठांकिती केवल पृष्ठांकन सम्बन्धी वाद प्रस्तुत कर सकता है। वह मूल ऋण के लिए प्रस्तुत नहीं कर सकता (नारायण बनाम प्रभाकर)।

जब धारक अपने विलेख के प्रस्तुतीकरण में अनियमितता कर देता है या अनादरण की सूचना के प्रेषण में अनियमितता कर देता है तो उस विलेख के धारक के सभी पूर्व पक्ष अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं।

जब किसी विलेख में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए जाते हैं तो उन परिवर्तनों से असहमति प्रकट करने वाले अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं किन्तु ऐसे परिवर्तनों के पश्चात् विलेख के पक्ष बनने वाले व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकते।

विनिमय विपत्रों की स्वीकृति (Acceptance of Bills of Exchange) :—

जब एक आहार्यी किसी विपत्र पर अथवा उसके किसी भाग पर (जब विपत्र सेट में लिखा जाता है) अपने हस्ताक्षर कर देता है व हस्ताक्षरों के पश्चात् उसे मूल रूप में उसके प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है अथवा प्रस्तुतकर्ता या उसके प्रतिनिधि को विपत्र या उसके किसी भाग पर हस्ताक्षर करने की सूचना दे देता है तो उस आहार्यी को विपत्र का स्वीकारक कहा जाता है व उसके हस्ताक्षर करने की प्रक्रिया को स्वीकृति कहा जाता है। एक आहार्यी का अभिकर्ता भी वैध स्वीकृति दे सकता है।

वैध स्वीकृति के आवश्यक तत्त्व :—उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर एक वैध स्वीकृति के निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व होते है—

1. एक विपत्र को स्वीकृति के लिए उसके आहार्यी या आहार्यी के अधिकृत अभिकर्ता के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है क्योंकि जब तक आहार्यी विपत्र पर अपनी स्वीकृति नहीं देता है तब तक उसे विपत्र के भुगतान के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता।

2. स्वीकृति मूल विपत्र पर दी जाती है। विपत्र की प्रतिलिपि अथवा अन्य किसी कागज के टुकड़े पर दी गई स्वीकृति वैध नहीं होती है।

3. स्वीकृति हमेशा लिखित होती है। मौखिक स्वीकृति वैध नहीं होती है इसलिए यदि एक आहार्यी विपत्र की राशि के भुगतान के लिए अपना दायित्व स्वीकार करे किन्तु उस पर अपनी स्वीकृति न दे तो उसके इस कथन को स्वीकृति नहीं माना जा सकता (जगजीवन भावजी विठलानी बनाम मैसर्स रणछोड़दास मेघजी 1954)। स्थानीय परम्पराओं द्वारा अनुमोदित होने पर हुण्डियों को मौखिक स्वीकृति भी दी जा सकती है।

4. स्वीकारक स्वीकृति देते समय विपत्र पर केवल अपने हस्ताक्षर बना सकता है अथवा हस्ताक्षरों के साथ "स्वीकृत" शब्द भी अंकित कर सकता है। दोनों ही स्वीकृतियाँ वैध होती हैं, लेकिन द्वितीय पद्धति को प्राथमिकता दी जाती है।

5. स्वीकारक को अपनी स्वीकृति के पश्चात् मूल विपत्र को उसके प्रस्तुतकर्ता को लौटाना पड़ता है या उसे अपनी स्वीकृति से अवगत कराना पड़ता है। यदि विपत्र का आहार्यी विपत्र पर हस्ताक्षर करके उसे अपने पास रख ले और विपत्र के प्रस्तुतकर्ता को कोई जवाब न दे तो उसके इस कार्य को स्वीकृति की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि वह हस्ताक्षर करने के पश्चात् अपना विचार बदल सकता है और अपने हस्ताक्षरों को काट सकता है या मिटा सकता है। अतः विपत्र पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् उसे विपत्र को प्रस्तुतकर्ता को लौटाना पड़ता है या उसे या उसके प्रतिनिधि को अपनी स्वीकृति से अवगत कराना पड़ता है। एक आहार्यी को अन्ततोगत्वा अपने स्वीकृत विपत्र को उसके धारक को

7. जब एक पृष्ठांकक किसी विपत्र के धारक की क्षतिपूर्ति कर देता है तो उसका उन समस्त प्रतिभूतियों पर अधिकार हो जाता है जो धारक के पास उस विपत्र की जमानत स्वरूप होती है। (डंकन बनाम नॉर्थ एण्ड साउथ वेल्स बैंक).

8. जब एक विपत्र का धारक किसी पृष्ठांकक का नाम उसे दायित्व से मुक्त करने के उद्देश्य से काट देता है तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

9. जब धारक किसी पृष्ठांकक की अनुमति के बिना उसके पूर्व पक्षों के विरुद्ध प्राप्य विपत्र को समाप्त कर देता है या क्षत-विक्षत कर देता है तो इस प्रकार का पृष्ठांकक विपत्र की राशि के लिए दायी नहीं रहता है। जब किसी पृष्ठांकक का नाम काटा जाता है तो वह स्वयं तो अपने दायित्व से मुक्त होता ही है; साथ ही उसके बाद वाले पृष्ठांकक भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

दायित्व सम्बन्धी कुछ अन्य नियम

एक विलेख (विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र या धनादेश) के सम्पूर्ण भुगतान या संतुष्टि तक उसके यथाविधि धारक के प्रति विलेख का प्रत्येक पूर्व पक्ष दायी होता है। पूर्व पक्षों में लेखक, स्वीकारक व समस्त पृष्ठांककों की गणना की जाती है व विलेख का यथाविधि धारक विलेख के किसी भी पक्ष को अथवा समस्त पक्षों को विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र व धनादेश की राशि के लिए दायी ठहरा सकता है। संक्षेप में, यथाविधि धारक का प्रत्येक पूर्व पक्ष विलेख की राशि के लिए संयुक्त रूप से व व्यक्तिगत रूप से दायी होता है। (बसंत बनाम कोलाहत)

प्रत्येक धनादेश, विपत्र, प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक (स्वीकृति तक) विलेख का प्रमुख देनदार होता है। स्वीकृति के पश्चात विपत्र का स्वीकारक प्रमुख देनदार बन जाता है। प्रत्येक विलेख के अन्य पक्ष लेखक या स्वीकारक के लिए प्रत्याभू का कार्य करते हैं अर्थात स्वीकारक या लेखक के (प्रतिज्ञा-पत्र व धनादेश) भुगतान न करने पर ही वे भुगतान के लिए दायी होते हैं। लेखक पर स्वीकारक द्वारा भुगतान कर दिये जाने पर इन पक्षों का दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

अन्यथा अनुबंध न होने पर प्रत्येक प्रत्याभू अपने अनुवर्ती प्रत्याभू के लिए प्रमुख देनदार का कार्य करता है। अन्य किसी प्रकार का अनुबंध होने पर इनके दायित्व का निर्धारण उस अनुबंध के प्रावधानों के आधार पर किया जाता है। उदाहरणार्थ ए ने बी पर एक विपत्र लिखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया। स्वीकृति के पश्चात ए ने उस विपत्र का सी, सी ने डी व डी ने ई के पक्ष में पृष्ठांकन कर दिया। ई उस विपत्र का यथाविधि धारक था। इस विपत्र के अनादरण पर ई, ए, बी, सी, डी में से किसी भी एक व्यक्ति, कुछ व्यक्तियों या समस्त व्यक्तियों के विरुद्ध विपत्र की राशि के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है (नियम 1)। विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ए, प्रमुख देनदार था व स्वीकृति के पश्चात बी प्रमुख देनदार बन गया। ई व बी में, बी प्रमुख देनदार, व ए, सी और डी उसके जमानती हैं। ई व ए में ए प्रमुख देनदार है व सी और डी उसके जमानती हैं। ई व सी में सी प्रमुख देनदार है व डी उसका जमानती है (38)।

यदि एक स्वीकृत विपत्र का धारक विपत्र के स्वीकारक को अनुबन्ध के अन्तर्गत उसके दायित्व से मुक्त कर दे या उसे अधिक समय दे दे (134, 135) तो विपत्र के अन्य पक्ष भी अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं किन्तु धारक चाहे तो अनुबन्ध में उन्हें अपने दायित्वों से मुक्त न करने का भी प्रावधान कर सकता है।

एक प्रतिज्ञा-पत्र का पृष्ठांकिती केवल पृष्ठांकन सम्बन्धी वाद प्रस्तुत कर सकता है। वह मूल ऋण के लिए प्रस्तुत नहीं कर सकता (नारायण बनाम प्रभाकर)।

जब धारक अपने विलेख के प्रस्तुतीकरण मे अनियमितता कर देता है या अनादरण की सूचना के प्रेषण में अनियमितता कर देता है तो उस विलेख के धारक के सभी पूर्व पक्ष अपने दायित्वो से मुक्त हो जाते हैं।

जब किसी विलेख में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए जाते हैं तो उन परिवर्तनों से असहमति प्रकट करने वाले अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं किन्तु ऐसे परिवर्तनो के पश्चात् विलेख के पक्ष बनने वाले व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकते।

विनिमय विपत्रों की स्वीकृति (Acceptance of Bills of Exchange) :—

जब एक आहार्यी किसी विपत्र पर अथवा उसके किसी भाग पर (जब विपत्र सेट मे लिखा जाता है) अपने हस्ताक्षर कर देता है व हस्ताक्षरो के पश्चात् उसे मूल रूप मे उसके प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है अथवा प्रस्तुतकर्ता या उसके प्रतिनिधि को विपत्र या उसके किसी भाग पर हस्ताक्षर करने की सूचना दे देता है तो उस आहार्यी को विपत्र का स्वीकारक कहा जाता है व उसके हस्ताक्षर करने की प्रक्रिया को स्वीकृति कहा जाता है। एक आहार्यी का अभिकर्ता भी वैध स्वीकृति दे सकता है।

वैध स्वीकृति के आवश्यक तत्व :—उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर एक वैध स्वीकृति के निम्नलिखित आवश्यक तत्व होते है—

1. एक विपत्र को स्वीकृति के लिए उसके आहार्यी या आहार्यी के अधिकृत अभिकर्ता के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है क्योंकि जब तक आहार्यी विपत्र पर अपनी स्वीकृति नहीं देता है तब तक उसे विपत्र के भुगतान के लिए दायी नही बनाया जा सकता।

2. स्वीकृति मूल विपत्र पर दी जाती है। विपत्र की प्रतिलिपि अथवा अन्य किसी कागज के टुकड़े पर दी गई स्वीकृति वैध नही होती है।

3. स्वीकृति हमेशा लिखित होती है। मौखिक स्वीकृति वैध नहीं होती है इसलिए यदि एक आहार्यी विपत्र की राशि के भुगतान के लिए अपना दायित्व स्वीकार करे किन्तु उस पर अपनी स्वीकृति न दे तो उसके इस कथन को स्वीकृति नहीं माना जा सकता (जगजीवन भावजी विठलानी बनाम मैसर्स रणछोड़दास मेघजी 1954)। स्थानीय परम्पराओं द्वारा अनुमोदित होने पर हुण्डियों को मौखिक स्वीकृति भी दी जा सकती है।

4. स्वीकारक स्वीकृति देते समय विपत्र पर केवल अपने हस्ताक्षर बना सकता है अथवा हस्ताक्षरों के साथ "स्वीकृत" शब्द भी अंकित कर सकता है। दोनो ही स्वीकृतियाँ वैध होती हैं, लेकिन द्वितीय पद्धति को प्राथमिकता दी जाती है।

5. स्वीकारक को अपनी स्वीकृति के पश्चात् मूल विपत्र को उसके प्रस्तुतकर्ता को लौटाना पड़ता है या उसे अपनी स्वीकृति से अवगत कराना पड़ता है। यदि विपत्र का आहार्यी विपत्र पर हस्ताक्षर करके उसे अपने पास रख ले और विपत्र के प्रस्तुतकर्ता को कोई जवाब न दे तो उसके इस कार्य को स्वीकृति की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि वह हस्ताक्षर करने के पश्चात् अपना विचार बदल सकता है और अपने हस्ताक्षरों को काट सकता है या मिटा सकता है। अतः विपत्र पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् उसे विपत्र को प्रस्तुतकर्ता को लौटाना पड़ता है [illegible] उसके प्रतिनिधि को अपनी स्वीकृति से अवगत कराना पड़ता है। एक आहार्यी [illegible] अपने स्वीकृत विपत्र को उसके

लौटाना पड़ता है क्योंकि धारक को पृष्ठांकन अथवा कटौती के लिए उसकी आवश्यकता पड़ती है। जब प्रस्तुतकर्ता को स्वीकृति की सूचना प्राप्त हो जाती है तो वह विपत्र को स्वीकारक से मगवा लेता है।

6. स्वीकारक अपनी स्वीकृति की सूचना विपत्र के किसी अन्य पक्ष को भी दे सकता है व इस प्रकार से दी गई स्वीकृति वैध मानी जाती है। स्वीकारक इस प्रकार से दी गई सूचना को वापस नहीं ले सकता (प्रागदास बनाम दौलतराम) किन्तु जब स्वीकृति भूलवश दे दी जाती है तो स्वीकारक उसे वापस ले सकता है बशर्ते कि विपत्र के धारक को विपत्र के पूर्व पक्षों को स्वीकृति की वापसी की सूचना देने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो जाय।

7. स्वीकृति के लिए विपत्र पर कोई निश्चित स्थान नहीं होता है, अतः स्वीकृति विपत्र के अग्र या पृष्ठ भाग पर दी जा सकती है (यंग बनाम ग्लोवर) किन्तु सामान्यतया स्वीकृति विपत्र के अग्र भाग पर ही अंकित की जाती है।

8. यदि स्वीकारक अपनी स्वीकृति देते समय विपत्र पर तारीख अंकित न करे तो भी उस स्वीकृति को वैध माना जाता है क्योंकि अन्यथा प्रमाणित न होने तक यही माना जाता है कि स्वीकृति विपत्र को उसके आलेखन के पश्चात यथोचित समय में स्वीकार किया गया था [118 (स)]। केवल दर्शन पश्चात विपत्रों की स्वीकृति के समय तारीख लगाना वांछनीय होता है क्योंकि ऐसे विपत्रों की देय-तिथि की गणना स्वीकृति की तारीख से की जाती है। जब विपत्रों का स्वीकारक तारीख अंकित करना भूल जाता है तो स्वयं प्रस्तुतकर्ता स्वीकृति की सही तारीख लगा सकता है व अन्यथा प्रमाणित न होने तक उस तारीख को सही माना जाता है। यदि स्वीकारक प्रस्तुतकर्ता द्वारा अंकित तारीख को सही न माने तो उसे उस तारीख को असत्य प्रमाणित करना पड़ेगा।

9. उत्तर तिथीय विपत्रों पर दी गई स्वीकृति भी वैध स्वीकृति मानी जाती है। उदाहरणार्थ, एक विपत्र 10 दिसम्बर, 1980 को लिखा जाता है किन्तु लेखक उसे उत्तर तिथीय विपत्र बनाने के लिए उस पर 2 जनवरी, 1981 अंकित कर देता है व उसे प्रापक को दे देता है। यदि प्रापक उसे 11 दिसम्बर को आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत करे व आहार्यी उसे उसी दिन स्वीकार कर लेवे तो आहार्यी द्वारा दी गई स्वीकृति वैध मानी जायेगी व विपत्र की देय-तिथि की गणना उसकी स्वीकृति की तारीख से की जायेगी।

10. एक विपत्र को उसकी देय-तिथि के पश्चात भी स्वीकार किया जा सकता है व इस प्रकार से दी गई स्वीकृति पूर्णतः वैध होती है। इस प्रकार की स्वीकृति पर स्वीकारक विपत्र के अविलम्ब भुगतान के लिए दायी हो जाता है।

11. आहार्यी एक बार अस्वीकृत किए गए विपत्र को भी स्वीकार कर सकता है और इस प्रकार की स्वीकृति पूर्णतः वैध मानी जाती है। जब दर्शन पश्चात विपत्र को इस प्रकार से स्वीकृत किया जाता है तो उसकी देय-तिथि की गणना प्रथम दर्शन (प्रस्तुतीकरण) की तारीख से की जाती है व तिथि पश्चात विपत्रों की देय-तिथि की गणना उन पर अंकित तारीख से की जाती है।

12. केवल मुद्रा में भुगतान के लिए दी गई स्वीकृति वैध होती है क्योंकि भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 5 में यह स्पष्ट है कि "विनिमय साध्य विलेख केवल

मुद्रा की एक निश्चित राशि के भुगतान का आदेश देते हैं।" रसेल बनाम फिलिप्स विवाद 1880 भी इस मत की पुष्टि करता है।

13. विदेशी विपत्र तीन प्रतियों में निर्गमित किए जाते हैं। तीनो प्रतियों को सयुक्त रूप से विपत्र कहा जाता है। अतः एक प्रति पर दी गई स्वीकृति वैध मानी जाती है।

स्वीकृति सम्बन्धी अनियमितताएँ :

1. एक विपत्र के धारक को विपत्र की स्वीकृति के लिए उसके आहार्यी को 48 घण्टे से अधिक का समय नहीं देना चाहिए। यदि धारक उसे इस अवधि से अधिक समय दे देता है व विपत्र अस्वीकृत हो जाता है तो शेष पक्ष धारक के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं किन्तु उनके द्वारा धारक की क्रिया की पुष्टि किये जाने पर वे धारक के प्रति यथावत् दायी बने रहते हैं। 48 घण्टे की अवधि के मध्य सार्वजनिक अवकाश आ जाने पर 48 घण्टे की अवधि में सार्वजनिक अवकाश की अवधि से अभिवृद्धि हो जाती है (83)।

2. 48 घण्टे की अवधि के पूर्ण होने से पहले ही विपत्र के प्रस्तुतकर्ता अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता को विपत्र के आहार्यी के पास उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए पहुँच जाना चाहिए। जब 48 घण्टे की अवधि के पश्चात भी आहार्यी के पास कोई व्यक्ति नहीं पहुँचता है व विपत्र अनादरित हो जाता है तो इस प्रकार के अनादरण के लिए धारक दायी होता है क्योंकि वह अनादरण की सूचना यथोचित समय में अपने पूर्व पक्षों को नहीं दे सकेगा (84)।

3. धारक को अपने पूर्व पक्षों की पूर्व अनुमति के बिना मर्यादित स्वीकृति स्वीकार नहीं करनी चाहिए अन्यथा मर्यादित स्वीकृति से असहमति प्रकट करने वाले पूर्व पक्ष अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे।

4. यदि एक विपत्र के अनेक देनदार हों और परस्पर साझीदार न हों तो ऐसे विपत्र के धारक को अपने विपत्र पर विपत्र के समस्त देनदारों से स्वीकृति लेनी चाहिए अन्यथा स्वीकृति से असहमति प्रकट करने वाले पक्ष अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे।

स्वीकृति के प्रकार (Kinds of Acceptances)

आहार्यी द्वारा दी गई स्वीकृति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—
(i) सामान्य या पूर्ण स्वीकृति, और (ii) मर्यादित स्वीकृति।

(i) सामान्य या पूर्ण स्वीकृति (General or Absolute) :

जब एक विपत्र का आहार्यी उसे मूल रूप में स्वीकृत कर लेता है व अपनी ओर से कोई शर्त प्रस्तुत नहीं करता है तो उस स्वीकृति को सामान्य या पूर्ण स्वीकृति कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि रामनाथ पर विपत्र लिखा गया हो तो रामनाथ द्वारा दी गई निम्न-लिखित स्वीकृतियाँ सामान्य स्वीकृतियाँ कहलाएँगी—

1. रामनाथ
2. स्वीकृत/रामनाथ 4.5.81
3. न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, डीडवाना पर भुगतान के लिए स्वीकृत —रामनाथ
4. स्वीकृत/रामनाथ, 15, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
5. स्वीकृत। शिवनारायण, रामनाथ के लिए।

सामान्य स्वीकृति का एक रूप अन्यत्र देय स्वीकृति भी होता है। इस स्वीकृति के अन्तर्गत स्वीकारक भुगतान के लिए किसी विशिष्ट स्थान का उल्लेख कर देता है किन्तु भुगतान के लिए अन्य स्थानों पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता है, यथा—देना बैंक, बीकानेर पर भुगतान के लिए स्वीकृत। इस प्रकार स्वीकृत विपत्रों को आहार्यी द्वारा इंगित स्थान पर भुगतान के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं होता है। विपत्र का धारक उसे स्वीकारक के व्यावसायिक या स्थायी निवास स्थान पर भी प्रस्तुत कर सकता है व स्वीकारक केवल इस आधार पर अपने विपत्र का अनादरण नहीं कर सकता।

यदि अन्यत्र देय स्वीकृति दो व्यक्तियों द्वारा दी गई हो व दोनों का उस बैंक में संयुक्त खाता हो तो उन्हें विपत्र के भुगतान के लिए अपने बैंक को पृथक् आदेश देने की आवश्यकता नहीं होती है। विपत्र पर दिया गया आदेश (स्वीकृति) ही शोधी बैंक के लिए पर्याप्त होता है। जब विपत्र के संयुक्त स्वीकारकों का शोधी बैंक में संयुक्त खाता नहीं होता है अथवा उसमें यथेष्ट मात्रा में राशि जमा नहीं होती है तो वह ऐसे विपत्रों का अनादरण कर देता है, भले ही स्वीकारकों के व्यक्तिगत खातों में यथेष्ट राशि जमा हो।

(ii) मर्यादित स्वीकृति (Qualified Acceptance) :

जब एक विपत्र का आहार्यी अपने विपत्र को मूल रूप से स्वीकार नहीं करता है व भुगतान के लिए अपनी ओर से कोई शर्त प्रस्तुत कर देता है तो उस स्वीकृति को मर्यादित स्वीकृति कहा जाता है। स्वीकारक किसी घटना, स्थान या समय सम्बन्धी शर्त लगा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि रामनाथ पर 2 माह का 5,000 रुपये का विपत्र लिखा जाये तो उसके द्वारा दी गई निम्नांकित स्वीकृतियाँ मर्यादित स्वीकृतियाँ कहलाएँगी—

1. भुगतान-तिथि पर कोष उपलब्ध होने पर भुगतान के लिए स्वीकृत।
2. यदि खरीदा हुआ माल भुगतान-तिथि तक बिक गया तो भुगतान के लिए स्वीकृत।
3. मेरे जहाज के पहुँचने पर भुगतान के लिए स्वीकृत।
4. मेरे भाई के विवाह हो जाने पर भुगतान के लिए स्वीकृत।
5. केवल 2,500 रुपये के लिए स्वीकृत या 500 रुपये मासिक भुगतान पर स्वीकृत।
6. एक माह में नवीनीकरण की शर्त पर स्वीकृत।
7. तीन माह पश्चात् भुगतान के लिए स्वीकृत।
8. संयुक्त देनदारों की अवस्था में केवल एक या कुछ देनदारों द्वारा दी गई स्वीकृति।
9. केवल न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, बीकानेर पर भुगतान के लिए स्वीकृत।

विपत्र के प्रस्तुतकर्ता को अपने पूर्व पक्षों की सहमति के बिना मर्यादित स्वीकृति स्वीकार नहीं करनी चाहिए अन्यथा वे अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे।

स्वीकृति कौन दे सकता है ?

एक विपत्र पर स्वीकृति केवल उसके आहार्यी अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता द्वारा दी जा सकती है (33)। अभिकर्ता को स्वीकृति देते समय यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह विपत्र पर आहार्यी के अभिकर्ता के रूप में स्वीकृति दे रहा है अन्यथा विपत्र के अनादरण

पर वह भुगतान के लिए व्यक्तिशः दायी होता है। एक अभिकर्ता इस प्रकार से स्वीकृति दे सकता है :—

स्वीकृत
रामलाल
अभिकर्ता श्यामलाल।

जब एक विपत्र के अनेक देनदार होते हैं (परस्पर साझीदार न होने पर) तो उसके प्रत्येक देनदार को विपत्र पर अपनी पृथक् स्वीकृति देनी पड़ती है क्योंकि एक आहार्यी अपनी स्वीकृति से अन्य देनदारों को बाध्य नहीं कर सकता। अन्य देनदारों द्वारा अधिकृत किये जाने पर अधिकृत आहार्यी अपने साथी देनदारों की ओर से भी वैध स्वीकृति दे सकता (धारा 34) है।

देनदारों के साझीदार होने पर कोई भी एक आहार्यी समस्त देनदारों की ओर से विपत्र पर स्वीकृति दे सकता है। ऐसे आहार्यी को अपने फ़र्म के नाम से स्वीकृति देनी पड़ती है अन्यथा वह उस स्वीकृति के लिए व्यक्तिशः दायी होता है। जब समस्त साझीदार स्वीकृति देते हैं तब उन्हें अपने फ़र्म के नाम को अंकित करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ऐसी अवस्था में यह माना जाता है कि स्वीकृति फ़र्म द्वारा दी गई थी (धारा 34)।

एक प्रमण्डल का संचालक व अन्य संस्थाओं के सचिव, अध्यक्ष व अन्य पदाधिकारी अपने प्रमण्डल या संस्था की ओर से एक विपत्र को स्वीकार कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को स्वीकृति देते समय यह स्पष्ट करना पड़ता है कि वे अपने प्रमण्डल अथवा संस्था की ओर से विपत्र को स्वीकार कर रहे हैं अन्यथा उन्हें अपनी स्वीकृति के लिए व्यक्तिशः दायी होना पड़ता है। स्थिति की स्पष्टता के लिए ये व्यक्ति अपने हस्ताक्षरों के नीचे प्रमण्डल या संस्था की मोहर व अपना पद अंकित कर सकते हैं।

एक सम्मान के लिए स्वीकारक भी एक विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे सकता है परन्तु ऐसे व्यक्ति को स्वीकृति देते समय अपने हस्ताक्षरों सहित यह घोषणा करनी पड़ती है कि वह अनादरित विपत्र को विशेष स्वरूप किसी पृष्ठांकक, लेखक या सामान्य सम्मान के लिए स्वीकार कर रहा है। किसी पृष्ठांकक के लिए विपत्र को स्वीकार करते समय उसे उस पृष्ठांकक का नाम भी अंकित करना पड़ता है (धारा 109)। जब सम्मानार्थ स्वीकारक स्वीकृति देते समय किसी व्यक्ति-विशेष का उल्लेख नहीं करता है तो यह माना जाता है कि उसने विपत्र को उसके लेखक के सम्मान के लिए स्वीकृत किया था (धारा 110)। सम्मान के लिए स्वीकृति किसी विपत्र के स्वीकृति अथवा बेहतर प्रतिभूति के अभाव में अनादरित होने पर दी जाती है, यह स्वीकृति अनादरित विपत्र के आलोकन व प्रमाणन के पश्चात् दी जाती है व धारक की सहमति से दी जाती है। सम्मानार्थ स्वीकारक वही व्यक्ति हो सकता है जो अनादरित विपत्र की राशि के भुगतान के लिए पहले से ही दायी नहीं होता है (धारा 108)।

यदि किसी विपत्र में आहार्यी के अतिरिक्त "आवश्यकता के लिए आहार्यी" का नाम भी अंकित हो तो विपत्र के मूल आहार्यी द्वारा विपत्र पर स्वीकृति देने से इनकार करने पर "आवश्यकता के लिए आहार्यी" इस प्रकार से अनादरित विपत्र को स्वीकार कर सकता है (धारा 33) और जब तक यह वैकल्पिक आहार्यी स्वीकृति देने से मना नहीं करता है तब तक विपत्र को अनादरित नहीं माना जाता है (धारा 115)। वैकल्पिक आहार्यी

अनादरित विपत्र को प्रमाणन बिना भी स्वीकृत कर सकता है व उसका भुगतान कर सकता है (धारा 116)। उपर्युक्त व्यवस्थाओं के कारण जब मूल आहार्यी एक विपत्र को अस्वीकृत कर देता है तो उसके धारक को अनादरित विपत्र वैकल्पिक आहार्यी के समक्ष स्वीकृति के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है। जब धारक इस सम्बन्ध में कोई असावधानी करता है तो उसे उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है।

अस्वीकृति की अवस्थाएं :—

जब एक विपत्र पर आहार्यी द्वारा स्वीकृति नहीं की जाती है तो उसे अनादरित मान लिया जाता है। निम्नांकित अवस्थाओं में एक विपत्र को अस्वीकृत विपत्र माना जाता है :—

1. जब एक विपत्र का आहार्यी या कुछ आहार्यी (साझीदार न होने पर) अपनी स्वीकृति देने से मना कर देते हैं, (धारा 91)।

2. जब एक विपत्र का आहार्यी मर्यादित स्वीकृति का प्रस्ताव रखता है, (धारा 91)।

3. जब विपत्र में आहार्यी का पता अंकित होता है और वह यथोचित खोज के पश्चात् उस स्थान पर उपलब्ध नहीं होता है, (धारा 61)।

4. जब विपत्र मे आहार्यी का पता अंकित नहीं होता है और वह यथोचित खोज के पश्चात् उपलब्ध नहीं होता है, (धारा 61)।

5. जब विपत्र का आहार्यी विपत्र पर स्वीकृति देने के लिए समक्ष नहीं होता है, (धारा 91)।

6. जब एक विपत्र को प्रस्तुतीकरण (स्वीकृति के लिए) की अनिवार्यता से मुक्त कर दिया जाता है व बाद मे प्रस्तुतीकरण की कमी के आधार पर आहार्यी अपने दायित्व से बचना चाहता है (धारा 91)।

स्वीकारक का दायित्व :—एक विपत्र की स्वीकृति के पश्चात उसका स्वीकारक प्रमुख ऋणी बन जाता है (37) व अन्य पक्ष केवल उसके प्रत्याभू का कार्य करते हैं, अतः विपत्र के स्वीकारक को विपत्र की देय-तिथि पर उसके प्रस्तुतकर्ता को अनिवार्यतः भुगतान करना पड़ता है। यदि स्वीकारक देय-तिथि पर अपने विपत्र का भुगतान न करे और फलस्वरूप किसी पक्ष को हानि हो जाय तो उसे उस क्षति की पूर्ति करनी पड़ती है। यदि विपत्र को स्वीकार करते समय अन्य कोई अनुबन्ध हो जाय तो उस अवस्था मे स्वीकारक पर उस अनुबन्ध के प्रावधान लागू होते हैं और भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम के प्रावधान स्थगित हो जाते हैं, (धारा 32)। स्वीकारक का दायित्व पूर्ण एवं शर्तहीन होता है अतः देय-तिथि पर विपत्र को प्रस्तुत न करने पर भी वह अपने दायित्व के लिए दायी बना रहता है।

अनुग्रह विपत्रों पर स्वीकारक उनके यथाविधि धारकों के प्रति दायी होता है चाहे उसे भुगतान तिथि पर विपत्र के लेखक से विपत्र की राशि प्राप्त हुई हो या न हुई हो, (धारा 43)। इसी प्रकार यदि एक आदिष्ट विपत्र का लेखक जाली नाम से अपने विपत्र को लिखे और उसी नाम से व उसी लिखावट में उसका पृष्ठांकन कर दें तो ऐसे विपत्र का स्वीकारक ऐसे पृष्ठांकन के पश्चात बनने वाले यथाविधि धारक के प्रति दायी होता है (धारा 42)।

यदि किसी विपत्र की स्वीकृति के पूर्व उस पर जाली पृष्ठांकन किया गया हो व उस विपत्र के स्वीकारक को विपत्र स्वीकार करते समय इस तथ्य का ज्ञान हो किन्तु इसके

बावजूद भी यदि वह उस विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे दे तो वह उस जाली पृष्ठांकन के आधार पर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता, (धारा 41)।

यदि एक विदेशी विपत्र का आहार्यी विपत्र की विभिन्न प्रतियों को विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में स्वीकार कर लेवे तो वह प्रत्येक प्रतिलिपि के भुगतान के लिए पृथक् रूप से दायी होता है।

दायित्व का प्रारम्भ—यदि एक आहार्यी किसी विपत्र को स्वीकार करने से मना कर दे तो उसे उस विपत्र की स्वीकृति व भुगतान के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अतः एक आहार्यी के दायित्व का प्रारम्भ उसकी स्वीकृति से होता है। स्वीकृति से पूर्व विपत्र का लेखक ही प्रमुख ऋणी होता है।

अजनबी स्वीकारक का दायित्व—यदि एक अजनबी किसी विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे देवे तो उसे उस विपत्र के भुगतान के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता क्योंकि भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 33 केवल आहार्यी या उसके अधिकृत अभिकर्ता द्वारा दी गई स्वीकृति को ही वैध स्वीकृति मानती है। अवैध स्वीकृति की दशा में विपत्र के स्वीकारक को भुगतान के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

सम्मानार्थ स्वीकारक का दायित्व—सम्मानार्थ स्वीकारक जिस व्यक्ति के सम्मान के लिए विपत्र स्वीकार करता है उसके समस्त पूर्व पक्षों के प्रति विपत्र के भुगतान के लिए दायी होता है, किन्तु ऐसा स्वीकारक केवल उस अवस्था में भुगतान के लिए दायी होता है जब कि विपत्र का मूल आहार्यी भुगतान करने से मना कर देता है (धारा 111)। अतः सम्मानार्थ स्वीकारक को विपत्र की राशि के लिए दायी बनाने हेतु विपत्र को देय-तिथि पर भुगतान के लिए सबसे पहले मूल आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। मूल आहार्यी द्वारा भुगतान करने से मना करने पर उसका आलोकन एवं प्रमाणन करवाया जाना चाहिए व तदनन्तर सम्मानार्थ स्वीकारक के समक्ष उसे भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इन प्रावधानों के उल्लंघन पर उसे विपत्र के भुगतान के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता (धारा 112)। मूल आहार्यी द्वारा अनादरित विपत्र को सम्मानार्थ स्वीकारक के पास विपत्र की देय-तिथि के दूसरे दिन अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि उसने विपत्र में विपत्र के भुगतान के लिए आहार्यी के स्थान से अन्य किसी स्थान का पता दे रखा हो तो ऐसी अवस्था में अनादरित विपत्र को देय-तिथि के दूसरे दिन तक भुगतान के लिए उसके पास अवश्य भेज देना चाहिए (धारा 111)। सम्मानार्थ स्वीकारक को इस प्रकार से भुगतान करने पर जो हानि होती है उसे वह किसी भी पूर्वपक्ष से वसूल कर सकता है।

विदेशी विपत्रों के स्वीकारकों का दायित्व—विदेशी विपत्रों, प्रतिज्ञा-पत्रों व धनादेशों के लेखकों के दायित्वों का निर्धारण उस देश के नियमों द्वारा होता है जहाँ पर इन्हें लिखा जाता है व उनके स्वीकारकों के दायित्व का निर्धारण उस देश के नियमों द्वारा होता है जिसे वे स्वीकृति देते समय भुगतान के लिए चुनते हैं। अन्य किसी प्रकार का अनुबन्ध होने पर उपर्युक्त व्यवस्था लागू नहीं होती है (धारा 134)। उदाहरणार्थ कैलिफोर्निया निवासी ए ने कैलिफोर्निया में लन्दन के बी पर एक मियादी विपत्र लिखा जिसे बी ने स्वीकार कर लिया व विपत्र को स्वीकार करते समय यह शर्त रखी कि विपत्र का भुगतान वाशिंगटन में किया जायेगा। कैलिफोर्निया में ब्याज की दर 25% है व वाशिंगटन में ब्याज की दर 6% है। स्वीकृति के पश्चात विपत्र का बाजार में पृष्ठांकन

किया जाता है व देय-तिथि पर विपत्र का अनादरण हो जाता है। बी के विरुद्ध भारत में विपत्र की राशि के लिए दावा प्रस्तुत किया गया। इस दशा में बी को केवल 6% ब्याज देना पड़ेगा क्योंकि वाशिंगटन (भुगतान स्थान) में ब्याज दर 6% है। ए के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने पर ए को 25% ब्याज देना पड़ेगा क्योंकि आलेखन स्थल (केलिफोर्निया) पर ब्याज दर 25% है। विपत्र के विभिन्न पक्षों में अन्यथा अनुबंध होने पर स्वीकारक व लेखक पर उपर्युक्त व्यवस्थाएं लागू नहीं होती हैं।

यदि किसी विलेख को विदेश में भारतीय नियमों के अनुसार लिखा जाये व स्वीकृति के पश्चात उसका वेचान किया जाये और तत्पश्चात यह पता लगे कि उन क्रियाओं का सम्पादन उस देश के कानून के विरुद्ध था तो उस विलेख को भारत में पुनः स्वीकृत करने पर, पृष्ठांकित करने पर वह अनुबंध वैध हो जाता है (धारा 136) व भारतीय नियमों के अनुसार विभिन्न पक्षों के दायित्वों का निर्धारण होता है।

अन्यथा प्रमाणित न होने तक विनिमय साध्य विलेख सम्बन्धी विदेशी विधि को भारतीय विधि के समकक्ष माना जाता है (धारा 137) अर्थात् उसमें कोई विभेद नहीं किया जाता है।

दायित्व का अन्त—एक विनिमय साध्य विलेख का लेखक, स्वीकारक व पृष्ठांकक निम्नांकित प्रकार से अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है—

1. **भुगतान**—एक विलेख के धारक को विलेख की देय राशि का भुगतान करने पर विलेख का लेखक, स्वीकारक व पृष्ठांकक अपने विलेख-सम्बन्धी दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। भुगतान करते समय भुगतानकर्ता को विलेख की मूल राशि, उस पर देय ब्याज व विलेख के धारक द्वारा वसूली पर किए गए व्यय का भुगतान करना पड़ता है। चैंताराम चौधरी बनाम मोहनलाल सरजूप्रसाद विवाद में दिए गए निर्णय के अनुसार विलेख के धारक को सम्पूर्ण देय राशि का भुगतान करने पर केवल भुगतानकर्ता ही अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता है अपितु विलेख के सभी पक्ष अपने दायित्व (धारक के प्रति) से मुक्त हो जाते हैं। धारक को किसी अजनबी से भुगतान प्राप्त होने पर भी विलेख के समस्त पक्ष अपने दायित्वों (धारक के प्रति) से मुक्त हो जाते हैं। भले ही उन्होंने भुगतानकर्ता को भुगतान के लिए अधिकृत न किया हो।

ब्याज की गणना भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों के अनुसार की जाती है। उक्त धारा की यह व्यवस्था है कि "यदि किसी-प्रतिज्ञा-पत्र या विपत्र में ब्याज की दर का उल्लेख किया गया हो तो ब्याज की गणना वर्णित दर से की जायेगी किन्तु न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय द्वारा स्वीकृत तारीख तक ब्याज की गणना की जाती है। इस अवस्था में ब्याज वाद की तारीख में लगाया जाता है। यदि ब्याज की दर का पहले से निर्धारण न किया गया हो तो ब्याज 6% की दर से लिया जायेगा (धारा 80)। यह ब्याज देय-तिथि से वसूली की तारीख तक लिया जाता है या वाद प्रस्तुत करने की अवस्था में वाद की तारीख से न्यायालय द्वारा अधिकृत तारीख तक लिया जाता है। जब पृष्ठांकक के विरुद्ध दावा किया जाता है तो वह अनादरण की सूचना पाने की तारीख से ब्याज देने के लिए दायी होता है। यदि न्यायालय को अनुबन्ध द्वारा निर्धारित ब्याज दर अत्यधिक व अनुचित जान पड़े तो वह अत्यधिक ऋण अधिनियम 1918 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए ब्याज दर को कम कर सकता है।

दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्र—मांग पर देय प्रतिज्ञा-पत्रों पर ब्याज उन पर अंकित तिथि से लिया जाता है न कि मांग की तारीख से। (फ्रेम रून बनाम मोहम्मद ईसा)।

महत्वपूर्ण परिवर्तन—यदि विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया हो, किन्तु समुचित सावधानी से काम लेने के पश्चात भी भुगतानकर्ता को उस परिवर्तन का पता न लग सका हो तो वह ऐसे विलेख का भुगतान करने पर अपने विलेख सम्बन्धी दायित्व से मुक्त हो जाता है।

यदि भुगतानकर्ता की विलेख के प्रस्तुतकर्ता से कोई राशि देय हो तो भुगतान करते समय वह उस राशि का समजन कर सकता है व शेष राशि का भुगतान सम्पूर्ण भुगतान माना जायेगा।

रेखांकित विपत्र—एक रेखांकित विपत्र का भुगतान उसके प्रस्तुतकर्ता को किया जा सकता है क्योंकि रेखांकन केवल धनादेशों, पोस्टल आर्डर, लाभांश अधिपत्र प्रभृति विलेखों का किया जा सकता है।

अनुचित तरीके से प्राप्त विलेख का शोधन—एक गलत व्यक्ति को भुगतान करने पर भुगतानकर्ता भुगतान राशि को उस व्यक्ति से वापस लेने का अधिकारी होता है। भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 58 में यह व्यवस्था है कि "यदि किसी व्यक्ति को कोई विलेख पड़ा हुआ मिल जाय या वह उसे गलत ढंग से किसी व्यक्ति से प्राप्त कर ले तो वह धारक होते हुए भी उस विलेख की राशि को पाने का अधिकारी नहीं होता है और ऐसे व्यक्तियों से विलेख को पाने वाले व्यक्ति (पृष्ठांकिती) भी विलेख की राशि पाने के अधिकारी नहीं होते हैं। यथाविधि धारक इस सामान्य नियम का अपवाद है।

खोए हुए विलेखों का भुगतान—विलेख का भुगतान करने से पहले भुगतानकर्ता को विलेख देखने व उसे अपने अधिकार में लेने का अधिकार होता है। जब धारक से उसका विलेख खो जाता है या वह किसी अन्य कारणवश उसे प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है तो उस विलेख का भुगतान लेने से पूर्व उसे भुगतानकर्ता के पक्ष में एक क्षतिपूर्ति का बाण्ड भरना पड़ता है (धारा 81)। इस बाण्ड की पूर्ति पर ही वह भुगतान पाने का अधिकारी होता है।

भुगतान विधि—विलेख के धारक अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता को ही उसका भुगतान किया जाता है व अन्यथा प्रमाणित न होने तक यह माना जाता है कि विलेख का प्रस्तुतकर्ता ही उसका वास्तविक धारक है।

भुगतान हमेशा द्रव्य में किया जाता है। किसी वस्तु या धनादेश से भुगतान करने पर प्रस्तुतकर्ता भुगतान लेने से मना कर सकता है। जब धारक अन्य किसी वस्तु से भुगतान स्वीकार कर लेता है तो वह उसके लिए स्वयं दायी होता है। अन्य वस्तु में भुगतान स्वीकार करते ही शेष पक्षों का दायित्व (धारक के प्रति) समाप्त हो जाता है।

धारक की सहमति से एक विलेख का भुगतान पुराने ऋणों के समजन या नवीन विलेखों के निर्गमन या पृष्ठांकन द्वारा भी किया जा सकता है।

विदेशी विपत्रों का भुगतान Demand Draft की दरों पर किया जाता है। भुगतान के दिन भुगतानकर्ता व भुगतान प्राप्तकर्ता के देशों में डिमाण्ड ड्राफ्ट की जो दर उपलब्ध होती है उसी दर से विदेशी विपत्र का भुगतान किया जाता है।

2. विदेशी विपत्र—यह एक विलेख ... के किसी देश के नाम पर लेता

खींच देता है अथवा उस पर "निरस्त किया गया" लिख देता है तो उसकी इस क्रिया को निरस्तीकरण कहा जाता है।

निरस्तीकरण का प्रभाव :—जब एक विलेख का धारक विलेख के स्वीकारक, लेखक अथवा पृष्ठांकक को उनके दायित्व से मुक्त करने के उद्देश्य से उनका नाम काट देता है तो वे अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं। नाम काटे जाने के पश्चात स्वीकारक, लेखक व पृष्ठांकक विलेख के धारक व उन समस्त व्यक्तियों के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं जो धारक के माध्यम से भुगतान पाने के अधिकारी थे।

3. मुक्ति :—

एक विलेख का धारक चाहे तो लेखक, स्वीकारक या पृष्ठांकक को अन्य किसी विधि से अपने दायित्वों से मुक्त कर सकता है। इस प्रकार से मुक्त किए जाने पर वे धारक के प्रति दायी नहीं रहते हैं। जब धारक इस दायित्व समाप्ति की सूचना अपने पूर्व पक्षों को दे देता है तो विपत्र के स्वीकारक, लेखक व पृष्ठांकक उन व्यक्तियों के प्रति भी दायी नहीं रहते है। उदाहरणार्थ—यदि एक विलेख का धारक वस्तुओं में भुगतान लेना स्वीकार कर ले या पूर्व अनुबंध में संशोधन कर दे तो यह माना जायेगा कि उसने उस विलेख के लेखक, स्वीकारक व पृष्ठांकक को अपने दायित्व से मुक्त कर दिया है।

यदि एक धनादेश को उसके निर्गमन के पश्चात यथोचित समय में प्रस्तुत न किया जावे व इस असावधानी के कारण उसके लेखक को धनादेश की राशि से अधिक हानि हो जाय तो धनादेश का लेखक अपने धनादेश के दायित्व से मुक्त हो जायेगा (धारा 84)। उदाहरणार्थ—ए ने बी को 5,000 रुपये का एक धनादेश दिया। बी ने अकारण उस धनादेश को 15 दिन तक अपने पास रखा। इसी बीच ए का बैंक टूट गया। बैंक के टूट जाने से ए को 15,000 रुपये की शुद्ध हानि हुई। परिणामत: ए, बी को 5,000 रुपये का भुगतान करने के लिए दायी नहीं रहेगा। यदि बी इस धनादेश को समय पर प्रस्तुत कर देता तो ए को केवल 10,000 रुपये की हानि होती।

स्वदेशी विपत्र का नमूना

Rs- 5,000=00 Sujangarh

Stamp 1st Jan., 1980.

Two months after date/after sight pay to us or our order the sume of Rs. Fiv Thousand only, Value received.

Ram Lal & Co.

To

M/S Choohamal Poohamal
Fountain, Delhi
In Case of need with :
The Bank of India Ltd.
New Delhi.

यदि एक विपत्र घूम फिर कर उसके स्वीकारक के पास प्रापक की हैसियत में आ जावे तो उस विपत्र से सम्बन्धित सभी पक्ष अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं (धारा 90)।

जब एक विलेख में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए जाते हैं तो उन परिवर्तनों से असहमति प्रकट करने वाले व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु ऐसे परिवर्तनों के पश्चात उस विलेख के पक्ष बनने वाले व्यक्ति इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण अपने दायित्वों से मुक्त नहीं होते हैं (धारा 87)।

विदेशी विपत्र का नमूना—(प्रथम प्रति)

Rs. 200 = 00 London, 3rd May, 1980

Stamp

Sixty days after sight of this First of Exchange (2nd and 3rd of the same tenor & date unpaid) pay to the order of M/S Lyod Sons & Co., Bombay, the sum of Rs. Two hundred only. Value received.

Sd. Lyod Sons & Co.

To

M/S Jamsedji & Framiji, Bombay.

प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory Note)

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 4 द्वारा प्रतिज्ञा-पत्र को परिभाषित किया गया है। उक्त धारा के अनुसार "प्रतिज्ञा-पत्र एक शर्तहीन, लिखित व लेखक द्वारा हस्ताक्षरित विलेख होता है जिसके द्वारा विलेख का लेखक एक निश्चित व्यक्ति या उसके आदिष्ट व्यक्ति *या विलेख के वाहक को एक निश्चित राशि के भुगतान की प्रतिज्ञा करता* है। प्रतिज्ञा-पत्र में बैंक नोट व करेंसी नोट को शामिल नहीं किया जाता है।"[1] इस परिभाषा के अनुसार एक वैध प्रतिज्ञा-पत्र में निम्नलिखित तत्त्व आवश्यक होते हैं—

1. लिखित, 2. शर्त-विहीन, 3. भुगतान की प्रतिज्ञा, 4. लेखक द्वारा हस्ताक्षरित, 5. निश्चित लेखक, 6. निश्चित प्रापक 7. निश्चित राशि एवं 8. मुद्रा मे भुगतान।

विभिन्न अधिनियमों एवं परम्पराओं के कारण निम्नलिखित तत्त्वों की भी एक प्रतिज्ञा-पत्र के आवश्यक तत्त्वों में गणना की जाती है—

1. "A promissory note is an instrument in writing [not being a bank note or a currency note] containing an unconditional undertaking, signed by the maker, to pay a certain sum of money only to, or to the order of, a certain person or to the bearer of the instrument." Section 4, Negotiable Instruments Act, 1881.

1. प्रतिफल, 2. समुचित मात्रा में मुद्रांक, 3. सुपुर्दगी एवं 4. *निर्गमन का स्थान।*

उपर्युक्त तत्त्वों में से अधिकांश तत्त्वों का वर्णन "विपत्र के आवश्यक तत्त्वों" के अन्तर्गत किया जा चुका है, अतः सम्प्रति केवल उन तत्त्वों की व्याख्या की जा रही है जिनका पहले वर्णन नहीं किया गया है।

1. भुगतान की प्रतिज्ञा (Promise to pay)—एक वैध विपत्र के लेखक को प्रतिज्ञा-पत्र में अंकित राशि के भुगतान सम्बन्धी प्रतिज्ञा के अभाव में विलेख को प्रतिज्ञा-पत्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती। प्रतिज्ञा का तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक अपने विलेख में "प्रतिज्ञा" अथवा "प्रोमिज" शब्द का अनिवार्यतः प्रयोग करे। इसका आशय केवल इतना ही है कि विलेख से यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह एक भुगतान सम्बन्धी प्रतिज्ञा है।

निम्न आशय वाले विलेखों को प्रतिज्ञा-पत्र नहीं माना जा सकता क्योंकि इनसे भुगतान की प्रतिज्ञा का स्पष्टतः आभास नहीं होता है—

1. यदि एक व्यक्ति किसी विलेख द्वारा अपने दायित्व को स्वीकार करे (भारत बनाम वासुदेवन, मद्रास)।

2. यदि एक व्यक्ति ऋण के लिए प्रार्थना-पत्र दे व उसमें ऋण के भुगतान की भी प्रतिज्ञा करे (तिरुपति बनाम रामरेड्डी, मद्रास)।

3. यदि एक व्यक्ति अपने ऋणदाता को हिसाब भेजे और उस हिसाब के नीचे यह अंकित कर दे कि देय-राशि का भुगतान आगामी माह कर दिया जायेगा।

4. जब एक धनादेश का प्रापक प्राप्त धनादेश की पावती लिखे व उसमें एक निश्चित अवधि के पश्चात भुगतान की प्रतिज्ञा करे (लाला करमचंद बनाम मियाँ मीर अहमद)।

5. जब एक व्यक्ति भुगतान की सूचना मात्र दे।

2. बैंक नोट व करेंसी नोट प्रतिज्ञा-पत्र नहीं होते :—यद्यपि बैंक नोट एवं करेंसी नोट भी प्रतिज्ञा-पत्र होते हैं किन्तु फिर भी अधिनियम द्वारा उन्हें प्रतिज्ञा-पत्र नहीं माना गया है। अन्य राजकीय प्रतिज्ञा-पत्रों की गणना प्रतिज्ञा-पत्रों में की जाती है। ये प्रतिज्ञा-पत्र पूर्णतः विनिमय साध्य होते हैं व पृष्ठांकन द्वारा इनका परक्रामण किया जा सकता है, किन्तु इन प्रतिज्ञा-पत्रों का नियमन भारतीय प्रतिभूति अधिनियम व लोक ऋण अधिनियम द्वारा होता है। सरकार इन प्रतिज्ञा-पत्रों का निर्गमन सार्वजनिक ऋणों के निर्गमन के समय करती है।

वैध एवं अवैध प्रतिज्ञा-पत्रों के उदाहरण

वैध प्रतिज्ञा-पत्र (Valid Promissory Notes) :—1. मैं हरि या उसके आदेशानुसार रु० 500 भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता हूं।

2. मैं हरि का रु० 1,000 से ऋणी होना स्वीकार करता हूं और उसके मांगने पर उतनी राशि का भुगतान कर दूंगा।

3. मैं रामलाल अथवा उसके उत्तराधिकारी को 500 रुपये भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता हूं।

अवैध प्रतिज्ञा-पत्र (Invalid Promissory Notes) :—1. मैं राम का 1,000रु० से ऋणी हूं। (इसमें भुगतान करने का वादा नहीं किया गया है।)।

2. मैं राम को 500 रुपये और अन्य राशि, जो भी उसे देय है, भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता हूं (धनराशि अनिश्चित है)।

3. मैं बिल्लू को 400 रुपये देने का वचन देता हूं परन्तु उसमे से मुझे जो राशि लेनी है, वह मैं काट लूंगा (राशि अनिश्चित है)।

4. मैं मुमताज के साथ विवाह के सात दिन पश्चात राजू को 500 रुपये चुकाने की प्रतिज्ञा करता हू (शर्त सहित है)।

5. मैं पकज को कृष्ण कुमार की मृत्यु के पश्चात 500 रुपये भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता हूं : बशर्ते कि वह (कृष्ण कुमार) मेरे लिए पर्याप्त राशि छोड़ जावे (प्रतिज्ञा शर्तहीन नहीं है)।

6. मैं आगामी एक जनवरी को सुनील को 500 रु० और मेरी काली गाय देने का वादा करता हूं (मुद्रा में देय नहीं है)।

7. मै मैसर्स रामचन्द्र कृष्णचन्द्र फर्म के साझेदारो को 500 रु० चुकाने का वचन देता हूं (प्रापक अनिश्चित है)।

8. 500 रुपये टिल्लू से प्राप्त किये, यह राशि मांगने पर भुगतान करने योग्य है (इसमे भुगतान करने का वादा नही किया गया है)।

9. मै राम को 500 रुपये चुकाने के लिए दायी हूं (दायित्व की स्वीकृति मात्र)।

10. माग करने पर मैं धारक को 500 रुपये देने का वचन देता हूं (रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 के अधीन प्रतिबन्धित)

प्रतिज्ञा-पत्रों का वर्गीकरण (Classification of Promissory Notes) :—

एक प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान स्थल, भुगतान की अवधि, प्रापक, प्रतिफल आदि के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। मुख्यतः प्रतिज्ञा-पत्रों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

1. स्वदेशी व विदेशी प्रतिज्ञा-पत्र,
2. वाहक व आदिष्ट प्रतिज्ञा-पत्र,
3. दर्शनी व सावधि प्रतिज्ञा-पत्र,
4. दर्शनी, दर्शन पश्चात व तिथि पश्चात प्रतिज्ञा-पत्र,
5. किश्तो में भुगतान योग्य प्रतिज्ञा-पत्र।

प्रतिज्ञा-पत्रो एवं विपत्रों का समान आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। विभिन्न प्रकार के विपत्रों का यथास्थान वर्णन किया जा चुका है, अतः यहा पर केवल अतिरिक्त जानकारी का ही वर्णन किया जायेगा शेष जानकारी "विपत्रों के प्रकार" शीर्षक के अन्तर्गत प्राप्त की जा सकती है।

1. दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्र :—दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्र वस्तुतः व्यवहार मे नही लिखे जाते क्योकि यदि लेखक के पास तत्काल भुगतान के लिए पैसा होता तो उसे दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्र के अभिलेखन की आवश्यकता नहीं होती। अतः जब कभी दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्र लिखे जाते हैं तब उसका तत्काल भुगतान नही करना पड़ता। स्थानीय परम्पराओं के आधार पर उसे भुगतान के लिए कुछ अवकाश स्वीकृत किया जाता है।

2. वाहक प्रतिज्ञा-पत्र :—केवल सावधि प्रतिज्ञा-पत्रों को वाहक प्रतिज्ञा-पत्रो के रूप मे निर्गमित किया जा सकता है। वाहक एवं दर्शनी प्रतिज्ञा-पत्रों का मुद्रा रूप मे

निर्गमन नहीं किया जा सकता। ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र व्यर्थ एवं अवैधानिक होते हैं व इनका निर्गमन एक अपराध होता है। इन प्रतिज्ञा-पत्रों के निर्गमन पर प्रतिज्ञा-पत्र की दुगनी राशि का अर्थदण्ड किया जा सकता है। न्यायालय ऐसे विवादों को केवल रिजर्व बैंक की शिकायत पर विचारार्थ स्वीकार करते हैं। रिजर्व बैंक वाहक प्रतिज्ञा-पत्रों के निर्गमन के लिए अधिकृत है।

3 किश्तों में भुगतान योग्य प्रतिज्ञा-पत्र :—प्रतिज्ञा-पत्रों का भुगतान किश्तों में भी किया जा सकता है। प्रतिज्ञा-पत्र लिखते समय ही उसमें भुगतान की किश्तों का वर्णन कर दिया जाता है। प्रत्येक किश्त के भुगतान पर प्रतिज्ञा-पत्र के लेखक को तीन अनुग्रह दिवस प्राप्त होते हैं। वस्तुतः ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र एक संयुक्त प्रतिज्ञा-पत्र होता है और किश्तों की संख्यानुसार ही ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों की संख्या ज्ञात की जाती है। किसी एक किश्त का अनादरण हो जाने पर भी ऐसा प्रतिज्ञा पत्र शेष किश्तों के लिए वैध बना रहता है।

प्रतिज्ञा-पत्र के विभिन्न पक्ष व उनका दायित्व

एक प्रतिज्ञा-पत्र के मूलतः दो पक्ष होते हैं—(i) लेखक व (ii) प्रापक। पृष्ठांकन की अवस्था मे तीसरा पक्ष और बन जाता है।

प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक प्रारम्भ से अन्त तक प्रमुख ऋणी बना रहता है। शेष पक्षों का दायित्व केवल गौण (Secondary) होता है।

एक प्रतिज्ञा पत्र को एकल अथवा संयुक्त रूप से लिखा जा सकता है। जब अकेला व्यक्ति प्रतिज्ञा-पत्र लिखता है तो वह उस प्रतिज्ञा-पत्र की राशि के लिए व्यक्तिशः दायी होता है किन्तु जब कुछ व्यक्ति मिलकर एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं तो वे प्रतिज्ञा-पत्र की राशि के लिए संयुक्त रूप से अथवा संयुक्त एवं व्यक्तिगत रूप से दायी होते हैं। जब वे संयुक्त व व्यक्तिगत दायित्व लेना चाहते हैं तो उन्हे प्रतिज्ञा-पत्र पर तत्सम्बन्धी नोट लगाना पड़ता है।

प्रतिज्ञा-पत्रों की भाषा भी उनके लेखकों का दायित्व निर्धारित करने में सहायक होती है। जब एक प्रतिज्ञा पत्र अनेक व्यक्तियों द्वारा लिखा जाता है किन्तु उसे एक वचन में प्रारम्भ किया जाता है (यथा मैं प्रतिज्ञा करता हूं) तो ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों के लेखकों का दायित्व संयुक्त व व्यक्तिगत होता है।

यदि एक प्रतिज्ञा-पत्र को अनेक व्यक्तियों ने लिखने का विचार किया हो, किन्तु वस्तुतः प्रतिज्ञा-पत्र पर कुछ ही व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किए हो, तो हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का प्रतिज्ञा-पत्र की राशि के प्रति कोई दायित्व नहीं होता है क्योंकि ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र अवैध माना जाता है।

एक प्रतिज्ञा-पत्र के सामान्यतः वैकल्पिक लेखक नहीं होते हैं क्योंकि ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र अवैध होता है। अतः वैकल्पिक लेखकों का प्रतिज्ञा-पत्र के प्रति कोई दायित्व नहीं होता है। जब एक प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक अपने प्रतिज्ञा-पत्र को मैं, रामलाल, विधि से प्रारम्भ करे व हस्ताक्षरों के लिए सुरक्षित स्थान पर रामलाल या श्यामलाल हस्ताक्षर करे तो मूलतः रामलाल ही दायी रहेगा, किन्तु रामलाल की असमर्थता पर श्यामलाल दायी होगा।

जब एक संयुक्त हिन्दू परिवार का प्रबन्धक सदस्य कोई प्रतिज्ञा-पत्र लिखता है तो उस परिवार के सदस्य ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र के लिए तभी दायी होते हैं जबकि प्रतिज्ञा-पत्र

पारिवारिक कार्यों के लिए लिये गये ऋणों के लिए लिखा जाता है। जब संयुक्त हिन्दू परिवार का कोई व्यवसाय होता है तो उसका प्रबन्धक सदस्य व्यवसाय के संचालनार्थ लिये गए ऋण के लिए प्रतिज्ञा-पत्र लिखने का अधिकारी होता है। प्रतिज्ञा-पत्र के प्रापक को ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों के बारे में विशद जांच की आवश्यकता नहीं होती है। परिवार के सारे सदस्य ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों के लिए दायी होते हैं व अवयस्क सदस्य का हिस्सा भी ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों के भुगतान के लिए काम में लिया जा सकता है।

प्रापक व पृष्ठांकको के दायित्व का प्रस्तुतीकरण व पृष्ठांकन वाले अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है।

प्रस्तुतीकरण

प्रतिज्ञा-पत्रों को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं होता है क्योंकि प्रतिज्ञा-पत्रों पर स्वीकृति नहीं दी जाती है। दर्शन पश्चात् प्रतिज्ञा-पत्रों को उनके आलेखन के पश्चात् एक बार लेखक के समक्ष दर्शनार्थ अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है क्योंकि ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों की देय तिथि की गणना दर्शन तिथि से की जाती है। यह प्रस्तुतीकरण यथोचित समय में किया जाता है।

सामान्यतः प्रत्येक प्रतिज्ञा-पत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी नियमों एवं दायित्वों का वर्णन "प्रस्तुतीकरण" के अन्तर्गत किया जा चुका है।

देय-तिथि की गणना :

सावधि प्रतिज्ञा-पत्रों की देय तिथि की गणना सावधि विपत्रों की देय-तिथि की भांति ही की जाती है।

Specimen of Promissory Note

Rs. 1,000=00 Sujangarh,
1st Jan, 1981.

One month after date I promise to pay Shri Bhagirath Soni or order a sum of Rs. One Thousand only with interest at the rate of Seven per cent per annum. Value received.

Stamp Sd. Omprakash

प्रतिज्ञा-पत्र व विपत्र में अन्तर :

निम्नलिखित अन्तर के अतिरिक्त एक प्रतिज्ञा-पत्र व विपत्र की प्रकृति में पूर्णतः समानता होती है—

1. एक विपत्र के सामान्यतः तीन पक्ष होते हैं (लेखक, स्वीकारक व धारक) किन्तु प्रतिज्ञा-पत्र में केवल दो ही पक्ष होते हैं अर्थात् लेखक व धारक।

2. प्रतिज्ञा-पत्रों की स्वीकृति न अनिवार्य होती है न ऐच्छिक, जबकि विपत्रों की स्वीकृति अनिवार्य एव वांछनीय होती है।

3. प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक आदि से अन्त तक मूल ऋणी का कार्य करता है जबकि विपत्र का लेखक विपत्र की स्वीकृति तक ही मूल ऋणी का कार्य करता है।

धनादेश (Cheque)

धनादेश एक विलेख होता है जिसके द्वारा एक अधिकोष (बैंक) का ग्राहक अपने चालू अथवा बचत खाते मे जमा राशि का आहरण करता है। अधिविकर्ष की सुविधा प्राप्त होने पर खातों में राशि जमा न होने पर भी धनादेश लिखे जा सकते हैं। भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 6 धनादेश को परिभाषित करती है। इस धारा के प्रावधानों के अनुसार "धनादेश एक विपत्र होता है जो किसी विशिष्ट अधिकोष पर लिखा जाता है व मांगने पर देय होता है।"[1]

आवश्यक तत्त्व (Essential Elements)

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार एक धनादेश को एक विपत्र के समस्त आवश्यक तत्त्वों की पूर्ति करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ 1. लिखित 2. शर्तविहीन आदेश 3. लेखक द्वारा हस्ताक्षरित 4. निश्चित प्रापक 5. निश्चित राशि 6. मुद्रा में देय 7. तिथि व 8. सुपुर्दगी एक धनादेश के आवश्यक तत्त्व होते हैं।

उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त एक धनादेश को निम्नांकित आवश्यक तत्त्वों की भी पूर्ति करनी पड़ती है—

1. विशिष्ट अधिकोष पर लिखना (Written on Specified Bank) :— धनादेश हमेशा एक अधिकोष पर लिखा जाता है। विशिष्ट अधिकोष का निम्न तीन अर्थों मे प्रयोग किया जाता है—

(i) एक धनादेश केवल एक अधिकोष पर ही लिखा जा सकता है। अधिकोषों से व्यक्तियों या संस्थाओं पर लिखे गये आदेशों को धनादेश नहीं माना जा सकता है। राजकीय कोषों पर लिखे गये आदेशों को भी धनादेश नहीं कहा जा सकता।

(ii) धनादेश केवल एक अधिकोष या शाखा पर लिखा जाता है। एक से अधिक बैंकिंग कार्यालयों पर लिखा गया धनादेश वैध नहीं माना जाता।

(iii) जिन अधिकोषों को भुगतान के लिए आदेश दिया जाता है उनका धनादेशों पर अनिवार्यतः नाम लिखा जाता है। शाखा बैंकिंग के अन्तर्गत अधिकोष के नाम के साथ-साथ आदेशित शाखा का भी नाम लिखा जाता है।

2. मांग करने पर देय (Payable on Demand) :—धनादेश की राशि मांग करने पर देय होती है अर्थात् धनादेश हमेशा दर्शनी बिलों की तरह निर्गमित किए जाते हैं, आवधि धनादेश कभी नहीं लिखे जाते। धनादेश लिखते समय "मांगने पर" या "ऑन डिमाण्ड" शब्दों को अनिवार्यतः प्रयुक्त नहीं करना पड़ता क्योंकि जब धनादेश का लेखक

---

1. "A cheque is a bill of Exchange drawn on a bank on a specified banker and not expressed to be payable otherwise than on demand." Section 6, Negotiable Instruments Act, 1881.

अपने धनादेश में भुगतान के लिए विशिष्ट समय का उल्लेख नहीं करता है तो उस धनादेश को मांग पर देय धनादेश माना जाता है। (धारा 19)

3. स्वरूप (Nature) तथा चैक प्रारूप (Form) के लाभ :—विधि द्वारा धनादेश का कोई स्वरूप निश्चित नहीं किया गया है अतः विधि द्वारा प्रस्तावित आवश्यक तत्वों की पूर्ति करते हुए धनादेश किसी भी स्वरूप म लिखा जा सकता है, किन्तु सामान्यतः धनादेश अधिकोषों द्वारा सम्भरित विशिष्ट प्रपत्रों पर ही लिखे जाते हैं। इन छपे हुए चैक फार्मों (विशिष्ट प्रपत्रों) के अनेक लाभ है जैसे-(क) इन फार्मों को काम में लाने से जालसाजी बहुत कम हो पाती है, (ख) धनादेश की राशि में आसानी से परिवर्तन नहीं किया जा सकता, (ग) ग्राहकों के हस्ताक्षरों की जाच करने मे सुविधा रहती है, (घ) धनादेशों के आवश्यक तत्वों की सहज ही पूर्ति हो जाती है, (ङ.) धनादेशों का भुगतान रुकवाने में सुविधा रहती है, (च) रिकार्ड रखने मे ग्राहक को आसानी रहती है, (छ) इन फ़ार्मों के प्रयोग करने से समय की बचत होती है क्योंकि व्यापारियों को दिन मे अनेक चैक लिखने पडते हैं। विपत्र सामान्यतः कागज के सामान्य टुकड़ों पर लिखे जाते हैं। केवल बड़े-बड़े व्यापारी विपत्रों के छपे हुए प्रपत्र रखते हैं।

4. स्वदेशी मुद्रा :—यद्यपि भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम मे स्वदेशी मुद्रा की अनिवार्यता का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु व्यवहार में समस्त धनादेशो को अनिवार्यतः स्वदेशी मुद्रा में लिखा जाता है। शोधी अधिकोष विदेशी मुद्रा मे लिखे गये धनादेशो का भुगतान करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध नहीं होते हैं। जब एक शोधी अधिकोष विदेशी मुद्रा में लिखे गये धनादेश का भुगतान करने का निश्चय कर लेता है तो वह उसका भुगतान स्वदेशी मुद्रा में करता है व ऐसा भुगतान प्रस्तुतीकरण की तारीख पर विद्यमान विनिमय दर पर किया जाता है।

5. चैक एक शर्त-रहित आदेश है।

6. चैक पर लेखक के हस्ताक्षर होने अनिवार्य हैं।

7. चैक में एक निश्चित धनराशि चुकाने का आदेश होता है।

8. चैक की राशि किसी व्यक्ति विशेष को या वाहक को देय होती है।

चैक, प्रतिज्ञा-पत्र व विपत्र में अन्तर

(Difference among Cheque, P/N and B/E)

यद्यपि चैक एक विपत्र होता है किन्तु वह विशिष्ट कोटि का विपत्र होता है। अतः इन विलेखो मे निम्नलिखित असमानताएं पाई जाती हैं—

1. स्वीकृति (Acceptance) :—चैक की स्वीकृति नहीं होती है किन्तु विपत्र की स्वीकृति अनिवार्य अथवा वांछनीय होती है। दर्शनी विपत्रों की स्वीकृति व भुगतान एक साथ सम्पन्न होते हैं और जब दर्शनी विपत्र का अनादरण हो जाता है तो उसे अस्वीकृति जनित अनादरण माना जाता है। प्रतिज्ञा-पत्र देनदार द्वारा लिखा जाता है, अतः उसे स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।

2. पक्षकार (Parties) :—चैक व विपत्रों मे तीन पक्षकार, लेखक (Drawer), देनदार (Drawee) एवं प्राप्तक (Payee) हो सकते है जबकि प्रतिज्ञा-पत्र मे दो पक्षकार, लेखक और प्राप्तक, होते हैं।

3. प्रारूप (Form) :—चैक सम्बन्धित बैंक द्वारा दिए गए छापे हुए प्रारूप पर ही लिखे जाते है, जबकि बिल या प्रतिज्ञा-पत्र के लिए कोई प्रारूप निश्चित नहीं है।

धनादेश का भुगतान करवाया जा सकता है। एक धनादेश का मूल प्रापक उसका यथाविधि धारक नहीं बन सकता।

3. आहार्यी (Drawee) :—जिस अधिकोष पर धनादेश लिखा जाता है उसे धनादेश का आहार्यी कहा जाता है। एक धनादेश का आहार्यी हमेशा एक अधिकोष होता है व उसके वैकल्पिक आहार्यी नहीं हो सकते। आहार्यी हमेशा निश्चित होता है अर्थात धनादेश पर उसका नाम व भुगतान स्थल का नाम अंकित रहता है।

4. पृष्ठांकिती (Indorsee) :—जिस व्यक्ति के पक्ष में धनादेश का परक्रामण किया जाता है उसे धनादेश का पृष्ठांकिती कहा जाता है। एक धनादेश के अनेक पृष्ठांकक व पृष्ठांकिती हो सकते हैं। एक पृष्ठांकिती एक धनादेश का प्रापक नहीं हो सकता क्योंकि धनादेश का प्रापक केवल वही व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम धनादेश का लेखक प्रापक के रूप मे लिखता है। (जगजीवन दास बनाम नागर सेण्ट्रल बैंक)।

विभिन्न पक्षों का दायित्व :

1. लेखक का दायित्व :—एक धनादेश का लेखक मूल ऋणी का कार्य करता है (37)। उसकी एवं विपत्र के स्वीकारक की स्थिति बिल्कुल एकसी होती है। अतः एक धनादेश के अनादरण पर धनादेश का प्रापक, वाहक या पृष्ठांकिती शोधी अधिकोष के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता (31)। एक धनादेश के अनादरण पर धनादेश का धारक उसके लेखक अथवा अन्य पक्षों (आहार्यी अधिकोष के अतिरिक्त) कार्यवाही कर सकता है।

(अ) लेखक को चैक के अनादरण की सूचना :—एक धनादेश (चैक) का लेखक धनादेश के समस्त पक्षों (बैंक के अतिरिक्त) के प्रति दायी होता है व परिसीमन अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि तक (भारत मे तीन वर्ष) वह अपने दायित्व के प्रति दायी बना रहता है। इस अवधि मे उसके विरुद्ध कभी भी दावा प्रस्तुत किया जा सकता है। जब एक धनादेश का अनादरण हो जाता है तो उसका लेखक धारक की क्षतिपूर्ति के लिए दायी होता है, किन्तु क्षतिपूर्ति तभी की जा सकती है जबकि लेखक को अनादरण की यथाविधि सूचना दे दी जाती है अथवा उसे सूचना प्राप्त हो जाती है (30)। जब एक धनादेश का लेखक अपने खाते में धनादेश के भुगतान के लिए राशि जमा नहीं करता है तो उसे अनादरण के तथ्य से अवगत करने की आवश्यकता नही होती है। यदि सूचना आवश्यक हो किन्तु यह प्रमाणित कर दिया जावे कि अनादरण की सूचना न देने से लेखक को कोई हानि नहीं हुई है तो अनादरण की सूचना न देने पर भी लेखक को क्षतिपूर्ति के लिए दायी ठहराया जा सकता है।

(ब) चैक का यथोचित समय में प्रस्तुतीकरण :—एक लेखक को अनादरण के प्रति दायी बनाने के लिए धनादेश के धारक को अधिनियम की धारा 72 व 84 के प्रावधानो की पूर्ति करनी पड़ती है। धारा 72 के अनुसार एक धारक को अपना धनादेश आहार्यी अधिकोष के समक्ष ग्राहक की स्थिति के अलाभकारी स्तर तक पहुंचने से पूर्व ही प्रस्तुत कर देना चाहिए व धारा 84 का यह स्पष्ट आदेश है कि यदि एक धारक अपने धनादेश को आवश्यक रूप में आहार्यी अधिकोष के समक्ष भुगतान के लिए प्रस्तुत न करे और इसी बीच वह अधिकोष फेल हो जावे और फलस्वरूप ग्राहक को धनादेश की राशि से अधिक हानि हो जावे तो ग्राहक उस धनादेश के भुगतान के प्रति दायी नहीं होगा।

सारांश यह है कि ग्राहक को दायी बनाने के लिए धारक को अपना धनादेश भुगतान के लिए यथोचित रूप में प्रस्तुत कर देना चाहिए।

(स) चैक के भुगतान न होने तक दायित्व— जब तक एक धनादेश का भुगतान नहीं हो जाता है तब तक उसका लेखक उसके भुगतान के प्रति दायी बना रहता है। उदाहरणार्थ यदि एक धनादेश खो जाये अथवा छः माह तक भुगतान के लिए प्रस्तुत न किया जाये और इस अवधि में लेखक को कोई हानि न हो तो प्रथम अवस्था में उसे धारक को दूसरा धनादेश लिखकर देना होगा अथवा नक़द भुगतान करना होगा। द्वितीय अवस्था में संदर्भगत धनादेश का नवीनीकरण करना होगा अथवा उसे (धारक को) नकद भुगतान करना होगा।

(द) जालसाजी पर भुगतान से मुक्ति—जब एक धनादेश का लेखक इस विश्वास के साथ धनादेश पर हस्ताक्षर करता है कि वह किसी अन्य विलेख पर हस्ताक्षर कर रहा है अथवा किसी अन्य उद्देश्य से हस्ताक्षर कर रहा है और वह इस तथ्य को प्रमाणित कर देता है तो वह उस धनादेश के भुगतान के प्रति दायी नहीं होता है। उदाहरणार्थ—इंगलैण्ड में एक वृद्ध व्यक्ति (जिसकी दृष्टि कमजोर थी) से जालसाजी पूर्वक एक रेल्वे गारण्टी के बजाय एक विपत्र पर हस्ताक्षर करा लिये गए। उस वृद्ध ने न्यायालय में यह प्रमाणित कर दिया कि उसने संदर्भगत विपत्र पर रेल्वे गारण्टी समझकर हस्ताक्षर किए थे। फलतः उसे न्यायालय द्वारा विपत्र के भुगतान से मुक्त कर दिया गया।

2. प्रापक व अन्य पक्षों का दायित्व—एक धनादेश का प्रापक केवल पृष्ठांकिती के प्रति दायी होता है। पृष्ठांकन के पूर्व वह किसी भी पक्ष के प्रति दायी नहीं होता है। पृष्ठांकन की अवस्था में प्रत्येक पक्ष एक धनादेश के यथाविधि धारक के प्रति दायी होता है व प्रत्येक पूर्ववर्ती पक्ष अपने अनुवर्ती पक्ष के लिए प्रमुख ऋणी का कार्य करता है।

इस धनादेश का धारक धनादेश के अन्य पक्षों को (लेखक के अतिरिक्त) तभी दायी ठहरा सकता है जबकि धनादेश की सुपुर्दगी के पश्चात यथोचित समय में भुगतान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाय। यथोचित समय में प्रस्तुत न करने पर लेखक के अतिरिक्त अन्य कोई पक्ष धनादेश के भुगतान के लिए दायी नहीं होता है।

3. आहार्यी का दायित्व—एक धनादेश के प्रस्तुतीकरण (भुगतान के लिए) के समय लेखक के खाते में पर्याप्त मात्रा में धन जमा होने पर व उस राशि के अन्य किसी कार्य के लिए आरक्षित न होने पर आदेशी अधिकोष को प्रस्तुत धनादेश का अवश्य भुगतान कर देना चाहिए (प्रस्तुत धनादेश का सब प्रकार से नियमित होना जरूरी है) अन्यथा उसे लेखक की क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है। यह क्षति अनुबंध को तोड़ने व ग्राहक की साख को हानि पहुंचने से होती है। क्षति सामान्य या असामान्य हो सकती है। संक्षेप में आहार्यी अधिकोष केवल धनादेश के लेखक के प्रति दायी होता है। आहार्यी अधिकोष अपने ग्राहक के प्रति तभी दायी होता है जबकि समुचित विधि से (कार्यकारी दिवस बैंकिंग कार्यविधि व आदिष्ट कार्यालय) भुगतान की मांग की जाती है। अनियमित प्रस्तुतीकरण की अवस्था में आहार्यी अधिकोष अपने ग्राहक के प्रति दायी नहीं होता है।

जब एक आहार्यी अधिकोष किसी धनादेश का यथाक्रम भुगतान नहीं करता है तो वह गलत भुगतान का दायी होता है और इस के भुगतान को वह सम्बन्धित ग्राहक के नाम नहीं लिख सकता।

धनादेश के प्रकार (Kinds of cheque)

एक धनादेश का उसके उद्गम स्थल, प्रापक, रेखांकन, तिथि, प्रमाणन आदि के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

(i) स्वदेशी व विदेशी धनादेश (Inland and Foreign Cheque)—जो धनादेश भारत में लिखा जाता है और जिसका भारत मे भुगतान किया जाता है अथवा जो धनादेश भारत मे लिखा जाता है और भारत मे रहने वाले किसी व्यक्ति पर लिखा जाता है उसे स्वदेशी धनादेश कहा जाता है चाहे उसका भुगतान भारत के बाहर किया जाय। उदाहरणार्थ 1. श्यामप्रकाश जयपुर में रामप्रकाश के पक्ष में देना बैंक की जौहरी बाजार स्थित शाखा पर एक धनादेश लिखे तो इस धनादेश को स्वदेशी धनादेश कहा जायेगा।

2. श्यामप्रकाश जयपुर में रामप्रकाश के पक्ष मे अपने लंदन स्थित अधिकोष पर एक धनादेश लिखे तो उसे स्वदेशी धनादेश कहा जायेगा। जो धनादेश उपर्युक्त शर्तों को पूर्ण नही करता है उसे विदेशी धनादेश कहा जाता है।

(ii) वाहक व आदिष्ट धनादेश (Bearer and Order Cheque)—जब किसी धनादेश में प्रापक का नाम नही लिखा जाता है अथवा जिसका अंतिम या एकमात्र पृष्ठांकन सामान्य पृष्ठांकन होता है उसे वाहक धनादेश कहा जाता है। इंग्लैण्ड मे जिस धनादेश का प्रापक जाली होता है या जिस प्रापक का कोई अस्तित्व नहीं होता है उसे भी वाहक धनादेश कहा जाता है। (नॉर्थ एण्ड साउथ इन्स्योरेंस कारपोरेशन बनाम नेशनल एण्ड प्रॉविन्शियल बैंक, 1936)

जब एक धनादेश का प्रापक वास्तविक व्यक्ति होता है, किन्तु जब धनादेश का लेखक अपने धनादेश को उस व्यक्ति को देने के उद्देश्य से नहीं लिखता है तो ऐसे धनादेश को आदिष्ट होते हुए भी वाहक धनादेश माना जाता है। (गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ बैंक ऑफ इंग्लैण्ड बनाम वेगुनो ब्रदर्स, 1891)

जब किसी धनादेश का मूलतः वाहक धनादेश के रूप मे निर्गमन किया जाता है तो वह अन्त तक वाहक ही बना रहता है चाहे उसे पृष्ठांकन द्वारा आदिष्ट बना दिया गया हो। शोधी अधिकोष इस प्रकार के धनादेशो का उनके प्रस्तुतकर्ताओं को यथाक्रम भुगतान करने पर अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं चाहे उन पर सामान्य या विशिष्ट पृष्ठांकन किए गए हों और चाहे उन पृष्ठांकनो द्वारा ऐसे धनादेशो की विनिमय साध्यता को समाप्त किया गया हो (धारा 85)।

आदिष्ट धनादेश—जिस धनादेश को आदिष्ट धनादेश के रूप मे निर्गमित किया जाता है अथवा जो धनादेश किसी व्यक्ति अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान करने का आदेश देता है व जो परक्रामण को प्रतिबंधित नहीं करता है अथवा तत्सम्बन्धी संकेत नही करता है, उसे आदिष्ट धनादेश कहा जाता है। उदाहरणार्थ रामलाल या उसके आदेश को भुगतान कीजिए। एक धनादेश का लेखक स्वयं को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान करने का आदेश दे सकता है।

एक धनादेश कुछ व्यक्तियों के पक्ष में संयुक्त रूप से लिखा जा सकता है व संयुक्त प्रापकों मे किसी एक या कुछ प्रापकों के लिए भुगतान का आदेश दे सकता है।

(iii) विवर्त (खुला) व रेखांकित धनादेश (Open and Crossed Cheque)—जिन धनादेशों का भुगतान आहार्यी अधिकोष की खिड़की पर प्राप्त किया जा सकता है

उन्हें विवर्त या खुला धनादेश कहा जाता है। विवर्त धनादेश आदिष्ट, वाहक, स्वदेशी या विदेशी हो सकता है। इन धनादेशों का यथाक्रम भुगतान करने पर शोधी अधिकोष अपने दायित्व से मुक्त हो जाती है। चूँकि इन धनादेशों के चुराए जाने की अधिक सम्भावना रहती है, अतः इस प्रकार के धनादेश बहुत कम लिखे जाते हैं।

जिस धनादेश का भुगतान केवल किसी अधिकोष को प्राप्त हो सकता है उन्हें रेखांकित धनादेश कहा जाता है। धनादेशों का रेखांकन दो प्रकार से किया जा सकता है—1. सामान्य रेखांकन व 2. विशिष्ट रेखांकन। सामान्य रेखांकन के समय धनादेश पर केवल दो समान्तर व तिरछी रेखाएं खींची जाती हैं। इन रेखाओं में विविध वाक्यांश भी लिखे जा सकते हैं। विशिष्ट रेखांकन के समय रेखाओं का खींचा जाना अनिवार्य नहीं होता है। जब किसी धनादेश पर संग्रहकर्ता अधिकोष का नाम लिख दिया जाता है तो उसे विशिष्ट रेखांकन कहा जाता है। व्यवहार में विशिष्ट रेखांकन में भी रेखाएं खींची जाती हैं। इन धनादेशों का भुगतान केवल संग्रहकर्ता अधिकोष को प्राप्त होता है। इस प्रकार का रेखांकन करने से पूर्व प्रापक या धारक से उसके अधिकोष का नाम ज्ञात कर लिया जाता है। मनमाने ढंग पर नाम लिखने से प्रापक या धारक को असुविधा का सामना करना पड़ता है।

(iv) काल तिरोहित एवं उत्तर तिथीय धनादेश (Stale and Post-dated cheque)—जब एक धनादेश असामान्य अवधि तक चलन में रहता है तो उसे पुराना या काल तिरोहित धनादेश कहा जाता है। असामान्य अवधि का निर्धारण देश, काल एवं व्यवसाय की परम्परानुसार किया जाता है। भारत में जब एक धनादेश 6 माह तक चलन में रह लेता है तो उसे काल-तिरोहित धनादेश कहा जाता है। इन धनादेशों को भुगतान के लिए प्रस्तुत करने पर शोधी अधिकोष इनका भुगतान नहीं करता है, किन्तु ऐसे धनादेशों का धारक इनके लेखकों से इन पर नवीन तारीख डलवा सकता है। नवीन तारीख डालते समय लेखक को धनादेश पर अपने पूरे हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। नवीन तारीख से काल तिरोहित धनादेश का नवीनीकरण हो जाता है और 6 माह के लिए वे पुनः प्राणवान बन जाते हैं। यदि लेखक नई तारीख डालने से मना कर देता है तो उसे इस प्रकार के धनादेश का भुगतान करना पड़ता है क्योंकि भारत में एक धनादेश के लेखक का दायित्व तीन वर्ष तक बराबर चलता है। इंग्लैण्ड में यह अवधि 6 साल है। धारा 84 व 78 में वर्णित परिस्थिति पैदा होने पर धनादेश का लेखक अपने दायित्व से अविलम्ब मुक्त हो जाता है।

जब किसी धनादेश के आलेखन के समय उस पर कोई भावी तिथि अंकित कर दी जाती है तो उस धनादेश को उत्तर तिथीय धनादेश कहा जाता है यथा यदि एक धनादेश 10 जनवरी को लिखा जाये और उस पर 25 जनवरी अंकित कर दी जाये तो उस धनादेश को उत्तर तिथीय धनादेश कहा जायेगा। वस्तुतः ऐसे धनादेश साधारण विपत्र होते हैं और मुद्रांक कर से बचने के लिए इनका निर्गमन किया जाता है।

ऐसे धनादेशों का भुगतान उन पर अंकित तिथि से पूर्व नहीं किया जा सकता व इनका धारक लेखक या अन्य किसी पक्ष के विरुद्ध उस तिथि से पूर्व कोई कार्यवाही कर सकता है। इन धनादेशों का यथाविधि धारक को इन पर अंकित तिथि से पूर्व भी पृष्ठांकण किया जा सकता है।

एक अव्यवसायी फर्म का साझेदार फर्म के नाम से इस प्रकार के धनादेशों का निर्गमन नहीं कर सकता और न अपने साथी साझेदारों को ऐसे धनादेशों के परिणामों के प्रति दायी बना सकता है।

चिन्हित व खोए हुए धनादेशों का यथास्थान वर्णन किया जा चुका है।

612330

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर

State Bank of Bikaner and Jaipur

ACCOUNT NO.

रेखांकित धनादेश का नमूना

भारतीय स्टेट बैंक

ON DEMAND PAY

Rs

VALUE RECEIVED

TO STATE BANK OF INDIA

BRANCH MANAGER

ड्राफ्ट का नमूना

बैंक ड्राफ्ट
(Bank Draft)

"बैंक ड्राफ्ट मांग पर देय अथवा सावधि विपत्र होते हैं जो एक अधिकोष द्वारा दूसरे अधिकोष पर, एक अधिकोष की एक शाखा द्वारा दूसरी शाखा पर, एक प्रधान कार्यालय द्वारा अपने शाखा कार्यालय पर और शाखा कार्यालय द्वारा प्रधान कार्यालय पर किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में लिखे जाते हैं।[1]" एक अधिकोष दूसरे अधिकोष पर बैंक ड्राफ्ट तभी लिख सकता है जबकि उनमें परस्पर इस सम्बन्ध में पूर्व अनुबन्ध हो जाता है।

भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 85 (अ) केवल द्वितीय प्रकार के बैंक ड्राफ्ट को मान्यता प्रदान करती है। इस धारा के प्रावधानों के अनुसार 'बैंक ड्राफ्ट मुद्रा के भुगतान का आदेश होता है जिसके द्वारा एक बैंक का एक कार्यालय उसके किसी दूसरे कार्यालय को उसमें लिखित राशि का आदिष्ट व्यक्ति को मुद्रा में भुगतान करने का आदेश देता है।"[2]

बैंक ड्राफ्ट के पक्षकार (Parties of Bank Draft)

एक बैंक ड्राफ्ट के चार पक्ष होते हैं यथा 1. निर्गमक अधिकोष या शाखा कार्यालय 2. क्रेता 3. प्रापक तथा 4. शोधी अधिकोष या शाखा कार्यालय।

निर्गमक अधिकोष (Issuing Bank) :—एक बैंक ड्राफ्ट का निर्गमन सदा एक बैंकिंग कार्यालय द्वारा किया जाता है। जो कार्यालय बैंक ड्राफ्ट का निर्गमन करता है उसे निर्गमक अधिकोष या शाखा कहा जाता है। निर्गमक कार्यालय के व्यवस्थापक को ड्राफ्ट पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं व व्यवस्थापक संख्या (यदि हो) भी अंकित करनी पड़ती है। निर्गमक कार्यालय अपनी सेवाओं के लिए ड्राफ्ट के क्रेता से शुल्क वसूल करता है। ड्राफ्ट बनाते ही निर्गमक कार्यालय शोधी अधिकोष या शाखा कार्यालय को ड्राफ्ट निर्गमन की सूचना देता है। इस सूचना को बैंक एडवाइस कहा जाता है। यह सूचना ड्राफ्ट निर्गमन की पुष्टि स्वरूप भेजी जाती है।

एक अधिकोष अथवा उसकी शाखा अपनी विदेश स्थित शाखा पर भी ड्राफ्ट लिख सकता है।

बैंक ड्राफ्ट द्वारा निर्गमक अधिकोष शोधी अधिकोष को ड्राफ्ट के प्रापक को ड्राफ्ट की राशि का प्रस्तुतीकरण पर भुगतान करने का आदेश देता है।

क्रेता (Purchaser) :—जो व्यक्ति ड्राफ्ट बनवाता है उसे ड्राफ्ट का क्रेता कहा जाता है। ड्राफ्ट किसी भी व्यक्ति द्वारा बनवाया जा सकता है। क्रेता को ड्राफ्ट बनवाने के लिए निर्गमक अधिकोष के पास निर्धारित प्रपत्र में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रपत्र में वह प्रापक का नाम, ड्राफ्ट की राशि, वांछित शाखा या अधिकोष, ड्राफ्ट का

---

1. "A Banker's draft is a bill drawn either on demand or otherwise by one bank on another in favour of a third party or by one branch of a bank on another branch of the same bank or by the head office on a branch or vice versa."
2. "A draft is an order to pay money, drawn by one office of a bank upon another office of the same bank for a sum of money payable to order on demand". Sec. 85 (A).

हस्ताक्षर व प्रापक के हस्ताक्षर होते हैं। प्रापक जब भुगतान प्राप्त कर लेता है तब उस पर अपने हस्ताक्षर करता है व रसीद लिखता है।

(iv) विनिमय-साध्य विलेख :—यद्यपि भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम 1881 में हुण्डियों को विनिमय-साध्य विलेख नहीं माना है परन्तु न्यायालयों ने इस महत्त्वपूर्ण विलेख को पूर्ण एवं प्रभावकारी विनिमय-साध्य विलेख माना है। कभी-कभी हुण्डियों की शैली इतनी जटिल हो जाती है कि वह विनिमय-साध्य विलेख के आवश्यक तत्त्वों की पूर्ति नहीं कर पाती है यथा शाह जोग हुण्डी।

(v) नियमन (Regulation)—हुण्डियों का नियमन सामान्यतः व्यापारिक प्रथाओं द्वारा किया जाता है। देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न व्यापारिक प्रथाएं हैं अतः हुण्डियों का नियमन भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है, किन्तु जब किसी हुण्डी में यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि संदर्भगत हुण्डी पर स्थानीय प्रथाएं लागू नहीं होंगी अथवा उस पर भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम के विभिन्न प्रावधान लागू होंगे तब उस हुण्डी का नियमन उक्त अधिनियम के प्रावधानों द्वारा होता है (कन्हैयालाल बनाम रामकुमार 1956)।

(vi) स्वीकृति (Acceptance)—हुण्डियों को सामान्यतः स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है किन्तु जब उसका अनादरण हो जाता है तो यह माना जाता है कि उसका अनादरण अस्वीकृति के कारण हुआ। हुण्डी पर जबानी स्वीकृति भी दी जा सकती है।

(vii) अनादरण की सूचना (Notice of dishonour)—जब एक हुण्डी सिकर जाती है अर्थात उसका अनादरण हो जाता है तो उसके धारक को अपने पूर्व पक्ष को अनादरण के तथ्य से अनिवार्यतः अवगत करना पड़ता है। यह सूचना उसे यथोचित समय में देनी पड़ती है अन्यथा उसका पूर्व पृष्ठांकक व लेखक हुण्डी के भुगतान के लिए दायी नहीं होते हैं। हुण्डियों पर बेचान साध्य अधिनियम के अनादरण सम्बन्धी समस्त प्रावधान यथावत लागू होते हैं। (कन्हैयालाल बनाम रामकुमार 1956)।

(viii) नवीनीकरण (Renewal)—विपत्रों की भांति हुण्डियों का भी नवीनीकरण होता है लेकिन नवीनीकरण हमेशा सशर्त होता है। यदि पुरानी हुण्डी का स्वीकारक नवीन हुण्डी को स्वीकार करे तो उसका पुरानी हुण्डी के प्रति दायित्व यथावत बना रहता है व न्यायालय में उसके विरुद्ध दावा प्रस्तुत किया जा सकता है। (मोतीलाल बनाम उन्नाव कॉमर्शियल बैंक)

हुण्डियों के प्रकार (Kinds of Hundies)

मुख्यतः हुण्डियों को दो भागों में बांटा जा सकता है—1. दर्शनी हुण्डी एवं 2. मुद्दती हुण्डी। दर्शनी हुण्डी को देखनहार भी कहा जाता है। इन हुण्डियों के प्रस्तुतीकरण पर इनके आहार्यों (ऊपर वाले) को इनका अविलम्ब भुगतान करना पड़ता है। मियादी (मुद्दती) हुण्डियों का भुगतान एक निश्चित अवधि (उन पर अंकित) के पश्चात किया जाता है।

प्रापकों के आधार पर उपर्युक्त हुण्डियों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

1. शाह जोग हुण्डी – शाह जोग हुण्डी में प्रापक का नाम अंकित नहीं किया जाता है, अतः यह वाहक हुण्डी होती है। ऐसी हुण्डी का भुगतान प्रत्येक वाहक को नहीं किया जा सकता। इसका भुगतान केवल किसी शाह को ही किया जा सकता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति को जिसकी बाजार में अच्छी प्रतिष्ठा होती है। जब ऐसी हुण्डी का अन्तिम धारक शाह (प्रतिष्ठित व्यक्ति) नहीं होता है तो उसे हुण्डी का किसी शाह को बेचान करना पड़ता है और वह शाह उसे भुगतान के लिए आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत करता है। (मुरलीधर बनाम हुकमचन्द)

शाह जोग हुण्डी का परक्रामण (Negotiation) केवल सुपुर्दगी द्वारा सम्पन्न हो जाता है, बेचान करने वाले को उस पर पृष्ठांकन करने की आवश्यकता नहीं होती है। जब ऐसी हुण्डी किसी शाह के पास पहुँच जाती है तो उसकी विनिमय साध्यता समाप्त हो जाती है (चम्पकलाल बनाम केसरीचन्द)। अतः शाह से हुण्डी लेने वाले को हुण्डी लेने से पूर्व उसकी शर्तों की पूर्ति का ध्यान रखना पड़ता है।

हुण्डी का नमूना

मुद्रांक

सिद्ध श्री आगरा शुभस्थान भाई शंकरजी मेहरा लिखी कानपुर से सतीश चन्द्र की राम राम बंचना। आगे हुण्डी कीनी आपके ऊपर दिया रुपया 1,000=00 अकेन एक हजार के नीमे पाँच सौ के दूने पर देना। यहां रखे भाई गणपत राज के मिति पौष बदी 5 से 60 दिन पीछे नाम शाह जोग हुण्डी चलन कलदार देना।

हुण्डी लिखी मिती पौष बदी एकम् संवत् 2026।

सतीश चन्द्र

नीमे नीमे रुपए ढाई सौ के चौगुने पूरे रुपया चौकस कर देना रुपया 1000=00

श्री पत्री भाई शंकरजी मेहरा
हास्पिटल रोड,
आगरा।

जब एक शाह जोग हुण्डी को भुगतान के लिए उसके आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो आहार्यी को प्रस्तुतकर्ता की साख की अनिवार्यतः जाँच करनी पड़ती है। जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि प्रस्तुतकर्ता की साख अच्छी है अर्थात् वह शाह है तभी वह हुण्डी का भुगतान करता है। जब उसे प्रस्तुतकर्ता की साख पर सन्देह हो तो वह भुगतान करने से मना कर सकता है। प्रस्तुतकर्ता की साख की जांच करते समय उससे एक सामान्य जन द्वारा व्यवहारित सावधानी की अपेक्षा की जाती है। जब एक शाह पत्री किसी हुण्डी का साधारण व्यक्ति के पक्ष में बेचान कर देता है तो उस हुण्डी का आहार्यी प्रस्तुतकर्ता को भुगतान करने से मना कर सकता है।

जब किसी शाह जोग हुण्डी का आहार्यी अपने ऊपर लिखी हुण्डी का किसी साधारण व्यक्ति को भुगतान कर देता है और फलस्वरूप लेखक को हानि हो जाती है तो आहार्यी को हुण्डी के लेखक की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है (रामप्रसाद बनाम श्री निवास)। यदि शाह जोग हुण्डी के भुगतान के पश्चात् आहार्यी को किसी प्रकार की जालसाजी का पता चले तो उसकी सूचना अविलम्ब शाह को देनी चाहिए अन्यथा वह शाह से भुगतान वापस नहीं ले सकता। जब आहार्यी किसी गलत व्यक्ति को भुगतान कर देता है तो वह हुण्डी के यथाविधि धारक के प्रति दायी बना रहता है (माधवदास बनाम देवीद.स)।

शाह का दायित्व—जब एक शाह किसी शाह जोग हुण्डी का जालसाजी पूर्वक भुगतान प्राप्त कर लेता है तो उसे आहार्यी को भुगतान की राशि छः प्रतिशत ब्याज सहित वापस करनी पड़ती है अथवा जालसाजी करने वाले व्यक्ति को आहार्यी के समक्ष उपस्थित करना पड़ता है (दौलतराम बनाम बुलाकी दास)।

भुगतान (Payment)—शाह जोग हुण्डी को केवल भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है। भुगतान करते समय आहार्यी हुण्डी पर अपनी स्वीकृति नहीं देता है अपितु हुण्डी का पूरा विवरण एक पृथक् रजिस्टर में अंकित कर लेता है।

रूपान्तर (Conversion)—जब शाह जोग हुण्डी का रूपान्तर हो जाता है तो हुण्डी का वास्तविक स्वामी आहार्यी के प्रति दावा प्रस्तुत कर सकता है व आहार्यी को दायी होना पड़ता है (जेसाराम बनाम वीरभान दास)।

2. धनी जोग हुण्डी—धनी जोग हुण्डी का भुगतान उसके धनी (मालिक) अर्थात् उसके वाहक या धारक को किया जाता है। इस हुण्डी में भी प्रापक का नाम नहीं लिखा जाता है किन्तु उसका भुगतान किसी भी वाहक को किया जा सकता है। इस हुण्डी का बेचान केवल सुपुर्दगी द्वारा सम्भव हो जाता है। यह हुण्डी विनिमय साध्य विलेख मानी जाती है।

3. नाम जोग हुण्डी—इस हुण्डी में प्रापक का नाम अंकित किया जाता है व इसका भुगतान इसके प्रापक या उसके आदिष्ट व्यक्ति को किया जाता है। इन हुण्डियों का बेचान पृष्ठांकन व सुपुर्दगी द्वारा किया जाता है। कभी-कभी इन हुण्डियों में प्रापक का विवरण भी दे दिया जाता है। लेकिन ऐसा करने से इनकी विनिमय साध्यता समाप्त हो जाती है।

4. जोखमी हुण्डी—जोखमी हुण्डी एक प्रकार से जहाज पर लदाए गए माल का बीमा-पत्र होता है।[1] माल का प्रेषक माल लदवाने के पश्चात् क्रेता पर एक हुण्डी लिखता है और उसको किसी दलाल से कटौती करवा लेता है। जब माल अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाता है तो दलाल या उसका प्रतिनिधि कटौती की गई हुण्डी को आहार्यी (क्रेता) के समक्ष भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है। माल पहुंचने पर आहार्यी को ऐसी हुण्डी का

---

1. न्यायाधीश बेले (Bayley) ने "रायमो धनरचन्द बनाम अमराव विश्वास विहार" में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया था—"A Jokhmi Hundi is in the nature of a policy of insurance with this difference that the money is paid befor hand, to be recovered if the ship is not lost."

अनिवार्यतः भुगतान करना पड़ता है। यदि माल गंतव्य स्थल पर नहीं पहुंचता है तो दलाल कटौती की गई हुण्डी की राशि उसके लेखक से नहीं ले सकता, यह उसकी व्यक्तिगत हानि होती है। चूंकि इन हुण्डियों की कटौती में दलाल को जोखिम उठानी पड़ती है इसलिए इन्हे जोखिमी हुण्डी कहा जाता है।

5. जवाबी हुण्डी—जवाबी हुण्डी की तुलना मनी आर्डर से की जा सकती है क्योंकि ऐसी हुण्डियाँ मुद्रा के प्रेषणार्थ लिखी जाती है और प्रेषक को प्रेषिति से पावती प्राप्त होती है। हुण्डी का लेखक अपनी हुण्डी को एक पत्र के रूप मे लिखता है तथा उसे और प्रेषित राशि को अपने बैंक को दे देता है। बैंक उस पत्र को अपनी शाखा के पास भेज देता है। वह शाखा-पत्र में लिखी हुई राशि वांछित व्यक्ति को भुगतान कर देती है और उस पर प्रापक से रसीद लिखवा लेती है व मूल पत्र को अपने प्रेषण कार्यालय को वापस भेज देती है। जब प्रेषण कार्यालय को प्रापक की रसीद प्राप्त हो जाती है तो वह उसे प्रेषक को सौंप देता है। चूंकि इस पद्धति के अन्तर्गत प्रेषक को प्रापक से जवाब या पावती प्राप्त हो जाती है इसलिए इसे जवाबी हुण्डी कहा जाता है।

6. जिक्री हुण्डी—जब हुण्डी का लेखक आवश्यकता के लिए आहार्यी का नाम हुण्डी से संलग्न पत्र पर लिख देता है तो उस पत्र को जिक्री या जिक्री चिट्ठी कहा जाता है व ऐसी हुण्डी को जिक्री हुण्डी कहा जाता है। कभी-कभी जिक्री चिट्ठी मूल हुण्डी पर ही लिख दी जाती है यथा हुण्डी के निकरने पर उ। गोपाललाल को दिखा देना।

7. फरमान जोग हुण्डी—फरमान का आशय आदेश से होता है। जब कोई हुण्डी आहार्यी को किसी व्यक्ति विशेष को भुगतान करने का आदेश देती है तो उसे फरमान जोग हुण्डी कहा जाता है।

प्रश्न

1. विनिमय साध्य विलेख किसे कहते है? विनिमय साध्यता एव हस्तांतरण योग्यता मे अन्तर की विवेचना कीजिए। क्या निम्नलिखित विनिमय साध्य है?
   (i) एक रेखांकित चैक जिसकी समानान्तर रेखाओ के बीच लिखा है "विनिमय साध्य नहीं" (Not Negotiable),
   (ii) स्थाई जमा की रसीद। (राज. बी. कॉम. 1975)
2. विनिमय-विपत्र क्या है? उसके विभिन्न प्रकार और प्रयोगो का वर्णन कीजिए। (जीवाजी, बी. कॉम. 1977)
3. चैक की परिभाषा दीजिए। इसका विनिमय-बिल से अन्तर बताइए। एक बैंक को चैक का भुगतान करने से पूर्व किन-किन बातों का परीक्षण करना चाहिए? (राज. बी. कॉम. 1971)
   (संकेत अंतिम भाग का उत्तर अध्याय 9 मे देखिए)
4. (अ) चैक की परिभाषा दीजिए और उसके अनिवार्य तत्वो की विवेचना कीजिए।
   (ब) क्या चैक किसी साधारण कागज पर लिखा जा सकता है? (राज. बी. कॉम. 1972)
5. विनिमय बिल से क्या तात्पर्य है? बिलो की कटौती किस प्रकार व्यापारिक बैंकों द्वारा की जाती है? (राज. बी. कॉम. 1973)

जब किसी शाह जोग हुण्डी का आहार्यी अपने ऊपर लिखी हुण्डी का किसी साधारण व्यक्ति को भुगतान कर देता है और फलस्वरूप लेखक को हानि हो जाती है तो आहार्यी को हुण्डी के लेखक की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है (रामप्रसाद बनाम श्री निवास)। यदि शाह जोग हुण्डी के भुगतान के पश्चात् आहार्यी को किसी प्रकार की जालसाजी का पता चले तो उसकी सूचना अविलम्ब शाह को देनी चाहिए अन्यथा वह शाह से भुगतान वापस नहीं ले सकता। जब आहार्यी किसी गलत व्यक्ति को भुगतान कर देता है तो वह हुण्डी के यथाविधि धारक के प्रति दायी बना रहता है (माधवदास बनाम देवीदास)।

शाह का दायित्व—जब एक शाह किसी शाह जोग हुण्डी का जालसाजी पूर्वक भुगतान प्राप्त कर लेता है तो उसे आहार्यी को भुगतान की राशि छः प्रतिशत ब्याज सहित वापस करनी पड़ती है अथवा जालसाजी करने वाले व्यक्ति को आहार्यी के समक्ष उपस्थित करना पड़ता है (दौलतराम बनाम बुलाकी दास)।

भुगतान (Payment)—शाह जोग हुण्डी को केवल भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है। भुगतान करते समय आहार्यी हुण्डी पर अपनी स्वीकृति नहीं देता है अपितु हुण्डी का पूरा विवरण एक पृथक् रजिस्टर में अंकित कर लेता है।

रूपान्तर (Conversion)—जब शाह जोग हुण्डी का रूपान्तर हो जाता है तो हुण्डी का वास्तविक स्वामी आहार्यी के प्रति दावा प्रस्तुत कर सकता है व आहार्यी को दायी होना पड़ता है (जैसाराम बनाम वीरभान दास)।

2. धनी जोग हुण्डी—धनी जोग हुण्डी का भुगतान उसके धनी (मालिक) अर्थात् उसके वाहक या धारक को किया जाता है। इस हुण्डी में भी प्रापक का नाम नहीं लिखा जाता है किन्तु उसका भुगतान किसी भी वाहक को किया जा सकता है। इस हुण्डी का बेचान केवल सुपुर्दगी द्वारा सम्भव हो जाता है। यह हुण्डी विनिमय साध्य विलेख मानी जाती है।

3. नाम जोग हुण्डी—इस हुण्डी में प्रापक का नाम अंकित किया जाता है व इसका भुगतान इसके प्रापक या उसके आदिष्ट व्यक्ति को किया जाता है। इन हुण्डियों का बेचान पृष्ठांकन व सुपुर्दगी द्वारा किया जाता है। कभी-कभी इन हुण्डियों में प्रापक का विवरण भी दे दिया जाता है। लेकिन ऐसा करने से इनकी विनिमय साध्यता समाप्त हो जाती है।

4. जोखमी हुण्डी—जोखमी हुण्डी एक प्रकार से जहाज पर लदाए गए माल का बीमा-पत्र होता है।[1] माल का प्रेषक माल लदवाने के पश्चात् क्रेता पर एक हुण्डी लिखता है और उसकी किसी दलाल से कटौती करवा लेता है। जब माल अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है तो दलाल या उसका प्रतिनिधि कटौती की गई हुण्डी को आहार्यी (क्रेता) के समक्ष भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है। माल पहुँचने पर आहार्यी को ऐसी हुण्डी का

1. न्यायाधीश बेले (Bayley) ने "रायमो प्रयरचन्द बनाम अमराज विश्राम [illegible]" में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया था—"A Jokhmi Hundi is in the nature of a policy of insurance with this difference that the money is paid befor hand, to be recovered if the ship is not lost."

10
पृष्ठांकन
(INDORSEMENT)

परिभाषा :—भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 15 में पृष्ठांकन की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"जब एक विनिमय साध्य विलेख का लेखक अथवा धारक विलेख के परक्रामण के उद्देश्य से अपने विलेख की पीठ पर अथवा उसके अग्र भाग पर अथवा उससे संलग्न पर अथवा किसी स्टाम्प पेपर, जिस पर बाद में विनिमय साध्य विलेख लिखा जायेगा, पर अपने हस्ताक्षर कर देता है तो यह माना जाता है कि उसने अपने विलेख का पृष्ठांकन कर दिया है और इस प्रकार से हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को पृष्ठांकक कहा जाता है।"

वैध पृष्ठांकन के आवश्यक तत्त्व (Essential Elements of a Valid Indorsement) :—निम्नलिखित शर्तें पूरी करने वाले पृष्ठांकन को वैध पृष्ठांकन माना जाता है :—

1. पृष्ठांकन लिखित होना चाहिए :—पृष्ठांकन हमेशा लिखित होता है। मौखिक पृष्ठांकन को पृष्ठांकन नहीं माना जाता है। पृष्ठांकन पेंसिल, स्याही अथवा रबर स्टाम्प की सहायता से किया जा सकता है किन्तु व्यवहार में पेन्सिल के पृष्ठांकन को मान्यता नहीं दी जाती है क्योंकि ऐसे पृष्ठांकन को सुगमतापूर्वक बदला जा सकता है अथवा मिटाया जा सकता है और आसानी से धोखेबाजी की जा सकती है। व्यवहार में बैंकों द्वारा स्याही से पृष्ठांकन करने पर बल दिया जाता है। जब स्याही के दो पृष्ठांकनों के मध्य पेंसिल से पृष्ठांकन किया जाता है तो व्यवहार में उस पृष्ठांकन को वैध मान लिया जाता है क्योंकि पूर्ववर्ती व अनुवर्ती पृष्ठांकन उसकी वैधता की पुष्टि करते हैं। रबर स्टाम्प से किए गए पृष्ठांकन को भी अधिकृत नहीं माना जाता है। अतः रबर स्टाम्प से पृष्ठांकन करते समय स्टाम्प लगाने वाले को उसके अधिकृत प्रयोग को प्रमाणित करना पड़ता है।

2. हस्ताक्षर अनिवार्य :—विलेख के धारक अथवा लेखक को विलेख में निहित सम्पत्ति के परक्रामण के लिए उसके पृष्ठभाग अथवा पार्श्वभाग पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। जब मूल विलेख पर हस्ताक्षरों के लिए स्थान उपलब्ध नहीं होता है तो पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षर उससे संलग्न कागज पर भी कर सकता है। पृष्ठांकन के समय यह कागज विलेख से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ होना चाहिए व हस्ताक्षर इस प्रकार से बनाए जाने चाहिए कि वे विलेख और जुड़े हुए कागज अर्थात् बेचान पर्चो (Allonge) पर आ जावें।[1]

1. "An Allonge is a slip of paper gummed or pasted on a bill to provide space for any Indorsement that will not go on the bill itself. Sometimes a copy of the bill is used for such a purpose."

—Practice and Law of Banking by H. P. Sheldon, VIII Ed. P

6. धनादेश (Cheque) क्या है ? धनादेश के भुगतान के अधिकार की समाप्ति कब हो जाती है ?
(जीवाजी. बी. कॉम. 1977)

7. विनिमय विपत्र (B/E) किसे कहते है ? विनिमय-पत्र का नमूना प्रस्तुत कीजिए। विनिमय पत्र और वचन पत्र (P/N) में क्या अन्तर होता है ?
(दिल्ली, बी. कॉम. 1972)

8. (क) भुगतान तिथि का क्या अर्थ है ?
(ख) निम्नलिखित भुगतान बिलों की भुगतान तिथियाँ ज्ञात कीजिए :—
(i) 28 जनवरी, 1964 को लिखा गया बिल जिसका भुगतान तिथि पश्चात् एक मास में होना है।
(ii) 27 मार्च, 1964 को लिखा गया बिल जिसका भुगतान तीन मास तिथि पश्चात् होना है।
(iii) 22 नवम्बर, 1965 को लिखा गया बिल जिसका भुगतान 30 दिन तिथि पश्चात् होना है।
(राज. बी. कॉम. 1966)

9. अप्रकाम्यता (Not-Negotiability) तथा अहस्तांतरण शीलता (Non-transferability) में अन्तर बताइए।
(राज. बी. कॉम. 1966)

10. निम्नलिखित के नमूने दीजिए तथा इन्हें अधिक सुरक्षित बनाइए—
(i) बैंक ड्राफ्ट, (ii) चैक (iii) संयुक्त प्रतिज्ञा-पत्र।
(राज. बी. कॉम. पूरक 1973)

11. चैक के लाभ विस्तारपूर्वक लिखिए।

6. सम्पूर्ण राशि का पृष्ठांकन :—एक परक्राम्य विलेख की सम्पूर्ण राशि का बेचान किया जाता है। आंशिक राशि का पृष्ठांकन अवैध होता है। किन्तु जब एक विलेख की कुछ राशि का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो विलेख पर तत्सम्बंधी नोट लगाकर उसका आंशिक राशि के लिए भी पृष्ठांकन किया जा सकता है।

जब एक विलेख किश्तों में भुगतान की अनुमति देता है तो उसका पृष्ठांकन भी किश्तों में किया जा सकता है परन्तु पृष्ठांकक को ऐसे विलेख की समस्त किश्तों का एक साथ पृष्ठांकन करना पड़ता है। जब कुछ किश्तों का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो शेष किश्तों का भी पृष्ठांकन किया जा सकता है। पृष्ठांकन करते समय भुगतान की गई किश्तों का भी वर्णन करना पड़ता है।

7. एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन :—एक विलेख का दो व्यक्तियों के पक्ष में अलग-अलग पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु संयुक्त पृष्ठांकन वैध होता है।

8. अधिकृत व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन .—एक विलेख का केवल उसका विधिवत् धारक ही वैध पृष्ठांकन कर सकता है किन्तु निम्नलिखित अवस्थाएं इस नियम की अपवाद है :—

1. जब एक विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ही उसका जाली पृष्ठांकन हो जाता है और उसका आदाता इस तथ्य से अवगत होते हुए भी उसे स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् ऐसा पृष्ठांकन वैध माना जाता है (धारा 41)।

2. जब एक विपत्र का लेखक (जो स्वयं को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय होता है) अपने विपत्र को जाली नाम से लिखता है व उसी नाम से उसका पृष्ठांकन करता है तो वह ऐसे विपत्र के यथाविधि धारी के प्रति उत्तरदायी होता है। वह इस तर्क के आधार पर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि विपत्र जाली नाम से लिखा गया था अथवा जाली नाम से पृष्ठांकित था (धारा 42)।

3. जब न्यायालय किसी व्यक्ति को पृष्ठांकन के लिए मना कर देता है तो वह विलेख के पृष्ठांकन का अधिकारी नहीं होता है। अतः ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन अवैध होता है किन्तु जब ऐसा व्यक्ति न्यायालय के आदेश की अवहेलना करके किसी विलेख का पृष्ठांकन कर देता है और भुगतानकर्ता बैंक या व्यक्ति उस विलेख के भुगतान तक न्यायालय के आदेश से अनभिज्ञ रहता है तो वह ऐसे पृष्ठांकन के आधार पर भुगतान कर सकता है और भुगतान के पश्चात् ऐसा पृष्ठांकन वैध बन जाता है।

4. एक विलेख का पृष्ठांकन केवल उन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है जिनमें अनुबन्ध क्षमता होती है किन्तु एक अवयस्क इसका अपवाद होता है। अवयस्क द्वारा किया गया पृष्ठांकन पूर्णतः वैध होता है।

9. तारीख लगाना अनिवार्य नहीं :—वैध पृष्ठांकन के लिए तारीख अंकित करना अनिवार्य नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर समुचित साक्षी की सहायता से पृष्ठांकन तिथि को प्रमाणित किया जा सकता है और प्रमाण उपलब्ध न होने पर पृष्ठांकिती को परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (डी) द्वारा प्रदत्त संरक्षण प्राप्त हो जाते हैं। इस धारा की यह मान्यता है कि जब पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकन की तारीख अंकित नहीं की जाती है तो अन्यथा प्रमाणित होने तक यही माना जायेगा कि विलेख का पृष्ठांकन

हस्ताक्षर पृष्ठांकन से पूर्व, मध्य या बाद में किये जा सकते हैं, केवल अन्त में हस्ताक्षर करना अनिवार्य नहीं होता है। पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षरों द्वारा यह स्वीकार करता है कि पृष्ठांकित विलेख पर उसका विधिवत् अधिकार था।[1]

धारा 26 के अनुसार धारक चाहे तो अपने विलेख के पृष्ठांकन के लिए अपना एजेण्ट भी नियुक्त कर सकता है। एजेण्ट द्वारा किया गया पृष्ठांकन भी पूर्णतः वैध होता है। एजेण्ट को सावधानी के रूप में पृष्ठांकन करते समय अपनी हैसियत का वर्णन अवश्य कर देना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा पृष्ठांकित विलेख के अनादरण पर वह उस विलेख की राशि के लिए व्यक्तिशः दायी बन जाता है।

एक निरक्षर (Illiterate) लेखक या धारक को अपने विलेख पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है।[2] वह पृष्ठांकन के लिए विलेख पर अपने अंगूठे का अथवा अन्य किसी प्रकार का निशान बना सकता है, किन्तु उसे उस निशान की किसी स्वतन्त्र साक्षी द्वारा पुष्टि करवानी पड़ती है।

एक से अधिक व्यक्तियों के पक्ष मे लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को करना पड़ता है किन्तु समस्त प्रापकों द्वारा अधिकृत किए जाने पर केवल एक प्रापक भी पृष्ठांकन कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन पूर्णतः वैध माना जाता है। भिन्न-भिन्न प्रापक भिन्न-भिन्न तिथियों पर पृष्ठांकन कर सकते हैं परन्तु उन सब को एक ही व्यक्ति के पक्ष मे पृष्ठांकन करना पड़ता है। साझेदारी फर्म के पक्ष मे लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन किसी एक साझेदार द्वारा किया जा सकता है।

एक से अधिक व्यक्तियो के पक्ष में लिखे गए विलेख का जब एक ही व्यक्ति पृष्ठांकन कर देता है तो वह पृष्ठांकन अवैध माना जाता है और ऐसे विलेख का पुनः पृष्ठांकन किया जा सकता है।

3. पृष्ठांकन का स्थान :—पृष्ठांकन चैक या बिल की पीठ पर या विलेख के मुख पर अथवा सीधी ओर करना उचित है। यदि विलेख मे आगे पृष्ठांकन हेतु स्थान का अभाव है तो अलग "बेचान-पर्ची" लगाकर पृष्ठांकन किया जा सकता है।

4. पृष्ठांकन का समय :—सामान्यतः पृष्ठांकन एक विलेख के आलेखन के पश्चात किया जाता है किन्तु एक व्यक्ति चाहे तो उसका पृष्ठांकन आलेखन के पूर्व भी कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन स्टाम्प पेपर पर किया जाता है और पृष्ठांकन के पश्चात् उस स्टाम्प पेपर पर ही विलेख लिखा जाता है।

5. सुपुर्दगी अनिवार्य :—पृष्ठांकन के पश्चात विलेख की सुपुर्दगी आवश्यक होती है। अंग्रेजी विधान की धारा 31 के अनुसार "An indorsement means an indorsement completed by delivery." यह सुपुर्दगी परक्रामण के उद्देश्य से की जानी चाहिए। जब पृष्ठांकित विलेख किसी शर्त अथवा उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए सुपुर्द किया जाता है तो उस सुपुर्दगी को परक्रामण के लिए की गई सुपुर्दगी नहीं माना जाता है।

---

1. कन्हैयालाल बनाम रामकुमार (1956)।
2. जनरल क्लाजेज अधिनियम धारा 51 (3)।

6. सम्पूर्ण राशि का पृष्ठांकन :—एक परक्राम्य विलेख की सम्पूर्ण राशि का बेचान किया जाता है। आंशिक राशि का पृष्ठांकन अवैध होता है। किन्तु जब एक विलेख की कुछ राशि का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो विलेख पर तत्संबंधी नोट लगाकर उसका आंशिक राशि के लिए भी पृष्ठांकन किया जा सकता है।

जब एक विलेख किश्तों में भुगतान की अनुमति देता है तो उसका पृष्ठांकन भी किश्तों में किया जा सकता है परन्तु पृष्ठांकक को ऐसे विलेख की समस्त किश्तों का एक साथ पृष्ठांकन करना पड़ता है। जब कुछ किश्तों का नक़द भुगतान कर दिया जाता है तो शेष किश्तों का भी पृष्ठांकन किया जा सकता है। पृष्ठांकन करते समय भुगतान की गई किश्तों का भी वर्णन करना पडता है।

7. एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन :—एक विलेख का दो व्यक्तियों के पक्ष में अलग-अलग पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु संयुक्त पृष्ठांकन वैध होता है।

8. अधिकृत व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन .—एक विलेख का केवल उसका विधिवत् धारक ही वैध पृष्ठांकन कर सकता है किन्तु निम्नलिखित अवस्थाएं इस नियम की अपवाद हैं :—

1. जब एक विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ही उसका जाली पृष्ठांकन हो जाता है और उसका आदाता इस तथ्य से अवगत होते हुए भी उसे स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् ऐसा पृष्ठांकन वैध माना जाता है (धारा 41)।

2. जब एक विपत्र का लेखक (जो स्वयं को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय होता है) अपने विपत्र को जाली नाम से लिखता है व उसी नाम से उसका पृष्ठांकन करता है तो वह ऐसे विपत्र के यथाविधि धारी के प्रति उत्तरदायी होता है। वह इस तर्क के आधार पर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि विपत्र जाली नाम से लिखा गया था अथवा जाली नाम से पृष्ठांकित था (धारा 42)।

3. जब न्यायालय किसी व्यक्ति को पृष्ठांकन के लिए मना कर देता है तो वह विलेख के पृष्ठांकन का अधिकारी नहीं होता है। अतः ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन अवैध होता है किन्तु जब ऐसा व्यक्ति न्यायालय के आदेश की अवहेलना करके किसी विलेख का पृष्ठांकन कर देता है और भुगतानकर्ता बैंक या व्यक्ति उस विलेख के भुगतान तक न्यायालय के आदेश से अनभिज्ञ रहता है तो वह ऐसे पृष्ठांकन के आधार पर भुगतान कर सकता है और भुगतान के पश्चात् ऐसा पृष्ठांकन वैध बन जाता है।

4. एक विलेख का पृष्ठांकन केवल उन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है जिनमें अनुबन्ध क्षमता होती है किन्तु एक अवयस्क इसका अपवाद होता है। अवयस्क द्वारा किया गया पृष्ठांकन पूर्णतः वैध होता है।

9. तारीख लगाना अनिवार्य नहीं :—वैध पृष्ठांकन के लिए तारीख अंकित करना अनिवार्य नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर समुचित साक्षी की सहायता से पृष्ठांकन तिथि को प्रमाणित किया जा सकता है और प्रमाण उपलब्ध न होने पर पृष्ठांकिती को परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (डी) द्वारा प्रदत्त संरक्षण प्राप्त हो जाते हैं। इस धारा की यह मान्यता है कि जब पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकन की तारीख अंकित नहीं की जाती है तो अन्यथा प्रमाणित होने तक यही माना जायेगा कि विलेख का पृष्ठांकन

हस्ताक्षर पृष्ठांकन से पूर्व, मध्य या बाद में किये जा सकते हैं, केवल अन्त में हस्ताक्षर करना अनिवार्य नहीं होता है। पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षरों द्वारा यह स्वीकार करता है कि पृष्ठांकित विलेख पर उसका विधिवत् अधिकार था।[1]

धारा 26 के अनुसार धारक चाहे तो अपने विलेख के पृष्ठांकन के लिए अपना एजेण्ट भी नियुक्त कर सकता है। एजेण्ट द्वारा किया गया पृष्ठांकन भी पूर्णतः वैध होता है। एजेण्ट को सावधानी के रूप में पृष्ठांकन करते समय अपनी हैसियत का वर्णन अवश्य कर देना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा पृष्ठांकित विलेख के अनादरण पर वह उस विलेख की राशि के लिए व्यक्तिशः दायी बन जाता है।

एक निरक्षर (Illiterate) लेखक या धारक को अपने विलेख पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है।[2] वह पृष्ठांकन के लिए विलेख पर अपने अंगूठे का अथवा अन्य किसी प्रकार का निशान बना सकता है, किन्तु उसे उस निशान की किसी स्वतन्त्र साक्षी द्वारा पुष्टि करवानी पड़ती है।

एक से अधिक व्यक्तियों के पक्ष में लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को करना पड़ता है किन्तु समस्त प्रापकों द्वारा अधिकृत किए जाने पर केवल एक प्रापक भी पृष्ठांकन कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन पूर्णतः वैध माना जाता है। भिन्न-भिन्न प्रापक भिन्न-भिन्न तिथियों पर पृष्ठांकन कर सकते हैं परन्तु उन सब को एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करना पड़ता है। साझेदारी फर्म के पक्ष में लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन किसी एक साझेदार द्वारा किया जा सकता है।

एक से अधिक व्यक्तियों के पक्ष में लिखे गए विलेख का जब एक ही व्यक्ति पृष्ठांकन कर देता है तो वह पृष्ठांकन अवैध माना जाता है और ऐसे विलेख का पुनः पृष्ठांकन किया जा सकता है।

3. पृष्ठांकन का स्थान :—पृष्ठांकन चैक या बिल की पीठ पर या विलेख के मुख पर अथवा सीधी ओर करना उचित है। यदि विलेख में आगे पृष्ठांकन हेतु स्थान का अभाव है तो अलग "बेचान-पर्ची" लगाकर पृष्ठांकन किया जा सकता है।

4. पृष्ठांकन का समय :—सामान्यतः पृष्ठांकन एक विलेख के आलेखन के पश्चात किया जाता है किन्तु एक व्यक्ति चाहे तो उसका पृष्ठांकन आलेखन के पूर्व भी कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन स्टाम्प पेपर पर किया जाता है और पृष्ठांकन के पश्चात् उस स्टाम्प पेपर पर ही विलेख लिखा जाता है।

5. सुपुर्दगी अनिवार्य :—पृष्ठांकन के पश्चात विलेख की सुपुर्दगी आवश्यक होती है। अंग्रेजी विधान की धारा 31 के अनुसार "An indorsement means an indorsement completed by delivery." यह सुपुर्दगी परक्रामण के उद्देश्य से की जानी चाहिए। जब पृष्ठांकित विलेख किसी शर्त अथवा उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए सुपुर्द किया जाता है तो उस सुपुर्दगी को परक्रामण के लिए की गई सुपुर्दगी नहीं माना जाता है।

---

1. कन्हैयालाल बनाम राजकुमार (1956)।
2. जनरल क्लाजेज अधिनियम धारा 51 (3)।

6. सम्पूर्ण राशि का पृष्ठांकन :—एक परक्राम्य विलेख की सम्पूर्ण राशि का बेचान किया जाता है। आंशिक राशि का पृष्ठांकन अवैध होता है। किन्तु जब एक विलेख की कुछ राशि का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो विलेख पर तत्सबंधी नोट लगाकर उसका आंशिक राशि के लिए भी पृष्ठांकन किया जा सकता है।

जब एक विलेख किश्तों में भुगतान की अनुमति देता है तो उसका पृष्ठांकन भी किश्तों में किया जा सकता है परन्तु पृष्ठांकक को ऐसे विलेख की समस्त किश्तों का एक साथ पृष्ठांकन करना पड़ता है। जब कुछ किश्तों का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो शेष किश्तों का भी पृष्ठांकन किया जा सकता है। पृष्ठांकन करते समय भुगतान की गई किश्तों का भी वर्णन करना पड़ता है।

7. एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन :—एक विलेख का दो व्यक्तियों के पक्ष में अलग-अलग पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु संयुक्त पृष्ठांकन वैध होता है।

8. अधिकृत व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन :—एक विलेख का केवल उसका विधिवत् धारक ही वैध पृष्ठांकन कर सकता है किन्तु निम्नलिखित अवस्थाएं इस नियम की अपवाद हैं :—

1. जब एक विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ही उसका जाली पृष्ठांकन हो जाता है और उसका आदाता इस तथ्य से अवगत होते हुए भी उसे स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् ऐसा पृष्ठांकन वैध माना जाता है (धारा 41)।

2. जब एक विपत्र का लेखक (जो स्वयं को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय होता है) अपने विपत्र को जाली नाम से लिखता है व उसी नाम से उसका पृष्ठांकन करता है तो वह ऐसे विपत्र के यथाविधि धारी के प्रति उत्तरदायी होता है। वह इस तर्क के आधार पर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि विपत्र जाली नाम से लिखा गया था अथवा जाली नाम से पृष्ठांकित था (धारा 42)।

3. जब न्यायालय किसी व्यक्ति को पृष्ठांकन के लिए मना कर देता है तो वह विलेख के पृष्ठांकन का अधिकारी नहीं होता है। अतः ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन अवैध होता है किन्तु जब ऐसा व्यक्ति न्यायालय के आदेश की अवहेलना करके किसी विलेख का पृष्ठांकन कर देता है और भुगतानकर्ता बैंक या व्यक्ति उस विलेख के भुगतान तक न्यायालय के आदेश से अनभिज्ञ रहता है तो वह ऐसे पृष्ठांकन के आधार पर भुगतान कर सकता है और भुगतान के पश्चात् ऐसा पृष्ठांकन वैध बन जाता है।

4. एक विलेख का पृष्ठांकन केवल उन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है जिनमें अनुबन्ध क्षमता होती है किन्तु एक अवयस्क इसका अपवाद होता है। अवयस्क द्वारा किया गया पृष्ठांकन पूर्णतः वैध होता है।

9. तारीख लगाना अनिवार्य नहीं :—वैध पृष्ठांकन के लिए तारीख अंकित करना अनिवार्य नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर समुचित साक्षी की सहायता से पृष्ठांकन तिथि को प्रमाणित किया जा सकता है और प्रमाण उपलब्ध न होने पर पृष्ठांकिती को परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (सी) द्वारा प्रदत्त संरक्षण प्राप्त हो जाते हैं। इस धारा की यह मान्यता है कि जब पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकन की तारीख अंकित नहीं की जाती है तो अन्यथा प्रमाणित होने तक यही माना जायेगा कि विलेख का पृष्ठांकन

हस्ताक्षर पृष्ठांकन से पूर्व, मध्य या बाद में किये जा सकते हैं, केवल अन्त में हस्ताक्षर करना अनिवार्य नहीं होता है। पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षरों द्वारा यह स्वीकार करता है कि पृष्ठांकित विलेख पर उसका विधिवत् अधिकार था।[1]

धारा 26 के अनुसार धारक चाहे तो अपने विलेख के पृष्ठांकन के लिए अपना एजेण्ट भी नियुक्त कर सकता है। एजेण्ट द्वारा किया गया पृष्ठांकन भी पूर्णतः वैध होता है। एजेण्ट को सावधानी के रूप में पृष्ठांकन करते समय अपनी हैसियत का वर्णन अवश्य कर देना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा पृष्ठांकित विलेख के अनादरण पर वह उस विलेख की राशि के लिए व्यक्तिशः दायी बन जाता है।

एक निरक्षर (Illiterate) लेखक या धारक को अपने विलेख पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है।[2] वह पृष्ठांकन के लिए विलेख पर अपने अंगूठे का अथवा अन्य किसी प्रकार का निशान बना सकता है, किन्तु उसे उस निशान को किसी स्वतन्त्र साक्षी द्वारा पुष्टि करवानी पड़ती है।

एक से अधिक व्यक्तियों के पक्ष मे लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को करना पड़ता है किन्तु समस्त प्रापकों द्वारा अधिकृत किए जाने पर केवल एक प्रापक भी पृष्ठांकन कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन पूर्णतः वैध माना जाता है। भिन्न-भिन्न प्रापक भिन्न-भिन्न तिथियों पर पृष्ठांकन कर सकते है परन्तु उन सब को एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करना पड़ता है। साझेदारी फर्म के पक्ष में लिखे गए विलेख का पृष्ठांकन किसी एक साझेदार द्वारा किया जा सकता है।

एक से अधिक व्यक्तियों के पक्ष में लिखे गए विलेख का जब एक ही व्यक्ति पृष्ठांकन कर देता है तो वह पृष्ठांकन अवैध माना जाता है और ऐसे विलेख का पुनः पृष्ठांकन किया जा सकता है।

3. पृष्ठांकन का स्थान :—पृष्ठांकन चैक या बिल की पीठ पर या विलेख के मुख पर अथवा सीधी ओर करना उचित है। यदि विलेख में आगे पृष्ठांकन हेतु स्थान का अभाव है तो अलग "चेवान-पर्ची" लगाकर पृष्ठांकन किया जा सकता है।

4. पृष्ठांकन का समय :—सामान्यतः पृष्ठांकन एक विलेख के आलेखन के पश्चात किया जाता है किन्तु एक व्यक्ति चाहे तो उसका पृष्ठांकन आलेखन के पूर्व भी कर सकता है। ऐसा पृष्ठांकन स्टाम्प पेपर पर किया जाता है और पृष्ठांकन के पश्चात् उस स्टाम्प पेपर पर ही विलेख लिखा जाता है।

5. सुपुर्दगी अनिवार्य :—पृष्ठांकन के पश्चात विलेख की सुपुर्दगी आवश्यक होती है। अंग्रेजी विधान की धारा 31 के अनुसार "An indorsement means an indorsement completed by delivery." यह सुपुर्दगी परक्रामण के उद्देश्य से की जानी चाहिए। जब पृष्ठांकित विलेख किसी शर्त अथवा उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए सुपुर्द किया जाता है तो उस सुपुर्दगी को परक्रामण के लिए की गई सुपुर्दगी नहीं माना जाता है।

---

1. कन्हैयालाल बनाम रामकुमार (1956)।
2. जनरल क्लाजेज अधिनियम धारा 51 (3)।

6. *सम्पूर्ण राशि का पृष्ठांकन :—एक परक्राम्य विलेख की सम्पूर्ण राशि का* बेचान किया जाता है। आंशिक राशि का पृष्ठांकन अवैध होता है। किन्तु जब एक विलेख की कुछ राशि का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो विलेख पर तत्सम्बन्धी नोट लगाकर उसका आंशिक राशि के लिए भी पृष्ठांकन किया जा सकता है।

जब एक विलेख किश्तों में भुगतान की अनुमति देता है तो उसका पृष्ठांकन भी किश्तों में किया जा सकता है परन्तु पृष्ठांकक को ऐसे विलेख की समस्त किश्तों का एक साथ पृष्ठांकन करना पड़ता है। जब कुछ किश्तों का नकद भुगतान कर दिया जाता है तो शेष किश्तों का भी पृष्ठांकन किया जा सकता है। पृष्ठांकन करते समय भुगतान की गई किश्तों का भी वर्णन करना पड़ता है।

7. एक ही व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन :—एक विलेख का दो व्यक्तियों के पक्ष में अलग-अलग पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु संयुक्त पृष्ठांकन वैध होता है।

8. अधिकृत व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन :—एक विलेख का केवल उसका विधिवत् *धारक ही वैध पृष्ठांकन कर सकता है किन्तु निम्नलिखित अवस्थाएं इस नियम की* अपवाद है :—

1. जब एक विपत्र की स्वीकृति के पूर्व ही उसका जाली पृष्ठांकन हो जाता है और उसका आदाता इस तथ्य से अवगत होते हुए भी उसे स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् ऐसा पृष्ठांकन वैध माना जाता है (धारा 41)।

2. जब एक विपत्र का लेखक (जो स्वयं को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय होता है) अपने विपत्र को जाली नाम से लिखता है व उसी नाम से उसका पृष्ठांकन करता है तो वह ऐसे विपत्र के यथाविधि धारी के प्रति उत्तरदायी होता है। वह इस तर्क के आधार पर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि विपत्र जाली नाम से लिखा गया था अथवा जाली नाम से पृष्ठांकित था (धारा 42)।

3. जब न्यायालय किसी व्यक्ति को पृष्ठांकन के लिए मना कर देता है तो वह विलेख के पृष्ठांकन का अधिकारी नहीं होता है। अतः ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन अवैध होता है किन्तु जब ऐसा व्यक्ति न्यायालय के आदेश की अवहेलना करके किसी विलेख का पृष्ठांकन कर देता है और भुगतानकर्ता बैंक या व्यक्ति उस विलेख के भुगतान तक न्यायालय के आदेश से अनभिज्ञ रहता है तो वह ऐसे पृष्ठांकन के आधार पर भुगतान कर सकता है और भुगतान के पश्चात् ऐसा पृष्ठांकन वैध बन जाता है।

4. एक विलेख का पृष्ठांकन केवल उन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है जिनमें *अनुबन्ध क्षमता होती है किन्तु एक अवयस्क इसका अपवाद होता है। अवयस्क द्वारा किया* गया पृष्ठांकन पूर्णतः वैध होता है।

9. तारीख लगाना अनिवार्य नहीं :—वैध पृष्ठांकन के लिए तारीख अंकित करना अनिवार्य नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर समुचित साक्षी की सहायता से पृष्ठांकन तिथि को प्रमाणित किया जा सकता है और प्रमाण उपलब्ध न होने पर पृष्ठांकिती को परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 (सी) द्वारा प्रदत्त संरक्षण प्राप्त हो जाता है। इस धारा की यह मान्यता है कि जब पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकन की तारीख अंकित नहीं की जाती है तो अन्यथा प्रमाणित होने तक यही माना जायेगा कि विलेख का पृष्ठांकन

उसकी देय-तिथि से पूर्व किया गया था। किन्तु पृष्ठांकन का उचित लेखा रखने की दृष्टि से हस्ताक्षर के नीचे तिथि अंकित करना वांछनीय है।

10. संस्थाओं के विलेखों का पृष्ठांकन उनके दायित्वों को कम करने के लिए :— एक साझेदार फ़र्म, प्रमण्डल या संस्था के पक्ष में लिखे गये विलेख का पृष्ठांकन केवल *उस फ़र्म, प्रमण्डल या संस्था के ऋण-शोधन या अन्य दायित्वों को कम करने के लिए* किया जा सकता है। अन्य कार्यों के लिए किया गया पृष्ठांकन अवैध माना जाता है।

पृष्ठांकन के उद्देश्य (Aims of Indorsement)

एक विलेख का प्रापक या धारक अपने विलेख में निहित सम्पत्ति व अधिकारों के हस्तांतरण के लिए अपने विलेखों का पृष्ठांकन कर सकता है। जब वह इस उद्देश्य से अपने विलेख का पृष्ठांकन करता है तो वह परोक्ष रूप में पृष्ठांकिती को इस बात की गारण्टी देता है कि :—

1. विलेख सही है :—संदर्भगत विलेख न जाली है और न उस पर किए गए पृष्ठांकन ही जाली हैं।

2. क्षति-पूर्ति का वचन :—विलेख के अनादरण पर वह पृष्ठांकिती की क्षति-पूर्ति करेगा। (क्षति-पूर्ति उस अवस्था में की जाती है जबकि विलेख को उसकी शर्तों के अनुसार भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है और उसका अनादरण हो जाता है।

3. वैधानिक अधिकार :—विलेख पर उसका वैधानिक अधिकार है।

4. किसी अन्य को भुगतान दिलाना :—*प्रापक या धारक भावी पृष्ठांकन के लिए* पृष्ठांकिती को अपना प्रतिनिधि बनाने, स्वय के लिए भुगतान लाने अथवा किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी-अपने विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है।

जब विलेख में निहित सम्पत्ति व अधिकारों का हस्तांतरण किया जाता है तो पृष्ठांकिती उसका पुनः परक्रामण कर सकता है किन्तु पृष्ठांकक चाहे तो उसके इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

जब एक पृष्ठांकक भावी पृष्ठांकनों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाता है तब वह अपने विलेख का इस प्रकार से पृष्ठांकन करता है :—

1. Pay C
2. Pay C value in a/c with The Punjab National Bank.
3. Pay the contents to C, being part of the consideration in a certain deed of assignment executed by C to the indorsers and others.

जब भावी पृष्ठांकनों पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है तब पृष्ठांकन इस प्रकार से किए जाते हैं :—

1. Pay the contents to C only.
2. Pay C for my use.
3. Pay C or order for the account of B.

पृष्ठांकन के प्रकार (Kinds of Indorsement) :—पृष्ठांकनों को सामान्यतः निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. सामान्य पृष्ठांकन (Blank or General Indorsement) :—जब एक

विलेख का लेखक अथवा धारक विलेख का पृष्ठांकन करते समय विलेख पर अपने हस्ताक्षरों के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखता है तो उस पृष्ठांकन को सामान्य पृष्ठांकन कहा जाता है। (धारा 16) यथा

प्रमेन्द्र कुमार 15-3-81

सामान्य पृष्ठांकन द्वारा आदिष्ट विलेखों को वाहक विलेखों में परिवर्तित किया जा सकता है। जब एक आदिष्ट विलेख का सामान्य पृष्ठांकन के पश्चात भुगतान नहीं लिया जाता है बल्कि उसका आगे परक्रामण कर दिया जाता है तो परक्रामक को उसके पुनः पृष्ठांकन की आवश्यकता नहीं होती। वह केवल सुपुर्दगी द्वारा भी उसका परक्रामण कर सकता है।

2. विशेष पृष्ठांकन (Special Indorsement) :—जब एक विलेख का लेखक अथवा धारक विलेख के पृष्ठांकन के समय अपने हस्ताक्षरों के अतिरिक्त किसी व्यक्ति अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को विलेख के भुगतान का आदेश देता है तो उस पृष्ठांकन को विशेष पृष्ठांकन कहा जाता है (धारा 16)। उदाहरणार्थ—

भारत कुमार अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को भुगतान कीजिए।

25-1-81—प्रमेन्द्र कुमार

विशेष पृष्ठांकन पर एक विलेख आदिष्ट विलेख बन जाता है। फलतः उसका भुगतान पृष्ठांकिती अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को ही मिल सकता है।

इस प्रकार से पृष्ठांकित विलेख के भावी पृष्ठांकन के लिए पृष्ठांकिती को विलेख पर अपने हस्ताक्षर बनाने पड़ते हैं अर्थात उसका पुनः पृष्ठांकन करना पड़ता है।

3. दायित्व-विहीन पृष्ठांकन (Sans Recourse Indorsement) :—जब एक पृष्ठांकक अपने विलेख के अनादरण की अवस्था में अपने ऊपर किसी प्रकार का दायित्व नहीं लेना चाहता है तो वह विलेख का दायित्व-विहीन पृष्ठांकन करता है। इस प्रकार का पृष्ठांकन सामान्यतया अभिकर्ता, निष्पादक, प्रशासक व अवसायक प्रभृति व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। भारत में इस पृष्ठांकन को परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 52 द्वारा मान्यता प्राप्त है।

जब भुगतान तिथि पर इस प्रकार से पृष्ठांकित विलेख का अनादरण हो जाता है तो दायित्व-विहीन पृष्ठांकक पर भुगतान-सम्बन्धी कोई दायित्व नहीं आता है, किन्तु उसके पृष्ठांकन से पूर्व किसी प्रकार की जालसाजी हो जाती है तो उस जालसाजी के लिए उत्तरदायी माना जाता है। ऐसी व्यवस्था न होने पर अनेक व्यक्ति जालसाजी से विलेख प्राप्त करके उसका दायित्व-विहीन पृष्ठांकन कर इस वैधानिक व्यवस्था का अनुचित लाभ उठाने का प्रयास करेगा।

दायित्व-विहीन पृष्ठांकन को 'Sans Recourse' व 'Without Recourse' भी कहा जाता है।

दायित्व-विहीन पृष्ठांकन निम्न प्रकार से किए जाते हैं—

(1) विनय को भुगतान कीजिए। अनादरण पर मेरा कोई दायित्व नहीं होगा।
(Without Recourse) —विनय सिंह

(2) अशोक को भुगतान कीजिए। अनादरण पर मेरा कोई दायित्व नहीं होगा।

—विनय कुमार, निष्पादक

(3) प्रेम प्रकाश को भुगतान कीजिए। अनादरण पर मैं व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं हूँ।

—मान प्रकाश, अभिकर्ता स्नेह प्रकाश

(4) श्यामसुन्दर को भुगतान कीजिए। अनादरण पर केवल मृतक की सम्पत्ति को भुगतान के लिए प्रयुक्त किया जा सकेगा।

—रामसुन्दर, प्रशासक।

जब पृष्ठांकन की प्रक्रिया के अन्तर्गत इस प्रकार से पृष्ठांकित विलेख लौट कर दायित्व-विहीन पृष्ठांकक के पास पहुँच जाता है और देय-तिथि पर उसका अनादरण हो जाता है तो बीच के सभी पृष्ठांकक भुगतान के लिए दायित्वहीन पृष्ठांकक के प्रति दायी होते हैं।

4. शर्तपूर्ण पृष्ठांकन (Conditional Indorsement) :—जब पृष्ठांकक विलेख के अनादरण की अवस्था में दायी बनने के लिए अपनी ओर से कोई शर्त विशेष लगा देता है तो उस पृष्ठांकन को शर्तपूर्ण पृष्ठांकन कहा जाता है। पृष्ठांकक अपनी ओर से असम्भव घटना की भी शर्त लगा सकता है। शर्तपूर्ण पृष्ठांकन को भी धारा 52 मान्यता प्रदान करती है।

शर्तपूर्ण पृष्ठांकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

"परिपक्वता तिथि तक 'मेघदूत' जलयान के कलकत्ता पहुँचने पर श्री राम या उसके आदेशित व्यक्ति को भुगतान कीजिए।"

यदि देय-तिथि तक मेघदूत जलयान कलकत्ता बन्दरगाह पर पहुँच जाएगा तो देनदार विलेख की राशि का पृष्ठांकिती को भुगतान कर देगा। यदि वह जलयान के पहुँचने से पहले ही भुगतान कर देगा तो उस भुगतान के लिए वह स्वयं दायी होगा, पृष्ठांकक दायी नहीं होगा।

5. वैकल्पिक पृष्ठांकन (Facultative Indorsement) :—जब एक पृष्ठांकक पृष्ठांकन करते समय अपने अधिकारों का त्याग कर देता है तो उस पृष्ठांकन को वैकल्पिक पृष्ठांकन कहा जाता है। उदाहरणार्थ यदि एक पृष्ठांकक पृष्ठांकन करते समय यह लिख दे कि अनादरण की अवस्था में उसे अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं है (Notice of dishonour waived)

जैसे—Pay to Bharat Kumar,
Notice of dishonour waived,
Indra Kumar.

जब इस प्रकार से पृष्ठांकित विलेख का परिपक्वता-तिथि पर अनादरण हो जाता है तो पृष्ठांकक अपने दायित्वों के निर्वाह के लिए यथावत दायी बना रहता है।

6. प्रतिबन्धित पृष्ठांकन (Restrictive Indorsement) :—एक पृष्ठांकक चाहे तो अपने विलेख के भावी पृष्ठांकन पर रोक लगा सकता है। ऐसा प्रतिबन्ध निम्नांकित प्रकार से लगाया जाता है—

1. विलेख की राशि का केवल राजेश को भुगतान कीजिए। (Pay to Rajesh only)
2. विलेख की राशि का मेरे व्यक्तिगत प्रयोग के लिए कमलेश को भुगतान कीजिए।

3. श्याम के खाते के लिए पवन या उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान कीजिए। (Pay to Pawan or order for the A/c of Shyam)

4. राशि प्रमेन्द्र के खाते में अवश्य जमा की जानी चाहिए। (Contents must be credited to the account of Pramendra only)

यह पृष्ठांकन परक्राम्य विलेख की धारा 50 द्वारा अनुमोदित है। पृष्ठांकक को पृष्ठांकन के समय पृष्ठांकिती के अधिकारों पर स्पष्टतः प्रतिबन्ध लगाना पड़ता है।[1] जब किसी पृष्ठांकन के साथ किसी प्रकार का विवरण संलग्न किया जाता है तो उसे प्रतिबन्धित पृष्ठांकन नहीं माना जाता है। जैसे "Pay the contents to Bharat, being part of the consideration in a certain deed of assignment executed by Bharat to the indorser and others."

यद्यपि इस प्रकार के पृष्ठांकन के पश्चात् सम्बन्धित विलेख का आगे परक्रामण नहीं किया जा सकता तथापि संग्रहण के लिए उसका पृष्ठांकन किया जा सकता है। जब इस प्रकार से पुनः पृष्ठांकित विलेख का भुगतान किया जाता है तो भुगतानकर्ता भुगतान से पहले इस बात की ओर से आश्वस्त होता है कि विलेख का भुगतान पृष्ठांकिती के लिए प्राप्त किया जा रहा है।

जब ऐसे विलेख का भुगतान नहीं किया जाता है तो अभिकर्ता अपने स्वामी के विरुद्ध किसी प्रकार का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता और यदि अभिकर्ता अनादरण के पश्चात विलेख को अपने पास रख ले, स्वामी को न लौटाए तो भी स्वामी (पृष्ठांकिती) विलेख के विभिन्न पक्षों के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने का अधिकारी होता है।

7. शोधन व्यय-रहित पृष्ठांकन (Sans Fraise Indorsement):—ऐसा पृष्ठांकन विनिमय विपत्रों पर किया जाता है और उस समय किया जाता है जब पृष्ठांकक विपत्रों की राशि के शोधन के लिए अपनी ओर से कोई व्यय करने को तैयार नहीं होता है।

8. आंशिक पृष्ठांकन (Partial Indorsement) :— सामान्यतः एक विलेख की सम्पूर्ण राशि के लिए पृष्ठांकन किया जाता है। किन्तु जब किसी विलेख का अंशतः नकद भुगतान कर दिया जाता है तो उसका शेष राशि के लिए आंशिक पृष्ठांकन भी किया जा सकता है। आंशिक पृष्ठांकन के समय उस पर नकद भुगतान का नोट लगाना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि मनोहरलाल के पास पाँच सौ रुपये का विपत्र हो और वह उसका मोहन लाल के पक्ष में पृष्ठांकन करना चाहे (जिसे 200 रुपये नकद दिए जा चुके हैं) तो वह अपने विपत्र का निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करेगा—

"केवल तीन सौ रुपये का भुगतान कीजिए। दो सौ रुपये का भुगतान किया जा चुका है।"

—मनोहर लाल

पृष्ठांकन सम्बन्धी मान्यताएं (Assumptions regarding Indorsement) :— भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 118 द्वारा पृष्ठांकन सम्बन्धी निम्नांकित मान्यताएं स्वीकार की गई हैं—

1. प्रत्येक पृष्ठांकन प्रतिफल के बदले में किया गया था (118 a)।

---

1. वासुदेव रामचन्द्र बनाम नेशनल ग्रिंडलेज बैंक लि० 1951।

2. प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख का हस्तांतरण उसकी देय तिथि से पूर्व किया गया था (118 ब)।

3. एक विलेख पर जिस क्रम में पृष्ठांकन हैं वे उसी क्रम में किए गए थे (118 ई)।

4. प्रत्येक धारक यथाविधि धारक होता है। जब एक विलेख को धोखे अथवा अवैधानिक प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया जाता है तो यह मान्यता निष्क्रिय हो जाती है और उस व्यक्ति को जो अपने आपको यथाविधि धारक घोषित करता है, अपने कथन की पुष्टि करनी पड़ती है।

उपर्युक्त मान्यताएं केवल उसी समय तक अस्तित्व में रहती हैं जब तक कि उनके विरुद्ध कोई अन्य बात प्रमाणित नहीं हो जाती है अर्थात ये मान्यताएं सशर्त हैं।

पृष्ठांकन कौन कर सकता है (Who can indorse)?

पृष्ठांकन के अधिकारी पक्ष :—एक विलेख का केवल विधिवत धारक अथवा ऐसा व्यक्ति जिसका विलेख पर कानूनी अधिकार होता है, अपने विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है। पृष्ठांकन के अधिकारी पक्षों की विवेचना निम्न प्रकार है—

(i) एक विलेख का धारक (Holder), प्रापक (Payee) अथवा लेखक (Drawer) एक विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है। एक अवयस्क धारक, प्रापक व लेखक भी एक विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है। वह अपने पृष्ठांकन द्वारा विलेख के समस्त पक्षों को अपने दायित्वों के प्रति उत्तरदायी बनाता है किन्तु वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से अपने पृष्ठांकन के परिणामों के प्रति दायी नहीं होता है (धारा 26)।

(ii) संयुक्त पृष्ठांकक :—जब एक विलेख के एक से अधिक लेखक, स्वीकारक अथवा प्रापक होते हैं तो ऐसे विलेख के वैध पृष्ठांकन के लिए सभी व्यक्तियों को पृष्ठांकन करना पड़ता है किन्तु एक फर्म के साझेदारों पर यह व्यवस्था लागू नहीं होती है। एक साझेदार समस्त साझेदारों की ओर से वैध पृष्ठांकन कर सकता है। इसी प्रकार से जब एक विलेख के अनेक लेखक या प्रापक होते हैं तो उनके द्वारा अधिकृत किए जाने पर कोई एक व्यक्ति ऐसे विलेख का वैध पृष्ठांकन कर सकता है।

(iii) अभिकर्ता द्वारा पृष्ठांकन :—एक अभिकर्ता भी एक विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है किन्तु पृष्ठांकन से पूर्व उसे अपने प्रधान का स्पष्ट आदेश लेना पड़ता है। प्रधान के आदेश के अभाव में किए गए पृष्ठांकनों के परिणामों के प्रति वह व्यक्तिशः दायी होता है। इसी प्रकार से एक अभिकर्ता को पृष्ठांकन करते समय अपनी हैसियत भी स्पष्ट करनी पड़ती है अन्यथा विलेख के अप्रतिष्ठित हो जाने पर उसकी राशि के लिए वह व्यक्तिशः दायी होता है।

(iv) वैधानिक उत्तराधिकारी :—जब एक पृष्ठांकक की पृष्ठांकन के पश्चात किन्तु पृष्ठांकित विलेख की सुपुर्दगी के पूर्व मृत्यु हो जाती है तो उसका वैधानिक उत्तराधिकारी केवल सुपुर्दगी द्वारा उस विलेख का परक्रामण नहीं कर सकता। उसे परक्रामण के लिए पृष्ठांकन व सुपुर्दगी दोनों करने होंगे।

पृष्ठांकन की अवधि या मियाद (Duration of indorsement) :—एक विलेख का उसके जीवनकाल में उसके भुगतान अथवा संतुष्टि से पूर्व किसी भी समय पृष्ठांकन किया जा सकता है किन्तु भुगतान अथवा संतुष्टि के पश्चात उसका पृष्ठांकन नहीं किया

जा सकता (धारा 60)। इस व्यवस्था के अनुसार एक बिलेख का उसके अनादरण के पश्चात भी पृष्ठांकन किया जा सकता है।

इसी प्रकार से एक विलेख का उसके आलेखन से पूर्व भी पृष्ठांकन किया जा सकता है किन्तु यह पृष्ठांकन केवल स्टाम्प पेपर पर किया जाता है व बाद में उसी पेपर पर विलेख लिखा जाता है। एक विनिमय बिल का भी उसकी स्वीकृति अथवा आलेखन से पूर्व पृष्ठांकन किया जा सकता है (धारा 15)।

पृष्ठांकक का दायित्व (Liability of the Indorser)

1. अनादरण की सूचना (Notice of dishonour) :—जब एक विलेख का परिपक्व तिथि पर अनादरण हो जाता है और उसकी सूचना धारक अथवा पृष्ठांकक को दे दी जाती है अथवा उसे यह सूचना अन्य किसी अधिकृत स्रोत से प्राप्त हो जाती है तो वह धारक को क्षति (अनादरण से उत्पन्न) की पूर्ति के लिए दायी होता है। किन्तु जब पृष्ठांकक पृष्ठांकन करते समय अनादरण के परिणामों से अपने आपको मुक्त कर लेता है अथवा पृष्ठांकन के समय ऐसी शर्त रख देता है जो देय तिथि तक पूरी नहीं होती है अथवा क्षतिपूर्ति से बचने के लिए पृष्ठांकिती से कोई अनुबन्ध कर लेता है तो वह अनादरण के परिणामों के प्रति दायी नहीं होता है। एक चैक के अनादरण पर भी उसके पृष्ठांकक को अनादरण के तथ्य से अवगत करना पड़ता है अन्यथा वह अनादरित चैक के धारक के प्रति दायी नहीं होता है (मोहम्मद रफी बनाम मुजफ्फर हुसैन, 1936)

(i) दावे का अधिकार (Right to file a suit in the court) :—जब एक धारक न्यायालय में क्षतिपूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत करता है तो पृष्ठांकक किसी पूर्व पक्ष की अनुबन्ध-क्षमता अथवा उसके हस्ताक्षरों की प्रामाणिकता से मना नहीं कर सकता।

(धारा 122)।

(ii) काल तिरोहित पृष्ठांकन :—जब एक विलेख के अनादरण के पश्चात उसका पृष्ठांकन कर दिया जाता है तो उस विलेख का पृष्ठांकक विलेख की राशि के भुगतान के लिए उसी प्रकार से दायी होता है जैसे एक माँग पर देय विलेख के लिए एक व्यक्ति दायी होता है (धारा 35)।

(iii) भुगतान के लिए उत्तरदायी :—एक विलेख के भुगतान तक उसका प्रत्येक पूर्व पक्ष विलेख के यथाविधि धारी के प्रति दायी होता है। परक्राम्य विलेख अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत किया गया अनुबन्ध यथाविधि धारक व उसके बाद के पक्षों पर लागू नहीं होता है।

दायित्व का क्रम :—एक प्रतिज्ञा-पत्र व चैक का लेखक और एक बिपत्र का आहार्यी (बिपत्र की स्वीकृति तक) प्रमुख ऋणी का कार्य करते हैं। बिपत्र की स्वीकृति के पश्चात उसका स्वीकारक प्रमुख ऋणी (Principal Debtor) बन जाता है। शेष सभी पक्ष प्रत्याभू का कार्य करते हैं। प्रत्याभुओं में प्रत्येक पूर्व प्रत्याभू पश्चवर्ती प्रत्याभू के लिए प्रमुख ऋणी का कार्य करता है। उदाहरणार्थ, राम ने श्याम पर बिपत्र लिखा जो राम को देय था। श्याम ने बिपत्र को स्वीकार करके राम को लौटा दिया। स्वीकृति के पश्चात राम ने उस बिपत्र को मोहन के पक्ष में, मोहन ने सोहन के पक्ष में और सोहन ने गोहन के पक्ष में पृष्ठांकन कर दिया। प्रस्तुत उदाहरण में गोहन व श्याम में श्याम प्रमुख ऋणी है व राम, मोहन और सोहन श्याम के प्रत्याभू का कार्य करते हैं। गोहन व राम के बीच

प्रमुख ऋणी है और मोहन और सोहन राम के प्रत्याभू हैं। रोशन व मोहन में मोहन प्रमुख ऋणी है और सोहन प्रत्याभू है।

दायित्व से मुक्ति (Discharge from Liability) :—एक पृष्ठांकक अपने पृष्ठांकन सम्बन्धी दायित्व से निम्नांकित अवस्थाओं में मुक्त हो जाता है—

1. भुगतान द्वारा :—जब एक विलेख का (माँग पर अथवा देय-तिथि पर) भुगतान कर दिया जाता है तो पृष्ठांकक का पृष्ठांकन से उत्पन्न दायित्व स्वतः ही समाप्त हो जाता है (धारा 82 सी)।

2. स्वीकृति के लिए 48 घंटे से अधिक समय देने पर :—जब एक विपत्र का धारक विपत्र के आहार्यी को विपत्र की स्वीकृति पर विचार करने के लिए 48 घण्टे से अधिक का समय दे देता है तो उसके इस कार्य की पुष्टि न करने वाले पक्ष, पृष्ठांकक सहित, अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं (धारा 83)।

3. जब पृष्ठांकक अपने पूर्व पक्ष के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता :—जब एक विलेख का धारक उसके किसी पृष्ठांकक की पूर्व अनुमति के बिना ऐसा कोई कार्य करता है जिससे पृष्ठांकक विलेख के अनादरित हो जाने पर अपने पूर्व पक्ष के विरुद्ध पूर्णतः अथवा अंशतः कार्यवाही नहीं कर सकता तो ऐसा पृष्ठांकक अपने दायित्व से उस सीमा तक मुक्त हो जाता है जिस सीमा तक धारक उसके अधिकारों का हनन करता है (धारा 40)। उदाहरणार्थ—

अ एक विपत्र का धारक है जो ब या ब द्वारा आदेशित व्यक्ति को देय है। इस विपत्र पर निम्नांकित पृष्ठांकन हो चुके थे—

प्रथम पृष्ठांकन	ब द्वारा
द्वितीय ,,	पीटर विलियम द्वारा
तृतीय ,,	राइट कम्पनी द्वारा
चतुर्थ ,,	जोन राजोरिया द्वारा

अ पूर्व पक्षों की अनुमति बिना पीटर व राइट कं॰ के नाम काट देता है और जोन राजोरिया के समक्ष विलेख को (अनादरित हो जाने पर) भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है। जोन राजोरिया उसकी इस माँग को ठुकरा देता है। फलतः अ जोन के विरुद्ध न्यायालय में दावा करता है। प्रस्तुत वाद में न्यायालय अ को संरक्षण प्रदान नहीं करेगा क्योंकि उसने जोन के अधिकारों का हनन किया है। धारा 38 की व्यवस्थानुसार एक पूर्व-प्रत्याभू अपने अनुवर्ती प्रत्याभू के लिए प्रमुख ऋणी का काम करता है। अतः पूर्व प्रत्याभू को मुक्त किये जाने पर अनुवर्ती प्रत्याभू अपने दायित्वों से सहज ही मुक्त हो जाते हैं।

4. स्वीकारक या पृष्ठांकक का नाम काटे जाने पर :—जब विलेख का धारक विलेख के स्वीकारक या पृष्ठांकक का नाम काट देता है तो ऐसे व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, नाम भूलवश नहीं अपितु जान-बूझकर काटे जाने चाहिए। जब भूल से नाम कट जाता है तो स्वीकारक या पृष्ठांकक का दायित्व यथावत बना रहता है (धारा 82 अ)।

5. शर्त पूर्ण न होने पर :—जब एक पृष्ठांकक शर्त पूर्ण पृष्ठांकन करता है और विलेख की परिपक्वता तिथि तक उसकी शर्त पूरी नहीं होती है अथवा वह घटना घटित

नहीं होती है तो पृष्ठांकक पृष्ठांकित विलेख के अनादरित हो जाने पर उसके भुगतान के लिए दायी नहीं होता है (धारा 35)।

6. दायित्व रहित पृष्ठांकन करने पर :—जब एक पृष्ठांकक अपने विलेख का दायित्व-रहित पृष्ठांकन करता है तो वह अनादरण की अवस्था में उस विलेख के भुगतान के लिए दायी नहीं होता है (धारा 52)।

7. महत्वपूर्ण परिवर्तन होने पर :—जब एक पृष्ठांकिती पृष्ठांकित विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर देता है तो पृष्ठांकक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है (धारा 85)। किन्तु पृष्ठांकन से पूर्व किए गए परिवर्तन उसे इस दायित्व से मुक्त नहीं कर सकते (धारा 88)।

8. अन्य किसी विधि से मुक्त किए जाने पर :—जब एक विलेख का धारक विलेख के लेखक, स्वीकारक या पृष्ठांकक को अन्य किसी विधि से मुक्त कर देता है तो ऐसा पृष्ठांकक विलेख के किसी भी पक्ष के प्रति दायी नहीं होता है (धारा 82 ब)।

पृष्ठांकित धनादेश व अधिकोष :—पृष्ठांकित धनादेशों (चैकों) का भुगतान करते समय शोधी अधिकोषों (बैंकों) को पृष्ठांकनों की नियमितता व यथाक्रम भुगतान का ध्यान रखना पड़ता है।

आदिष्ट धनादेशों का भुगतान करते समय शोधी अधिकोष को उपर्युक्त दोनों शर्तों की पूर्ति का ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरणार्थ जब शोधी अधिकोष एक ऐसे आदिष्ट धनादेश (order cheque) का यथाविधि भुगतान कर देता है जिस पर उसके प्रापक अथवा उसके अधिकृत व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन किया गया प्रतीत होता हो तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है [धारा 85 (1)]। वह जाली पृष्ठांकनों के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उसके पास केवल धनादेश के लेखक के ही नमूने के हस्ताक्षर होते हैं।

वाहक (पृष्ठांकित) धनादेशों का भुगतान करते समय देनदार अधिकोष को केवल यथाक्रम भुगतान का ध्यान रखना पड़ता है। उसे पृष्ठांकनों की नियमितता अथवा पृष्ठांकनों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है धारा [85 (2)]। क्योंकि एक मूलतः वाहक धनादेश भुगतान तक वाहक ही बना रहता है।

भुगतान करते समय प्रत्येक शोधी अधिकोष धनादेश (वाहक एवं आदिष्ट) पर भुगतान प्राप्तकर्ता से पृष्ठांकन करवा लेता है। यह पृष्ठांकन एक धनादेश का अन्तिम पृष्ठांकन होता है किन्तु ऐसा पृष्ठांकन करना या करवाना अनिवार्य नहीं होता है। भुगतान लेने वाला चाहे तो भुगतान के लिए पृथक रसीद भी दे सकता है। बीस रुपये या बीस रुपये से अधिक राशि का भुगतान लेने पर उसे रसीद पर राजस्व टिकट भी लगाना पड़ता है। यह पद्धति अधिकोष एवं भुगतान लेने वाले के काम में अनावश्यक रूप में वृद्धि करती है। अतः व्यवहार में भुगतान के समय प्रत्येक शोधी अधिकोष भुगतान लेने वाले से धनादेश पर ही हस्ताक्षर करवाता है। यह पृष्ठांकन भुगतान की रसीद का भी काम देता है।

पृष्ठांकनों की नियमितता—"पृष्ठांकनों की नियमितता" शोधी अधिकोषों की दायित्व-मुक्ति के लिए अनिवार्य होती है। पृष्ठांकनों की नियमितता पर विचार करते समय शोधी अधिकोष निम्नांकित बिन्दुओं पर विचार करता है—

(i) आदर सूचक शब्द (Courtesy Titles)—पृष्ठांकन करते समय पृष्ठांकक को अपने विलेख पर केवल अपना नाम अंकित करना पड़ता है क्योंकि आदर-सूचक शब्द जैसे श्री, श्रीयुत् सेठ, लाला, हाजी, क़ाज़ी, पण्डित आदि पृष्ठांकन के अंग नहीं होते हैं। आदर सूचक शब्दों युक्त पृष्ठांकन अवैध तो नहीं होते हैं किन्तु अनियमित अवश्य होते हैं। एच. पी शेल्डन के शब्दों में "Indorsement that includes a courtesy title, though legally valid is not usually accepted in this country"[1] अनियमितता के अतिरिक्त आदर सूचक शब्द पृष्ठांकन की जाँच में भी बाधक होते हैं। अतः ऐसे शब्दों युक्त पृष्ठांकनों की अवस्था मे श्रोधी अधिकोष सम्बन्धित विलेख का भुगतान नही करता है। जब पृष्ठांकक अपने नाम के पश्चात् अपनी पदवी लगाता है। तो उस पृष्ठांकन को अनियमित नही माना जाता है। उदाहरणार्थ जब कैप्टेन रामनाथ व डॉक्टर इन्द्रकुमार पृष्ठांकन करते समय अपने नाम के आगे कैप्टेन अथवा एम. बी. बी एस या एम. डी. या एम. एस लिखें तो उनके पृष्ठांकन को अनियमित नहीं माना जायेगा क्योकि ये शब्द केवल उनके नाम के वर्णात्मक अंग हैं। इसी प्रकार जब एक प्रतिनिधि पृष्ठांकन करते समय अपने मालिक के नाम के पूर्व या एक पत्नी अपने पति के नाम के पूर्व सौजन्यता सूचक शब्दों का प्रयोग करती है तो पृष्ठांकन अनियमित नही माना जाता है। जैसे

Per pro Shri Ram Gopal
Krishna Gopal

अथवा Sita Devi w/o Shri Ram Chandra.

जब किसी देश मे आदर सूचक शब्दों के लिखने की परम्परा हो तो उस देश में ऐसे पृष्ठांकनो को अनियमित नही माना जाता है।

(ii) नाम की वर्तनी (Spelling of Name) —यदि किसी धनादेश में प्रापक अथवा पृष्ठांकक का नाम अशुद्ध लिखा हुआ हो और वह उस धनादेश का पृष्ठांकन करना चाहे तो पृष्ठांकन के समय उसे अशुद्ध वर्तनी का ही प्रयोग करना पड़ेगा अर्थात् धनादेश में जिन अक्षरों व मात्राओं का प्रयोग किया गया है, पृष्ठांकन के समय प्रापक/पृष्ठांकक को उन्हीं अक्षरों व मात्राओं का प्रयोग करना पड़ेगा। वह चाहे तो पृष्ठांकन के पश्चात् कोष्ठक में अपना सही नाम भी लिख सकता है। उदाहरणार्थ एक धनादेश में प्रापक का नाम "परमिन्दर सिंग" लिखा हुआ है किन्तु उसका सही नाम प्रमेन्द्र सिंह है। इस धनादेश का पृष्ठांकन करते समय उसे प्रारम्भ में परमिन्दर सिंग ही लिखना पड़ेगा अन्यथा पृष्ठांकन अनियमित हो जायेगा। पृष्ठांकन के पश्चात् वह प्रकोष्ठ में प्रमेन्द्रसिंह भी लिख सकता है ताकि किसी प्रकार के सन्देह की सम्भावना न रहे। यथा—

परमिन्दर सिंग (प्रमेन्द्र सिंह)

(iii) प्रशासकीय नाम में (In official name)—यदि किसी धनादेश में प्रापक के नाम के साथ उसका पद भी लिखा हुआ हो तो ऐसे धनादेश का पृष्ठांकन करते समय उसे केवल अपना नाम लिखना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि एक धनादेश मे प्रापक

---

1. Sheldon H.P Practice and Law of Banking, 6th Edn. P, 68.

का नाम श्री कन्हैयालाल गोस्वामी,[1] आचार्य, श्री डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर लिखा हुआ हो तो पृष्ठांकन के समय आपक को केवल श्री कन्हैयालाल गोस्वामी लिखना होगा क्योंकि धनादेश व्यक्तिगत है व नाम का शेष भाग केवल परिचयात्मक है। यदि श्री कन्हैयालाल गोस्वामी को वही धनादेश प्रशासकीय कार्य के लिए प्राप्त हुआ हो तो उन्हें अपने नाम के बाद अपने पद की मोहर भी अंकित करनी होगी या हाथ से अपना पद लिखना होगा। यथा श्री कन्हैयालाल गोस्वामी, प्राचार्य, श्री डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर।

(iv) रबर स्टाम्प से पृष्ठांकन—रबर स्टाम्प से किया गया पृष्ठांकन उस समय वैध व नियमित माना जाता है जबकि उसका (रबर स्टाम्प) प्रयोग अधिकृत व्यक्ति द्वारा किया जाता है। शोधी अधिकोष के पास स्टाम्प के अधिकृत प्रयोग का प्रमाण नहीं होता है। अतः इस प्रकार के पृष्ठांकनों को मान्यता देने से पूर्व वे रबर स्टाम्प के प्रयोग के अधिकृत होने की पुष्टि करवाते हैं। जब शोधी अधिकोष बिना पुष्टि के ही ऐसे धनादेशों का भुगतान कर देते हैं तो उस भुगतान को यथाक्रम भुगतान नहीं माना जाता है। फलतः ऐसे भुगतान के लिए अधिकोष व्यक्तिगतः दायी होते हैं। इस प्रकार के पृष्ठांकन जालसाजी को प्रोत्साहित करते हैं। अतः शोधी अधिकोष इस प्रकार के पृष्ठांकनों को हतोत्साहित करते हैं।

(v) महिलाओं द्वारा पृष्ठांकन—पृष्ठांकन करने वाली महिलाएं कुमारी, विवाहित अथवा तलाकशुदा हो सकती हैं।

अविवाहित महिलाओं को पृष्ठांकन करते समय केवल अपना नाम व पितृ कुल का नाम अंकित करना पड़ता है। यथा मृदुला साराभाई। उन्हें कुमारी आदि शब्दों के लिखने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ये शब्द नाम के अभिन्न अंग नहीं होते हैं।

विवाहित महिलाओं के लिए लिखे जाने वाले धनादेश उनके नाम से, उनके पति के नाम से (श्रीमती जैन या श्रीमती एस. के. जैन) अथवा उनके पितृ-कुल के नाम से लिखे जा सकते हैं। प्रथम या द्वितीय अवस्था में उन्हें पृष्ठांकित करते समय अपना नाम व उसके आगे अपने पति का नाम अंकित करना पड़ता है जैसे रेखा जैन धर्मपत्नी श्री शिवकुमार जैन। (Rekha Jain, wife of Shiv Kumar Jain)

तृतीय अवस्था में महिला पृष्ठांकक को अपने दोनों कुलों (पितृ कुल व पति कुल) का नाम लिखना पड़ता है। जैसे

रश्मि शर्मा पूर्वनाम रश्मि गौड़
(Rashmi Sharma nee Rashmi Gaur)

पहले पति कुल लिखा जाता है व बाद में पितृ कुल।

तलाक के बाद महिलाएं पुनः कुमारी मानी जाती हैं। अतः ऐसी महिलाओं को भी तृतीय अवस्था का अनुसरण करना पड़ता है किन्तु ऐसी महिलाएं पृष्ठांकन करते समय पितृ-कुल पहले लिखती हैं और पति-कुल बाद में। जैसे

नीलोफर खान पूर्वनाम नीलोफर पठान
(Neelofer Khan nee Neelofer Pathan)

जब तलाकशुदा महिला तलाक के बाद तत्काल पुनः विवाह कर लेती है और वह पूर्वनाम से लिए गए धनादेशों का पृष्ठांकन करती है तब उसे दोनों पति कुलों का नाम लिखना पड़ता है यथा

जेकलिन ओनासिस पूर्वनाम जेकलिन केनेडी।

---

1 श्री आदर सूचक शब्द नहीं है, नाम का ही अंग है। आदर सूचक शब्द होने पर श्री भी नहीं लिखा जाएगा।

(vi) अभिकर्ताओं द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by Agents)—एक अभिकर्ता भी एक विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है और वह अपने हितों की रक्षार्थ पृष्ठांकन करते समय अपनी इस हैसियत का भी उल्लेख करता है। एक अभिकर्ता अपनी हैसियत का अनेक प्रकार से उल्लेख कर सकता है।

यथा—1. Per pro per, या Per procuration Ramlal
Shyam lal

2. For Shyam sunder
Ramawtar, Agent.

3. On behalf of Shyam Sunder
Ramawtar

4. Shyam Krishna by Ram Krishna, Attorney.

'Per pro.' पृष्ठांकन करते समय एक अभिकर्ता को अपने नाम के बाद में अभिकर्ता लिखने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ये शब्द स्वयं इस हैसियत के परिचायक होते हैं।

जब एक शोधी अधिकोष "Per pro" अभिकर्ता के अधिकारों के बारे में संतुष्ट नहीं होता है तो वह उसके अधिकारों की जाँच करने व जाँच पूरी होने तक भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश का भुगतान स्थगित करने का अधिकारी होता है। अधिकोष ऐसे अभिकर्ता के अधिकारों के बारे में *सामान्यतः उस समय जांच करते हैं जबकि पृष्ठांकक* अपने नाम के साथ अपना पद भी अंकित करता है और वह पद पृष्ठांकक के अधिकार के अनुकूल नहीं होता है। उदाहरणार्थ जब एक रोकड़िया या लिपिक "Per pro" पृष्ठांकन के पश्चात् अपना पद भी लिखता है तो शोधी अधिकोष इस प्रकार से पृष्ठांकित धनादेश के भुगतान से पूर्व उस रोकड़िए या लिपिक के पृष्ठांकन सम्बन्धी अधिकारों की जाँच करता है :

"Per pro" पृष्ठांकन निम्न दो प्रकार से किया जा सकता है—

1. Per pro Shyam Krishna
Ramlal

2. Shyam Krishna per pro Ramlal.

उपर्युक्त पृष्ठांकनों में से प्रथम पृष्ठांकन अधिक सही है। अतः यदि किसी अधिकोष को दूसरे स्वरूप में पृष्ठांकित धनादेश प्राप्त हो तो उसे भुगतान से पूर्व उस धनादेश के पृष्ठांकक के अधिकारों की जाँच करनी चाहिए।

एक अभिकर्ता अपने अधिकारों को किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता। अतः उसे धनादेश व अन्य विलेखों का स्वयं पृष्ठांकन करना पड़ता है।

जब एक अभिकर्ता अपने नाम के अन्त में अभिकर्ता या पृष्ठांकन के पूर्व "के लिए" नहीं लिखता है तो शोधी-बैंक इन शब्दों को भुगतान के समय लिखवा लेता है या पृष्ठांकन के अधिकार पत्र की एक प्रति प्राप्त कर लेता है अन्यथा वह गलत भुगतान की अवस्था में लेनक के लिए व्यक्तिशः दायी होता है।

एक फर्म दूसरी फर्म या व्यक्ति के लिए अभिकर्ता का कार्य कर सकती है व उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति अपने अभिकर्ता को अपने (प्रधान) नाम से हस्ताक्षर करने का भी

अधिकार दे सकता है। इस प्रकार से अधिकृत अभिकर्ता को अपने प्रधान के नमूने के हस्ताक्षर अपनी हस्तलिपि में प्रधान के बैंक के पास जमा कराने पड़ते हैं।

(vii) अनपढ़ व्यक्तियों द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by illiterate persons) :— जब एक अनपढ़ व्यक्ति किसी आदिष्ट धनादेश का पृष्ठांकन करना चाहता है तो पुरुष पृष्ठांकक को धनादेश पर अपने बांए हाथ के अंगूठे का निशान व महिला पृष्ठांकक को अपने दांए हाथ के अंगूठे का निशान लगाना पड़ता है। अतः इन पृष्ठांकनों की किसी सम्मानित व्यक्ति से पुष्टि (Verification) करवानी पड़ती है। पुष्टि करने वाला व्यक्ति पुष्टि करते समय धनादेश पर अपना पूरा नाम व पता लिखता है। शोधी अधिकोष का रोकड़िया ऐसी पुष्टि नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब अनपढ़ व्यक्ति शोधी अधिकोष का परिचित नहीं होता है तो उस अधिकोष का कोई भी व्यक्ति पृष्ठांकक के अंगूठे के निशान की पुष्टि नहीं कर सकता। अनपढ़ व्यक्ति चाहे तो अपने अंगूठे के निशान की अपेक्षा अन्य किसी निशान को भी काम में ले सकता है किन्तु ऐसी दशा में उसे अपना नाम भी अंकित करवाना पड़ता है व पूर्ववर्ती प्रक्रिया के अनुसार उस निशान की पुष्टि करवानी पड़ती है। जब शोधी अधिकोष को संदेह हो जाता है तो वह प्रापक के निशान अथवा साक्षी के हस्ताक्षरों को अपने समक्ष पुष्टि करवा सकता है।

(viii) काल्पनिक प्रापक (Imaginary payee) :—जब एक धनादेश का प्रापक काल्पनिक होता है अथवा अप्राप्य होता है तो उस धनादेश को वाहक धनादेश मान लिया जाता है व उसके पृष्ठांकन की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे धनादेशों की पीठ पर केवल भुगतान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को भुगतान प्राप्ति के प्रमाण-स्वरूप अपने हस्ताक्षर बनाने पड़ते हैं। जब ऐसे धनादेशों पर आदेश शब्द भी अंकित होता है तो इन्हें वस्तुतः धनादेश की श्रेणी में शामिल नहीं किया जा सकता किन्तु व्यवहार में इन्हें वाहक धनादेश (चेक) मान लिया जाता है। जैसे "Cash or order", "Wages or order", "Lord Ram nath or order." ऐसे धनादेशों पर लेखक अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता को अनिवार्यतः पृष्ठांकन करना पड़ता है।

जब ऐसा धनादेश किसी कार्यालय के पक्ष में लिखा जाता है (Pay Income-tax or order, Pay 5% India Govt. Loan) तो उसे आदिष्ट धनादेश माना जाता है। इन धनादेशों का सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा पृष्ठांकन करना पड़ता है।

(ix) संयुक्त प्रापकों द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by Joint Payees) :— जब एक धनादेश को दो या दो से अधिक व्यक्तियों के पक्ष में लिखा जाता है (साझेदार न होने पर) और वे अपने में से किसी एक व्यक्ति को सबकी ओर से पृष्ठांकन करने के लिए अधिकृत नहीं करते हैं तो ऐसे धनादेश के परक्रामण के लिए सभी प्रापकों को पृष्ठांकन करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक पृष्ठांकन "विनद और विजय" या, "विनदकुमार विजयकुमार" के पक्ष में लिखा गया हो और इसका पृष्ठांकन किया जा रहा हो तो उसके वैध पृष्ठांकन के लिए दोनों प्रापकों को अपने हस्ताक्षर करने होंगे। विनद या विजय दूसरे प्रापक द्वारा अधिकृत किए जाने पर अकेला भी वैध एवं नियमित पृष्ठांकन कर सकता है।

जब ऐसे धनादेश को संयुक्त प्रापकों के संयुक्त खाते में जमा करवाना जाता है तब उसके पृष्ठांकन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब एक धनादेश के प्रापक का नाम "विनयकुमार व अन्य" लिखा जाता है तो उसका पृष्ठांकन निम्नांकित प्रकार से किया जाता है :—विनयकुमार व अन्यों के लिए
—विनयकुमार

जब संयुक्त प्रापकों में से किसी एक प्रापक का निधन हो जाता है तो शेष जीवित प्रापकों को शोधी बैंक के समक्ष मृत प्रापक के निधन का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रमाण-पत्र के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् जीवित व्यक्तियों द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित मान लिया जाता है।

जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं :—जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं तो नियमित पृष्ठांकनों के लिए धनादेश पर दोनों व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, श्री व श्रीमती शिवकुमार जैन के पक्ष में लिखे गये धनादेश का निम्न प्रकार से पृष्ठांकन किया जाएगा :—

शिवकुमार जैन
रेखा जैन (धर्मपत्नी श्री शिवकुमार जैन)

जब प्रापक के नाम के साथ अन्य शब्द भी जुड़े हुए होते हैं तो पृष्ठांकन के समय उसे उन शब्दों को भी लिखना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक धनादेश भारत ट्रेडिंग कम्पनी के प्रमेन्द्र कुमार के पक्ष में कम्पनी के लिए लिखा जावे तो प्रमेन्द्र कुमार को उसका पृष्ठांकन करते समय यह स्पष्ट करना होगा कि वह कम्पनी की ओर से पृष्ठांकन कर रहा है। उसे निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करना होगा :—

Per या Pro Bharat Trading Co.
Pramendra Kumar

जब प्रापक का नाम "रामनारायण खाता श्यामनारायण" या "रामनारायण, श्यामनारायण के लिए" लिखा जाता हो तो प्रापक को पृष्ठांकन के समय अपने नाम के अतिरिक्त अपना पद भी लिखना पड़ता है। उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में रामनारायण, श्यामनारायण के अभिकर्ता का कार्य कर रहा है। अतः उसे अपने नाम के अन्त में अभिकर्ता भी लिखना होगा।

जब किसी प्रापक का नाम "वाहक, मेरी पत्नी" लिखा हुआ हो तो उस धनादेश का प्रथम पृष्ठांकन लेखक की पत्नी द्वारा किया जायेगा। अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित नहीं माना जाएगा। इसी प्रकार जब एक धनादेश पर प्रापक का नाम वाहक (किशननारायण) या "आदिष्ट व्यक्ति" को भुगतान के लिए लिखा जाता है तो उसका प्रथम पृष्ठांकन किशननारायण द्वारा किया जायेगा। जब प्रापक के नाम के आगे "केवल" शब्द जोड़ दिया जाता है तब उसका पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि "केवल" शब्द पृष्ठांकन के अधिकार को समाप्त करता है।

(x) प्रन्यासी द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by the Trustee) :—प्रन्यासी अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। अतः जब एक से अधिक प्रन्यासियों के पक्ष में कोई धनादेश लिखा जाता है तो उसके नियमित पृष्ठांकन के लिए सभी प्रन्यासियों को उस पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। प्रन्यासी निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करते हैं :—

रामलाल
श्यामलाल
प्रन्यासी, धर्मप्रिया ट्रस्ट, कलकत्ता।

जब शोधी अधिकोष इस प्रकार से पृष्ठांकित धनादेश का भुगतान करता है तो वह भुगतान से पूर्व प्रन्यासियों के नियुक्ति पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त करता है।

(xi) *फर्म व संस्थाओं द्वारा पृष्ठांकन* (*Indorsement by Firms or Institutions*) :—फर्म अथवा संस्था की ओर से पृष्ठांकन करते समय पृष्ठांकक को अपनी हैसियत अथवा पद भी लिखना पड़ता है। यथा

1. रामगोपाल श्यामगोपाल के लिए
   कृष्ण गोपाल
   साझेदार
2. शंकरलाल शर्मा
   सचिव
   श्री सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर।

(xii) *प्रमण्डलों द्वारा पृष्ठांकन* (*Indorsement by Joint Stock Companies*) :— एक प्रमण्डल के पक्ष में लिखे गए धनादेशों का पृष्ठांकन प्रमण्डल की मोहर से भी किया जा सकता है किन्तु इस प्रकार के पृष्ठांकन जालसाजी को प्रोत्साहित करते हैं। अतः ऐसे पृष्ठांकनों को शोधी अधिकोष सामान्यतः हतोत्साहित करते हैं और हाथ से किए हुए पृष्ठांकनों को प्राथमिकता देते हैं।

सामान्यतः एक प्रमण्डल के सचालक, व्यवस्थापक, कोषाध्यक्ष व सचिव को प्रमण्डल की ओर से पृष्ठांकन का अधिकार प्राप्त होता है, अन्य व्यक्तियों को यह अधिकार प्राप्त नही होता है। अतः जब एक प्रमण्डल के धनादेश पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन किया जाता है तो शोधी अधिकोष भुगतान से पूर्व पृष्ठांकक के अधिकारों की जांच करता है।

जब किसी धनादेश में प्रापक प्रमण्डल का नाम गलत लिखा हुआ होता है तो उसका पृष्ठांकन भी उस गलत नाम से किया जाता है किन्तु कोष्ठक में सही नाम भी अंकित किया जा सकता है। इसी प्रकार जब एक धनादेश में प्रापक प्रमण्डल का संक्षिप्त नाम लिखा हुआ होता है तो उसका पृष्ठांकन भी संक्षिप्त नाम से किया जाता है किन्तु कोष्ठक में पूरा नाम भी लिखा जा सकता है। जैसे यू. टी. आई. (यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया)।

संचालक, व्यवस्थापक या सचिव अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। अतः निम्न प्रकार से किए गए पृष्ठांकन अनियमित माने जाते है :—

जय इंजीनियरिंग कम्पनी के लिए,
रामचन्द्र साहू के लिए
सचिव

प्रेमचन्द

प्रमण्डल के धनादेशों का पृष्ठांकन करते समय "Per Pro" "लिए" प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ,

1. Per pro Bharat Industrial Co. Ltd,
   Pramendra Kumar

जब एक धनादेश के प्रापक का नाम "विनयकुमार व अन्य" लिखा जाता है तो उसका पृष्ठांकन निम्नांकित प्रकार से किया जाता है :—विनयकुमार व अन्यों के लिए
—विनयकुमार

जब संयुक्त प्रापकों में से किसी एक प्रापक का निधन हो जाता है तो शेष जीवित प्रापकों को शोधी बैंक के समक्ष मृत प्रापक के निधन का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रमाण-पत्र के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् जीवित व्यक्तियों द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित मान लिया जाता है।

जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं :—जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं तो नियमित पृष्ठांकनों के लिए धनादेश पर दोनों व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, श्री व श्रीमती शिवकुमार जैन के पक्ष में लिखे गये धनादेश का निम्न प्रकार से पृष्ठांकन किया जाएगा :—

शिवकुमार जैन
रेखा जैन (धर्मपत्नी श्री शिवकुमार जैन)

जब प्रापक के नाम के साथ अन्य शब्द भी जुड़े हुए होते हैं तो पृष्ठांकन के समय उसे उन शब्दों को भी लिखना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक धनादेश भारत ट्रेडिंग कम्पनी के प्रमेन्द्र कुमार के पक्ष में कम्पनी के लिए लिखा जावे तो प्रमेन्द्र कुमार को उसका पृष्ठांकन करते समय यह स्पष्ट करना होगा कि वह कम्पनी की ओर से पृष्ठांकन कर रहा है। उसे निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करना होगा :—

Per या Pro Bharat Trading Co.
Pramendra Kumar

जब प्रापक का नाम "रामनारायण खाता श्यामनारायण" या "रामनारायण, श्यामनारायण के लिए" लिखा जाता हो तो प्रापक को पृष्ठांकन के समय अपने नाम के अतिरिक्त अपना पद भी लिखना पड़ता है। उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में रामनारायण, श्यामनारायण के अभिकर्ता का कार्य कर रहा है। अतः उसे अपने नाम के अन्त में अभिकर्ता भी लिखना होगा।

जब किसी प्रापक का नाम "वाहक, मेरी पत्नी" लिखा हुआ हो तो उस धनादेश का प्रथम पृष्ठांकन लेखक की पत्नी द्वारा किया जायेगा। अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित नहीं माना जाएगा। इसी प्रकार जब एक धनादेश पर प्रापक का नाम वाहक (किशननारायण) या "आदिष्ट व्यक्ति" को भुगतान के लिए लिखा जाता है तो उसका प्रथम पृष्ठांकन किशननारायण द्वारा किया जायेगा। जब प्रापक के नाम के आगे "केवल" शब्द जोड़ दिया जाता है तब उसका पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि "केवल" शब्द पृष्ठांकन के अधिकार को समाप्त करता है।

(x) प्रन्यासी द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by the Trustee) :—प्रन्यासी अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। अतः जब एक से अधिक प्रन्यासियों के पक्ष में कोई धनादेश लिखा जाता है तो उसके नियमित पृष्ठांकन के लिए सभी प्रन्यासियों को उस पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। प्रन्यासी निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करते हैं :—

रामनाथ
श्यामलाल
प्रन्यासी, धर्मदिया ट्रस्ट, कलकत्ता।

जब शोधी अधिकोष इस प्रकार से पृष्ठांकित धनादेश का भुगतान करता है तो वह भुगतान से पूर्व प्रन्यासियों के नियुक्ति पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त करता है।

(xi) फर्म व संस्थाओं द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by Firms or Institutions) :—फर्म अथवा संस्था की ओर से पृष्ठांकन करते समय पृष्ठांकक को अपनी हैसियत अथवा पद भी लिखना पड़ता है। यथा

1. रामगोपाल श्यामगोपाल के लिए
   कृष्ण गोपाल
   साझेदार
2. शंकरलाल शर्मा
   सचिव
   श्री सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर।

(xii) प्रमण्डलों द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by Joint Stock Companies) :— एक प्रमण्डल के पक्ष में लिखे गए धनादेशों का पृष्ठांकन प्रमण्डल की मोहर से भी किया जा सकता है किन्तु इस प्रकार के पृष्ठांकन जालसाजी को प्रोत्साहित करते हैं। अतः ऐसे पृष्ठांकनों को शोधी अधिकोष सामान्यतः हतोत्साहित करते हैं और हाथ से किए हुए पृष्ठांकनों को प्राथमिकता देते हैं।

सामान्यतः एक प्रमण्डल के संचालक, व्यवस्थापक, कोषाध्यक्ष व सचिव को प्रमण्डल की ओर से पृष्ठांकन का अधिकार प्राप्त होता है, अन्य व्यक्तियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता है। अतः जब एक प्रमण्डल के धनादेश पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकन किया जाता है तो शोधी अधिकोष भुगतान से पूर्व पृष्ठांकक के अधिकारों की जांच करता है।

जब किसी धनादेश में प्रापक प्रमण्डल का नाम गलत लिखा हुआ होता है तो उसका पृष्ठांकन भी उस गलत नाम से किया जाता है किन्तु कोष्टक में सही नाम भी अंकित किया जा सकता है। इसी प्रकार जब एक धनादेश में प्रापक प्रमण्डल का संक्षिप्त नाम लिखा हुआ होता है तो उसका पृष्ठांकन भी संक्षिप्त नाम से किया जाता है किन्तु कोष्टक में पूरा नाम भी लिखा जा सकता है। जैसे यू. टी. आई. (यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया)।

संचालक, व्यवस्थापक या सचिव अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। अतः निम्न प्रकार से किए गए पृष्ठांकन अनियमित माने जाते हैं :—

जय इंजीनियरिंग कम्पनी के लिए,
रामचन्द्र साबू के लिए
सचिव

प्रेमचन्द्र

प्रमण्डल के धनादेशों का पृष्ठांकन करते समय "Per Pro" "लिए" प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ,

1. Per pro Bharat Industrial Co. Ltd,
   Pramendra Kumar

जब एक धनादेश के प्रापक का नाम "विनयकुमार व अन्य" लिखा जाता है तो उसका पृष्ठांकन निम्नांकित प्रकार से किया जाता है :—विनयकुमार व अन्यों के लिए
—विनयकुमार

जब संयुक्त प्रापकों में से किसी एक प्रापक का निधन हो जाता है तो शेष जीवित प्रापकों को शोधी बैंक के समक्ष मृत प्रापक के निधन का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रमाण-पत्र के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् जीवित व्यक्तियों द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित मान लिया जाता है।

जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं :—जब संयुक्त प्रापक पति-पत्नी होते हैं तो नियमित पृष्ठांकनों के लिए धनादेश पर दोनों व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, श्री व श्रीमती शिवकुमार जैन के पक्ष में लिखे गये धनादेश का निम्न प्रकार से पृष्ठांकन किया जाएगा :—

शिवकुमार जैन

रेखा जैन (धर्मपत्नी श्री शिवकुमार जैन)

जब प्रापक के नाम के साथ अन्य शब्द भी जुड़े हुए होते हैं तो पृष्ठांकन के समय उसे उन शब्दों को भी लिखना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक धनादेश भारत ट्रेडिंग कम्पनी के प्रमेन्द्र कुमार के पक्ष में कम्पनी के लिए लिखा जावे तो प्रमेन्द्र कुमार को उसका पृष्ठांकन करते समय यह स्पष्ट करना होगा कि वह कम्पनी की ओर से पृष्ठांकन कर रहा है। उसे निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करना होगा :—

Per या Pro Bharat Trading Co.
Pramendra Kumar

जब प्रापक का नाम "रामनारायण माता श्यामनारायण" या "रामनारायण, श्यामनारायण के लिए" लिखा जाता हो तो प्रापक को पृष्ठांकन के समय अपने नाम के अतिरिक्त अपना पद भी लिखना पड़ता है। उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में रामनारायण, श्यामनारायण के अधिकर्ता का कार्य कर रहा है। अतः उसे अपने नाम के अन्त में अधिकर्ता भी लिखना होगा।

जब किसी प्रापक का नाम "वाहक, मेरी पत्नी" लिखा हुआ हो तो उस धनादेश का प्रथम पृष्ठांकन लेखक की पत्नी द्वारा किया जायेगा। अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया गया पृष्ठांकन नियमित नहीं माना जाएगा। इसी प्रकार जब एक धनादेश पर प्रापक का नाम वाहक (किशननारायण) या "आदिष्ट व्यक्ति" को भुगतान के लिए लिखा जाता है तो उसका प्रथम पृष्ठांकन किशननारायण द्वारा किया जावेगा। जब प्रापक के नाम के आगे "केवल" शब्द जोड़ दिया जाता है तब उसका पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि "केवल" शब्द पृष्ठांकन के अधिकार को समाप्त करता है।

(x) प्रन्यासी द्वारा पृष्ठांकन (Indorsement by the Trustee) :—प्रन्यासी अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। अतः जब एक से अधिक प्रन्यासियों के पक्ष में कोई धनादेश लिखा जाता है तो उसके नियमित पृष्ठांकन के लिए सभी प्रन्यासियों को उस पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। प्रन्यासी निम्नांकित प्रकार से पृष्ठांकन करते हैं :—

रामलाल
श्यामलाल
प्रन्यासी, धर्मादिया ट्रस्ट, कलकत्ता।

	6 S. Das per R. Mahanty, Agent 7 S. Das by R. Mahanty His attorney		
Lala Panna Lal	Panna Lal P.Lal Lala Panna Lal	Regular Irregular Irregular	Full signature has to be given Lala is a courtesy title
Principal Naidu	R.Naidu Principal Naidu	Regular Irregular	The indorser should sign in his personal name
Prof. D. Singh, Govt. Collage, Ajmer	D. Singh. Govt. College, Ajmer Prof. D. Singh, Govt. College, Ajmer	Regular Irregular	The word professor should be avoided.
Mr. Heeralal	Hira Lal Heera Lal Shroff	Irregular Regular	Heeralal is an ordinary individual's name among the Hindus In order to facilitate indentification his surname or other should be added.
M. J. Dubas per R. J. Mody	R. J. Mody M.J. Dubas per R.J. Mody	Irregular Regular	The indorsement should in general correspond with the description of the payee.

Sharma	R. Sharma or Ramesh Sharma	Regular	In the case of personal name the indorsement must include christian name or suitable initials.
S. Das	Suresh Das	Irregular	
R. Mahanty for S. Das R.MahantyA/c S.Das R. Mahanty, Secretary Puri School	R. Mahanty for S.Das R. Mahanty A/c S. Das R. Mahanty, Secretary, Puri School	Regular Regular Regular	Additions are not permitted unless they are required for a reasonable interpretation of the name or designation
R.Mahanty	R. Mahanty	Irregular	
S.Das	For Puri School R. Mahanty, Secretary	Irregular	The indorsement does not show the fiduciary capacity. The payee is in his personal capacity while the indorsement purports to be otherwise.
	1 Per pro S.Das R.Mahanty 2 Per Pro Mr. S. Das R. Mahanty 3 R. Mahanty per S.Das 4 Per pro S. Das Satyamoorty & ons 5 For S. Das R. Mahanty Agent	Regular Regular	

Mrs. R. Sharma	*Mrs. R. Sharma or Mrs. Ram Lal Sharma*	*Irregular*	The indorsement requires the lady's signature. Ramlal is abviously the name of her husband.
Miss Shanta Sharma (now married)	Shanta Upadhyaya Nee Sharma	Regular	The French expression 'Nee' signifies 'born' and is used in stating a woman's maiden name.
Miss Kapoor	Miss Kapoor	Irregular	The indorsement should show the name in full.
	Kamala Kapoor	Regular	
Mrs. H. Desai	Mrs. H. Desai	Irregular	
	Lilavati Desai (Mrs. H. Desai)	Regular	
Mrs. Capt. Batra	Mrs. Batra	Irregular	
	Mrs. Rani Batra (wife of Capt. Batra)	Regular	

FIRMS AND JOINT PARTIES

M/S R. Sharma and Co.	R. Sharma and Co.	Regular	Partners have implied authority to sign in the name of the firm.
M/S R. Sharma ann Co.	R. Sharma and Co. K. Sharma, Partner	Regular	Though the indorsement is not wholly correct yet this form of indorsement is generally accepted.
M/S R. Sharma and Co.	R. Sharma and Co. K. Sharma	Irregular	The indorsement does not indicate that K. Sharma acts for the firm.
Ram Chandra Sharma and Co.	R. Sharma and Co. or R. C. Sharma and Co.	Irregular	Name of a firm cannot be abbreviated

BY MARK			
Ram Lal	X (His (Ram Lal's) mark, Mark witness Sushil Kumar 15 C Scheme Jaipur	Regular	Signature by a person unable to write is valid under section 3 (52) of the General Clauses Act. The usually accepted form requires the words 'his mark' to be added and the mark to be attested by a witness.
	X(His (Ram Lal's) mark) Mark in the presence of Sushil Kumar	Irregular	The words 'in the presence of' do not indicate that Shushil Kumar has signed as witness. The indorsement requires attestation by a witness.
	X (Mark of Ramlal)	Irregular	
BY WOMEN			
Mrs. Sharma	Shanta Sharma (wife or widow of G. Sharma)	Regular	
	Mrs. Sharma	Irregular	In the case of a personal name the indorsement must include christian name or suitable initials.
Mrs. R. Sharma	S.Sharma(wife or widow of R. Sharma)	Regular	As above.
	Shanta Sharma (Mrs. R. Sharma)	Regular	Signature showing christian name of the lady and at the same time indicating that she is Mr. R. Sharma is valid.

M/S R. S. Sharma	R. S. and R.S. Sharma (In one hand writing) R. S. Sharma, R. S. Sharma (In two handwriting)	Regular	These forms of endorsements are often accepted as they indicate more than one person bearing the same name.
	R.S. Sharma	Irregular	
Misses Sharma	Sharma Sisters or Kanta Sharma & Shanta Sharma	Regular	
M/S Sharma & S.Nandy	R. Sharma, . Nandy (In two handwriting) Sharma and Nandy	))Regular	Additions to names are permitted to make them intelligible
M/S R. Sharma & S. Nandy	R. Sharma S. Nandy (In the same handwriting) Sharma and Nandy	Irregular	1 The name signifies two separate persons 2 Christina names have been omitted
	R. Sharma and S. Nandy (In 2 handwritings)	Regular	
S. Sharma and Another	For self and another S. Sharma	Regular	
	S. Sharma and S. Nandy (The other referred to)	Irregular	An indorsement without additions to the name is preferable if such additions are not necessary to make the names intelligible

Sharma and Co.	R. Sharma and Co.	Irregular	Additions to or alteration of a firm's name is not allowed
R. Sharma and Co.	Sharma and Co.	Irregular	As above
M/s Sharmas	Sharmas	)	
	Sharma and Sharma	)	
	R. Sharma and Sons	)Regular	The cheque is irregularly drawn but may be paid if endorsed in any of the forms.
	R. and R. Sharma	)	
	R. Sharma and R. Sharma	)	
	Sharma Brothers	)	
	Sharma and Sons	)	
	Sharma and Co.	Irregular	It do not a firm which may consist of partners who do not bear the name Sharma whereas M/S Sharma signifies a No. of Sharmas.
Mohan Lal Sohan Lal	1. Mohan Lal Sohan Lal	Regular	
	2. For Mohan Lal Sohan Lal Mohan Lal partner	Regular	
	3. Mohan Lal partner Mohan Lal Sohan Lal		
Sharma Brothers	Sharma brothers	Irregular	
	R. and S. Sharma	Regular	
	R. Sharma and S. Sharma	)Irregular	Additions are not permitted except where necessary to help make a name intelligible.

AGENTS

Ramchandra Sharma	Per pro Ramchandra Sharma (Sd) Vishnu Pant	Regular	
	Per Pro Ramchandra Sharma Pro Vishnu Pant (Sd) Ganpat Pandey	Irregular	Delegated powers cannot be delegated.
Do	Ramchandra Sharma by his attorney. (Sd) Vishnu Pant	Regular	
Do	For Ramchandra Sharma Sd. Vishnu Pant, Agent	Regular	
J.S. Mehta	For J.S. Mehta Sd. Sohanlal	Irregular	Does not indicate the authority of the indorser
	On behalf of J.S. Mehta Sohanlal	Irregular	As above
	On behalf of J.S. Mehta Sohanlal Manager	Regular	

R.Sharma or P.Sharma	1. R. Sharma	Regular	The N.I. Act (Section 13) permits alternative payee.
	2. P. Sharma	Regular	
Hira Lal Desai and Mrs. Desai	1. Hiralal Desai Lilavati Desai	Regular	Double handwriting
	2. For self and Mrs. Desai Hira Lal Desai	Regular	Authority may be presumed.
CLUBS AND SCHOOLS			
The Officers Club Didwana	1. S.B.L. Rawat, Secy. Officers Club, Didwana	Irregular	
	2. For and on behalf of the Officers Club Didwana S.B.L. Rawat	Regular	
The Secy. Sarswati Pustakalay, Fatehpur	For and on behalf of the Sarswati Pustakalaya, S.L. Sharma, Secretary	Regular	
	S.L. Sharma, Secretary, Sarswati Pustakalaya, Fatehpur	Irregular	

EXECUTORS AND ADMINISTRATORS

R. Sharma (Now deceased)	S. Kapoor T. Sharma Executors (or administrators) of the late Shri R. Sharma	Regular	
	For self and Co-executors (or administrators) of the Late Shri R. Sharma. Sd. S. Kapoor	Regular	Executors and administrators are presumed to have authority to act on behalf of the co-executors or co-administrators.
	S. Kapoor, Executor or administrator of the late Shri R. Sharma.	Regular	
	S. Sharma, Son of the late Shri R. Sharma	Irregular	Persons other than executors and administrators are required to establish their authority by producing succession certificates or a valid order of the Court.

TRUSTEES

Payee	Indorsement		
The Trustees of the late Shri P. Gupta	For self and co-trustees of the late Shri P. Gupta (Sd) M. Gupta	Irregular	Trustees cannot delegate their authority even to their colleagues.
	M. Gupta, L. P. Gupta Trustees of the late Shri P. Gupta	Regular	
M. Gupta and L.P. Gupta Trustees of the late Shri P. Gupta	M. Gupta L.P. Gupta	Irregular	The indorsement does not indicate the fiduciary capacity of the signatories.
S. Sharma (Deceased)	R. Sharma, L. Sharma Trustees of the late Shri S. Sharma	Regular	
	R. Sharma, Lone trustee of late Shri S. Sharma	Regular	
	Per pro or For the Trustees of Late Shri S. Sharma (Sd) R. Sharma	Irregular	Trustees cannot delegate their authorities.

EXECUTORS AND ADMINISTRATORS

R. Sharma (Now deceased)	S. Kapoor T. Sharma Executors (or administrators) of the late Shri R. Sharma	Regular	
	For self and Co-executors (or administrators) of the Late Shri R. Sharma. Sd. S. Kapoor	Regular	Executors and administrators are presumed to have authority to act on behalf of the co-executors or co-administrators.
	S. Kapoor, Executor or administrator of the late Shri R. Sharma.	Regular	
	S. Sharma, Son of the late Shri R. Sharma	Irregular	Persons other than executors and administrators are required to establish their authority by producing succession certificates or a valid order of the Court.

S. Kapoor & T. Sharma Executors of the Late Shri R. Sharma	For self and co-executors of the late Shri R. Sharma Sd. S. Kapoor	Regular	
S. Kapoor and another executor of the late Shri R. Sharma	For self and co-executor of the late Shri R Sharma T. Gupta	Regular	
Executors of the late Shri S. Sharma	For self and co-executors Sd. S. Kapoor	Irregular	Does not make the name intelligible
	S. Kapoor, Executor of the late Shri S. Sharma	Irregular	Does not indicate that the signatory executor is acting on behalf of all the executors.
	Per pro executor of the late Shri Sharma. Sd. Ramesh Chandra.	Irregular	The executors have no implied authority to delegate their authority to outsiders.
Representatives of the late Shri S. Sharma	For self and co-executors or co-administrators of the late Shri S. Sharma. Sd. S. Kapoor executor	Regular	Executors and administrators are the legal representatives of the deceased.

Indorsement		Remarks
For S. Sharma (Deceased) Sd. S Kapoor Sole executor	Regular	
For S. Sharma (Deceased) Pro S. Kapoor Sd. L. Sapru	Irregular	The executors have no implied authority to delegate their authority to outsiders.

Note :—When the name of the payee or the indorsee as stated in the cheque does not show that he is dead an indorsement by the executors or administrators, however, should required confirmation.

COMPANIES

Payee	Indorsement	
Investment Co. Ltd.	1. Per pro Investment Co. Ltd. P. Gupta, Secretary.	Regular
	2. Per pro Investment Co. Ltd. P. Gupta	
	3. Pro Investment Co. Ltd. P. Sen, Director	
	4. Investment Co. Ltd. Per P. Gupta, Secretary	

5. Investment Co. Ltd. P. Sen, Director	Regular	
6. For Investment Co. Ltd., R. Sharma, Manager	"	
7. P. P. Investment Co. Ltd., Sharma & Co.	"	
8. For Investment Co. Ltd. For Debentures Ltd. K. Kapoor, Secretary	"	
9. For Investment Co. Ltd. in liquidation Sd. R. Sharma, T. Gupta Liquidators	"	
10. For Investment Co. Ltd. B. Kohli, Receiver	"	
11. For Investment Co. Ltd. R. Sharma	Irregular	Does not indicate the position of the signatory

	12. For Investment Co. Ltd. R.C. khanna Pro. Secretary	Irregular	The Secretary cannot delegate his powers.
	13. For Investment Co. Ltd. R. Sharma, Cashier	"	Persons below the calibre of Secy. cannot endorse.
	14. R. Sharma, Secy. The Investment Co. Ltd.	"	The Secy. should endorse on behalf of the Co.
	15. The Investment Co. Ltd.	"	The indorsement is a correct one but is discouraged usually
The Investment Co. Ltd R. Sharma & Co. Agents	Per Pro Investments Co. Ltd. R. Sharma & Co. Agents	Regular	The cheque is payable to the Co. through their specied agents
Secretary, Baroda Bank Ltd. Baroda	For Bank of Baroda A. L. Sharma Secretary	Regular	....

प्रश्न

1. पृष्ठांकन की परिभाषा दीजिए। चैकों पर पृष्ठांकन कितने प्रकार का होता है? उदाहरण सहित समझाइए। (लखनऊ, बी. कॉम. 1976)
2. विभिन्न प्रकार के पृष्ठांकनों की व्याख्या कीजिए। चैकों का कब और कैसे पृष्ठांकन किया जाना चाहिए? (लखनऊ, बी. कॉम. 1974)
2. A एक व्यापारी है। उसे एक विनिमय बिल मिलता है। क्या परिणाम होगा? यदि (अ) : Y का पृष्ठांकन जाली है, परन्तु Z ने पत्र 'मूल्य के लिए' और बिना सूचना के लिया है। (ब) आहर्ता के हस्ताक्षर जाली हैं।
(राज. बी. कॉम, 1971)
4. स्पष्ट कीजिए : (1) मिस्टर सिद्ध को किसी से एक चैक प्राप्त हुआ। वह मिस्टर राम के नाम उसका विशेष पृष्ठांकन करना चाहता है। इस विशेष पृष्ठांकन का नमूना दीजिए। (दिल्ली., बी. कॉम. 1971)
5. (अ) A ने B की अलमारी तोड़कर चैक-बुक निकाल कर चैक पर जाली हस्ताक्षर करके बैंक से भुगतान प्राप्त कर लिया। बतलाइए इसमें क्षति के लिए कौन दोषी होगा और क्यों?
   (ब) A एक बिल का आहार्यी साधारण पृष्ठांकन करके B को सौंप देता है। B उसके ऊपर विशेष पृष्ठांकन करके (C को या उसके आदेशानुसार) C को हस्तांतरित करता है। C बिना पृष्ठांकन के इस बिल को D को दे देता है। D के अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।
   (राज. बी. कॉम, 1970)
6. एक बिल अ अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय है। ब उसे चुराकर अ का जाली बेचान कर लेता है और स के पक्ष में उसका बेचान कर देता है। स उसे मूल्य चुकाकर सद्विश्वास के साथ प्राप्त करता है। क्या स को अच्छा अधिकार प्राप्त होगा? सकारण उत्तर दीजिए। (राज. बी. कॉम. 1969)
7. पृष्ठांकन की परिभाषा दीजिए। एक विपत्र के पृष्ठांकक का किसके प्रति क्या दायित्व है? कमजोर नेत्र-ज्योति के वृद्ध व्यक्ति को यह बता कर कि वह मुख्य मन्त्री के नाम प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करा रहा है उससे एक विपत्र पर हस्ताक्षर करवा लिये गये। क्या यह वृद्ध व्यक्ति पृष्ठांकक के रूप में दायी है? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिए। (राज. बी. कॉम., 1962)
8. निम्नांकित के पक्ष में लिखे गये चैकों पर सही पृष्ठांकन के रूप दीजिए :—
   (i) लैफ्टीनेंट कर्नल पी० मुखर्जी,
   (ii) X,Y,Z. कम्पनी लिमिटेड (विघटन में),
   (iii) निरक्षर व्यक्ति,
   (iv) नगर,
   (v) कस्टम के कलक्टर,
   (vi) मिस माया रस्तोगी (अब इसका विवाह श्री डोबोलिया से हो गया है),
   (vii) दिनेश (अनपढ़)।

11

रेखाँकन

(CROSSING)

रेखांकन योग्य सलेख—रेखांकन केवल धनादेशों (cheques), बैंक ड्राफ्ट्स और पोस्टल आर्डरस् का किया जाता है। विपत्रों एवं प्रतिज्ञा-पत्रों का रेखांकन नहीं किया जाता है क्योंकि इन दोनों विलेखों पर किया गया रेखांकन सर्वथा प्रभावहीन होता है। रेखांकन विलेखों का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

उद्देश्य—रेखांकन धनादेशों के भुगतान को सुरक्षा प्रदान करते हैं क्योंकि रेखांकित विलेखों का भुगतान केवल एक अधिकोष को किया जाता है व अधिकोष रेखांकित विलेखों के संग्रहण व भुगतान की सुविधा केवल अपने ग्राहकों को प्रदान करते हैं। अधिकोष खाता खोलने से पूर्व अपने प्रत्येक भावी ग्राहक की आर्थिक स्थिति, चरित्र एवं व्यावसायिक व्यवहारों की जानकारी प्राप्त करते हैं और इन तत्वों की श्रेष्ठता से आश्वस्त होने पर ही उन्हें अपना ग्राहक बनाते हैं। अतः ऐसे ग्राहकों से बेईमानी की कम आशंका रहती है। इसके अतिरिक्त संग्राहक अधिकोष इन धनादेशों के संग्रहण से पूर्व पूर्ण सावधानी से काम करता है। अतः भोगी अधिकोष के समक्ष गलत भुगतान का डर कम रहता है।

रेखांकन का अर्थ एवं प्रकार—रेखांकन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(i) सामान्य रेखांकन (General crossing) व (ii) विशिष्ट रेखांकन (Special crossing)। भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 123 में रेखांकन की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

"जब एक धनादेश के अग्रभाग पर दो समानान्तर व तिरछी रेखाओं के भीतर "एण्ड कम्पनी" अथवा इनका संक्षिप्त रूप अंकित कर दिया जाता है अथवा केवल दो समानान्तर व तिरछी रेखाएं खींच दी जाती हैं अथवा उनके बीच में "अविनिमय साध्य" शब्द भी अंकित कर दिए जाते हैं तो उस क्रिया को रेखांकन कहा जाता है और इस प्रकार के धनादेश को रेखांकित धनादेश कहा जाता है।"[1]

इस परिभाषा के अनुसार एक वैध सामान्य रेखांकन के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना पड़ता है —

1. **अग्रभाग पर**—रेखांकन धनादेश के अग्रभाग पर किया जाना चाहिए। पृष्ठ भाग पर किया गया रेखांकन वैध नहीं होता है।

---

1. "Where a cheque bears across its face an addition of the word & Company or any abbreviation thereof between two parallel transverse lines simply, either with or without the words "Not Negotiable" that addition shall be deemed crossing."

2. दो समानान्तर रेखाएं—रेखांकन के लिए दो तिरछी व समानान्तर रेखाएं खींची जानी चाहिए। अन्य विधि से खींची गई रेखाओं (यथा +, ×, = आदि) को रेखांकन नहीं कहा जाता है।

3. रेखाओं के मध्य निश्चित शब्द हों—रेखाओं के भीतर "एण्ड कंपनी", "एण्ड को" (& Co) अथवा "अविनिमय साध्य" (Not Negotiable) वाक्यांश भी अंकित किए जा सकते हैं, परन्तु इनका अंकन अनिवार्य नहीं होता है। केवल दो समानान्तर व तिरछी रेखाएं भी उतनी ही प्रभावशाली होती हैं जितनी इन वाक्यांशों युक्त रेखाएं।

4. केवल चैक पर—रेखांकन केवल चैक पर ही किया जाता है। अन्य विनिमय-साध्य विलेखों, बिल अथवा प्रतिज्ञा-पत्र पर रेखांकन नहीं किया जाता।

सामान्य रेखांकन के कुछ नमूने (Specimen) नीचे दिए जा रहे हैं—

विशिष्ट रेखांकन (Special crossing)—"जब किसी धनादेश के अग्रभाग पर किसी अधिकोष का नाम लिख दिया जाता है तो उस क्रिया को विशिष्ट रेखांकन कहा जाता है और इस प्रकार से रेखांकित धनादेश को विशिष्ट रेखांकित धनादेश कहा जाता है। धनादेश पर जिस अधिकोष का नाम लिखा जाता है, रेखांकन उसी अधिकोष के पक्ष में किया हुआ माना जाता है। इस रेखांकन में भी अधिकोष के नाम के अतिरिक्त 'अविनिमय साध्य' वाक्यांश लिखा जा सकता है" (धारा 124)।

इस परिभाषा के अनुसार एक वैध विशिष्ट रेखांकन के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना पड़ता है—

1 रेखांकन अग्रभाग पर—रेखांकन धनादेश के अग्रभाग पर होता है।

2 बैंक का नाम अनिवार्य—रेखांकन के लिए किसी बैंक का नाम लिखना पड़ता है किन्तु उसे रेखाओं के भीतर लिखना जरूरी नहीं होता है।

3. अविनिमय साध्य शब्द—अधिकोष के नाम के साथ "अविनिमय साध्य" (Not-Negotiable) शब्दों को भी लिखा जा सकता है।

4. रेखाएं आवश्यक नहीं—रेखांकन के लिए दो समानान्तर रेखाएं खींचना जरूरी नहीं होता है किन्तु व्यवहार में इस प्रकार की रेखाएं खींची जाती हैं व उनके मध्य वांछित बैंक का नाम लिखा जाता है।

विशिष्ट रेखांकन के कुछ नमूने नीचे दिए जा रहे हैं—

बैंक ड्राफ्ट पोस्टल ऑर्डर का भी उपर्युक्त प्रकार से रेखांकन किया जा सकता है।

रेखांकन की पद्धति—रेखांकन करते समय विलेख के बाएं कोने के ऊपरी भाग पर दो तिरछी रेखाएं खींच दी जाती हैं और उनके मध्य "एण्ड को" आदि वाक्यांश अथवा किसी बैंक का नाम अंकित कर दिया जाता है।

रेखांकन पेंसिल से भी किया जा सकता है किन्तु पेन्सिल के रेखांकन को मिटाया जा सकता है और रेखांकन के मिटने पर उसका उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। अतः व्यवहार में रेखांकन स्याही से ही किया जाता है। जहाँ पर रेखांकन काफ़ी मात्रा में किए जाते हैं वहां पर रेखांकन के लिए रबर की मोहर बना ली जाती है और रेखांकन उस मोहर की सहायता से किया जाता है। रबर की मोहर से किया गया रेखांकन स्पष्ट व अमिट होता है।

विशेष रेखांकन के लिए बैंक अपनी निजी मोहर रखते हैं। जब विशेष रेखांकन की आवश्यकता होती है तब वे अपनी इस मोहर को धनादेश के अग्रभाग पर लगा देते हैं।

दोहरा रेखांकन (Double Crossing)—जब एक अधिकोष विशिष्ट रूप से रेखांकित चैक का किसी अभिकर्ता अधिकोष के पक्ष में संग्रहणार्थ पुनः रेखांकन कर देता है तो उस रेखांकन को दोहरा रेखांकन कहा जाता है। जब एक चैक का दो अधिकोषों के पक्ष में रेखांकन किया जाता है व दोनों में से एक भी अधिकोष उसके अभिकर्ता का कार्य नहीं करता है तो शोधी अधिकोष उस धनादेश का भुगतान नहीं करता है। इस प्रकार का दोहरा रेखांकन अवैध माना जाता है (धारा 125 व 127)।

"उपर्युक्त व्यवस्था के आधार पर एक दोहरे रेखांकन के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना पड़ता है—

1. दोहरा रेखांकन विशिष्ट रूप से रेखांकित धनादेशों का किया जाता है।

2. यह रेखांकन केवल एक अधिकोष द्वारा किया जाता है। एक व्यक्ति अथवा संस्था इस प्रकार का रेखांकन नहीं कर सकते। यह रेखांकन केवल वही अधिकोष कर सकता है जिसके पक्ष में विशिष्ट रेखांकन किया जाता है।

3. दोहरे रेखांकन के लिए दो पृथक् अधिकोषों का अस्तित्व अनिवार्य होता है। जब एक धनादेश एक ही अधिकोष की दो शाखाओं के पक्ष में रेखांकित किया जाता है तो उसे दोहरा रेखांकन नहीं माना जाता है क्योंकि उन दोनों शाखाओं का अस्तित्व पृथक् नहीं होता है। जब दोहरा रेखांकन किसी अधिकोष के प्रधान कार्यालय व उसकी किसी शाखा पर किया जाता है तब भी उस रेखांकन को दोहरा रेखांकन नहीं माना जाता है।

दोहरे रेखांकन की विधि—जब किसी विलेख पर दोहरा रेखांकन किया जाता है तो मूल अधिकोष को रेखांकन पर "संग्रहण के लिए अभिकर्ता" (Agent for collection) अनिवार्यतः लिखना पड़ता है। जब दोहरा रेखांकन करने वाला अधिकोष इस वाक्यांश को नहीं लिखता है तो शोधी अधिकोष सम्बन्धित विलेख को लौटा देता है, उसका भुगतान नहीं करता है। उदाहरणार्थ, यदि देना बैंक अपने पक्ष में रेखांकित एक चैक का पंजाब नेशनल बैंक से संग्रहण करवाना चाहे तो उसे दोहरा रेखांकन निम्नांकित प्रकार से करना होगा—

Dena Bank to Punjab National Bank as agent for collection.

जब एक शाखा का प्रबन्धक (एजेन्ट) किसी विलेख की पीठ पर निम्नांकित प्रकार से बेचान कर देता है तो उसे भी दोहरा रेखांकन माना जाता है—

Pay to Punjab National Bank as agent for collection
For Dena Bank, Bikaner
Bhagirath, agent No. 150

जब एक अधिकोष की शाखा अपने ही अधिकोष की किसी दूसरी शाखा के लिए संग्रहणार्थ कार्य करती है तो संग्राहक शाखा को अभिकर्ता शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि एक शाखा दूसरी शाखा का स्वतः ही प्रतिनिधित्व करती है। ऐसे रेखांकनों को दोहरा रेखांकन भी नहीं माना जाता है।

रेखांकन के प्रभाव —

1. खिड़की पर नकद भुगतान नहीं होना — रेखांकित धनादेशों का नकद भुगतान बैंक खिड़की पर नहीं मिल सकता। ऐसे धनादेशों का भुगतान प्राप्त करने के लिए धारकों को किसी अधिकोष में खाता खुलवाना पड़ता है अथवा उनका किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में बेचान करना पड़ता है जिनका किसी अधिकोष में खाता होता है। जब धारक का पहले से ही किसी बैंक में खाता होता है तो वह ऐसे धनादेशों को अपने बैंक के पास संग्रहणार्थ जमा करा देता है।

एक परिचित व्यक्ति को भी रेखांकित बैंक की खिड़की पर नकद भुगतान नहीं किया जा सकता है। "स्मिथ बनाम यूनियन बैंक" विवाद इसका स्पष्ट उदाहरण है। ऐसा करने पर बैंक कानूनी संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार खो देता है।

जब एक व्यक्ति को अपने अधिकोष पर लिखा रेखांकित धनादेश प्राप्त होता है तो वह उस धनादेश का भी नकद भुगतान खिड़की पर नहीं ले सकता। इस धनादेश को भी उसे पहले अपने खाते में जमा करवाना पड़ता है। खाते में धनादेश जमा करवाने के पश्चात् ग्राहक धनादेश की राशि तुरन्त निकाल सकता है। शोधी अधिकोष ऐसे धनादेशों के भुगतान के समय दोहरी हैसियत में कार्य कर सकता है। वह लेखक के लिए शोधी अधिकोष के रूप में है और धारक के लिए संग्राहक अधिकोष का कार्य करता है।

2. किसी बैंक द्वारा ही संग्रहण सम्भव — सामान्य रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान किसी अधिकोष को ही किया जा सकता है।[1] संग्राहक अधिकोष इस सेवा के लिए अपने ग्राहक से संग्रहण शुल्क वसूल कर सकता है। जब संग्राहक अधिकोष को धनादेश की राशि प्राप्त हो जाती है तो वह प्राप्त राशि को ग्राहक के खाते में जमा कर देता है व संग्रहण शुल्क उसके नाम लिख देता है। कुछ अधिकोष आजकल संग्रहण का कार्य निःशुल्क भी करते हैं।

विशेष रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान केवल उस अधिकोष को प्राप्त होता है जिसके पक्ष में धनादेश का रेखांकन किया जाता है अथवा उसके अभिकर्ता अधिकोष को प्राप्त होता है। शेष बातें सामान्य रेखांकन की भांति ही लागू होती हैं। दोहरे रेखांकन की अवस्था में रेखांकित धनादेश का भुगतान अभिकर्ता अधिकोष मूल अधिकोष की ओर से प्राप्त करता है।

---

1. "Where a cheque is crossed generally the bank on whom it is drawn shall not pay it otherwise than to a banker."

रेखांकन के अधिकारी पक्षकार (Who can cross the cheque)

1. लेखक द्वारा (By Drawer)—एक धनादेश का लेखक उसका सामान्य अथवा विशिष्ट रेखांकन करने का अधिकारी होता है।

2. धारक द्वारा (By Holder)—जब एक धनादेश का लेखक अपने धनादेश का रेखांकन नहीं करता है तो उसका प्रापक या धारक उसका सामान्य या विशिष्ट रेखांकन कर सकता है।

3. बैंक द्वारा (By Bank)—कोई भी संग्रहकर्त्ता बैंक अरेखांकित चैक को रेखांकित तथा "सामान्य रेखांकित" चैक को विशिष्ट रेखांकित (अपने नाम में) कर सकता है।

4 सामान्य से विशिष्ट रेखांकन– जब एक धनादेश का लेखक अपने धनादेश का सामान्य रेखांकन करता है तो उसका धारक उसका विशिष्ट रेखांकन कर सकता है। परन्तु इसका विपरीत अर्थात् विशिष्ट रेखांकन का सामान्य रेखांकन के रूप में परिवर्तन करना सम्भव नहीं है।

5. नये शब्द जोड़ना—एक धनादेश का धारक चाहे तो अपने रेखांकन में अथवा पूर्ववर्ती रेखांकन में "अविनिमय साध्य" (Not Negotiable) या "केवल प्रापक के खाते में देय" (Payee's account only) जैसे वाक्यांश भी अंकित कर सकता है।

6. पुनः रेखांकन—एक विशेष रूप से रेखांकित धनादेश का सम्बन्धित अधिकोष उसके संग्रहण के लिए उसका पुनः रेखांकन कर सकता है। पुनः रेखांकन अभिकर्ता अधिकोष के पक्ष में किया जाता है।

रेखांकन का समय - एक धनादेश पर सामान्य रेखांकन उसके जीवन-काल में कभी भी किया जा सकता है किन्तु विशिष्ट रेखांकन केवल धनादेश के प्रापक या धारक के अधिकोष का नाम ज्ञात होने पर ही किया जाता है अन्यथा उसे उस धनादेश का किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करना पड़ता है अथवा उस अधिकोष में अपना खाता खोलना पड़ता है। इसी प्रकार दोहरा रेखांकन भी तभी संभव होता है जबकि दोनों अधिकोषों में एजेन्सी कार्य के लिए पहले से ही अनुबन्ध हो जाता है अन्यथा जिस अधिकोष के पक्ष में दोहरा रेखांकन किया जाता है वह एजेन्सी कार्य करने से इन्कार कर सकती है।

अधिकोषों का दायित्व—एक शोधी अधिकोष को किसी रेखांकित धनादेश का भुगतान अनिवार्यतः एक अधिकोष को करना पड़ता है (धारा 126)। एक सामान्य रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान किसी भी अधिकोष को किया जा सकता है किन्तु विशेष रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान केवल रेखांकन में निर्दिष्ट अधिकोष अथवा उसके अभिकर्ता अधिकोष को करना पड़ता है। जब वह ऐसे धनादेशों का भुगतान किसी व्यक्ति, संस्था या अनाधिकृत अधिकोष को कर देता है तो उस भुगतान को यथाक्रम भुगतान नहीं माना जाता है। फलतः जब इस प्रकार के भुगतान से संदर्भगत धनादेश के लेखक को किसी प्रकार की वित्तीय हानि हो जाती है तो उसे अपने ग्राहक की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है (धारा 129)। किन्तु जब भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश को देखने से यह पता नहीं चलता है कि धनादेश रेखांकित है अथवा रेखांकित था किन्तु उसका रेखांकन मिटा दिया गया है और शोधी अधिकोष उसका यथाक्रम भुगतान कर दे

तो उस पर इस प्रकार के भुगतान के लिए किसी प्रकार का दायित्व नहीं आता है और न इस प्रकार के भुगतान के लिए यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि वह धनादेश रेखांकित था (धारा 89)। जब एक रेखांकित धनादेश का शोधी अधिकोष यथाविधि भुगतान कर देता है तो उसे व उस धनादेश के लेखक को वे ही अधिकार व वही स्थान प्राप्त होता है जो एक धनादेश के वास्तविक स्वामी को भुगतान करने पर उन्हें प्राप्त होता (धारा 128)।

जब एक संग्राहक अधिकोष सद्विश्वास व सावधानीपूर्वक अपने किसी ग्राहक के लिए सामान्य अथवा विशेष रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान प्राप्त करता है तो वह स्वयं इस प्रकार के संग्रहण के लिए धनादेश के स्वामी के प्रति किसी भी प्रकार से दायी नहीं होता है। किन्तु जब एक संग्राहक अधिकोष किसी धनादेश के संग्रहण के पूर्व ही उसकी राशि अपने ग्राहक के खाते में जमा कर देता है तो वह गलत भुगतान प्राप्ति के लिए व्यक्तिशःदायी होता है (धारा 131)।

रेखांकन का विलोपन (Cancellation of crossing)

(i) केवल आहर्ता द्वारा—एक धनादेश का रेखांकन उसके लेखक, प्रापक अथवा धारक द्वारा किया जा सकता है किन्तु उसका विलोपन केवल उसके आहर्ता (लेखक) द्वारा ही किया जा सकता है, अन्य कोई पक्ष रेखांकन को निरस्त करने का अधिकारी नहीं होता है।

(ii) "नकद भुगतान किया जाय" शब्द जोड़ें—रेखांकन के विलोपन के लिए धनादेश का लेखक रेखांकन को काट देता है और उसके स्थान पर अपने अधिकोष को नकद भुगतान (pay cash) का आदेश अंकित कर देता है।

(iii) हस्ताक्षर आवश्यक—लेखक द्वारा "Pay Cash" आदेश के नीचे अपने नमूने के पूरे हस्ताक्षर बना देना भी आवश्यक है। ऐसे चैक की राशि नकद प्राप्त की जा सकती है।

(iv) अन्य पक्षों की सहमति—रेखांकन का विलोपन महत्वपूर्ण परिवर्तन माना जाता है। अतः इसके लिए लेखक को अन्य पक्षों की सहमति लेनी पड़ती है। जब एक धनादेश का लेखक अपने रेखांकन को समस्त पक्षों की सहमति के बिना हटा देता है तो उसका यह कार्य अवैध एवं प्रभावहीन माना जाता है। फलतः शोधी अधिकोष उसके इस कार्य को मान्यता नहीं देते हैं अर्थात् उस धनादेश का नकद भुगतान नहीं करते हैं।

(v) चैक का खोलना (Opening of Cheque)—रेखांकन के विलोपन को "चैक का खोलना" कहा जाता है क्योंकि रेखांकन के विलोपन के पश्चात् एक रेखांकित चैक पुनः खिला (open) धनादेश बन जाता है और उसका धारक उसका शोधी अधिकोष की खिड़की पर नकद भुगतान कर सकता है।

एक धनादेश के पृष्ठांकन से पूर्व किए गए रेखांकन को सुगमतापूर्वक विलुप्त किया जा सकता है, क्योंकि ऐसी दशा में लेखक को अन्य पक्षों की सहमति नहीं लेनी पड़ती है। किन्तु जब पृष्ठांकन के पश्चात् किसी धनादेश का रेखांकन मिटाया जाता है तो लेखक को कठिनाई हो सकती है क्योंकि हो सकता है कि धारक पृष्ठांकक उसे इस कार्य में सहयोग न दें।

(vi) बैंक का दायित्व (Liability of Bank)—जब एक अनधिकृत व्यक्ति लेखक के जाली हस्ताक्षरों से रेखांकन को विलुप्त कर देता है और शोधी अधिकोष उसका नकद भुगतान कर देता है तो वह गलत भुगतान के लिए दायी होता है।

कुछ विशिष्ट रेखांकनों का अभिप्राय एवं महत्त्व

(अ) अविनिमय साध्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing)—यद्यपि धनादेशों का रेखांकन करते समय उपर्युक्त वाक्यांश को अंकित किया जाता है किन्तु यह वाक्यांश सम्बन्धित धनादेशों की परक्राम्यता को प्रतिबन्धित नहीं करता है।[1] अतः इस प्रकार से रेखांकित धनादेशों का पृष्ठांकन या बेचान उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार अन्य धनादेशों का किया जाता है। यह रेखांकन केवल धनादेशों के दोषों को शाश्वत करता है और वे धारक से अनुवर्ती धारक के पास धनादेश के साथ हस्तांतरित हो जाते हैं अर्थात् जब किसी सामान्य अथवा विशेष रूप से रेखांकित चैक पर "अविनिमय साध्य" शब्द अंकित कर दिये जाते हैं तो ऐसे चैक का क्रेता उस चैक पर उससे बेहतर स्वामित्व न तो स्वयं प्राप्त कर सकता है और न अपने अनुवर्ती धारक को देने की क्षमता रखता है, जैसा कि उस व्यक्ति के पास था जिससे उसने यह चैक प्राप्त किया हो।[2]

चूंकि इस प्रकार से रेखांकित धनादेश के दोष शाश्वत होते हैं अतः इनका कोई भी धारक यथाविधि धारक नहीं बन सकता। यदि धनादेश का हस्तांतरणकर्ता चोर है तो उसके क्रेता या हस्तांतरिती का स्वामित्व भी दूषित हो जायेगा भले ही उसने वह चैक प्रतिफल के बदले तथा परम सद्विश्वास से प्राप्त किया हो। "अविनिमय साध्य" वाक्यांश प्रत्येक धारक को धनादेशों के दोषों के प्रति सावधान करता है। अतः कोई भी धारक अपने पूर्ववर्ती धारक से इस प्रकार के धनादेश को सद्विश्वास पूर्वक नहीं ले सकता। यदि ऐसे चैक की राशि किसी व्यक्ति ने वसूल भी कर ली है, और बाद में पता चले कि चैक को पृष्ठांकित करने वाला चोर था अथवा उसका अधिकार दूषित था, तो उस चैक की राशि असली अधिकारी को वापस करनी पड़ेगी। अतः ऐसे चैक केवल जानकार एवं विश्वसनीय पक्षों से ही लेने चाहिए ताकि आवश्यकता पर राशि वसूल की जा सके।[3]

(ब) केवल प्रापक को देय (Payee's Account only)—भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम में रेखांकन के उपर्युक्त स्वरूप का कोई प्रावधान नहीं है किन्तु फिर भी इस प्रकार का रेखांकन प्रचलन में है।

(i) लार्ड हेल्सबरी का मत—इस सम्बन्ध में लार्ड हेल्सबरी की धारणा है कि ऐसे चैकों का संग्रहण केवल मूल प्रापक (जिसका नाम चैक पर अंकित है) के लिए किया जावे और पृष्ठांकन पर कोई ध्यान नहीं दिया जावे।

---

1. टेसर्स प्रिया बनाम गुलाबचन्द विवाद 1963।
2. "A person taking a cheque crossed generally or specially bearing in either case the words 'not negotiable' shall not have, and shall not be capable of giving, a better title to the cheque than that which the person from he took it had." Indian Negotiable Instruments Act 1881, Sec 130.
3. इम्पीरियल बैंक ऑफ स्टेट सेविंग्स बैंक ऑफ विक्टोरिया बनाम परमेश्वर राइट विवाद देखें।

(ii) पेजेट का मत—पेजेट का "A/c payee only" के सम्बन्ध में यह मत है कि यदि ऐसा रेखांकन स्वयं लेखक ने किया है तो चैक की राशि किसी अन्य व्यक्ति के खाते में जमा करना लेखक के आदेश की स्पष्ट अवहेलना होगी। किन्तु यदि ऐसा रेखांकन किसी धारक (Holder) द्वारा किया गया है तो चैक की मूल भावना को ध्यान में रखते हुए इसका भुगतान केवल मूल प्रापक के खाते में जमा करने का तात्पर्य होगा चैक को बेचान असाध्य बनाना। इस प्रकार पृष्ठांकन ही व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार पेजेट स्वयं इस प्रश्न पर स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। ऐसी स्थिति में बैंक को चैकों का भुगतान करने से पूर्व भली-भांति जांच-पड़ताल कर अपनी सन्तुष्टि कर लेनी चाहिए।

यह रेखांकन सन्दर्भगत धनादेश की विनिमय साध्यता पर कोई प्रभाव नहीं डालता है। अतः इस रेखांकन के पश्चात भी धनादेश का पृष्ठांकन किया जा सकता है।

इस प्रकार के रेखांकन को भोगी अधिकोष मानने के लिए बाध्य नहीं होता है किन्तु जब रेखांकन के पश्चात संदर्भगत धनादेश का पृष्ठांकन हो जाता है तो उसे उसका भुगतान करने से पूर्व संग्राहक अधिकोष से इस तथ्य की पुष्टि करवानी पड़ती है कि धनादेश का भुगतान उसके प्रापक के लिए ही प्राप्त किया जा रहा है।

आधुनिक विचारधारा - संग्राहक अधिकोष को इस प्रकार से रेखांकित धनादेशों की राशि के संग्रहण से पूर्व इस तथ्य से अवश्य आश्वस्त हो जाना चाहिए कि धनादेश का भुगतान उसके प्रापक के लिए प्राप्त किया जा रहा है।[1] उदाहरणार्थ यदि किसी चैक पर Pay to Hari or bearer भी लिखा है और A/c payee only से रेखांकित है, तो ऐसी स्थिति में इस चैक की राशि का संग्रहण केवल हरि के खाते में जमा करने के लिए ही किया जावे।

रेखांकन से लाभ—(i) रेखांकन द्वारा धनादेशों का भुगतान सुरक्षित हो जाता है व (ii) देश में बैंकिंग की आदत विकसित होती है (iii) जिस देश में जितनी अधिक मात्रा में धनादेशों के माध्यम से आर्थिक व्यवहारों का निपटारा किया जाता है, उस देश में उतनी कम मात्रा में मुद्रा की आवश्यकता होती है। (iv) बैंकों में विनियोग बढ़ते हैं और (v) फलस्वरूप देश में उद्योगों, कृषि व व्यापार को आवश्यक मात्रा में ऋण सुविधा उपलब्ध हो जाती है।

प्रश्न

1. चैक का रेखांकन कितने प्रकार का होता है ? प्रत्येक प्रकार के रेखांकन का महत्व उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। (अजमेर, बी. कॉम. 1971)
2. विभिन्न प्रकार के रेखांकन का विवेचन कीजिए तथा इनका महत्व लिखिए। (राज. बी. कॉम., 1973, 1974)
3. परक्राम्यता एवं अपरक्राम्यता में अन्तर बतलाइए। क्या एक विशेष रेखांकित चैक का पुनः रेखांकन हो सकता है ? यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में ? (राज. बी. कॉम. 1966)

---

1. देखा बनाम नेशनल बैंक 1907

4. चैक का रेखांकन कौन कर सकता है? रेखांकन को रद्द किस प्रकार किया जा सकता है? दोहरे विशेष रेखाकन को समझाइये। (राज. बी. कॉम. 1969)
5. निम्नलिखित प्रकार के रेखाकन के प्रभावों की व्याख्या कीजिए—
(अ) सामान्य रेखांकन (ब) विशेष रेखांकन (स) रेखाकन के साथ "केवल प्रापक के खाते में" लिखना। (लखनऊ, बी. कॉम. 1976)
6 निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—
(i) एक रेखाकित चैक पर यह शब्द "केवल आदाता का खाता" लिखे है। इन शब्दों से किस बैंक पर प्रभाव पड़ेगा—वसूली करने वाले पर या भुगतान करनेवाले पर? (दिल्ली, बी कॉम. 1971)
(ii) अपरक्राम्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing)
(दिल्ली, बी. कॉम. 1972)
7. एक चैक के रेखांकन की वैधानिक स्थिति स्पष्ट कीजिये जबकि वह (अ) सामान्य रेखांकित हो, (ब) "स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया" शब्दों के साथ रेखांकित हो तथा (स) "अपरक्राम्य" (Not Negotiable) शब्द लिखकर रेखांकित हो।
(राज बी. कॉम 1962)

12
प्रस्तुतीकरण
(PRESENTMENT)

प्रस्तुतीकरण का अर्थ (Meaning of Presentment)—जब किसी विलेख का धारक या उसका अनधिकृत अभिकर्ता अपने विलेख को स्वीकृति या भुगतान के लिए उसके देनदार या लेनक के समक्ष प्रस्तुत करता है तो धारक या उसके अभिकर्ता की इस क्रिया को प्रस्तुतीकरण कहा जाता है। विनिमय बिल व प्रतिज्ञापत्र स्वीकृति और भुगतान के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं जबकि चैक, बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर आदि केवल भुगतान के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रस्तुतीकरण के समय आहार्यी (Drawee) के समक्ष मूल विलेख को प्रस्तुत किया जाता है ताकि वह उसकी जाँच कर सके और उसकी यथार्थता से आश्वस्त हो सके। जब एक आहार्यी किसी विलेख की स्वीकृति के लिए उसके प्रस्तुतीकरण की अनिवार्यता को निरस्त कर देता है तो ऐसे आहार्यी के समक्ष विलेख को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं होता है।

एक विलेख की स्वीकृति या अस्वीकृति के पश्चात् उसका प्रस्तुतकर्ता उसे पुनः अपने अधिकार में ले लेता है किन्तु जब वह उसे भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है तो वह भुगतान के पश्चात् उसे वापस नहीं ले सकता। भुगतानकर्ता उसे भुगतान के प्रमाणस्वरूप अपने पास रख लेता है। जब विलेख का अनादरण (भुगतान के अभाव में) हो जाता है तो उसका प्रस्तुतकर्ता उसे पुनः अपने अधिकार में ले लेता है अर्थात् उसे आहार्यी (देनदार) के पास नहीं छोड़ता है।

विपत्रों की स्वीकृति के लिए प्रस्तुतीकरण आवश्यक
(Presentment for Acceptance necessary)

1. भुगतान का स्थान—विपत्रों को भुगतान का स्थान जानने के लिए भी प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि कभी कभी ऐसे स्थान पर भुगतान की व्यवस्था होती है जो न तो आहार्यी का निवास स्थान है और न ही उसका व्यापारिक कार्यालय।

2. बिल में उल्लेख—साधारण विपत्रों में सिवाय दर्शनी पश्चात् विपत्रों को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना वैधानिक रूप से अनिवार्य नहीं है, किन्तु जब ऐसे विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुतीकरण अनिवार्य कर दिया जाता है तो ऐसे विपत्र के धारक को उसको स्वीकृति के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है और यह आहार्यी इसे स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी स्वीकृति से उत्पन्न समस्त दायित्वों के लिए उत्तरदायी होता है। दर्शनी पश्चात् विपत्रों को भुगतान के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है।

3 दर्शन पश्चात् बिल (After Sight Bill)—दर्शनी पश्चात् विपत्रों को

4. चैक का रेखांकन कौन कर सकता है ? रेखांकन को रद्द किस प्रकार किया जा सकता है ? दोहरे विशेष रेखांकन को समझाइये। (राज. बी. कॉम. 1969)

5. निम्नलिखित प्रकार के रेखाकन के प्रभावों की व्याख्या कीजिए—
(अ) सामान्य रेखांकन (ब) विशेष रेखांकन (स) रेखाकन के साथ "केवल प्रापक के खाते में" लिखना। (लखनऊ, बी. कॉम. 1976)

6 निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—
(i) एक रेखांकित चैक पर यह शब्द "केवल आदाता का खाता" लिखे है। इन शब्दों से किस बैंक पर प्रभाव पड़ेगा—वसूली करने वाले पर या अदायगी करनेवाले पर ? (दिल्ली, बी कॉम. 1971)
(ii) अपरक्राम्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing) (दिल्ली, बी. कॉम. 1972)

7. एक चैक के रेखांकन की वैधानिक स्थिति स्पष्ट कीजिये जबकि यह (अ) सामान्य रेखांकित हो, (ब) "स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया" शब्दों के साथ रेखांकित हो तथा (स) "अपरक्राम्य" (Not Negotiable) शब्द लिखकर रेखांकित हो। (राज. बी. कॉम. 1962)

12
प्रस्तुतीकरण
(PRESENTMENT)

प्रस्तुतीकरण का अर्थ (Meaning of Presentment)—जब किसी विलेख का धारक या उसका अनधिकृत अभिकर्ता अपने विलेख को स्वीकृति या भुगतान के लिए उसके देनदार या लेखक के समक्ष प्रस्तुत करता है तो धारक या उसके अभिकर्ता की इस क्रिया को प्रस्तुतीकरण कहा जाता है। विनिमय बिल व प्रतिज्ञापत्र स्वीकृति और भुगतान के लिए प्रस्तुत किये जाते है जबकि चैक, बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर आदि केवल भुगतान के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रस्तुतीकरण के समय आहार्यी (Drawee) के समक्ष मूल विलेख को प्रस्तुत किया जाता है ताकि वह उसकी जाँच कर सके और उसकी यथार्थता से आश्वस्त हो सके। जब एक आहार्यी किसी विलेख को स्वीकृति के लिए उसके प्रस्तुतीकरण की अनिवार्यता को निरस्त कर देता है तो ऐसे आहार्यी के समक्ष विलेख को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं होता है।

एक विलेख की स्वीकृति या अस्वीकृति के पश्चात् उसका प्रस्तुतकर्ता उसे पुनः अपने अधिकार मे ले लेता है किन्तु जब वह उसे भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है तो वह भुगतान के पश्चात् उसे वापस नही ले सकता। भुगतानकर्ता उसे भुगतान के प्रमाणस्वरूप अपने पास रख लेता है। जब विलेख का अनादरण (भुगतान के अभाव मे) हो जाता है तो उसका प्रस्तुतकर्ता उसे पुन. अपने अधिकार मे ले लेता है अर्थात् उसे आहार्यी (देनदार) के पास नही छोडता है।

विपत्रों की स्वीकृति के लिए प्रस्तुतीकरण आवश्यक
(Presentment for Acceptance necessary)

1. भुगतान का स्थान—विपत्रों को भुगतान का स्थान जानने के लिए भी प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि कभी-कभी ऐसे स्थान पर भुगतान की व्यवस्था होती है जो न तो आहार्यी का निवास स्थान है और न ही उसका व्यावसायिक कार्यालय।

2. बिल में उल्लेख—सावधि विपत्रों मे तिथि पश्चात् विपत्रों को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना वैधानिक दृष्टि से अनिवार्य नहीं है, किन्तु जब ऐसे विपत्र का स्वीकृति के लिए प्रस्तुतीकरण अनिवार्य कर दिया जाता है तो ऐसे विपत्र के धारक को अपना विपत्र स्वीकृति के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है और जब आहार्यी उसे स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी स्वीकृति से उत्पन्न समस्त परिणामों के लिए दायी होता है। तिथि पश्चात् विपत्रों को भुगतान के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है।

3. दर्शन पश्चात बिल (After Sight Bill)—दर्शन पश्चात विपत्रों को

स्वीकृति व भुगतान के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है। इन विपत्रों की परिपक्व-तिथि की गणना स्वीकृति की तिथि से की जाती है। अतः विपत्र की परिपक्व तिथि निश्चित करने के लिए इन्हें स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।

4. जानकारी स्थापित यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के विपत्रों के प्रस्तुतीकरण के लिए भिन्न-भिन्न वैधानिक व्यवस्थाएं हैं किन्तु न्यायालीय निर्णय प्रत्येक विपत्र की स्वीकृति अनिवार्य मानते हैं क्योंकि स्वीकृति ही विपत्र के प्रापक व देनदार में जानकारी स्थापित करती है व स्वीकृति बिना आहार्यी (देनदार) पर किसी प्रकार का दायित्व नहीं डाला जा सकता।[1] अतः व्यवहार में तिथि पश्चात् विपत्रों को भी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

स्वीकृति के अधिकारी

1. एक देनदार की स्थिति में—एक विपत्र को स्वीकृति के लिए उसके देनदार, देनदार के अधिकृत अभिकर्ता, आवश्यकता के लिए आहार्यी या सम्मान के लिए स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(i) विपत्र को सबसे पहले देनदार के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि वह विपत्र को स्वीकृत करने का एक मात्र अधिकारी होता है। (ii) जब देनदार स्वीकृति के लिए अपना अभिकर्ता नियुक्त कर देता है तब विपत्र को उस अभिकर्ता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और (iii) जब मूल आहार्यी स्वीकृति के लिए मना कर देता है तो "आवश्यकता के लिए आहार्यी" (Drawee in case of need) विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे सकता है। आवश्यकता के लिए आहार्यी का नाम मूल विपत्र में अंकित रहता है। जब विपत्र का देनदार स्वीकृति देने से मना कर देता है और विपत्र में आवश्यकता के लिए आहार्यी का नाम नहीं होता है तो कोई भी व्यक्ति विपत्र पर अपनी स्वीकृति दे सकता है किन्तु यह स्वीकृति धारक की सहमति से दी जाती है। इस प्रकार से स्वीकृति देने वाले को "सम्मान के लिए स्वीकारक" कहा जाता है। (iv) जब आहार्यी का स्वीकृति से पूर्व निधन हो जाता है तब ऐसे विपत्र को उसके "वैधानिक उत्तराधिकारी" के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब विपत्र का आहार्यी दिवालिया हो जाता है तो विपत्र को स्वीकृति के लिए उसके अभिहस्तांकिती (Assignee) के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। (v) जब एक विपत्र के अनेक देनदार होते हैं तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को विपत्र पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है क्योंकि कोई एक आहार्यी अपनी स्वीकृति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को दायी नहीं बना सकता। जब एक आहार्यी अपने किसी साथी आहार्यी को स्वीकृति के लिए अधिकृत कर देता है तो वह अपने साथी आहार्यी की स्वीकृति के परिणामों के प्रति दायी बन जाता है। जब विपत्र का प्रथम देनदार स्वीकृति देने से मना कर देता है तो उसे अन्य देनदारों के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे विपत्र का धारक उसे विपत्र को अनादृत मान सकता है। (vi) जब विपत्र के देनदार साझेदार होते हैं तो कोई भी साझेदार उस पर स्वीकृति दे सकता है। एक साझेदार की स्वीकृति मात्र से पूरा विपत्र स्वीकृत मान लिया जाता है।

स्वीकृति के लिए प्रस्तुतीकरण का स्थान—जब किसी विपत्र के प्रस्तुतीकरण के

---

1. जगजीवन मावजी बनाम रणछोड़दास मेघजी 1954।

लिए किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया जाता है तो उस विपत्र को स्वीकृति के लिए उसी स्थान पर प्रस्तुत करना पड़ता है और जब उस स्थान पर यथोचित खोज के पश्चात आहार्यी उपलब्ध नहीं होता है तो उस विपत्र को अनादृत मान लिया जाता है। (धारा 61)

जब विपत्र मे स्वीकृति के लिए किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया जाता है तो उसके प्रस्तुतीकरण के लिए देनदार की यथोचित खोज की जाती है और जब वह इस प्रकार की खोज के उपरान्त भी नहीं मिलता है तो विपत्र को अनादृत मान लिया जाता है। (धारा 61)

जब विपत्र के आहार्यी का कोई ज्ञात व्यावसायिक या स्थायी निवास स्थान नहीं होता है और न विलेख मे ही प्रस्तुतीकरण के लिए किसी स्थान का उल्लेख किया जाता है तो ऐसे विपत्र को ऐसे किसी भी स्थान पर प्रस्तुत किया जा सकता है जहाँ पर उसका आहार्यी उपलब्ध हो जाता है। (धारा 71)

प्रस्तुतीकरण का समय (Time for Presentment)—जब विपत्र मे स्वीकृति के लिए कोई समय नहीं दिया जाता है तब ऐसे विपत्र के धारक को अपना विपत्र प्राप्ति के पश्चात यथोचित समय मे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है। "यथोचित समय का निर्धारण करते समय (i) विनिमय की प्रकृति (ii) व्यापार तथा बैंको की परम्परा और (iii) विलेख विशेष के तथ्यों का ध्यान रखना पडेगा।[1] जब एक धारक असाधारण परिस्थितियो के कारण विपत्र को यथोचित समय मे प्रस्तुत नहीं कर पाता है तब उसे इस प्रकार की असमर्थता के लिए दण्डित नहीं किया जा सकता अर्थात विपत्र के शेष पक्षकार अपने दायित्वो के लिए यथावत् दायी बने रहते हैं। किन्तु ऐसी असाधारण परिस्थितियाँ उसकी भूल, असावधानी या भ्रष्ट आचरण जनित नहीं होनी चाहिए अन्यथा विपत्र के शेष पक्षकार अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे। असाधारण परिस्थितियो की समाप्ति पर धारक को यथोचित समय मे अपने विपत्र को स्वीकृति के लिए या भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है।

जब विपत्र मे प्रस्तुतीकरण के लिए समय दिया रहता है तो उसे उस निर्धारित समय मे ही विपत्र को प्रस्तुत करना पड़ता है।

एक विपत्र को स्वीकृति के लिए कार्यकारी दिवस (Working days) व कार्यविधि में प्रस्तुत करना पडता है अर्थात उस दिन सार्वजनिक अवकाश (Public holiday) नहीं होना चाहिए और कार्य करने की सामान्य अवधि (Working hours) समाप्त नहीं होनी चाहिए। उत्तर तिथीय विपत्रो को सामान्यतः उन पर अंकित तिथि पर स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है किन्तु उन्हे उससे पूर्व भी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। जब ऐसे विपत्रों को अंकित तिथि से पूर्व स्वीकार कर लिया जाता है तो उनकी देय तिथि की गणना स्वीकृति की तिथि से की जाती है।

प्रस्तुतीकरण की विधि – एक विपत्र को उसके अधिकृत व्यक्ति द्वारा व्यक्तिशः स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है किन्तु अनुबन्ध या परम्परा द्वारा अधिकृत किये

---

[1]. In determining what is a reasonable time regard shall be had to the nature of the instrument the usage of trade and of bankers and the facts of the particular Case. Sec. 84 (2)

जाने पर एक विपत्र को डाक से भी स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जा सकता है। जब विपत्र को डाक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो उसे रजिस्टर्ड पत्र (Registered Letter) द्वारा प्रेषित किया जाता है। अधिकृत व्यक्तियों में विपत्र के धारक व उसके अभिकर्ता की गणना की जाती है।

जब एक विपत्र का आहार्यी स्वीकृति पर विचार करने के लिए समय मांगता है तो प्रस्तुतकर्ता उसे 48 घण्टे का समय दे सकता है। 48 घण्टे की अवधि में सार्वजनिक अवकाश आने पर आहार्यी को उस अवधि का अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है अर्थात् अवकाश अवधि की इन 48 घण्टों में गणना नहीं की जाती है (धारा 63)। इस अवधि में विपत्र आहार्यी के पास रहता है।

जब एक प्रस्तुतकर्ता अपने विपत्र को उसके आहार्यी के पास विचारार्थ छोड़ता है तो वह उसे संलग्न प्रलेखों का अपने अधिकार में ले लेता है।

प्रस्तुतीकरण अनावश्यक (When presentment is not necessary) निम्नलिखित परिस्थितियों में एक विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता है—

(1) जब एक आहार्यी में अनुबंध क्षमता नहीं होती है,

(2) जब एक विपत्र का प्रथम देनदार अपनी स्वीकृति देने से मना कर देता है

3. अधिकार वापस लेने पर (When presentment Waived)—जब आहार्यी अपनी स्वीकृति के लिए विपत्र को प्रस्तुतीकरण की अनिवार्यता से मना कर देता है। इस प्रकार का कथन बिल पर लिखित रूप में होना आवश्यक है। (ठाकुरदीन बनाम अवध कॉमर्शियल बैंक)

4. आहार्यी काल्पनिक होता है तथा तलाश करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकता हो।

अधिकोष एवं प्रस्तुतीकरण (Bank and Presentment)- एक अधिकोष को एक विपत्र या तो निजी खाते में प्राप्त होता है या एक अभिकर्ता के रूप में प्राप्त होता है। जब एक अधिकोष किसी विपत्र की कटौती करता है या उसे खरीदता है तो वह उसे अपने निजी खाते में प्राप्त करता है और जब वह उसे संग्रहण के लिए प्राप्त करता है तो वह उसे अभिकर्ता के रूप में प्राप्त करता है।

जब एक अधिकोष किसी विपत्र को निजी हैसियत से प्राप्त करता है तो वह उसे स्वीकृति के लिए अविलम्ब आहार्यी के समक्ष प्रस्तुत कर देता है क्योंकि विपत्र की स्वीकृति पर उसे स्वीकारक की अतिरिक्त जमानत प्राप्त हो जाती है। विपत्र की स्वीकृति के पश्चात् स्वीकारक स्वीकृति के परिणामों के प्रति दायी बन जाता है।

जब एक अधिकोष अपने ग्राहक के लिए अभिकर्ता का कार्य करता है तो उसे अपने ग्राहक के हितों की रक्षार्थ कुशलता व परिश्रम से कार्य करना पड़ता है। जब एक अधिकोष इस कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाता है और फलस्वरूप ग्राहक को हानि हो जाती है तो अभिकर्ता अधिकोष को उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है।

जब एक अधिकोष अभिकर्ता का कार्य करता है तो उसे प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी निम्नलिखित नियमों का पालन करना पड़ता है—

1. देय तिथि के 48 घण्टे पूर्व—यदि एक अधिकोष को एक विपत्र उसकी देय-तिथि के कुछ ही दिनों पूर्व प्राप्त हो तो उसे उस विपत्र को देय-तिथि के 48 घण्टे पूर्व

आहार्यी के समक्ष अवश्य ही प्रस्तुत कर देना चाहिए। यदि इन 48 घण्टों के मध्य कोई सार्वजनिक अवकाश हो तो अभिकर्ता अधिकोष को अपने विपत्र को उतना ही पहले प्रस्तुत करना पडता है क्योकि स्वीकारक को 48 घण्टो के मध्य आने वाले सार्वजनिक अवकाश को स्वीकृति पर विचार करने के लिए काम मे लेने का वैधानिक अधिकार होता है।

2. पंजीकृत पत्र द्वारा (By Registered Letter) —जब आहार्यी के निवास स्थान पर व्यावसायिक स्थान (जैसी भी विपत्र मे व्यवस्था की गई हो) पर अभिकर्ता अधिकोष की शाखा नही होती है तो वह विपत्र के प्रस्तुतीकरण के अपने स्थानीय अभिकर्ता (Local Agent) की सहायता ले सकता है। स्थानीय अभिकर्ता के उपलब्ध न होने पर विपत्र को डाक से भी भेजा जा सकता है किन्तु डाक से प्रेषित करते समय विपत्र रजिस्टर्ड पत्र द्वारा भेजा जाता है व साथ मे टिकट लगा हुआ व पता किया हुआ लिफाफा भी संलग्न किया जाता है। स्वीकारक स्वीकृति या अस्वीकृति के पश्चात् विपत्र को इस लिफाफे मे रखकर अभिकर्ता अधिकोष के पास भेज देता है। जब अधिकोष अथवा उसके अभिकर्ता से विपत्र के प्रस्तुतीकरण मे किसी प्रकार की असावधानी हो जाती है और इस असावधानी के कारण सम्बन्धित ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाती है तो अभिकर्ता अधिकोष को उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है।

3. सशर्त स्वीकृति (Conditional Acceptance) जब आहार्यी अपने विपत्र के लिए सशर्त स्वीकृति का प्रस्ताव रखता है तो अभिकर्ता अधिकोष उस प्रस्ताव को अपने ग्राहक की सहमति से ही स्वीकार करता है। ग्राहक की सहमति न लेने पर उस प्रस्ताव के परिणामों के लिए अभिकर्ता अधिकोष दायी होता है। ठीक इसी प्रकार से जब आहार्यी स्वीकृति की अपेक्षा धनादेश द्वारा अपने विपत्र के भुगतान का प्रस्ताव करता है तो अभिकर्ता अधिकोष उसे अपने ग्राहक की सहमति से स्वीकार करता है क्योकि धनादेश स्वीकार करते ही विपत्र के लेखक व पृष्ठांकक अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं व विपत्र के अनादरण की अवस्था मे केवल स्वीकारक को ही दायी बनाया जा सकता है।

4. आलोकन एव अनादरण प्रमाण-पत्र (Noting and Protesting)— जब एक विपत्र अस्वीकृत हो जाता है तो अभिकर्ता अधिकोष उसे अविलम्ब अपने ग्राहक को लौटा देता है। किन्तु जब अनादरित विपत्र विदेशी होता है तो वह उसे लौटाने से पूर्व उसका आलोकन (Noting) करवा लेता है और ग्राहक से आदेश मिलने पर अनादरण प्रमाणन (Protesting) भी करवा लेता है।

5. अस्वीकृति की सूचना —यदि आहार्यी स्वीकृति पर विचार करने के लिए समय माँगे तो अभिकर्ता अधिकोष उसे 48 घण्टे का समय दे सकता है। इस अवधि मे सार्वजनिक अवकाश आ जाने पर आहार्यी को उसका अतिरिक्त लाभ मिलता है। जब आहार्यी स्वीकृति पर विचार करने के लिए समय माँगता है तो अभिकर्ता अधिकोष मूल विपत्र को आहार्यी के पास ही छोड देता है किन्तु उसमे संलग्न प्रलेखों को अपने पास रख लेता है।

विचारार्थ अवधि की समाप्ति पर अभिकर्ता अधिकोष को विपत्र की परिणति का पता लगाना पड़ता है व विपत्र (स्वीकृत या अस्वीकृत) को अपने ग्राहक के पास भेजना पड़ता है। अस्वीकृति की सूचना उसे अपने ग्राहक को अविलम्ब देनी पडती है। देरी से सूचना देने पर जब ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाती है तो अभिकर्ता अधिकोष को उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है।

भुगतान के लिए प्रस्तुतीकरण
(Presentment for Payment)

एक विपत्र का भुगतान प्राप्त करने के लिए उसे मूल रूप में उसके स्वीकारक या उसके अभिकर्ता के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। भुगतान करने पर भुगतानकर्ता विपत्र को भुगतान के परमाणस्वरूप अपने पास रख लेता है किन्तु अनादरण की अवस्था में उसे विपत्र को प्रस्तुतकर्ता को लौटाना पड़ता है।

प्रस्तुतीकरण का समय :—दर्शनी बिल को उसकी प्राप्ति के पश्चात यथोचित समय में भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है व तिथि पश्चात और दर्शन पश्चात विपत्रों को उनकी परिपक्वता-तिथि पर प्रस्तुत किया जाता है। इन विपत्रों का देय-तिथि से पूर्व किया गया प्रस्तुतीकरण वैध नहीं होता है।[1] न्यायालीय निर्णयों के अनुसार हुण्डियों को भी भुगतान के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है।[2]

जब दर्शनी बिल का धारक असाधारण परिस्थितियों में अपने विपत्र को यथोचित समय में भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं कर पाता है तो उसे उस विलम्ब के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता। किन्तु जब धारक की भूल, असावधानी या दुराचरण के कारण असाधारण परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं तो उस विलम्ब के लिए उसे दायी बनना पड़ता है।

निम्नांकित अवस्थाओं को असाधारण परिस्थितियां माना जाता है :—

जब (1) धारक के निवास स्थान पर साम्प्रदायिक अथवा अन्य किसी प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं और उनके कारण घर से बाहर निकलना संभव नहीं होता है, दोनों देशों में (विदेशी विपत्रों की अवस्था में) युद्ध छिड़ जाता है या सरकार प्रस्तुतीकरण पर प्रतिबन्ध लगा देती है।,

(2) धारक अचानक असाध्य रोग से पीड़ित हो जाता है; मर जाता है अथवा उसके किसी निकट सम्बन्धी का निधन हो जाता है।

(3) विपत्र को डाक से प्रस्तुत करने की परम्परा होती है अथवा पूर्व अनुबन्ध द्वारा डाक से प्रस्तुत करने की सहमति ले ली जाती है और तदनुसार विपत्र को डाक से प्रस्तुत किया जाता है परन्तु डाक विभाग की गलती के कारण स्वीकारक या आहार्यी को विपत्र देरी से प्राप्त होता है।

असाधारण परिस्थितियों की समाप्ति पर विपत्र के धारक को यथोचित समय में अपने विपत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है।

प्रत्येक विपत्र को भुगतान के लिए एक कार्यकारी दिवस व सामान्य व्यावसायिक कार्यावधि (working hours) में प्रस्तुत करना पड़ता है। जब एक विपत्र का देनदार व्यापारी होता है तो उस विपत्र को बैंकिंग कार्यावधि में प्रस्तुत किया जाता है (धारा 65)। भारत में कार्यालय प्रायः दस बजे से 5 बजे तक खुले रहते हैं, अतः संस्थाओं पर लिखे गये बिलों को इसी अवधि में प्रस्तुत करना पड़ता है। दुकानें सामान्यतः प्रातः 8 बजे से सायं 6 बजे तक खुली रहती हैं। अतः दुकानदारों द्वारा स्वीकृत बिलों को इस अवधि में ही प्रस्तुत करना पड़ता है। इस अवधि

1. किशनलाल मिट्ठूलाल बनाम दिलावरी बेगम, 1925।
2. बनारस बैंक बनाम हरप्रसाद देवनारायण, 1930।

के पश्चात प्रस्तुत किए गए विपत्रों को समय पर प्रस्तुत किया हुआ नहीं माना जाता है। परन्तु जब एक विपत्र को असामान्य अवधि में प्रस्तुत किया जाता है और उसका स्वीकारक किसी अन्य कारणवश उसका अनादरण कर देता है तो उस विपत्र को सामान्य अवधि में प्रस्तुत *किया हुआ माना जाता है।*

अधिकोष जनता से सामान्यतः सोमवार से शुक्रवार तक 10 से 2 बजे तक व शनिवार को 10 से 12 बजे तक व्यवहार करते है। अतः अधिकोषों के समक्ष विपत्र इस अवधि मे प्रस्तुत किये जाने चाहिये। जब अधिकोषों का समय इस अवधि से भिन्न हो तो उस भिन्न समय में विपत्रो को प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रस्तुतीकरण का स्थान :—

जब एक विपत्र के भुगतान के लिए विपत्र में किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया जाता है व अन्य किसी स्थान पर भुगतान करने के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है तो ऐसे विपत्र के धारक को अपना विपत्र उस स्थान विशेष पर ही प्रस्तुत करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि स्वीकारक ने विपत्र को स्वीकार करते समय केवल बैंक ऑफ राजस्थान जयपुर मे भुगतान करने की शर्त रख दी हो (Accepted payable at the The Bank of Rajasthan Ltd. Jaipur only, not otherwise) तो उस विपत्र को भुगतान-*प्राप्ति के लिए राजस्थान बैंक, जयपुर मे ही प्रस्तुत करना होगा।*

जब एक विपत्र में भुगतान के लिए किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया जाता है किन्तु धारक को उसी स्थान पर विपत्र को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है तब उस विपत्र के लेखक को दायी बनाने के लिए विपत्र को निर्देशित स्थान पर ही प्रस्तुत करना पडता है किन्तु अन्य पक्षों को विपत्र को किसी अन्य स्थान पर प्रस्तुत करके भी दायी बनाया जा सकता है। अन्य पक्षों को दायी बनाने के लिए धारक को अन्य समस्त वैधानिक प्रावधानो की पूर्ति करनी पडती है (धारा 69)।

जब किसी विपत्र मे प्रस्तुतीकरण के स्थान का उल्लेख नही किया जाता है तो उसे भुगतान के लिए **स्वीकारक के व्यावसायिक या आवास स्थान पर प्रस्तुत किया जाता है** (धारा 70)।

जब स्वीकारक का न कोई ज्ञात व्यावसायिक स्थान होता है और न उसका कोई स्थायी निवास स्थान होता है और न विपत्र में भुगतान के लिए किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया जाता है तो ऐसे विपत्र को जहा कही भी स्वीकारक उपलब्ध हो जाता है, प्रस्तुत कर दिया जाता है (धारा 71)।

किसके समक्ष प्रस्तुत किया जाय :—

एक विपत्र को भुगतान के लिए उसके स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब स्वीकारक भुगतान के लिए अपना अभिकर्ता नियुक्त कर देता है तो विपत्र को इस प्रकार से अधिकृत व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। स्वीकारक के निधन पर विपत्र को उसके वैधानिक प्रतिनिधि के समक्ष व दिवालिया हो जाने पर उसके सरकारी अभि-हस्तांकिती (Official Assignee) के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है (धारा 75)।

जब विपत्र के अनेक स्वीकारक होते हैं और वे परस्पर साझेदार नहीं होते हैं तो ऐसे विपत्र को भुगतान के लिए प्रत्येक स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब एक या समस्त स्वीकारक किसी विपत्र के भुगतान के लिए अपने किसी साथी स्वीकारक को

अधिकृत कर देते है तो विपत्र के धारक को केवल उस अधिकृत स्वीकारक के समक्ष अपना विपत्र प्रस्तुत करना पड़ता है।

जब स्वीकारक साझेदार होते हैं तो स्वीकृत विपत्रों को भुगतान के लिए किसी एक साझेदार के समक्ष प्रस्तुत किया जाना पर्याप्त होता है।

संस्थाओं पर लिखे गये विपत्रों को उनके कार्यालयों मे प्रस्तुत किया जाता है व प्रस्तुतीकरण के समय संस्था में उपलब्ध व्यक्ति प्रस्तुतीकरण के उद्देश्य से उचित व्यक्ति माना जाता है।

प्रस्तुतीकरण की विधि—सामान्यतः एक विपत्र को भुगतान के लिए उसके धारक या उसके अभिकर्ता द्वारा व्यक्तिशः प्रस्तुत किया जाता है किन्तु अनुबन्ध या परम्परा द्वारा अनुमोदित होने पर एक विपत्र को रजिस्टर्ड डाक से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

जब धारक का निधन हो जाता है अथवा वह दिवालिया हो जाता है तो विपत्र को क्रमशः मृतक के वैधानिक उत्तराधिकारी व अधिकृत अभिहस्तांकिती द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

प्रस्तुतीकरण के समय मूल विपत्र को प्रस्तुत करना पड़ता है। जब धारक अपने विपत्र की प्रतिलिपि के आधार पर भुगतान की मांग करता है तो विपत्र का स्वीकारक भुगतान करने से मनाकर सकता है क्योंकि ऐसा प्रस्तुतीकरण विधि सम्मत नही होता है।

प्रस्तुतीकरण के समय धारक अपने विपत्र को स्वीकारक को दिखाता है व भुगतान प्राप्त होने पर उसे स्वीकारक के पास छोड़ देता है। यदि स्वीकारक भुगतान के लिए समय मांगे व विपत्र को अपने पास रखना चाहे तो प्रस्तुतकर्ता को स्वीकारक का यह प्रस्ताव नहीं मानना चाहिए। उसे केवल भुगतान मिलने पर ही अपना विपत्र स्वीकारक के पास छोड़ना चाहिए।

व्यवहार में विपत्रो को उनकी स्वीकृति से पूर्व भी भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे दर्शनी व तिथि पश्चात विपत्रों को सामान्यतः बिना स्वीकृति के ही भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है परन्तु न्यायालय प्रत्येक विपत्र की स्वीकृति अनिवार्य मानते हैं। स्वीकृति के अभाव मे देनदार को दायी नही बनाया जा सकता है। दर्शनी विपत्र में स्वीकृति व भुगतान का कार्य एक साथ सम्पन्न किया जाता है व उसका भुगतान न होने पर यह माना जाता है कि विपत्र का अनादरण अस्वीकृति के कारण हुआ है।[1]

प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं (When Presentment Unnecessary)

निम्नलिखित दशाओ मे एक विपत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही होती है।

1. अधिकार त्याग लेने पर—जब स्वीकारक विपत्र के प्रस्तुतीकरण के बिना विपत्र का भुगतान करना स्वीकार कर लेता है।

2. जान बूझ कर रुकावट—जब स्वीकारक जानबूझ कर विपत्र के प्रस्तुतीकरण मे बाधा पहुंचाता है।

---

1. राम रतनजी बनाम प्रहलाद दास मुकन्दराय।

3. **कार्यालय बंद होना**—जब विपत्र को स्वीकारक के व्यावसायिक स्थान पर प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है और स्वीकारक विपत्र की देय-तिथि पर सामान्य कार्यविधि मे अपने व्यावसायिक स्थान को बन्द रखता है।

4. **स्वीकारक की अनुपस्थिति**—जब विपत्र को व्यावसायिक स्थान से भिन्न स्थान पर भुगतान के लिए स्वीकार किया जाता है और विपत्र की देय-तिथि पर स्वीकारक या उसका प्रतिनिधि उस स्थान पर सामान्य व्यावसायिक कार्यविधि मे उपलब्ध नही होता है।

5 **स्थान का न मिलना**—जब विपत्र मे भुगतान के लिए किसी स्थान का उल्लेख नही किया जाता है और स्वीकारक परिपक्वता तिथि पर सामान्य खोज के पश्चात भी उपलब्ध नही होता है।

6. **काल्पनिक देनदार**—जब देनदार काल्पनिक होता है।

7. **स्वीकारक की विवशता**—जब स्वीकारक भुगतान के लिए बाध्य नही होता है और लेखक यह जानता है कि देय-तिथि पर भुगतान नही होगा। उदाहरणार्थ राम, श्याम अनुग्रह विपत्र स्वीकार करता है। यदि श्याम, राम को विपत्र की परिपक्वता तिथि तक विपत्र की राशि नही देगा तो राम उस विपत्र का भुगतान नही करेगा। श्याम ने परिपक्व तिथि तक विपत्र की राशि नहीं भेजी। अतः वह विपत्र के संभावित अनादरण से भली-भांति परिचित है। ऐसी स्थिति में श्याम के हितों की रक्षार्थ विपत्र का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं है।

8. **पृष्ठांकिती की जानकारी**—जब विपत्र पृष्ठांकिती की सहायतार्थ लिखा जाता है व पृष्ठांकिती यह जानता है कि परिपक्वता तिथि पर विपत्र का भुगतान नही होगा।

9. **आंशिक भुगतान**—जब विपत्र की परिपक्वता तिथि के पश्चात विपत्र का एक पक्ष (यह जानते हुए भी कि विपत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था) विपत्र का अंशतः भुगतान कर देता है अथवा सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान की प्रतिज्ञा कर लेता है या प्रस्तुतीकरण की कमियों से प्राप्त अधिकारों का परित्याग कर देता है।

10. **लेखक को हानि की आशंका न हो**—जब लेखक को यदि कोई हानि होने की संभावना नही होती है। जो व्यक्ति यह दावा करता है कि लेखक को कोई हानि नही होगी उसे अपने कथन की पुष्टि करनी पड़ेगी। उदाहरणार्थ जब एक विपत्र का लेखक व स्वीकारक एक ही व्यक्ति होता है और विपत्र परिपक्वता तिथि पर अनादरित हो जाता है तो यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि विपत्र के लेखक को कोई हानि नही हुई, क्योकि वह अनादरण के तथ्य व परिपक्व तिथि से परिचित था।[1]

11. **बैंक के माध्यम से भुगतान**—जब स्वीकारक किसी बैंक के माध्यम से भुगतान करना स्वीकार कर लेता है और देय-तिथि पर विपत्र उस अधिकोष के पास होता है। (अधिकोष ऐसे विपत्र की परिपक्वता तिथि पर ग्राहक के खाते मे जमा राशि के अनुसार ही विपत्र की परिणिति सम्बधी निर्णय लेता है। खाते मे पर्याप्त राशि जमा होने पर वह ऐसे विपत्र का भुगतान कर देता है और विपरीत अवस्था में उसका अनादरण कर देता है।[2])

---

1. कन्हैयालाल बनाम रामकुमार, 1956।
2. बेली नाम पोर्टर 1845, सेण्डरसन बनाम जॉज 1975।

अधिकृत कर देते है तो विपत्र के धारक को केवल उस अधिकृत स्वीकारक के समक्ष अपना विपत्र प्रस्तुत करना पड़ता है।

जब स्वीकारक साझेदार होते है तो स्वीकृत विपत्रों को भुगतान के लिए किसी एक साझेदार के समक्ष प्रस्तुत किया जाना पर्याप्त होता है।

संस्थाओं पर लिखे गये विपत्रों को उनके कार्यालयों में प्रस्तुत किया जाता है व प्रस्तुतीकरण के समय संस्था में उपलब्ध व्यक्ति प्रस्तुतीकरण के उद्देश्य से उचित व्यक्ति माना जाता है।

प्रस्तुतीकरण की विधि—सामान्यतः एक विपत्र को भुगतान के लिए उसके धारक या उसके अभिकर्ता द्वारा व्यक्तिशः प्रस्तुत किया जाता है किन्तु अनुबन्ध या परम्परा द्वारा अनुमोदित होने पर एक विपत्र को रजिस्टर्ड डाक से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

जब धारक का निधन हो जाता है अथवा वह दिवालिया हो जाता है तो विपत्र को क्रमशः मृतक के वैधानिक उत्तराधिकारी व अधिकृत अभिहस्तांकिती द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

प्रस्तुतीकरण के समय मूल विपत्र को प्रस्तुत करना पड़ता है। जब धारक अपने विपत्र की प्रतिलिपि के आधार पर भुगतान की मांग करता है तो विपत्र का स्वीकारक भुगतान करने से मनाकर सकता है क्योंकि ऐसा प्रस्तुतीकरण विधि सम्मत नहीं होता है।

प्रस्तुतीकरण के समय धारक अपने विपत्र को स्वीकारक को दिखाता है व भुगतान प्राप्त होने पर उसे स्वीकारक के पास छोड़ देता है। यदि स्वीकारक भुगतान के लिए समय मांगे व विपत्र को अपने पास रखना चाहे तो प्रस्तुतकर्ता को स्वीकारक का यह प्रस्ताव नहीं मानना चाहिए। उसे केवल भुगतान मिलने पर ही अपना विपत्र स्वीकारक के पास छोड़ना चाहिए।

व्यवहार में विपत्रों को उनकी स्वीकृति के पूर्व भी भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे दर्शनी व तिथि पश्चात विपत्रों को सामान्यतः बिना स्वीकृति के ही भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है परन्तु न्यायालय प्रत्येक विपत्र की स्वीकृति अनिवार्य मानते हैं। स्वीकृति के अभाव में देनदार को दायी नहीं बनाया जा सकता है। दर्शनी विपत्र में स्वीकृति व भुगतान का कार्य एक साथ सम्पन्न किया जाता है व उसका भुगतान न होने पर यह माना जाता है कि विपत्र का अनादरण अस्वीकृति के कारण हुआ है।[1]

प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं (When Presentment Unnecessary)

निम्नलिखित दशाओं में एक विपत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है।

1. अधिकार वापस लेने पर—जब स्वीकारक विपत्र के प्रस्तुतीकरण के बिना विपत्र का भुगतान करना स्वीकार कर लेता है।

2. जान बूझ कर रुकावट—जब स्वीकारक जानबूझ कर विपत्र के प्रस्तुतीकरण में बाधा पहुंचाता है।

---

1. राम रावजी बनाम प्रहलाद दास सुभकरण।

3. **कार्यालय बंद होना**—जब विपत्र को स्वीकारक के व्यावसायिक स्थान पर प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है और स्वीकारक विपत्र की देय-तिथि पर सामान्य कार्यविधि मे अपने व्यावसायिक स्थान को बन्द रखता है।

4. **स्वीकारक की अनुपस्थिति**—जब विपत्र को व्यावसायिक स्थान से भिन्न स्थान पर भुगतान के लिए स्वीकार किया जाता है और विपत्र की देय-तिथि पर स्वीकारक या उसका प्रतिनिधि उस स्थान पर सामान्य व्यावसायिक कार्यविधि मे उपलब्ध नही होता है।

5 **स्थान का न मिलना**—जब विपत्र में भुगतान के लिए किसी स्थान का उल्लेख नही किया जाता है और स्वीकारक परिपक्वता तिथि पर सामान्य खोज के पश्चात भी उपलब्ध नही होता है।

6. **काल्पनिक देनदार**—जब देनदार काल्पनिक होता है।

7. **स्वीकारक की विवशता**—जब स्वीकारक भुगतान के लिए बाध्य नहीं होता है और लेखक यह जानता है कि देय-तिथि पर भुगतान नही होगा। उदाहरणार्थ राम, श्याम अनुग्रह विपत्र स्वीकार करता है। यदि श्याम, राम को विपत्र की परिपक्वता तिथि तक विपत्र की राशि नही देगा तो राम उस विपत्र का भुगतान नही करेगा। श्याम ने परिपक्व तिथि तक विपत्र की राशि नही भेजी। अतः वह विपत्र के संभावित अनादरण से भली-भांति परिचित है। ऐसी स्थिति में श्याम के हितो की रक्षार्थ विपत्र का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं है।

8. **पृष्ठांकिती की जानकारी**—जब विपत्र पृष्ठांकिती की सहायतार्थ लिखा जाता है व पृष्ठांकिती यह जानता है कि परिपक्वता तिथि पर विपत्र का भुगतान नही होगा।

9. **आंशिक भुगतान**—जब विपत्र की परिपक्वता तिथि के पश्चात विपत्र का एक पक्ष (यह जानते हुए भी कि विपत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत नही किया गया था) विपत्र का अंशतः भुगतान कर देता है अथवा सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान की प्रतिज्ञा कर लेता है या प्रस्तुतीकरण की कमियों से प्राप्त अधिकारो का परित्याग कर देता है।

10. **लेखक को हानि की आशंका न हो**—जब लेखक को यदि कोई हानि होने की संभावना नहीं होती है। जो व्यक्ति यह दावा करता है कि लेखक को कोई हानि नही होगी उसे अपने कथन की पुष्टि करनी पड़ेगी। उदाहरणार्थ जब एक विपत्र का लेखक व स्वीकारक एक ही व्यक्ति होता है और विपत्र परिपक्वता तिथि पर अनादरित हो जाता है तो यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि विपत्र के लेखक को कोई हानि नही हुई, क्योकि वह अनादरण के तथ्य व परिपक्व तिथि से परिचित था।[1]

11. **बैंक के माध्यम से भुगतान**—जब स्वीकारक किसी बैंक के माध्यम से भुगतान करना स्वीकार कर लेता है और देय-तिथि पर विपत्र उस अधिकोष के पास होता है। (अधिकोष ऐसे विपत्र की परिपक्वता तिथि पर ग्राहक के खाते मे जमा राशि के अनुसार ही विपत्र की परिणति सम्बधी निर्णय लेता है। खाते में पर्याप्त राशि जमा होने पर वह ऐसे विपत्र का भुगतान कर देता है और विपरीत अवस्था मे उसका अनादरण कर देता है।[2])

---

1. कन्हैयालाल बनाम रामकुमार, 1956।
2. वेली नाम पोर्टर 1845, सेण्डरसन बनाम जॉज 1975।

12. रास्ते में विपत्र खो जाना—जब विपत्र डाक द्वारा भेजा जाता है और वह रास्ते में खो जाय।

अधिकोष एवं प्रस्तुतीकरण (Bank and Presentment)

(i) नियमानुसार प्रस्तुतीकरण—जब एक अधिकोष एक विपत्र को अपने किसी ग्राहक की ओर से भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है तो उसे प्रस्तुतीकरण सम्बंधी समस्त नियमों, उपनियमों व परम्पराओं का पालन करना पड़ता है अर्थात उसे उस विपत्र को देय-तिथि, कार्यकारी दिवस व सामान्य कार्यविधि में स्वीकारक या उसके अभिकर्ता के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। जब अधिकोष से इस कार्य में भूल हो जाती है व उस भूल के कारण ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाय तो उसे उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है।

(ii) औपचारिकता की पूर्ति—जब अधिकोष को यह विश्वास हो जाय कि प्रस्तुतीकरण पर संदर्भगत विपत्र का भुगतान नहीं होगा या उसे स्वयं स्वीकारक भुगतान न करने की सूचना दे देता है तो भी उसे औपचारिकता की रक्षा के लिए उस विपत्र को भुगतान के लिए स्वीकारक के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

(iii) अभिकर्ता द्वारा प्रस्तुतीकरण—जब एक अधिकोष विपत्रों के प्रस्तुतीकरण में अपने अभिकर्ता की सेवाएं लेता है तो वह अपने अभिकर्ता के पास विपत्र को (रजिस्टर्ड) डाक से इस प्रकार भेजता है कि उसे (अभिकर्ता) परिपक्वता तिथि के दो चार दिन पूर्व अवश्य प्राप्त हो जाय।

(iv) चैक प्राप्ति पर ग्राहक की पूर्व स्वीकृति आवश्यक—एक अधिकोष भुगतान में केवल नकद राशि स्वीकार करता है। यदि विपत्र का स्वीकारक भुगतान स्वरूप चैक देना चाहे तो बैंक को यह प्रस्ताव अपने ग्राहक के परामर्श से ही स्वीकार करना चाहिए। जब बैंक अपने ग्राहक से परामर्श किए बिना ही ऐसा चैक स्वीकार कर लेता है तो यह उस चैक के भुगतान तक विपत्र को अपने पास ही रखता है। जब सम्बन्धित चैक का शोधन हो जाता है तब वह विपत्र उसके स्वीकारक को सौंप दिया जाता है।

(v) आंशिक भुगतान—यदि स्वीकारक अपने विपत्र के आंशिक भुगतान का प्रस्ताव रखे तो प्रस्तुतकर्ता अधिकोष को उस प्रस्ताव को मान लेना चाहिए। किन्तु विपत्र को अपने पास ही रखना चाहिए। आंशिक भुगतान की स्थिति में एक विपत्र को अप्रतिष्ठित मान लिया जाता है। अतः प्रस्तुतकर्ता अधिकोष प्राप्त राशि व विपत्र को अपने ग्राहक को सौंप देता है व विपत्र को सौंपने से पूर्व उसके पृष्ठ भाग पर प्राप्त राशि की रसीद भी लिख देता है।

(vi) आलोकन एवं प्रमाणन आवश्यक—विदेशी विपत्र के अनादरण पर अधिकोष को उसका आलोकन भी करवाना पड़ता है। ग्राहक के आदेश पर उसका अनादरण प्रमाणन (Protesting) भी करवाया जा सकता है।

अधिकोष व विपत्रों का भुगतान

अधिकोष विपत्रों के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त उनका अपने ग्राहकों की ओर से भुगतान भी करते हैं अतः भुगतानकर्ता अधिकोष के दायित्वों एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

(i) बिलों पर रेखांकन प्रभावहीन—विपत्रों का रेखांकन प्रभावहीन होता है। अतः

जब एक अधिकोष के समक्ष एक रेखांकित विपत्र भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह उसका भुगतान कर देता है। किन्तु जब विपत्र मे अन्य कोई कमी होती है या ग्राहक के खाते में पर्याप्त राशि जमा नही होती है तो उस विपत्र का अनादरण कर दिया जाता है। यह अनादरण रेखांकन के कारण नहीं माना जाता है।

(ii) **कटे हुए विपत्रों का भुगतान**—जब एक अधिकोष के समक्ष दो टुकड़ों में विभक्त विपत्र प्रस्तुत किया जाता है तो अधिकोष उसका सदेह की अवस्था में भुगतान नहीं करता है। ऐसे विपत्र का भुगतान करने से पूर्व वह अपने ग्राहक से परामर्श करता है। जब विपत्र को अलग-अलग डाक से भेजने के लिए दो टुकड़ों में विभक्त किया जाता है और शोधी अधिकोष को इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार का सन्देह नही होता है तो वह दो टुकडों मे विभक्त विपत्र का भी भुगतान कर देता है।

(iii) **बेंक की अन्य शाखा पर भुगतान**—जब एक अधिकोष को अपने ग्राहक से अधिकोष की किसी दूसरी शाखा पर भुगतान के लिए आदेश प्राप्त होता है तो वह सम्बंधित शाखा को इस तथ्य की तत्काल सूचना दे देता है, आदेशित राशि को ग्राहक के खाते में नाम लिख देता है और सम्बंधित शाखा के खाते में जमा कर देता है। जब परिपक्वता तिथि को ऐसा विपत्र भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो सम्बधित ग्राहक से नवीन आदेश प्राप्त किए जाते हैं। जब ग्राहक अपने पूर्व आदेश को निरस्त कर देता है तो अधिकोष अपनी शाखा को तत्काल इसकी सूचना देता है और अपनी पुस्तकों में पूर्व प्रविष्टियों की विपरीत प्रविष्टियां करता है।

(iv) **भुगतान के लिए अग्रिम राशि**—जब एक ग्राहक अपने बैंक के पास कुछ राशि कुछ विपत्रों के भुगतान के लिए जमा करवाता है तो अधिकोष उस राशि को अन्य आदेशों की पूर्ति में प्रयुक्त नहीं कर सकता। इस राशि का प्रयोग केवल आदेशित कार्यों की पूर्ति के लिए ही किया जा सकता है। जब इस प्रकार मे धन जमा करवाने वाले ग्राहक का निधन हो जाता है अथवा वह दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो उसके ये आदेश स्वतः ही निरस्त हो जाते हैं।

प्रतिज्ञा पत्रों का प्रस्तुतीकरण (Presentment of Promissory Notes)

जब एक प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक प्रतिज्ञा-पत्र लिखते समय अपने प्रतिज्ञा-पत्र की राशि के भुगतान के लिए प्रतिज्ञा करता है। अतः प्रतिज्ञा-पत्रों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है। किन्तु दर्शन पश्चात् प्रतिज्ञा-पत्रों को उनके आलेखन के पश्चात् उनके लेखकों के समक्ष एक बार अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है। ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों की देय-तिथि की गणना उनकी दर्शन-तिथि से की जाती है, दर्शन के अभाव मे इनकी परिपक्वता तिथि का पता नही लगाया जा सकता। भारतीय परक्राम्य विलेख अधिनियम की धारा 62 भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करती है। इस धारा के अनुसार "**दर्शन-पश्चात प्रतिज्ञा पत्रों के धारक को प्रतिज्ञा पत्र की प्राप्ति के पश्चात् उसे यथोचित समय में कार्यकारी दिवस व व्यावसायिक कार्यावधि में उसके लेखक के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करना चाहिए।**" इस प्रस्तुतीकरण मे भुगतान प्राप्ति के अधिकारी व्यक्ति से भूल होने पर प्रतिज्ञा-पत्र के पूर्व पक्ष उसके प्रति दायी नहीं रहते हैं। असाधारण परिस्थितियों मे एक धारक अपने प्रतिज्ञा-पत्र को विलम्ब से भी प्रस्तुत कर सकता है; किन्तु असाधारण परिस्थितियां उसकी भूल, असावधानियां, दुराचरण मे उत्पन्न नही होनी चाहिए।

एक प्रतिज्ञा-पत्र को दर्शन के लिए लेखक के अधिकृत अभिकर्ता के समक्ष भी प्रस्तुत किया जा सकता है व लेखक के निधन पर उसके वैधानिक प्रतिनिधि और दिवालिया हो जाने पर उसके राजकीय अभिहस्तांकिती के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है (धारा 75)।

सामान्यतः प्रतिज्ञा-पत्रों को व्यक्तिशः प्रस्तुत किया जाता है ; किन्तु अनुबन्ध या परम्परा द्वारा अधिकृत या अनुमोदित होने पर उन्हें रजिस्टर्ड डाक से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रतिज्ञा-पत्रों का भुगतान के लिए प्रस्तुतीकरण—

(i) **देय-तिथि पर प्रस्तुतीकरण आवश्यक** :—तिथि पश्चात या दर्शन पश्चात प्रतिज्ञा-पत्रों को उनकी परिपक्वता तिथि पर उनके लेखकों या अधिकृत अभिकर्ताओं के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है। देय-तिथि मे पूर्व अथवा उसके पश्चात किया गया प्रस्तुतीकरण अवैध होता है। अतः प्रस्तुतीकरण की नियमितता के लिए उन्हें परिपक्वता-तिथि पर ही प्रस्तुत करना पड़ता है। देय-तिथि की गणना करते समय अनुग्रह दिवसों (*days of grace*) को भी जोड़ा जाता है।

(ii) **यथोचित समय में प्रस्तुतीकरण** :—मांग पर देय प्रतिज्ञा-पत्रों को उनकी प्राप्ति के पश्चात यथोचित समय में प्रस्तुत करना पड़ता है। किन्तु विपत्रों व प्रतिज्ञा-पत्रों के लिए स्वीकृत यथोचित समय मे अन्तर है। मांग पर देय प्रतिज्ञा-पत्र अविलम्ब भुगतान के लिए नही लिखे जाते है। अतः परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे यथोचित समय के औचित्य का निर्धारण किया जाता है। मद्रास उच्च न्यायालय ने एक विवाद में 10 माह की अवधि को भी यथोचित समय माना है।[1]

(iii) **किश्तों में देय प्रतिज्ञा-पत्र** :—जिस प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान किश्तो मे देय होता है उसे प्रत्येक किश्त की परिपक्वता तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है और प्रत्येक प्रस्तुतीकरण पर उसके लेखक को 3 अनुग्रह दिवस दिये जाते हैं। जब किसी किश्त का भुगतान नही किया जाता है तब उसे शेष किश्तों के लिए अनादरित मान लिया जाता है (धारा 67)। किश्तों में देय प्रतिज्ञा पत्र को उसका धारक उसकी अंतिम किश्त तक अपने पास रखता है और अंतिम किश्त का भुगतान हो जाने पर उसे लेखक को सौंप देता है। चूंकि ऐसे प्रतिज्ञा पत्रों को प्रत्येक किश्त के लिए तीन अनुग्रह दिवस प्राप्त होते हैं। अतः ऐसे प्रतिज्ञा पत्रों को एक प्रतिज्ञा पत्र नहीं माना जाता है। किश्तों के बराबर उसकी प्रतिज्ञा पत्र की संख्या मानी जाती है। ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र वस्तुतः एक संयुक्त प्रतिज्ञा पत्र होता है। डेनियल के मतानुसार ऐसे प्रतिज्ञा पत्र को उसकी किश्तों के अनुसार पृथक-पृथक प्रतिज्ञा पत्र माने जाने चाहिये।

किसके समक्ष प्रस्तुत किये जायें :—

प्रतिज्ञा-पत्रों को भुगतान के लिए उनके लेखकों अथवा उनके अधिकृत अभिकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लेखक के निधन पर उसके वैधानिक प्रतिनिधि (Official Receiver) के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिज्ञा-पत्रों के प्रस्तुतीकरण पर वे सब प्रावधान लागू होते हैं जो विपत्रों पर लागू होते है।

भुगतान के लिए प्रस्तुतीकरण कब आवश्यक नहीं :—

अधोंकित अवस्थाओं मे एक प्रतिज्ञा-पत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता है :—

---

1. कल्याण सुन्दरम् अय्यर बनाम सुब्रह्मण्यम् अय्यर, (19?4)।

(i) जब एक प्रतिज्ञा-पत्र माग पर देय होता है और उसके भुगतान के लिए कोई स्थान निश्चित नही किया जाता है तो ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र को भुगतान के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता है। उसका लेखक बिना प्रस्तुतीकरण के भी अपने प्रतिज्ञा-पत्र के भुगतान के लिए दायी होता है।

(ii) जब विलेख का लेखक, ऐसा कोई कार्य करता है जिसके परिणाम-स्वरूप धारक विलेख को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है। उदाहरणार्थ मूल विलेख के खो जाने पर लेखक द्वारा नया विलेख देने से इन्कार करना।

(iii) जब लेखक सामान्य व्यावसायिक समय मे भुगतान स्थल को बन्द रखता है,

(iv) जब प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान किसी पूर्व निश्चित स्थान तथा समय पर होना हो और उस स्थान पर तथा समय पर कोई व्यक्ति भुगतान करने अथवा भुगतान से इन्कार करने के लिए उपलब्ध न हो,

(v) जब विलेख का लेखक उचित खोज के पश्चात् भी धारक को न मिले,

(vi) जब लेखक अन्य किसी कारण से प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान करने से मना कर दे और

(vii) जब धारक तथा लेखक के देशो के मध्य युद्ध छिड़ जाय।

(viii) जब भुगतानकर्ता प्रस्तुतीकरण की शर्त को स्पष्टतः अथवा गर्भित रूप से समाप्त कर देता है तो प्रण-पत्र के प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता नही होती है। जब लेखक भुगतान तिथि से पूर्व इस सुविधा को प्रदान करता है तो उसे स्पष्ट छूट कहा जाता है और जब लेखक परिपक्व-तिथि के पश्चात् प्रस्तुतीकरण बिना पूर्ण या आंशिक भुगतान कर देता है अथवा भुगतान की प्रतिज्ञा कर लेता है तो उसके इस व्यवहार को गर्भित छूट कहा जाता है।

(ix) जब लेखक को प्रस्तुतीकरण के अभाव मे कोई कठिनाई न हुई हो।

अधिकोष और प्रतिज्ञा-पत्रों का संग्रहण और भुगतान—प्रतिज्ञा-पत्रो की राशि का संग्रहण करते समय संग्राहक अधिकोष को उन समस्त प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ता है जिनका वर्णन "विपत्रों के संग्रहण" के अन्तर्गत किया गया है।

जब एक अधिकोष किसी प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान करता है तो वह उसकी देय-तिथि पर करता है और भुगतान करते ही भुगतान राशि ग्राहक के नाम लिख देता है। भुगतान सम्बन्धी शेष प्रक्रियायें विपत्रो की भुगतान सम्बन्धी प्रक्रियाओं से पूर्णतः मिलती है।

धनादेशों (Cheques) का प्रस्तुतीकरण—धनादेशो को केवल भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। एक धनादेश के विभिन्न पक्षकारो को दायी बनाने के लिए उसे भुगतान के लिए अवश्य प्रस्तुत करना पड़ता है। जब धनादेशों को भुगतान के लिए प्रस्तुत नही किया जाता है तो धारक के प्रति उसका कोई पक्ष दायी नही होता है अर्थात् उसे उस हानि को व्यक्तिशः वहन करना पड़ता है।

एक धनादेश का भुगतान केवल उसके शोधी-बैंक से प्राप्त किया जा सकता है; किन्तु उसका नकद भुगतान प्राप्त करना अनिवार्य नही है। उदाहरणार्थ एक अधिकोष एक धनादेश की राशि धारक के खाते मे जमा कर देता है व लेखक के नाम लिख देता है तो यह मान लिया जाता है कि धनादेश का भुगतान हो

विवर्त (Uncrossed) धनादेश का भुगतान शोधी अधिकोष से नकद प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए उसे स्वयं धारक या उसका प्रतिनिधि प्रस्तुत कर सकता है। अनुबन्ध या प्रथा द्वारा अनुमोदित होने पर ऐसे धनादेश को पंजीकृत डाक से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

रेखांकित धनादेश का भुगतान केवल एक अधिकोष को किया जा सकता है। अतः ऐसे धनादेशों के धारक उन्हें अपने अधिकोष के माध्यम से शोधी अधिकोष के समक्ष भुगतान के लिए प्रस्तुत करते हैं। संग्राहक अधिकोष इन धनादेशों को अपने अभिकर्ता, शाखा या डाक विभाग के माध्यम से शोधी अधिकोष के समक्ष प्रस्तुत करता है।

धनादेशों को भुगतान के लिए शोधी अधिकोष को बैंकिंग कार्यावधि में प्रस्तुत करना पड़ता है। कार्यावधि के पश्चात प्रस्तुत किए गए धनादेशों के भुगतान के लिए शोधी अधिकोष दायी नहीं होता है क्योंकि इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण अवैध होता है व भुगतान भी यथाक्रम नहीं माना जाता है।

भुगतान के लिए चैक को अधिकोष की उसी शाखा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिसको उसके लेखक ने भुगतान का आदेश दिया है अन्यथा बैंकिंग कार्यावधि में धनादेश को प्रस्तुत करने पर भी उसके प्रस्तुतकर्ता को भुगतान प्राप्त नहीं हो सकता।

भारत में एक धनादेश 6 माह तक वैध माना जाता है। अतः एक धनादेश का धारक इस अवधि में उसे कभी भी भुगतान के लिए प्रस्तुत कर सकता है। ग्राहक के खाते में पर्याप्त मात्रा में धन जमा होने व चैक में किसी प्रकार की कमी न होने पर शोधी बैंक प्रस्तुत किए गए चैक का भुगतान कर देता है, किन्तु धारक को अपने हितों की रक्षार्थ अपने धनादेश को प्राप्त करने के पश्चात यथोचित समय में प्रस्तुत कर देना चाहिये। यदि धारक यथोचित समय में धनादेश को प्रस्तुत न करे व इसी अवधि में आहार्यी बैंक असफल हो जाये व लेखक को बैंक टूटने से धनादेश की राशि से अधिक हानि हो जाय तो ऐसा लेखक अपने धनादेश के भुगतान के लिए दायी नहीं होता है। धनादेश के प्रापक या धारक को शोधी बैंक से मिलने वाली राशि से ही सन्तुष्ट होना पड़ता है (धारा 84)

उदाहरणार्थ—

1. अ, ब के पक्ष में 10,000 रुपये का एक चैक लिखता है व उसे 'ब' को दे देता है। चैक के आलेखन के समय अ के खाते में पर्याप्त राशि जमा थी। ब ने उस चैक को कई दिनों तक अपने पास रखा, उसे भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया। इसी अवधि में अ का अधिकोष टूट गया और ब को चैक की राशि नहीं मिली। जिस समय 'अ' का बैंक टूटा उस समय अ के खाते में 36,000 रुपये जमा थे। चूंकि अ को बैंक टूटने से चैक की राशि से अधिक हानि हुई है अतः वह 10,000 रुपये की देनदारी से मुक्त हो जाएगा। ब शोधी बैंक के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत कर सकता है और उस दावे के परिणामस्वरूप उसे जितनी राशि प्राप्त होगी उसी से उसे सतोष करना पड़ेगा।

---

1. कार्यावधि का तात्पर्य उस अवधि से होता है जिसमें बैंक जनता से व्यवहार करता है। उदाहरणार्थ एक अधिकोष का समय 10 बजे से 4 बजे तक हो सकता है; किन्तु यदि उसने जन व्यवहार के लिए 10 बजे से 2 बजे (शनिवार को 10 से 12) का समय निश्चित कर रखा है तो यह अवधि ही बैंककार्यावधि मानी जाएगी।

2. अ सुजानगढ़ का रहने वाला है। उसे ब से उसके बीकानेर स्थित अधिकोष पर 5,000 रुपये का एक चैक प्राप्त होता है। अ उसे तत्काल रजिस्टर्ड डाक से शोधी बैंक के पास भुगतान के लिए भेज देता है परन्तु चैक पहुंचने से पहले ही शोधी बैंक (Paying Bank) टूट जाता है। इस अवस्था में ब को धनादेश की राशि का उनको भुगतान करना पड़ेगा क्योंकि अ ने धनादेश के प्रस्तुतीकरण में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं किया था।

यथोचित समय का निर्धारण विलेख की प्रकृति बैंकिंग प्रथा व अन्य प्रत्येक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। किन्तु फिर भी निम्नलिखित नियम यथोचित समय के सम्बन्ध में मार्ग-दर्शक का कार्य करते हैं—

1. यदि धारक को अपने निवास स्थान या व्यावसायिक स्थान पर कार्य करने वाले अधिकोष पर लिखा हुआ चैक प्राप्त हो तो उस चैक को उसी दिन भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। यदि उसे ऐसा चैक बैंकिंग कार्यावधि के पश्चात् प्राप्त हो अथवा इतने विलम्ब से प्राप्त हो कि उसी दिन सामान्य साधनों द्वारा शोधी बैंक के समक्ष प्रस्तुत करना सम्भव न हो तो ऐसे चैक को भुगतान के लिए दूसरे दिन अवश्य प्रस्तुत कर देना चाहिये। यदि दूसरा दिन भी सार्वजनिक अवकाश हो तो उसे सार्वजनिक अवकाश के पश्चात् प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. यदि धनादेशों की प्राप्ति के तुरन्त बाद कोई असाधारण घटना हो जाए व उस पर धारक का कोई नियन्त्रण न हो और वह घटना धारक की भूल, असावधानी या दुराचरण के कारण न हुई हो तो धनादेश को इस प्रकार की घटना के पश्चात प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. यदि धनादेश अन्य किसी स्थान पर कार्य करने वाले बैंक पर लिखा गया हो तो ऐसे धनादेश के धारक को उसे प्राप्ति के 24 घंटों के भीतर-भीतर शोधी अधिकोष के पास भेज देना चाहिए।

4. जब धनादेश का पृष्ठांकन किया जाता है तो प्रत्येक पृष्ठांकन को प्रस्तुतीकरण या पृष्ठांकन के लिए 48 घंटे का समय मिलता है। इस अवधि में उसे या तो धनादेश का आगे पृष्ठांकन करना पड़ता है या भुगतान के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है।

5. 6 माह के पश्चात एक चैक काल-तिरोहित (Stale) हो जाता है। अतः इस प्रकार के धनादेश का शोधी बैंक भुगतान नहीं करता है। जब लेखक ऐसे चैक पर नई तारीख डाल देता है और अपने हस्ताक्षरों द्वारा उसकी पुष्टि कर देता है तो उस चैक को 6 माह के लिए पुनः जीवन प्राप्त हो जाता है। पुनः जीवन के पश्चात शोधी बैंक ऐसे चैक का भुगतान कर देता है। जब एक लेखक एक काल-तिरोहित धनादेश पर नई तारीख डालता है तो वह एक प्रकार से नया धनादेश लिखता है।

प्रश्न

1. प्रस्तुतीकरण का अर्थ बताइए। एक पराक्राम्य विलेख को भुगतान के लिए कौन प्रस्तुत कर सकता है? एक प्रतिज्ञा-पत्र को यथा-समय प्रस्तुत न करने पर क्या परिणाम होंगे?

2. एक परक्राम्य विलेख को भुगतान के लिए कहां प्रस्तुत करना चाहिए ? उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए जिनमें विलेख का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य नहीं है।

3. (अ) यथा-विधि प्रस्तुतीकरण से क्या तात्पर्य है ?
(ब) मार्च 8, 1976 का क 1,000 रुपये का एक चैक ख के पक्ष में लिखता है। ख का इकलौता पुत्र उसी दिन मर जाता है और वह भुगतान के लिए चैक प्रस्तुत करना भूल जाता है। 13वें दिन ख चैक को बैंक में प्रस्तुत करता है परन्तु बैंक का उसी अवधि में अवसायन हो जाता है। बैंक प्रत्येक लेनदार को रुपये में 50 पैसे चुकाता है। क तथा ख के वित्तीय दायित्व का विवेचन कीजिए। (राज. बी. कॉम. 1966)

13

विनिमय साध्य विलेखों का संग्रहण

(COLLECTION OF NEGOTIABLE INSTRUMENTS)

जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक के अभिकर्ता अथवा किसी विलेख के धारक के रूप में किसी अन्य अधिकोष, अपनी किसी शाखा या अन्य किसी व्यक्ति अथवा संस्था पर लिखे गये विलेख का भुगतान प्राप्त करता है तो भुगतान प्राप्त करने वाले अधिकोष की इस क्रिया को विलेखों का संग्रहण कहा जाता है।

संग्राहक बैंक (Collecting Bank)—ग्राहकों द्वारा प्राप्त चैकों का भुगतान प्राप्त करने वाले अधिकोष को संग्राहक अधिकोष (Collecting Bank) व देनदार अधिकोष को शोधी अधिकोष (Paying Bank) कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति या संस्था भुगतान करती है तो उसे विलेख का देनदार कहा जाता है। जब किसी धनादेश के लेखक व धारक का एक ही अधिकोष होता है तो ऐसी अवस्था में वह अधिकोष संग्राहक एवं शोधी अधिकोषों की भूमिका का एक साथ निर्वाह करता है। धनादेश के लेखक के लिए वह शोधी अधिकोष का कार्य करता है और प्रापक या धारक के लिए संग्राहक के समय भी यह अवस्था लागू हो सकती है।

मनोहर लाल ने देना बैंक की सीकर शाखा पर कमलेश के पक्ष में एक रेखांकित धनादेश लिखा। कमलेश का भी इसी शाखा के पास खाता है। उसने मनोहर लाल से प्राप्त धनादेश को अपनी शाखा के पास संग्रहणार्थ जमा करवा दिया। प्रस्तुत उदाहरण मे देना बैंक शोधी व संग्राहक अधिकोष का एक साथ कार्य कर रहा है।

संग्रहण योग्य विलेख—एक अधिकोष विवर्त व रेखांकित धनादेशों विपत्रों एवं प्रतिज्ञा-पत्रों प्रभृति विलेखों का संग्रहण करता है। संग्राहक अधिकोष इस कार्य को या तो स्वयं करता है अथवा अपने प्रतिनिधि अधिकोष की सहायता से करता है। प्रतिनिधि की सेवाएं उस समय ली जाती हैं, जबकि संग्रहण स्थान पर संग्राहक अधिकोष की शाखा नही होती है।

संग्रहण की आवश्यकता—व्यावसायिक एवं औद्योगिक उन्नति व यातायात और संचार-वाहन के साधनों के विकास के कारण दूरस्थ व्यक्तियों एवं व्यवसायियों मे आर्थिक सम्बन्ध दृढ़तापूर्वक स्थापित होते जा रहे हैं और बैंकिंग उद्योग के विकास के कारण आजकल अधिकांश लेनदेनों का निपटारा धनादेशों की सहायता से किया जाता है।

व्यावसायिक विविधता एवं अधिकोषों की बहुलता के कारण एक व्यक्ति अथवा संस्था को विविध अधिकोषों पर लिखे गये धनादेश प्राप्त होते हैं। प्रापक अथवा धारक चाहे तो इन धनादेशों का व्यक्तिगत रूप से भुगतान प्राप्त कर सकता है। किन्तु यह पद्धति

व्यय साध्य है और विभिन्न अधिकोषों के पास जाने में समय भी व्यर्थ जाता है। इसके अतिरिक्त इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक धारक को प्रत्येक शोधी बैंक के पास एक खाता खोलना पड़ता है; क्योंकि अधिकांश भुगतान रेखांकित धनादेशों द्वारा किये जाते हैं, जिनका भुगतान केवल अधिकोष को किया जाता है।

संग्रहण की प्रक्रिया प्रापक व धारक को इन तीनों असुविधाओं से सहज ही मुक्ति प्रदान कर देती है और धनादेश की राशि नाम मात्र के शुल्क अथवा बिना शुल्क के घर बैठे प्राप्त हो जाती है।

शाखा बैंकिंग भी संग्रहण की आवश्यकता को जन्म देती है।

क्या संग्रहण अधिकोषों का वैधानिक दायित्व है?

विलेखों के संग्रहण के लिए अधिकोषों को कानूनन बाध्य नहीं किया जा सकता—किन्तु यह उनकी एक प्रशंसनीय सेवा है। अधिकांश ग्राहक केवल मुद्रा के प्रेषण की सुविधा से प्रभावित होकर अधिकोषों के पास खाता खोलते हैं। इस सुविधा के प्राप्त न होने पर वे अपने अधिकोषों से व्यवहार करना बन्द कर देंगे अथवा नगण्य मात्रा में व्यवहार करेंगे। रेखांकित धनादेशों का भुगतान तो केवल अधिकोषों को ही किया जा सकता है। परिणामतः संग्रहण का कार्य न करने वाले अधिकोषों के कोषों का असाधारण रूप से ह्रास हो जायेगा, जिसका उनकी आय पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

संग्रहण अधिकोषों की आय में प्रत्यक्ष रूप से भी वृद्धि करता है; क्योंकि अधिकोष प्रायः विलेखों के संग्रहण के लिए शुल्क लेते हैं।

इसके अतिरिक्त संग्रहण अधिकोषों का एक विधि-सम्मत कार्य है। भारतीय-बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 6 (अ) व्यापारिक अधिकोषों को संग्रहण की अनुमति देती है। विश्व के अन्य देशों में भी व्यापारिक अधिकोष इस कार्य के लिए इसी प्रकार अधिकृत हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संग्रहण व्यापारिक अधिकोषों का एक नैतिक एवं व्यावसायिक दायित्व है।

संग्राहक अधिकोष की स्थिति (Position of a Collecting Banker)—एक अधिकोष एक विलेख का अपने ग्राहक के अभिकर्ता के रूप में अथवा धारक के रूप में संग्रहण करता है। जब एक अधिकोष किसी धनादेश के संग्रहण के पूर्व (1) उसका ग्राहक को नक़द भुगतान कर देता है अथवा (2) उसकी राशि ग्राहक के खाते में जमा कर देता है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में इस प्रकार से जमा राशि को निकालने की सुविधा दे देता है अथवा (3) उसे पूर्व स्वीकृत ऋणों के शोधनार्थ ग्राहक के खाते में जमा कर देता है या (4) ग्राहक के अधिविकर्ष खाते में धनादेश की राशि जमा कर देता है तो उस अधिकोष को इस प्रकार के धनादेश का यथा मूल्य धारक (Holder for value) माना जाता है।

संग्रहण के लिए वैधानिक संरक्षण (Statutory Protection for Collection)—

जोखिमपूर्ण दायित्व—धनादेशों का संग्रहण जोखिमपूर्ण होता है। उदाहरणार्थ एक संग्राहक अधिकोष केवल अपने ग्राहकों के हस्ताक्षरों की यथार्थता की पुष्टि कर सकता है, किन्तु धनादेशों पर पृष्ठांककों के भी हस्ताक्षर होते हैं। संग्राहक अधिकोष इन पृष्ठांककों के हस्ताक्षरों की जाँच नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त जाली पृष्ठांकनों

की अवस्था में संग्राहक अधिकोषों को धनादेशों के वास्तविक स्वामियों की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। इस क्षतिपूर्ति का शोधन वह अपने ग्राहकों से तभी कर सकता है जब कि उनके खातों में यथेष्ठ मात्रा मे रकम जमा होती है अथवा उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है। इस प्रकार संग्राहक बैंको की स्थिति अत्यन्त नाजुक होती है। एक ओर उन्हे आर्थिक हानि का भय रहता है तो दूसरी ओर ग्राहकों के नाराज हो जाने का भय रहता है। इन जोखिमो के रहते हुए सम्भवतः कोई भी अधिकोष सग्रहण जैसे महत्वपूर्ण कार्य का संपादन नही कर सकता था अतः विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों मे संग्राहक अधिकोषो को इन जोखिमों से बचने के लिए वैधानिक सरक्षण (Statutory Protection) प्रदान किया गया है। उन्हे यह सरक्षण केवल तभी मिलता है, जबकि वे सद्‌विश्वास (Good faith), कुशलता व सावधानी (Without negligence) से सग्रहण का कार्य करते है। यह सरक्षण केवल रेखांकित धनादेशो के संग्रहण पर प्राप्त होता है और दोनो दशाओं (प्रतिनिधि व यथा मूल्य धारक) में प्राप्त होता है।[1]

जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक के धनादेश का संग्रहण अपने प्रतिनिधि अधिकोष की सहायता से करता है तो वैधानिक संरक्षण दोनों अधिकोषों को प्राप्त होते है क्योंकि प्रतिनिधि अधिकोष केवल प्रधान अधिकोष के लिए कार्य करता है।[2]

वैधानिक संरक्षण के लिए आवश्यक शर्तें (Confitions for availing the statutory protection)—भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 131 के अनुसार "जब एक बैंक सद्‌विश्वास व सावधानीपूर्वक अपने किसी ग्राहक के लिए एक सामान्य अथवा विशेष रूप से रेखांकित चैक का भुगतान प्राप्त करता है तो उस चैक पर ग्राहक का दूषित अधिकार होने पर भी संग्राहक बैंक केवल भुगतान प्राप्त करने के कारण चैक के वास्तविक स्वामी के प्रति किसी प्रकार से दायी नहीं होगा।[3] अर्थात् वह वैधानिक संरक्षण पाने का अधिकारी होगा।

---

1. भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 131 का स्पष्टीकरण व लायड्स बैंक, इंग्लैण्ड का एक विवाद इसकी पुष्टि करते हैं। धारा 131 के स्पष्टीकरण के अनुसार जब एक अधिकोष किसी धनादेश के संग्रहण के पूर्व उसकी राशि सम्बन्धित ग्राहक के खाते में जमा कर देता है तब भी यह माना जाता है कि वह उस धनादेश का भुगतान अपने ग्राहक के लिए प्राप्त कर रहा है।

   लायड्स बैंक इंग्लैण्ड ने एक व्यक्ति का 250 पौण्ड के एक धनादेश से खाता खोला और इसके संग्रहण से पूर्व ही अपने ग्राहक को धनादेश की राशि के आहरण की सुविधा दे दी। धनादेश के लेखक ने धनादेश के सग्रहण से पूर्व उसका भुगतान रोकने का आदेश दे दिया। लायड्स बैंक ने यथा विधि धारक के रूप में न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया जिसे न्यायालय ने स्वीकार किया और लेखक से धनादेश की राशि बैंक को दिलवायी।

2. इम्पोर्टर्स कम्पनी बनाम वेस्ट मिनिस्टर बैंक विवाद मे विद्वान न्यायाधीशों ने यह मत प्रकट किया कि "ग्राहक के लिए भुगतान प्राप्त किया" वाक्यांश संग्राहक व प्रतिनिधि अधिकोष दोनो पर समान रूप से लागू होता है।

3. "A banker who has in good faith and without negligence received payment for a customer of a cheque crossed generally or specially to himself, shall *not in case the title to the cheque proves defective in cur any liability to* the true owner of the cheque by reason only of having received such payment." (See 131)

उपर्युक्त शर्तों की आगे विस्तारपूर्वक व्याख्या की जा रही है।

1 सद्विश्वास (Good faith)—संग्राहक बैंक को अपने ग्राहकों के धनादेशों का का सद्विश्वास के साथ संग्रहण करना चाहिए। सद्विश्वास का यह तात्पर्य है कि एक धनादेश को संग्रहणार्थ प्राप्त करते समय उसे प्रस्तुतकर्ता के अधिकारों के बारे मे किसी प्रकार का संदेह नहीं होना चाहिए। यदि उसे किसी प्रकार का संदेह हो जाय तो धनादेश को स्वीकार करने से पूर्व उसका निवारण कर लेना चाहिए। संदेह के निवारण पर संग्राहक अधिकोष अपने ग्राहक के धनादेश को संग्रहणार्थ स्वीकार कर सकता है। यदि संदेह की पुष्टि हो जाय तो धनादेश को संग्रहणार्थ स्वीकार नहीं करना चाहिए। यदि संग्राहक अधिकोष को समुचित जाँच के पश्चात ग्राहक के अधिकारों में कोई दोष नजर न आये और कालान्तर में उसके अधिकार दूषित प्रमाणित हो जायँ तो संग्राहक अधिकोष को गलत भुगतान प्राप्ति के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

2. सावधानीपूर्वक (Without negligence)—सावधानीपूर्वक एक व्यापक शब्द है। इसे शब्दो की सीमाओं मे नहीं बाँधा जा सकता, किन्तु फिर भी निम्नलिखित प्रक्रियाओं को पूर्ण कर लेने पर यह माना जाता है कि संग्राहक अधिकोष ने धनादेशों का सावधानी से संग्रहण किया—

(अ) खाता खोलने में सावधानी—एक अधिकोष को एक व्यक्ति को ग्राहक बनाने से पूर्व उसकी साख, व्यक्तित्व, आचरण व पूर्ण व्यवहारों आदि से संतुष्ट होना पड़ता है। इन तथ्यो की जानकारी के लिए प्रार्थित अधिकोष प्रार्थी ग्राहक को दो सम्मानित व्यक्तियों से परिचय प्राप्त करता है। ये दोनों व्यक्ति अधिकोष के पूर्व परिचित होते हैं। जब एक अधिकोष अपरिचित व्यक्तियो द्वारा दी गई जानकारी पर विश्वास कर लेता है तो वह असावधानी का दोषी माना जाता है।[1] पेजेट की दृष्टि से "बिना उचित जाँच पड़ताल" के खाता खोलने का कार्य असावधानी का स्पष्ट द्योतक है।[2]

(ब) स्वामित्व मे सन्तुष्टि—एक धनादेश को संग्रहणार्थ स्वीकार करने से पूर्व शोधी अधिकोष को ग्राहक के स्वामित्व से पूर्णतः सन्तुष्ट होना पड़ता है। अन्यथा उसे परिवर्तन के लिए दायी बनना पड़ता है।

सामान्य धनादेशो का यथाविधि धारक (Holder in due course) के रूप में संग्रहण करने पर संग्राहक अधिकोषों को परिवर्तन के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता किन्तु "अविनिमय साध्य" (Not Negotiable) वाक्यांश वाले धनादेशों का यथाविधि

---

1. लेडब्रोक एण्ड कम्पनी बनाम टॉड। प्रस्तुत विवाद में कम्पनी ने परिचय प्राप्त किए बिना ही अपने यहाँ पर एक व्यक्ति का खाता खोल दिया। उस ग्राहक ने इस अधिकोष के पास एक धनादेश संग्रहणार्थ जमा करवाया जिस पर टॉड नामक व्यक्ति का अधिकार था। अधिकोष ने ग्राहक की ओर से इन धनादेशों का भुगतान प्राप्त कर लिया। टॉड ने अधिकोष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत किया और उस पर असावधानी का आरोप लगाया। टॉड ने अपनी मान्यता की पुष्टि में यह तर्क प्रस्तुत किया कि अधिकोष ने उस व्यक्ति का खाता खोलने से पूर्व परिचय प्राप्त नहीं किया था। न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार करते हुए अधिकोष को असावधानी का दोषी ठहराया।
2. कृपया ब्रिटिश विनिमय बिल अधिनियम की धारा 82 तथा सम्बन्धित भारतीय अधिनियम की धारा 131 देखिए।

धारक के रूप में संग्रहण करने पर भी संग्राहक कोष को परिवर्तन (Conversion) का दोषी ठहराया जा सकता है। अतः ऐसे धनादेशों को संग्रहणार्थ स्वीकार करते स य संग्राहक अधिकोष को विशेष सावधानी की आवश्यकता पड़ती है।

एक धनादेश का अन्तिम धारक धनादेश के परिवर्तन की अवस्था में संग्राहक अधिकोष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। ऐसे धारक का संग्रहीत धनादेश का यथार्थ स्वामी होना अनिवार्य नहीं होता है।[1]

(स) पृष्ठांकनों की जांच—एक धनादेश को संग्रहणार्थ स्वीकार करते समय संग्राहक अधिकोष को उसके पृष्ठांकनों की अनिवार्यतः जांच करनी पड़ती है। पृष्ठांकनों की जांच करते समय वह निम्नांकित बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान देता है—

(i) **प्राप्क व प्रथम पृष्ठांकक के नाम की समानता**—पृष्ठांकित धनादेशों के प्रापक व प्रथम पृष्ठांकक के नामों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। इन दोनों नामों में भिन्नता होने पर पृष्ठांकन अनियमित माना जाता है व संग्राहक अधिकोष को असावधानी का दोषी माना जाता है। फलतः उसे ऐसे धनादेशों के संग्रहण पर संरक्षण नहीं मिलता है।[2]

(ii) **अधिकृतता की जानकारी**—यदि संग्राहक अधिकोष को पृष्ठांकन की अधिकृतता पर संदेह हो जाय तो उसे ऐसे धनादेशों को संग्रहणार्थ स्वीकार करने से पूर्व अपने संदेह का निवारण अवश्य कर लेना चाहिए अन्यथा वह असावधानी का दोषी माना जायेगा।[3]

(iii) **'पर प्रो' पृष्ठांकन (Per pro indorsement)**—जब एक धनादेश "पर प्रो" पृष्ठांकन किया जाता है तो संग्राहक अधिकोष को न पृष्ठांकक के अधिकारों की जांच करनी पड़ती है और न उन शर्तों की पूर्ति करनी पड़ती है जिनके अन्तर्गत पृष्ठांकक को पृष्ठांकन के लिए अधिकृत किया गया था। किन्तु ऐसे धनादेशों को संग्रहणार्थ स्वीकार करते समय संग्राहक अधिकोष को धनादेश की राशि पृष्ठांकक के खाते में जमा नहीं करा सकता।

जब एक अभिकर्ता अपने प्रधान के पक्ष में लिखे गये धनादेशों को ऐसे पृष्ठांकन द्वारा अपने व्यक्तिगत खातों में जमा करवाना चाहे तो संग्राहक अधिकोष को ऐसी प्रार्थना को मानने से पूर्व पृष्ठांकन के उद्देश्य की जांच करनी चाहिए अन्यथा उसे असावधानी का दोषी माना जायेगा।[4]

---

1. ब्यूट बनाम बार्कलेज बैंक।
2. वेबीन्स जूनियर व सिम्स बनाम लन्दन एण्ड साउथ वेस्टर्न बैंक लि०।
3. बेकर बनाम बार्कलेज बैंक।
4. बिसेल एण्ड कम्पनी बनाम फॉक्स ब्रदर्स 1885। इस विवाद में एक घुमक्कड़ ने बिसेल एण्ड कम्पनी के पास एक खाता खोला, अपने प्रधान के पक्ष में लिखे गए कुछ धनादेशों का अपने पक्ष में "पर प्रो" पृष्ठांकन किया और उन्हें संग्रहण हेतु अपने अधिकोष के पास जमा करवा दिया। अधिकोष ने इन धनादेशों का किसी प्रकार की जांच के बिना संग्रहण कर लिया। जब घुमक्कड़ प्रतिनिधि के प्रधान को इस कार्यवाही का पता लगा तो उसने अधिकोष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया और असावधानी का आरोप लगाया। न्यायालय ने अपने निर्णय में यह व्यवस्था दी कि संग्राहक अधिकोष को अभिकर्ता के खाते में सम्बन्धित धनादेशों की राशि संग्रहित करने से पूर्व उससे यह जानकारी प्राप्त करनी चाहिए थी कि वह प्रधान के पक्ष में लिखे गए धनादेशों को अपने व्यक्तिगत खातों में क्यों जमा करवा रहा है। चूंकि संग्राहक बैंक ने घुमक्कड़ प्रतिनिधि से यह जानकारी प्राप्त नहीं की थी अतः उसे असावधानी का दोषी ठहराया गया।

(iv) केवल ग्राहक के लिए संग्रहण (Collection for Customer only)—संग्राहक अधिकोष को केवल अपने ग्राहकों के धनादेशों का संग्रहण करना चाहिए। जब वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए एक धनादेश का संग्रहण करता है तो उसे उन धनादेशों के गलत संग्रहण पर वैधानिक संरक्षण नहीं मिलता है। अर्थात कालान्तर में प्रापक अथवा धारक के अधिकारों के दोषपूर्ण साबित हो जाने पर उसे संग्रहित धनादेश के वास्तविक स्वामी की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है।

एक संग्राहक अधिकोष अपने ग्राहक से प्राप्त धनादेशों को उनके संग्रहण के पूर्व भी ग्राहक के खाते में जमा कर सकता है व उनके अनादरण पर उनकी राशि अपने ग्राहक के नाम लिख सकता है। यह एक विवाद पर आधारित उदाहरण से स्पष्ट किया जा रहा है—

एलायन्स बैंक ऑफ शिमला बनाम उसके ग्राहक—एलायन्स बैंक का अवसायन हो रहा था। बैंक ने अपने कुछ ग्राहकों के संग्रहण के लिए प्राप्त चैकों को संग्रहण के पूर्व ही सम्बन्धित ग्राहकों के खातों में जमा कर दिया और तत्पश्चात उन्हें संग्रहण के लिए शोधी बैंक के पास भेज दिया। शोधी बैंक (चार्टर्ड बैंक) ने इन चैकों का अनादरण कर दिया। अनादरण पर एलायन्स बैंक ने सम्बन्धित ग्राहकों के खातों में विपरीत प्रविष्टियाँ कर दी। ग्राहक अपने बैंक के इस कार्य से सहमत नहीं हुए, अत: उन्होंने बैंक के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय में उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उनका बैंक अनादरित चैकों की राशि उनके खातों में नाम लिखने का अधिकारी नहीं था। न्यायालय ने ग्राहकों की इस मान्यता की पुष्टि नहीं की और यह मत प्रकट किया कि एलायन्स बैंक का कदम पूर्णत: सही था। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि "ग्राहकों के खातों में राशि इसलिए जमा नहीं की गई थी कि वे संग्रहण से पूर्व इस राशि का आहरण कर सकेंगे। जमा राशि का आहरण तो चैकों के संग्रहण के बाद ही हो सकता था। चूंकि चैकों का संग्रहण नहीं हुआ अत: जमा की गई राशि ग्राहकों की सम्पत्ति का प्रश्न नहीं बन सकती थी।"

(v) चैक का रेखांकित होना आवश्यक (Cheque must be crossed)—एक संग्राहक अधिकोष को केवल रेखांकित धनादेशों का संग्रहण करना चाहिए। विवृत (Uncrossed) धनादेशों के संग्रहण पर उसे वैधानिक संरक्षण नहीं मिलता क्योंकि विवृत धनादेशों का भुगतान शोधी अधिकोष से नकद प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् उनके भुगतान के लिए अधिकोषों के माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। जिस समय धनादेशों को संग्रहणार्थ जमा करवाया जाता है उस समय उनका रेखांकित होना अनिवार्य होता है। जब संग्राहक अधिकोष संग्रह योग्य धनादेशों का स्वयं रेखांकन कर देता है तो उसे धारा 131 द्वारा प्रदत्त संरक्षण नहीं मिलता है।

(द) अन्य सावधानियाँ (Other precautions)

(i) अविमुक्त दिवालिए का खाता—एक अधिकोष को एक अविमुक्त दिवालिए (Undischarged Insolvent) का खाता नहीं खोलना चाहिए। यदि संयोगवश कोई अधिकोष ऐसे व्यक्ति का खाता खोल दे तो उसे इस तथ्य से दिवालिए व्यक्ति के राजकीय अभिहस्तांकिती को तत्काल सूचित करना चाहिए और जब तक प्रत्युत्तर में उससे किसी प्रकार की सूचना प्राप्त न हो तब तक ऐसे व्यक्ति के खाते का संचालन स्थगित कर देना चाहिए।

(ii) परिवर्तन पर हस्ताक्षर—यदि संग्रह योग्य धनादेशों मे परिवर्तन या कांट-छांट किए गए हों तो संग्राहक अधिकोष को उन्हे स्वीकार करने से पूर्व उन परिवर्तनो पर लेखक या लेखकों से पुष्टि हेतु हस्ताक्षर करवा लेने चाहिए।

(iii) बड़ी जमा राशि की जांच—यदि किसी खाते में (खाते के इतिहास को देखते हुए) बहुत बडी राशि वाले धनादेश का संग्रहणार्थ प्रस्तुत किया जावे तो संग्राहक अधिकोष को ऐसे धनादेश के सग्रहण से पूर्व उस व्यवहार की यथार्थता की जांच कर लेनी चाहिए।[1]

(iv) व्यक्तिगत खाते में जमा—किसी पदाधिकारी जैसे प्रबंधक, राज्य व्यापार निगम के पक्ष में लिखे गए धनादेश को उसके व्यक्तिगत खाते मे जमा नहीं करना चाहिए। यदि व्यक्तिगत खाते मे राशि का जमा करना आवश्यक हो तो सम्बधित व्यक्ति से उचित जांच-पडताल कर लेनी चाहिए।

(v) संदिग्ध जमाओं की पुष्टि—यदि किसी खाते में सदिग्ध अवस्था मे धनादेश जमा करवाए जा रहे हैं तो सम्बन्धित अधिकोष को उन व्यवहारों की यथार्थता की पुष्टि करनी चाहिए।

(vi) संस्थागत जमाओं की जांच—यदि किसी प्रमण्डल, संस्था या फर्म के पक्ष में लिखे गए धनादेशों को किसी व्यक्तिगत खाते मे जमा करने के आदेश प्राप्त हो तो उस आदेश के क्रियान्वन से पूर्व शोधी अधिकोष को सम्बधित प्रमण्डल, संस्था या फर्म से उस आदेश की पुष्टि करवा लेनी चाहिए।

(vii) पृष्ठांकन के अनुकूल कार्य करें—यदि किसी धनादेश पर "A/c Payee only वाक्यांश अंकित है तो संग्राहक अधिकोष को उस धनादेश की राशि केवल उसें प्रापक के लिए संग्रह करनी चाहिए।[2]

(viii) पति या पत्नी के खाते—यदि धनादेश किसी व्यक्ति के नाम हैं, किन्तु पृष्ठांकन उसकी पत्नी या पति द्वारा किया गया है, तो आवश्यक पूछताछ करना उचित होगा।

सावधानी की सीमा (Limit of Carefulness)—यद्यपि संग्राहक अधिकोषों को अपने हितों की रक्षार्थ उचित सावधानी की आवश्यकता होती है। किन्तु न्यायाधीश बेलहेक के अनुसार इसका तात्पर्य यह नही है कि वे सावधानी के पीछे पागल हो जाय या अपने व्यवसाय का परित्याग करके जासूसी का कार्य प्रारम्भ करदें। संग्राहक अधिकोषों से धनादेशों के संग्रहण में केवल उतनी ही सावधानी की अपेक्षा की जाती है जितनी एक सामान्य बुद्धि एव कुशलता वाला व्यवसायी अपने हितों की रक्षार्थ काम में लाता है।

जब सामान्य बुद्धि एवं कौशल द्वारा एक ग्राहक का कोई दोष पकड़ में नहीं आता है तो संग्राहक अधिकोष अपने उस ग्राहक के दूषित अधिकारों के लिए दायी नहीं होता है चाहे वे कालान्तर मे दूषित प्रमाणित हो जाय।

---

1. बेकर बनाम बार्कलेज।
2. हाउस प्रॉपर्टी कम्पनी ऑफ लन्दन बनाम लन्दन काउण्टी व वेस्ट मिनिस्टर बैंक।

यदि एक संग्राहक अधिकोष को संग्रहण के लिए प्रस्तुत धनादेश में असाधारण परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर हों तो उसे ग्राहक के रुष्ट हो जाने के भय से अपनी जाँच का परित्याग नहीं करना चाहिए[1] अन्यथा उसे वैधानिक संरक्षण से वंचित होना पड़ेगा।

संग्राहक अधिकोषों का ग्राहकों के प्रति कर्त्तव्य (Duties of a Collecting Banker to Customers)—एक संग्राहक अधिकोष अपने ग्राहक के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। अतः उसे धनादेशों के प्रस्तुत करने, उनके भुगतान लेने व प्राप्त राशि को ग्राहक के खाते में जमा करने में यथोचित सावधानी एवं कौशल की आवश्यकता होती है। जब एक संग्राहक अधिकोष अपने इन कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाता है अर्थात् अपेक्षित सावधानी को काम में नहीं लेता है या मान्यता प्राप्त मार्गों का अनुसरण नहीं करता है अथवा ग्राहक के हितों की रक्षा नहीं कर पाता है और फलस्वरूप ग्राहक को हानि हो जाती है तो उस ग्राहक की उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है। संक्षेप में, एक संग्राहक अधिकोष के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

1. यथोचित समय में प्रस्तुतीकरण (Presentment in reasonable time)—एक संग्राहक अधिकोष को अपने ग्राहकों से प्राप्त धनादेशों को संग्रहण के लिए शोधी अधिकोष के समक्ष यथोचित समय में प्रस्तुत कर देना चाहिए। जब संग्राहक अधिकोष प्राप्त धनादेशों को यथोचित समय में प्रस्तुत नहीं करता है और इसी बीच शोधी अधिकोष का अवसायन हो जाता है तो उसे ग्राहक को होने वाली क्षति की पूर्ति करनी पड़ती है। दर्शनी बिलों और चैकों को प्राप्ति के दूसरे दिन तक अवश्य ही भुगतान के लिए प्रस्तुत कर देना चाहिए इसी प्रकार मुद्दती बिलों या चैकों को भी दातव्य तिथि पर प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

यथोचित समय के निर्धारण में निम्नलिखित तत्त्व मार्ग-दर्शन का कार्य करते हैं:—

(a) जब धनादेश स्थानीय होता है :—जब संग्राहक व शोधी अधिकोष एक ही स्थान पर कार्य करते हैं तब संग्राहक अधिकोष को संग्रहण के लिए प्राप्त धनादेशों को उनकी प्राप्ति के दिन ही शोधी अधिकोष के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। यदि संग्रहणार्थ धनादेश विलम्ब से प्राप्त हो और उसी दिन उनका शोधन सम्भव न हो तो संग्राहक अधिकोष उन्हें दूसरे दिन संग्रहणार्थ प्रस्तुत कर सकता है। संग्राहक अधिकोष के उत्तरदायी अधिकारियों को अपने हितों की रक्षार्थ ऐसे धनादेशों पर, "too late for today's clearing" या "Received late, detained for next clearing" लिख देना चाहिए और अपने हस्ताक्षर बना देने चाहिए। हस्ताक्षरों के नीचे तारीख भी लिखी जाती है।

(b) जब धनादेश बाह्य होता है :—जब धनादेशों का शोधी अधिकोष किसी अन्य स्थान पर स्थित हो तो संग्राहक अधिकोष प्राप्त धनादेशों को प्रथम डाक से संग्रहणार्थ भेज देता है। जब पहली डाक निकल जाती है तो उन्हें दूसरी डाक से भेजा जाता है और दूसरी डाक के निकल जाने पर दूसरे दिन की पहली डाक से भेज दिया जाता है। डाक की गड़बड़ी के कारण होने वाली देरी के लिए बैंक जिम्मेदार नहीं होता है।

(c) अभिकर्ता बैंक द्वारा प्रस्तुतीकरण :—एक संग्राहक अधिकोष अपने किसी धनादेश को संग्रहण के लिए अपने किसी अभिकर्ता के पास भेज देता है और वह अभिकर्ता

---

1. मण्डरवुड लि० बनाम बैंक ऑफ लिवरपूल।

अधिकोष इस प्रकार से प्राप्त धनादेश के प्रस्तुतीकरण में विलम्ब कर देता है तो उस देरी से होने वाली हानि के लिए सग्राहक अधिकोष दायी माना जाता है। सग्राहक अधिकोष इस हानि की अपने अभिकर्ता अधिकोष से वसूली कर सकता है क्योंकि हानि उसकी लापरवाही से होती है।

(d) **अपरिचित व्यक्तियों के विलेख** :—बैंक को चाहिए कि वह अपने ग्राहकों के अलावा अन्य व्यक्तियों के चैक संग्रहण के लिए न लें क्योंकि किसी प्रकार की गलती होने पर बैंक को धारा 131 के अन्तर्गत सरक्षण नही मिलता।

2. **सही पता** :—सग्राहक बैंक को प्राप्त धनादेशो को बाहर भेजते समय सही पते का विशेष रूप से ध्यान रखना पडता है क्योंकि जब गलत पते के कारण एक धनादेश खो जाता है अथवा शोधी अधिकोष के पास देरी से पहुँचता है और फलस्वरूप ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाती है तो संग्राहक अधिकोष को उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, शाखा फतेहपुर को अपने ग्राहक रमेश से पंजाब नेशनल बैंक, सुजानगढ पर लिखित एक धनादेश संग्रहण के लिए प्राप्त हुआ। यदि फतेहपुर शाखा इस धनादेश को भेजते समय लिफाफे पर सही पता लिख देवें तो वह अपने ग्राहक के प्रति किसी भी प्रकार से दायी नही होगा। यदि डाक विभाग की भूल से लिफाफा अपने गन्तव्य स्थल पर देर से पहुँचे या बिलकुल ही न पहुँचे और परिणामस्वरूप ग्राहक को हानि हो जाय तो उस हानि को ग्राहक को ही वहन करना पड़ेगा। उस हानि को न तो वह अपने अधिकोष को हस्तांतरित कर सकेगा और न डाक विभाग को। यदि फतेहपुर शाखा इस धनादेश को सुजानगढ़ की अपेक्षा किसी अन्य स्थान पर भेज दे और फलस्वरूप ग्राहक को हानि हो जाय तो स्टेट बैंक को अपने ग्राहक की क्षति-पूर्ति करनी होगी।

3. **प्रचलित परम्पराओं का पालन** :—एक संग्राहक बैंक को अपने ग्राहक से प्राप्त धनादेशों का सग्रहण करते समय प्रचलित परम्पराओ का पालन करना पडता है। इन परम्पराओं का पालन न करने पर यदि सम्बंधित ग्राहक को हानि होती है तो संग्राहक अधिकोष उस हानि की पूर्ति के लिए दायी होता है।[1]

4. **अनादरण की तत्काल सूचना** :—जब संग्रहणार्थ प्राप्त धनादेशों का अनादरण हो जाता है तो संग्राहक अधिकोष को अपने ग्राहक को इस तथ्य से तत्काल सूचित करना

---

1. फोरमैन बनाम बैंक ऑफ इंग्लैण्ड। प्रस्तुत विवाद में बैंक ऑफ इंग्लैंड (लॉ कोर्ट्स शाखा) को 500 पौण्ड का एक धनादेश सग्रहणार्थ प्राप्त हुआ। इस धनादेश का नोर्विक अथवा लन्दन में भुगतान से प्राप्त किया जा सकता था व इस प्रकार के धनादेशों का शोधन "टाउन समाशोधन" द्वारा होता था, किन्तु बैंक ने इस धनादेश को 'ग्रामीण समाशोधन' के लिए प्रेषित कर दिया। परिणामस्वरूप धनादेश का देरी से सग्रहण हुआ। सम्बंधित ग्राहक ने इस धनादेश के जमा करवाने के दूसरे दिन अपने अधिकोष पर एक धनादेश लिखा जिसका अनादरण हो गया। ग्राहक ने बैंक के विरुद्ध गलत अनादरण के लिए न्यायालय मे वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने परम्परागत मार्ग का अनुपालन न करने के कारण अधिकोष को गलत अनादरण का दोषी माना।

चाहिए। अनादृत विपत्र तथा चैक की मूल प्रतियों को भी ग्राहक को तत्काल लौटा देनी चाहिए ताकि वह दोषी पक्षकारों के विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सके। यदि शोधी अधिकोष धनादेशों को पृष्ठांकनों की जांच अथवा अन्य किसी सूचना की प्राप्ति के लिए वापस भेज देवें अथवा एक बार किसी धनादेश का अनादरण कर दे और (ग्राहक को सूचित करने से पहले ही) बाद में उसका भुगतान कर दे तो संग्राहक अधिकोष को अपने ग्राहक को इन तथ्यों से अवगत करना चाहिए।

उपर्युक्त सूचनाएं टेलीफोन द्वारा दी जा सकती हैं किन्तु लिखित सूचनाएं वांछनीय मानी जाती है। जब टेलीग्राम द्वारा सूचना दी जाती है तो उसकी तत्काल पुष्टि की जाती है। जब धनादेश या अन्य किसी विलेख का अनादरण हो जाता है तो अनादरण की सूचना के साथ ही मूल सलेख को भी भिजवा दिया जाता है ताकि सम्बन्धित ग्राहक को किसी प्रकार का संदेह न रहे।

संग्राहक बैंक के अधिकार (Rights of a Collecting Banker)

जब एक अधिकोष दोहरी स्थिति (संग्राहक व शोधी अधिकोष) में कार्य करता है तो वह संग्रहण के लिए प्रस्तुत धनादेश को एक दिन के लिए अपने पास रख सकता है। किन्तु सामान्यतया ऐसे धनादेशों का निपटारा उनकी आगमन तिथि को ही कर दिया जाता है। जब लेखक के खाते मे आवश्यक मात्रा में धन जमा नहीं होता है तो ऐसा अधिकोष संग्रहरणार्थ प्राप्त धनादेश को 24 घण्टे के लिए रोक सकता है।

जब एक ग्राहक ऐसे अधिकोष से अपने धनादेश की परिणिति के बारे मे जानकारी मागता है और अधिकोष उसे सकारात्मक उत्तर दे देता है तो यह मान लिया जाता है कि धनादेश का भुगतान हो जायेगा।

ग्राहक का अधिकार (Right of the Customer)

जब एक ग्राहक अपने धनादेश की परिणिति जानना चाहता है तो संग्राहक अधिकोष को उसके इस निवेदन को मानना पड़ता है। वह टेलीफोन या तार द्वारा शोधी अधिकोष से सम्पर्क स्थापित करता है, किन्तु इस प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करने मे जितना व्यय होता है उसका भार ग्राहक को ही वहन करना पड़ता है।

प्रतिनिधि अधिकोष द्वारा संग्रहण :—

एक अधिकोष चाहे तो धनादेशों के संग्रहण के लिए प्रतिनिधि अधिकोष की नियुक्ति कर सकता है। जब प्रतिनिधि अधिकोष सावधानी, सद्विश्वास एवं कुशलता से धनादेशो का संग्रहण करता है तो उसे भी वैधानिक संरक्षण प्राप्त होता है। किन्तु जब इस अधिकोष की असावधानी से प्रधान अधिकोष के ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाती है तो प्रधान अधिकोष को वैधानिक सरक्षण नहीं मिलता। उसे ग्राहक की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है, किन्तु वह हानि की वसूली प्रतिनिधि अधिकोष से कर सकता है; क्योंकि यह हानि उसकी लापरवाही से हुई।

जब धनादेशों के संग्रहण के बाद प्रतिनिधि अधिकोष का अवसायन प्रारम्भ हो जाता है तो उसे संग्रहित राशि अपने प्रधान अधिकोष को सौंपनी पड़ती है; क्योंकि वह इस राशि को प्रधान अधिकोष की सम्पत्ति के रूप मे प्राप्त करता है न कि अपनी सम्पत्ति के रूप में। इसके अतिरिक्त अवसायित बैंक व ग्राहक मे भी इस सम्बन्ध में कोई अनुबन्ध नहीं हुआ।[1]

---

1. इण्डियन ह्यूम पाइप कम्पनी लि. बनाम ट्रावनकोर नेशनल क्विलोन बैंक (अवसायन में)।

विवर्त या खुले धनादेशों का संग्रहण (Collection of uncrossed cheques)

विवर्त या अरेखांकित धनादेशो के संग्रहण पर संग्राहक अधिकोषों को वैधानिक संरक्षण प्राप्त नही होते हैं। अतः जब एक अधिकोष जाली पृष्ठांकन वाले अथवा चोरी से प्राप्त विवर्त धनादेशो का संग्रहण करता है तो वह ऐसे धनादेशों के वास्तविक स्वामी के प्रति दायी होता है अर्थात् संग्राहक अधिकोष वास्तविक स्वामी की क्षति-पूर्ति को बाध्य होता है और वह इस क्षति-पूर्ति की राशि को उन समस्त पृष्ठांककों से लेने का अधिकारी होता है जिन्होंने जाली पृष्ठांकन के पश्चात संदेह किये गये धनादेश का पृष्ठांकन किया था। ऐसे पृष्ठांकक अपने पृष्ठांकनो द्वारा पूर्व पृष्ठांकनो की यथार्थता की पुष्टि करते हैं। जब ऐसे पृष्ठांककों से क्षति-पूर्ति की वसूली नही हो पाती है तो उस हानि को संग्राहक अधिकोष को ही वहन करना पड़ता है।

प्रश्न

1. संग्राहक बैंक के बारे में समझाइये। अपने ग्राहक के चैंकों का संग्रह (i) करने में उसके क्या कर्त्तव्य तथा दायित्व हैं ? क्या इस सम्बन्ध में विधान द्वारा उसे किसी प्रकार की सुरक्षा प्राप्त है ? (राज. बी. कॉम. 1963, लखनऊ बी. कॉम. 1964)
2. निम्नलिखित परिस्थितियों में बैंक को क्या करना चाहिए ?—
   (अ) वह एक अरेखांकित चैंक संग्रहण के लिए प्राप्त करता है।
   (ब) वह समाशोधन गृह के माध्यम से तीन टुकड़े जुड़ा हुआ एक चैंक भुगतान के लिए प्राप्त करता है।
   (स) वह एक ही डाक से दो चैक भुगतान के लिए प्राप्त करता है। एक चैंक 500 रुपये का तथा दूसरा चैक 400 रुपये का है और ग्राहक के खाते मे कुल 600 रुपये जमा है।
   (द) वह एक चैंक प्राप्त करता है जिसमें रकम केवल शब्दों में लिखी है।
   (य) उसे संग्रहण के लिए एक ऐसे स्थान पर लिखा हुआ चैक प्राप्त होता है जहां उस बैंक की कोई शाखा नही है।
3. विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 के अन्तर्गत एक संग्रहकर्ता बैंक को क्या "वैधानिक सुरक्षा" प्रदान की गई है ? बैंक किन परिस्थितियों में इसे खो सकता है ? (राज. बी. कॉम. 1968)
4. एक लिमिटेड कम्पनी के पक्ष में आदिष्ट चैंक जिस पर सचिव द्वारा पृष्ठांकन किया गया है। ऐसे चैंक के संग्रहण में बैंक को कौनसी सावधानियां रखनी चाहिए। (राज. एम. कॉम. 1963)
5. निम्नांकित मामलों मे बैंक की क्या कोई जोखिम है ?
   (अ) वह एक ग्राहक के लिए अरेखांकित चैंक संग्रह करता है।
   (ब) वह एक अनजान व्यक्ति के लिए एक वाहक चैक की राशि प्राप्त करता है।

14

धनादेशो का भुगतान

(PAYMENT OF CHEQUES)

शोधी बैंक का अर्थ—विनिमय साध्य प्रलेखों मे चैंक सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसका भुगतान केवल उसके आहार्यी बैंक द्वारा किया जाता है। इस प्रकार भुगतान करने वाले बैंक को शोधी बैंक (Paying Bank) भी कहा जाता है। शैल्डन के अनुसार ' जिस बैंक पर चैंक लिखा जाता है वह शोधी बैंक के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि वही बैंक इन चैंको का भुगतान कर सकता है।"

भुगतान प्राप्त करने के लिए चैंक के प्रापक अथवा धारक को अपना चैंक मूलरूप में शोधी बैंक के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। यह विनिमय साध्य विलेख होते हुए भी विशेष रूप मे ग्राहक का अपने बैंक को आदेश स्वरूप होता है। भुगतान करने पर शोधी-बैंक शोधित चैंक को भुगतान के प्रमाणस्वरूप अपने पास रख लेता है और अनादरण की अवस्था में अनादरण का कारण बताते हुए अनादरित चैंक को प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है। जब शोधी बैंक को एक धनादेश डाक से प्राप्त होता है तो अनादरण की अवस्था मे वह चैंक को उसी दिन अथवा दूसरे दिन समुचित उत्तर सहित वापस कर देता है। जब एक धनादेश स्थानीय समाशोधन गृह (Clearing House) से भुगतान के लिए प्राप्त होता है तो अनादरण की अवस्था मे उसे सामान्यतया उसी दिन वापस कर दिया जाता है।

***शोधी बैंक का दायित्व* (Liability of Paying Bank)**—प्रत्येक शोधी अधिकोष (बैंक) का यह दायित्व है कि वह अपने ग्राहक द्वारा लिखित ऐसे प्रत्येक धनादेश का शोधन करें जिसके (i) शोधन के लिए खाते में यथेष्ट मात्रा मे राशि जमा हो, (ii) जिसे निर्गमन के पश्चात् यथोचित समय में भुगतान के लिए प्रस्तुत किया गया हो, (iii) जिसके भुगतान पर ग्राहक अथवा राज्य की ओर से प्रतिबंध नहीं लगाया गया हो और (iv) जिसे उचित प्रारूप मे लिखा गया हो। इस सम्बन्ध में जोचिमसन बनाम स्विस बैंक कॉरपोरेशन विवाद 1921 मे दिया गया निर्णय विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[1]

---

1. "The Bank under takes to receive money and to collect bills for it s customers account. The proceeds are not to be hold in trust for the customer but the bank borrows the proceeds and under takes to repay then The promise to repay is to repay at the branch of the bank where the account is kept and during banking hours. It includes a promise to repay any part of the amount due. against the written order of the customer addressed to the bank at the branch and as such written orders may be out standing in the ordinary course of business for 2 or 3 days: It is a term of the contract that the bank will not close to do business with the customer except upon reasonable notice. The customer, at his best, undertakes to exercise reasonable care in executing his written orders so as not to mislead the bank or to faliciate forgery."

   Joachimson v. Swiss Bank Corporation, 1921

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम ने भी शोधी बैंको के दायित्व की व्याख्या की है। इस अधिनियम के अनुसार एक लेखक के खाते मे प्रस्तुत धनादेश के भुगतान के लिए यथेष्ट मात्रा में राशि जमा होने पर शोधी बैंक को अपने ग्राहक के धनादेश का अवश्य भुगतान करना चाहिए। यदि शोधी अधिकोष ऐसे धनादेश का भुगतान न करे तो उसे लेखक को होने वाली हानि की अनिवार्यतः पूर्ति करनी पड़ती है (धारा 31)।

शोधी बैंकों को वैधानिक संरक्षण (Legal protection to a paying banker)–शोधी अधिकोपों को अपने उपर्युक्त दायित्व के निर्वाह मे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है व यथोचित सावधानी के बावजूद भी गलत भुगतान की आशंका बनी रहती है। इस आशंका के मूर्तरूप ले लेने पर शोधी अधिकोष को आर्थिक हानि वहन करनी पड़ती है। इस संभावित हानि से बचाने के लिए विश्व के लगभग प्रत्येक देश मे शोधी अधिकोपों को चैकों के भुगतान के लिए वैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। इन संरक्षणों के कारण गलत भुगतान हो जाने पर भी शोधी बैंको को अपने ग्राहकों की क्षतिपूर्ति नही करनी पडती।

भारत मे भी व्यापारिक अधिकोपों को वैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। यह संरक्षण आदिष्ट (Order), वाहक (Bearer) रेखांकित (Crossed) चैकों के यथाक्रम भुगतान पर प्राप्त होता है।

(अ) आदिष्ट चैक (Order Cheque)—जब किसी आदिष्ट धनादेश पर उसके प्रापक अथवा उसके प्रतिनिधि की ओर से पृष्ठांकन सम्पन्न किया गया प्रतीत होता हो तो उस धनादेश के यथाक्रम भुगतान द्वारा शोधी अधिकोष अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है अर्थात् सद्विश्वास एव सावधानीपूर्वक भुगतान करने पर शोधी अधिकोष भुगतान की राशि ग्राहक के नाम लिख सकता है चाहे धनादेश पर पृष्ठांकन जाली ही हो। वह इस प्रकार के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होता है [धारा 85 (1)]।

(ब) वाहक चैक (Bearer Cheque)—एक धनादेश का निर्गमन वाहक धनादेश के रूप मे किया जाता है तो उसके वाहक को यथाक्रम भुगतान करने पर शोधी अधिकोष अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है चाहे इस प्रकार के धनादेश पर सामान्य या विशिष्ट पृष्ठांकन किए गए हों, चाहे वे पृष्ठांकन उसकी परक्राम्यता को सीमित अथवा समाप्त करते हों। अर्थात् यथाक्रम भुगतान करने पर शोधी अधिकोष पर किसी प्रकार की आंच नही आती [धारा 85 (2)]।

(स) रेखांकित चैक (Crossed Cheque)—एक शोधी अधिकोष एक रेखांकित चैक के यथाक्रम भुगतान को अपने ग्राहक के नाम लिख सकता है। धारा 128 के अनुसार "जब एक शोधी बैंक किसी रेखांकित चैक का यथाक्रम भुगतान कर देता है तो उसे व चैक के लेखक को वे ही अधिकार व वही स्थिति प्राप्त होती हैं जो कि धनादेश के वास्तविक स्वामी को भुगतान करने पर उन्हें प्राप्त होती है।" इस व्यवस्था के अनुसार एक शोधी अधिकोष यथाक्रम भुगतान करने पर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है अर्थात् यह मान लिया जाता है कि भुगतान धनादेश के वास्तविक स्वामी को दिया गया था।

बैंक खिड़की पर भुगतान नहीं—धारा 128 के प्रावधानो का लाभ उठाने के लिए शोधी बैंक को धारा 126 के प्रावधानो का भी पालन करना पड़ता है। इस धारा का यह

आदेश है कि एक रेखांकित धनादेश का भुगतान एक अधिकोष को ही किया जाय, उसका खिडकी पर भुगतान यथाक्रम भुगतान नहीं माना जा सकता (धारा 129 1)।

धारा 126 के अनुसार प्रस्तुत धनादेश का भुगतान करने से पूर्व उसकी राशि प्रस्तुतकर्ता के खाते में जमा की जाती है और फिर उसका भुगतान किया जाता है। (चैंक या आहरण आदेश (Withdrawl Form) द्वारा)।

शोधी बैंक द्वारा अपेक्षित सावधानियां (Precautions observed by a paying Banker)—शोधी अधिकोष से धनादेशों का भुगतान करते समय अनेक सावधानियों की अपेक्षा की जाती है। उन सावधानियों का पालन न करने पर गलत भुगतान अथवा गलत अनादरण की सम्भावनाएं बनी रहती हैं। एक शोधी अधिकोष प्रधानतः निम्नलिखित सावधानियों को काम में लेता है—

(क) **उचित प्रारूप**—भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश के शोधन के पूर्व वह उसके प्रारूप पर विचार करता है। प्रारूप की जांच द्वारा वह इस तथ्य से आश्वस्त होना चाहता है कि धनादेश के प्रारूप मे कोई वैधानिक कमी नहीं है। जब ग्राहक बैंकों द्वारा प्रदत्त धनादेशों को काम में लेता है तब शोधी अधिकोषों को धनादेश के प्रारूप की जाँच करने की तनिक भी आवश्यकता नही होती क्योंकि प्रत्येक बैंक धनादेश की वैधानिक परिभाषा के अनुसार ही अपने धनादेश का प्रारूप तैयार करता है। जब एक ग्राहक कागज के साधारण टुकड़े पर अपने बैंक को एक निश्चित राशि के भुगतान का आदेश देता है तब शोधी अधिकोष को अपने ग्राहक के आदेशों की पूर्णता पर विचार करना पड़ता है।

बैंक द्वारा प्रदत्त चैंक प्रारूपों का प्रयोग—प्रारूप सम्बन्धी जांच से बचने के लिए प्रायः सभी अधिकोष अपने ग्राहकों का खाता खोलने से पूर्व उनसे यह स्वीकृति ले लेते हैं कि वे धनादेश लिखते समय केवल अधिकोष द्वारा प्रदत्त प्रारूपों का ही प्रयोग करेंगे। इस प्रकार से वचनबद्ध ग्राहक जब कागज के साधारण टुकड़े पर चैंक लिखते हैं तो उनका अधिकोष एक स्लिप पर "आदेश अधिकोष द्वारा प्रदत्त फ़ॉर्म पर नहीं लिखा गया है" लिखकर लौटा देते हैं। इस प्रकार के आदेश को लौटाने से यदि सम्बन्धित ग्राहक को किसी प्रकार की हानि हो जाय तो उस हानि के लिए शोधी बैंक दायी नहीं होता है।

जो अधिकोष निर्धारित प्रारूप में धनादेश लिखने के लिए अपने ग्राहकों से अनुबंध नहीं करते वे अपने ग्राहकों के ऐसे धनादेशों का भुगतान कर देते हैं जो पृष्ठांकित नहीं होते हैं और जिनके बारे मे अधिकोष को किसी प्रकार नहीं होता है।

सशर्त चैकों के भुगतान पर संरक्षण नहीं—जब एक ग्राहक अपने बैंक को सशर्त आदेश देता है तो उसका बैंक उस आदेश को मानने के लिए बाध्य नहीं होता है क्योंकि एक सशर्त आदेश वैध धनादेश नहीं होता है। जब कोई अधिकोष अपने किसी ग्राहक के सशर्त आदेश की पूर्ति करना चाहता है तो वह भुगतान से पूर्व धनादेश की शर्तों की पूर्ति करवाता है व सम्बन्धित ग्राहक से यह लिखित वचन ले लेता है कि इस प्रकार के भुगतान से बैंक को हानि होने पर उसे (ग्राहक) उस हानि की पूर्ति करनी पड़ेगी। सशर्त धनादेश का भुगतान करने पर शोधी बैंक को विनिमय साध्य विलेख अधिनियम द्वारा प्रदत्त संरक्षणों का भी लाभ नहीं मिलता।

अधिकोष द्वारा छपे हुए प्रदत्त प्रारूप के उपयोग के लाभ (Merits of printed cheque forms supplied by Banks)—अधिकोष द्वारा प्रदत्त धनादेशों का प्रयोग करने पर अधिकोष और ग्राहक दोनों लाभान्वित होते हैं। शोधी अधिकोष अग्रांकित प्रकार से लाभान्वित होता है—

(i) जांच में सुविधा (Easy verification)—प्रत्येक अधिकोष अपने ग्राहकों को निर्गमित धनादेश पुस्तिकाओं (Cheque Booklates) का रिकार्ड रखता है। अतः भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश की संख्या देखकर वह इस ओर से आश्वस्त हो जाता है कि धनादेश ग्राहक की पुस्तिका में से ही लिया गया है। जब धनादेश की संख्या ग्राहक को निर्गमित धनादेशो की संख्या से नही मिलती है तो शोधी अधिकोष को ऐसे धनादेश के भुगतान से पूर्व उसकी जाच करनी पड़ती है अन्यथा वह असावधानी का दोषी माना जाता है। नवल किशोर बनाम बरेली बैंक लि० विवाद इस सम्बन्ध में बैंको का मार्ग-दर्शन करता है। इस विवाद मे किसी व्यक्ति ने नवल किशोर के खाते में से कुछ राशि निकाल ली। जिन प्रारूपों पर चैंक लिखे गये थे उनकी संख्या नवल किशोर को बैंक द्वारा निर्गमित प्रारूपों की संख्या से भिन्न थी। भुगतान के समय शोधी अधिकोष ने इस भिन्नता की ओर कोई ध्यान नही दिया। भुगतान के पश्चात नवल किशोर ने अपने अधिकोष के विरुद्ध असावधानी का वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने अपने निर्णय में नवल किशोर की मान्यता की पुष्टि की।

(ii) जाल साजी में कमी करना (Minimisation of Forgery)—धनादेश के फार्म विशिष्ट प्रकार के बनाए जाते हैं। अतः जालसाजी का कार्य कुछ कठिन हो जाता है। जालसाजी करने वालों को जालसाजी के लिए धनादेश का फार्म कही से प्राप्त करना पडता है किन्तु उन्हें इस कार्य में आसानी से सफलता नही मिल पाती क्योंकि धनादेश पुस्तिकाएं प्रायः ताले के भीतर रखी जाती हैं। इस प्रकार के धनादेशों के प्रापक अथवा धारक भी जालसाजी नही कर पाते क्योकि कांट-छांट करने अथवा लिखावट को मिटाने पर धनादेश विकृत हो जाता है। फलतः जालसाजी स्वतः प्रकट हो जाती है।

(iii) समय की बचत—सामान्यतया प्रत्येक अधिकोष धनादेश पुस्तिकाएं निर्गमित करते समय प्रत्येक फार्म पर खाता संख्या अंकित कर देते हैं, जिससे जालसाजी के अवसर कम हो ही जाते हैं। साथ ही भुगतान में भी समय कम लगता है।

(iv) लेखक के हस्ताक्षर का मिलान आसान—जब धनादेश के लेखक के हस्ताक्षर पहचानने मे नही आते है तो धनादेश की संख्या या खाता संख्या देखकर उसके लेखक का नाम जाना जा सकता है और लेखक का नाम ज्ञात होने पर उसके नमूने के हस्ताक्षरों मे धनादेश के हस्ताक्षरों का मिलान आसान हो जाता है।

(v) भुगतान रुकवाने में सुविधा—जब एक ग्राहक अपने किसी धनादेश का भुगतान रुकवाना चाहता है तो उसे अपने अधिकोष को इस विषय की सूचना देने में आसानी रहती है। उसे केवल सम्बन्धित चैक की संख्या और तिथि ही बैंक को बतलानी पड़ती है।

(vi) रिकार्ड में सुविधा—निर्गमित धनादेशो का रिकार्ड बनाने मे भी ग्राहक को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता; क्योंकि प्रत्येक धनादेश के साथ उसकी काउण्टर फाइल होती है। काउण्टर फाइल मे संक्षेप मे प्रत्येक निर्गमित धनादेश का विवरण लिखा जाता है। यह ग्राहक के पास ही रहती है।

(ख) शाखा (Branch)—भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष आदेशित शाखा की जानकारी प्राप्त करता है। उसे यह जानकारी धनादेश पर अंकित शाखा की मोहर अथवा छपे हुए नाम से प्राप्त हो जाती है। जब किसी अधिकोष के समक्ष किसी अन्य शाखा या अधिकोष पर लिखा हुआ धनादेश प्रस्तुत किया जाता है तो वह उसका भुगतान

अवधि के पश्चात् विकृत चैक काल तिरोहित (Stale) हो जाएगा। 6 माह के पश्चात् जब नया धनादेश लिखा जाएगा तो उसके लिखने से पूर्व वह अपने अधिकोष से पुराने धनादेश की भुगतान-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर लेता है।

(घ) चैक की प्रकृति (Nature of the cheque)—एक धनादेश का भुगतान करते समय शोधी अधिकोप उसकी प्रकृति पर भी विचार करता है और उसके परिप्रेक्ष्य में ही भुगतान सम्बन्धी निर्णय लेता है। प्रकृति के आधार पर एक धनादेश रेखांकित, खुला (विवर्त), आदिष्ट, वाहक अथवा प्रापक को देय हो सकता है। एक धनादेश की प्रकृति में परिवर्तन होने पर शोधी अधिकोप के दायित्व भी बदल जाते हैं। अतः शोधी अधिकोप अपने दायित्वों का ध्यान रखते हुए ही प्रस्तुत धनादेश के भुगतान के बारे में अपना निर्णय लेता है।

रेखांकित धनादेश (Crossed cheques)

(i) बंक के माध्यम से भुगतान—एक सामान्य रूप से रेखांकित धनादेश का भुगतान केवल एक अधिकोप को किया जा सकता है व विशेष रूप से रेखांकित धनादेशका भुगतान केवल उस अधिकोष को किया जा सकता है जिसके पक्ष में धनादेश का रेखांकन किया गया है अथवा उसके प्रतिनिधि अधिकोप को किया जा सकता है। शोधी अधिकोप को रेखांकित धनादेश का भुगतान करते समय इन वैधानिक व्यवस्थाओं को ध्यान में रखना पडता है। इन व्यवस्थाओं का उल्लंघन करने पर भुगतान के परिणामों के लिए स्वयं दायी होता है। जब शोधी अधिकोप की खिड़की पर रेखांकित धनादेश प्रस्तुत किये जाते हैं तब वह उनका भुगतान नहीं करता है। वह उन्हें आपत्ति पत्र के साथ लौटा देता है। आपत्ति पत्र पर 'रेखाकित अधिकोप किसी बैंक के माध्यम से प्रस्तुत कीजिये" (Crossed cheque, Present throngh bank) लिखा जाता है अथवा छपा रहता है।

(ii) ग्राहक को भी खिड़की पर भुगतान नहीं—जब रेखांकित धनादेश का प्रस्तुतकर्ता शोधी अधिकोप का ग्राहक होता है तब भी शोधी उसका नकद भुगतान नहीं करता। वह ऐसे धनादेशों की राशि को भुगतान से पहले अपने ग्राहक के खाते में जमा करता है। राशि के जमा होने पर ग्राहक चाहे तो उसे तत्काल निकाल सकता है।

(iii) रेखांकन विलुप्ति की पुष्टि—जब धनादेश का रेखांकन विलुप्त कर दिया जाता है तो शोधी अधिकोप को ऐसे निरस्तीकरण की लेखक से पुष्टि करवानी पड़ती है। ग्राहक पुष्टि करते समय अपने नमूने के पूरे हस्ताक्षर करता है; क्योंकि शोधी अधिकोप के पास ग्राहक के संक्षिप्त हस्ताक्षर नही होते है। सामान्यतः पुष्टि निम्नांकित प्रकार से की जाती है—

रेखांकन निरस्त किया गया। कृपया नकद भुगतान कीजिए।
(Crossing cancelled, Please pay cash)

—प्रमेन्द्र कुमार सोनी

जब किसी विशेष रूप से रेखांकितधनादेश का किसी कारणवश भुगतान नहीं हो पाता है और परिणाम स्वरूप उसे किसी दूसरे अधिकोप के माध्यम से भुगतान के लिए दुबारा प्रस्तुत किया जाता है तो शोधी बैंक इस प्रकार के धनादेश का भुगतान प्रथम रेखांकन के समुचित निरस्तीकरण के पश्चात् ही करता है। पूर्व रेखांकन को अधांकित प्रकार से निरस्त किया जाता है—

इमारे पूर्ववर्ती सभी स्टेम्प्स निरस्त किये जाते हैं।

पंजाब नेशनल बैंक के लिए
भारत कुमार सोनी, ऐजेन्ट

प्रापक के खाते में देय धनादेश (A/C payee cheques)

ऐसे धनादेशों के भुगतान मे शोधी अधिकोष को विशेष सतर्कता की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि संग्राहक अधिकोष ऐसे धनादेशों की प्रस्तुतीकरण के पूर्व जांच सम्पन्न कर लेता है। जब ऐसे धनादेशों का पृष्ठांकन कर दिया जाता है तो शोधी अधिकोष भुगतान से पूर्व संग्राहक अधिकोष से पूर्व इस आशय की पुष्टि करवा लेता है कि संदर्भगत धनादेश का भुगतान केवल प्रापक के लिए (For A/C payeeonly) प्राप्त किया जा रहा है।[1]

(i) विवर्त या खुले चैक (Open cheques)—विवर्त धनादेश का नकद भुगतान प्राप्त किया जा सकता है। विवर्त धनादेश आदिष्ट अथवा वाहक हो सकते हैं। वाहक धनादेश का भुगतान उसके प्रस्तुतकर्ता को कर दिया जाता है; किन्तु संदेह योग्य वातावरण में प्रस्तुत किये जाने पर अधिकोष भुगतान से पूर्व अपने संदेह का निवारण कर सकता है। शोधी अधिकोष भुगतान करते समय धनादेश की पीठ पर भुगतान लेने वाले के हस्ताक्षर करवा लेता है। ये हस्ताक्षर प्राप्त कर्ता की रसीद का कार्य करते हैं। यदि कोई भुगतान प्राप्तकर्ता चैंक की पीठ पर हस्ताक्षर न करना चाहे तो उसे भुगतान की पृथक् रसीद देनी पड़ती है व 20 रु. से अधिक का भुगतान होने पर उस पर राजस्व टिकट भी लगानी पड़ती है। इस प्रकार से उसे एक तरफ बीस पैसे का कर देना पड़ता है व दूसरी ओर रसीद बनाने में व्यर्थ समय गंवाना पड़ता है। अतः व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति भुगतान लेते समय धनादेश की पीठ पर अपने हस्ताक्षर कर देता है।

साक्षी की मांग (Witness required)—आदिष्ट धनादेश का भुगतान करते समय शोधी अधिकोष चैक के प्रस्तुतकर्ता के बारे मे जानकारी प्राप्त करता है। जब अधिकोष उसे व्यक्तिशः नहीं जानता हो तब वह उससे समुचित साक्षी की मांग करता है। साक्षी सामान्यतः किसी ग्राहक की स्वीकार की जाती है।

अल्प वयस्क को भुगतान की पुष्टि—जब एक अल्प वयस्क किसी आदिष्ट अथवा वाहक धनादेश का भुगतान प्राप्त करता है तो शोधी अधिकोष इस प्रकार के भुगतान की किसी वयस्क ग्राहक से पुष्टि करवा लेता है। पुष्टि करने वाला धनादेश की पीठ पर अपने हस्ताक्षर करता है और अपना पता लिखता है। जब अल्प वयस्क शोधी अधिकोष का ग्राहक होता है तब ऐसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं होती।

(ड.) तारीख (Date)—एक धनादेश पर अंकित तिथि द्वारा ही इस बात का निर्णय किया जाता है कि वह दर्शनी विलेख है या सावधि विलेख (उत्तर तिथीय धनादेश) है या काल-तिरोहित धनादेश है। अतः एक धनादेश का भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष को उस पर अंकित तिथि को भी देखना पड़ता है।

---

1. बेवान बनाम पंजाब नेशनल बैंक लि. 1907

एक धनादेश के लेखक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रापक को धनादेश सौंपने से पूर्व उस पर तिथि अंकित करेगा। यदि वह इस कार्य को भूल जाये तो धनादेश का प्रापक या धारक इस कार्य को पूरा कर सकता है परन्तु प्रापक को इस प्रकार के धनादेश की प्राप्ति के पश्चात् उस पर यथोचित समय में तारीख अंकित कर देनी चाहिए।[1] इस प्रकार से अंकित तारीख वही होनी चाहिए जिस दिन वस्तुतः वह धनादेश लिखा गया था किन्तु कोई दूसरी तारीख लिखने पर भी अन्यथा प्रमाणित न होने तक यही माना जायेगा कि धनादेश उस पर अंकित तिथि को ही लिखा गया था। (धारा 118)।

शोधी अधिकोष भी एक तिथि-विहीन धनादेश पर तारीख अंकित कर सकते हैं। किन्तु सामान्यतया वे अपने इस अधिकार का प्रयोग करते नहीं है और तारीख विहीन धनादेशों को "तारीख अंकित नहीं है" लिखकर लौटा देते हैं।

जब किसी धनादेश की तारीख में संशोधन किया जाता है तो उसके लेखक को उस संशोधन की हस्ताक्षर सहित पुष्टि करनी पड़ती है। तारीख की दृष्टि से धनादेशों को निम्नांकित भागों में बांटा जा सकता है—

1. उत्तर-तिथीय धनादेश (Post dated cheques)—एक धनादेश का लेखक चाहे तो अपने धनादेश पर कोई भावी तिथि भी अंकित कर सकता है। इस प्रकार के धनादेशों को उत्तर तिथीय धनादेश कहा जाता है। उत्तर-तिथिय धनादेश वस्तुतः सावधिक-विपत्र होते है और उनका निर्गमन मुद्राक (Stamp duty) से बचने के लिए किया जाता है।

उत्तर-तिथीय धनादेश भी दर्शनी धनादेशों की भांति पूर्णतः विनिमय साध्य होते है व इनके पृष्ठांकिती यथा विधि धारक होते है।[2] पेजेट के मतानुसार इन धनादेशों के बाबत न्यायालयों में मुद्राक सम्बन्धी आपत्ति नहीं उठायी जा सकती।

उत्तर-तिथीय धनादेश के लिए शोधी अधिकोष उनकी अंकित तिथि से पूर्व भुगतान करने से मना कर सकते हैं। अतः शोधी अधिकोष इन धनादेशों का न देय तिथि से पूर्व भुगतान करते हैं और न देय-तिथि पर तिथि सम्बन्धी आपत्ति उठाते हैं। इस प्रकार की आपत्ति उठाने पर वे गलत अनादरण व उससे उत्पन्न हानि की पूर्ति के लिए दायी होते हैं।

जब उत्तर तिथीय धनादेशों को देय-तिथि से पूर्व भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वे उनका अनादरण नही करते अपितु देय तिथि पर प्रस्तुत करने का आग्रह करते हैं। वे धनादेशों को लौटाते समय "धनादेश को देयतिथि पर प्रस्तुत कीजिये" या "उत्तर तिथीय धनादेश" प्रभृति उत्तर लिखते हैं।

देय-तिथि से पूर्व भुगतान करने के परिणाम—जब एक अधिकोष उत्तर-तिथीय धनादेशों का उनकी देय तिथि से पूर्व भुगतान कर देता है तो उसे निम्नलिखित संभावित संकटों का सामना करना पड़ सकता है—

(i) भुगतान रुकवाना (Stop payment order)—ऐसे धनादेशों का लेखक

---

1. ग्रिफिन बनाम डाल्टन 1940।
2. हाजी मोहम्मद हनीफ मार्त्ब बनाम वी. एस. एन. अन्नूबेकर व अन्य।

धनादेश की देय तिथि के पूर्व अपने अधिकोष को धनादेश के भुगतान को रोकने के लिए किसी भी क्षण आदेश दे सकता है।

(ii) ग्राहक का पागल या दिवालिया होना—ग्राहक यदि पागल या दिवालिया हो जाये तो बैंक को तुरन्त चैक का भुगतान रोक देना पड़ता है।

(iii) कुर्की आदेश (Garnishee order)—न्यायालय ग्राहक के विरुद्ध कुर्की आदेश भी जारी कर सकता है। फलतः चैक का भुगतान तत्काल बन्द करना पड़ता है। इस प्रकार देय-तिथि से पूर्व भुगतान के लिए शोधी बैंक उत्तरदायी होता है।

(iv) अनुवर्ती चैक का अनादरण—इस प्रकार के चैक के भुगतान के पश्चात यदि शोधी बैंक अपने ग्राहक के किसी अन्य धनादेश का यथेष्ट राशि के अभाव मे अनादरण कर देता है और यदि उत्तर तिथीय चैक का भुगतान न करने पर अनुवर्ती धनादेश का भुगतान हो सकता था तो शोधी अधिकोष को गलत अनादरण के लिए ग्राहक की क्षति पूर्ति करनी पड़ती है जो सामान्य अथवा असामान्य हो सकती है।

(v) यथाक्रम भुगतान—नही देयतिथि से पूर्व किया गया भुगतान यथाक्रम भुगतान नही माना जाता है। अतः उत्तर-तिथीय चैको का समय से पूर्व भुगतान कर देने पर पर शोधी अधिकोष को धारा 128 के अन्तर्गत वैधानिक सरक्षणो से वचित होना पड़ता है।

प्रथम संकट के फलीभूत होने पर शोधी अधिकोप भुगतान किए गये धनादेशो का यथाविधि धारक बन जाता है और ग्राहक के विरुद्ध न्यायालय मे वाद प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु शेष चार संभावित सकट यथावत बने रहते है। अतः शोधी अधिकोष उत्तर तिथीय धनादेशो का भुगतान देयतिथि से पूर्व नही करते है।

(vi) काल तिरोहित धनादेश (Stale chegue)—जिस धनादेश की चलन अवधि समाप्त हो जाती है उसे काल तिरोहित चैक कहा जाता है। जब ऐसे धनादेश को शोधी बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो वह उसे "काल तिरोहित" लिखकर प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है। वैधानिक व्यवस्थानुसार (परिसीमन अधिनियम) एक धनादेश का भुगतान उसकी निर्गमन तिथि से 3 वर्ष तक प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार मे 6 माह के पश्चात् एक धनादेश कालतिरोहित मान लिया जाता है। एक लेखक चाहे तो अपने धनादेश की चलन अवधि को कम भी कर सकता है। इसके लिए उसे धनादेश के निर्गमन के समय धनादेश पर अपनी इच्छित अवधि अकित करनी पड़ती है जैसे "केवल तीन माह के लिए वैध"।

प्रापक से अपेक्षा—एक धनादेश का लेखक धनादेश के प्रापक से यह अपेक्षा करता है कि वह उस धनादेश को यथोचित समय में भुगतान के लिए बैंक के समक्ष प्रस्तुत कर देगा। विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 84 (1) मे भी यह व्यवस्था है कि धनादेश को उचित समय मे भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यथोचित समय का निर्धारण विनेख की प्रकृति, बैंको की परम्परा, व विशिष्ट परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे किया जाता है, धारा 84 (2)।

इस प्रकार निर्धारित समय को क्षेत्र विशेष के समस्त अधिकोषो को अनिवार्यतः मानना पड़ता है। न्यायालीय निर्णयो ने भी यथोचित समय को संहिता बद्ध करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ (i) जब शोधी बैंक व प्रापक एक ही स्थान पर कार्य कर

रहे हों तो प्रापक को अपना धनादेश निर्गमन करने वाले दिन ही भुगतान के लिए प्रस्तुत कर देना चाहिए[1] और (ii) डाक से धनादेश प्राप्त होने पर संग्राहक अधिकोष को उसे दूसरे दिन भुगतान के लिए अवश्य प्रस्तुत कर देना चाहिए।[2] संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि धनादेश एक दर्शनी विपत्र होता है और उसे प्राप्त करते ही भुगतान लेना चाहिए।

काल तिरोहित चैक को पुनः चलन में डालना—एक लेखक चाहे तो अपने काल तिरोहित चैक को पुनः चलन मे डाल सकता है। इस हेतु उसे धनादेश पर नवीन तिथि अंकित करनी होगी और, पुष्टि स्वरूप उस पर अपने हस्ताक्षर भी करने होंगे। नवीनतम करण के पश्चात् धनादेश पुनः 6 माह के लिए प्राणवान हो जाता है।

(3) धारक का अधिकार—जब एक प्रापक अथवा धारक किसी धनादेश का 6 माह के भीतर अथवा अन्य परम्परागत अवधि में भुगतान प्राप्त करने में असमर्थ रहता है तो वह लेखक से नया धनादेश ले सकता है अथवा पुराने धनादेश की तारीख में परिवर्तन करवा सकता है। जब ऐसे धनादेश का लेखक, प्रापक या धारक के निवेदन को अस्वीकार कर देता है तो उसके विरुद्ध परिसीमन अधिनियम (Limitation Act) के प्रावधानों के अन्तर्गत वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। वाद प्रस्तुत करते समय बैंकिंग अधिनियम के प्रावधानों को भी ध्यान मे रखना पड़ता है।

(च) प्रापक का नाम (Payee's name)—भुगतान करते समय शोधी अधिकोष को धनादेश के प्रापक के नाम की भी जांच करनी पडती है। जब प्रापक का नाम संदिग्ध, काल्पनिक अथवा अस्पष्ट होता है तो वे इस प्रकार के धनादेशों का भुगतान नहीं करते हैं।

कभी-कभी ग्राहक प्रापक के नाम की अपेक्षा किसी वस्तु का नाम अंकित कर देते हैं। जब इस प्रकार के धनादेश वाहक होते हैं तब बैंक उनका निःसंकोच भुगतान कर देते हैं किन्तु जब इस प्रकार के धनादेश आदिष्ट होते हैं तब विधानतः शोधी बैंकों को इन का भुगतान नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्हें वैध धनादेश नहीं माना जा सकता।[3] व्यवहार मे बैंक इन धनादेशों को भी वाहक धनादेश मान लेते हैं और उनका भुगतान कर देते हैं।

"मजदूरी या आदेश" "रोकड़ या आदेश" या "भारत माता या आदेश" को भुगतान कीजिए। वस्तुतः ये आदिष्ट चैक है किन्तु रोकड मजदूरी या भारत माता इनका पृष्ठांकन नहीं कर सकतीं। इस व्यावहारिक कठिनाई के कारण ही शोधी बैंक इन धनादेशों को वाहक मान लेते हैं।

(छ) धनादेश की राशि (Amount of the cheque)—एक निश्चित राशि वाले धनादेश को ही वैध धनादेश माना जाता है। अतः किसी धनादेश का भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष उसकी राशि की निश्चितता पर विचार करता है। धनादेश की राशि सुपाठ्य होनी चाहिए व काट-छांट से पूर्णतः मुक्त होनी चाहिए। यदि कहीं पर काट-

---

1. अलेक्जेण्डर बनाम बर्कफील्ड।
2. रिचर्ड बनाम रिज 1810।
3. नार्थ एण्ड साउथ इन्स्योरेंस कारपोरेशन लि. बनाम नैशनल प्रोविंसियल बैंक 1936, कोल बनाम विल्मन 1951।

छांट की गई हो तो शोधी अधिकोष को भुगतान से पूर्व उनकी ग्राहक से पुष्टि करवा लेनी चाहिए। ग्राहक पुष्टि स्वरूप कांट-छाट के स्थान पर अपने पूरे हस्ताक्षर कर देता है।

शब्दों व अंकों में असमानता:—परम्परानुसार धनादेशो की राशि शब्दो व अंकों मे लिखी जाती है। धनादेशों की काया मे राशि सदा शब्दो में अंकित की जाती है व सीमान्त में अंको मे लिखी जाती है। कभी-कभी असावधानीवश इन दोनो राशियों में भिन्नता आ जाती है। ऐसी अवस्था में शोधी अधिकोषो का कर्त्तव्य अभी तक विवादास्पद है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, "यदि आदेशित राशि के शब्दों व अंकों में अन्तर हो तो शब्दों में अंकित राशि को भुगतान के लिए आदेशित राशि माना जाता है। इस प्रकार यदि एक शोधी बैंक शब्दो में अंकित राशि का भुगतान कर दें तो उस पर किसी प्रकार का वैधानिक संकट नही आयेगा।" न्यायालीय निर्णय भी इस व्यवस्था की पुष्टि करते हैं।[1] विधि एव न्यायालय द्वारा समर्थित होने पर भी व्यवहार में बैंक इस प्रकार के चैको का भुगतान नही करते हैं। वे ऐसे चैकों की "शब्दो व अंको में अंकित राशि भिन्न है" (Amount in words and figures differ) लिख कर लौटा देते हैं।

जब किसी धनादेश पर केवल शब्दों मे अथवा केवल अंको मे राशि अंकित होती है तब उस धनादेश को अनियमित धनादेश माना जाता है। फलतः शोधी अधिकोष ऐसे धनादेशों का भुगतान नही करते हैं व उन्हें "रकम केवल शब्दो या केवल अंकों मे लिखी हुई है" लिखकर लौटा देते हैं। इस प्रकार के धनादेशो के लौटाने से ग्राहक की साख पर कोई आंच नही आती है। "लन्दन ज्वाइण्ट स्टॉक कंपनी बनाम मैकमिलन विवाद 1908 मे दिये गये निर्णय मे न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि शोधी अधिकोष को अपने ऊपर लिखित आदेश को उस स्वरूप में प्राप्त करने का अधिकार है जिसके द्वारा उसे आदेशित कार्य को पूरा करने में किसी प्रकार की भ्रांति न हो। अधिनियम मे कोई ऐसी व्यवस्था नही है जो प्राप्त धनादेश की राशि को शब्दो या अंकों मे अंकित करवाने के अधिकार का किसी अनुबन्ध या परम्परा के आधार पर हनन करती है।

हाथ से लिखी राशि मान्य :—यदि किसी धनादेश पर राशि हाथ से लिखी हुई हो व उसके साथ-साथ उसे टाइप भी किया गया हो या छापा गया हो और उन दोनों मे अन्तर हो तो हाथ से लिखी हुई राशि को मान्यता दी जाती है।

अधिकतम राशि का सकेत :—यदि किसी धनादेश की काया के अतिरिक्त उसके किसी कोने या मध्य भाग में उर्द्धगामी दिशा मे धनादेश की अधिकतम सीमा सम्बन्धी नोट लगा हुआ हो (यथा 501 रुपये से कम) तो भुगतान करते समय शोधी अधिकोष उस नोट को दृष्टि से ओझल नही कर सकता। शब्दो व अंको मे अंकित राशियो में एकरूपता होने पर भी शोधी अधिकोष उपर्युक्त नोट की अवज्ञा नही कर सकता। वह इस अधिकतम सीमा से अधिक भुगतान किसी भी अवस्था मे नही कर सकता। जब किसी धनादेश की राशि उपर्युक्त नोट से अधिक होती है तो शोधी अधिकोष उसे अनियमित रूप में लिखा हुआ लिखकर वापस कर देते हैं।

---

1. जम्मू एण्ड कश्मीर बैंक लि. बनाम काजी ताइदीन 1954।

(ज) ग्राहक के हस्ताक्षर (Signature of the customer) :—एक धनादेश पर उसके लेखक या अधिकृत अभिकर्ता को अनिवार्य रूप से अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं क्योंकि हस्ताक्षर-विहीन धनादेश वस्तुतः धनादेश नही होता है। अतः एक धनादेश का भुगतान करने से पूर्व उसका शोधी अधिकोष निम्नांकित दो बातों की जांच करता है :—

(1) धनादेश पर उसके अधिकृत अभिकर्ता के हस्ताक्षर हैं या नही और (2) हस्ताक्षर वास्तविक हैं या जाली।

(i) स्याही से हस्ताक्षर :— धनादेश पर हस्ताक्षर हमेशा स्याही से किए जाते है। पेन्सिल अथवा रबर की मोहर से किए गए हस्ताक्षरो को बैंक मान्यता नही देता, क्योंकि पेन्सिल के हस्ताक्षरों को आसानी से बदला जा सकता है और रबर की मोहर का अनधिकृत प्रयोग किया जा सकता है।

(ii) विधि :—शेल्डन (Sheldon) के मतानुसार एक ग्राहक के लिए अपने नाम से खाता खोलना व धनादेश पर अपने नाम से हस्ताक्षर करना अनिवार्य नही होता है। वह चाहे तो अपने व्यावसायिक नाम से भी खाता खोल सकता है और उसी नाम मे धनादेशो पर हस्ताक्षर भी कर सकता है। उदाहरणार्थ, हिन्द पेपर मार्ट का स्वामी अपनी फर्म के नाम से खाता खोल सकता है व उसी नाम से धनादेश भी लिख सकता है। शेल्डन का मत ठीक प्रतीत होते हुए भी अधिकोष व्यवहार में इस पद्धति को प्रोत्साहन नही देते हैं।

(iii) स्थान :—हॉर्ट के मतानुसार धनादेश के निचले भाग पर हस्ताक्षर करना अनिवार्य नही होता है। धनादेश का लेखक धनादेश के भुगतान के उद्देश्य से धनादेश के अग्र भाग पर कही पर भी हस्ताक्षर कर सकता है। लेकिन व्यवहार में बैंक द्वारा उपलब्ध करवाये जाने वाले छपे हुए चैक फार्मों पर (अन्तिम भाग मे ही) ग्राहक के हस्ताक्षरो के लिए व्यवस्था होती है।

(iv) अंगूठे की निशानी :—बीमारी की अवस्था मे एक ग्राहक अपने धनादेश पर अपने हस्ताक्षरो की अपेक्षा अपने अंगूठे का निशान भी लगा सकता है। शोधी अधिकोष रोगी ग्राहक के अंगूठे के निशान को तभी मान्यता देता है जबकि उसका चिकित्सक यह प्रमाणित कर देता है कि ग्राहक रुग्णावस्था के कारण धनादेश पर हस्ताक्षर करने में असमर्थ है व अंगूठा लगाते समय वह संज्ञा-शून्य नहीं है, अर्थात् उसे अपने भले-बुरे का ज्ञान है। चिकित्सक के इस प्रमाण-पत्र के अतिरिक्त किसी सम्मानित व्यक्ति को रोगी ग्राहक के अंगूठे के निशान की पुष्टि करनी पड़ती है। वह धनादेश की पीठ पर अपने हस्ताक्षर करता है और अपना पूरा पता लिखता है। यह व्यक्ति बैंक का परिचित होता है।

(v) अनपढ़ :—एक अनपढ़ व्यक्ति धनादेश पर अंगूठे का निशान बना सकता है व उसका पृष्ठांकन भी अपने अंगूठे के निशान से कर सकता है; किन्तु दोनों ही अवस्थाओ मे इस प्रकार के निशान की शोधी अधिकोष को किसी परिचित व्यक्ति से पुष्टि करवानी पड़ती है। ऐसे साक्षी द्वारा पुष्टि उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार एक बीमार ग्राहक के अंगूठे की निशानी की पुष्टि की जाती है।

(vi) अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर :—एक ग्राहक चाहे तो अपने खाते के संचालन के लिए अपने अभिकर्ता की नियुक्ति कर सकता है। अभिकर्ता खाते का संचालन अपने नाम

से अथवा अपने मालिक के नाम से कर सकता है। दोनों ही अवस्थाओं मे अभिकर्ता को मालिक के अधिकोष के पास अपने नमूने के हस्ताक्षर भेजने पड़ते हैं। मालिक के नाम से वह खाते का सचालन तभी कर सकता है जबकि उसे इस प्रकार का स्पष्टतः अधिकार दिया जाता है। जब अभिकर्ता की नियुक्ति वैधानिक सलेख के अन्तर्गत की जाती है तो ग्राहक को उस संलेख की एक प्रति भी अपने अधिकोष के पास जमा करवानी पड़ती है।

शोधी अधिकोष का कर्त्तव्य :—एक धनादेश का भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष को धनादेश पर किए गए हस्ताक्षरो का ग्राहक के नमूने के हस्ताक्षरों से मिलान करना पड़ता है। जब दोनो हस्ताक्षरों मे थोडा-सा भी अन्तर पाया जाता है तो वह सबधित धनादेश का भुगतान नही करता है और उसे "हस्ताक्षर नही मिलते" (Signature differs) लिखकर प्रस्तुतकर्ता को लौटा देता है। यदि ऐसे धनादेश का लेखक अधिकोष के समक्ष व्यक्तिशः यह स्वीकार कर ले कि धनादेश पर किए गए हस्ताक्षर उसी के हैं तो शोधी अधिकोष उस धनादेश का भुगतान कर देता है। इस प्रकार सहमति प्रकट करने के बाद ऐसे चैक का लेखक अपने हस्ताक्षरो की यथार्थता को अस्वीकार नही कर सकता (धारा 20)। जब ग्राहक अपने हस्ताक्षरों की यथार्थता के ब.रे मे मौन रहता है तो यह नहीं माना जा सकता कि उसने हस्ताक्षरों की यथार्थता को स्वीकार कर लिया था।

सयुक्त खाते (Joint Accounts) :—जब किसी सयुक्त खाते पर धनादेश प्रस्तुत किया जाता है तो शोधी अधिकोष को उसके भुगतान से पूर्व इस ओर से आश्वस्त होना पडता है कि धनादेश पर उस खाते के समस्त खातेदारो के हस्ताक्षर हैं। यदि संयुक्त खाताधारियो ने बैंक को इस सामान्य नियम के विपरीत कोई निर्देश दे रखा हो या देश का कोई कानून इस नियम के विपरीत कार्य करने की अनुमति देता हो तो बैंक किसी एक या कुछ खातेदारो द्वारा हस्ताक्षरित धनादेशो का भी भुगतान कर सकता है। उदाहरणार्थ, पति-पत्नी के संयुक्त खाते पर लिखे गये धनादेशो पर दोनो खातेदारो के हस्ताक्षर आवश्यक होते है परन्तु जब वे बैंक को यह निर्देश दे देते है कि खाते का सचालन किसी भी एक व्यक्ति (पति या पत्नी) द्वारा हस्ताक्षरित धनादेश का भुगतान कर सकता है। इसी प्रकार फर्म व प्रमण्डलो के धनादेशो का भुगतान करते समय शोधी अधिकोष को इन खातो के सचालन सम्बन्धी निर्देशो का ध्यान रखना पड़ता है। उन निर्देशो की पूर्ति न होने पर वह धनादेशो का भुगतान नहीं करता है।

शोधी अधिकोष का दायित्व :—कुछ समय पूर्व तक यह एक सर्वमान्य मत था कि जब एक अधिकोष जाली हस्ताक्षरो के आधार पर किसी धनादेश का भुगतान कर देता है तो इस प्रकार के भुगतान के लिए वह स्वयं दायी होगा अर्थात् वह भुगतान की राशि को ग्राहक के नाम नही लिख सकेगा चाहे जालसाजी कितनी ही कुशलता से क्यो न की गई हो। लेकिन अब इस विचारधारा में थोड़ा-सा अन्तर आ गया है। अब शोधी अधिकोष को जाली हस्ताक्षरो के आधार पर किए गए भुगतान के लिए तभी उत्तरदायी ठहराया जाता है जबकि वे हस्ताक्षरो के बारे में किसी प्रकार की लापरवाही बरतते है। "लन्दन एण्ड रीवर प्लेट बैंक बनाम बैंक ऑफ लीवर पूल विवाद" इस मत की पुष्टि करता है। इस विवाद के निर्णय में यह मत प्रकट किया गया कि जब जालसाजी चतुराई से की जाती है और शोधी बैंक पूर्ण सावधानी से काम करने के बाद भी हस्ताक्षरों की जालसाजी का पता

नहीं लगा पाता है तो संभवतया उसे उस अवस्था मे असावधानी के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

चैक बुक की चोरी—जब किसी ग्राहक से चैक बुक खो जाती है अथवा वह उसे ताले के भीतर नही रखता है और परिणामस्वरूप चोरी चली जाती है और अनधिकृत रूप से ग्राहक के खाते में से धनराशि निकलवा ली जाती है तो असावधानी की अवस्था में शोधी बैंक ऐसे भुगतान के लिए अपने ग्राहक के प्रति दायी होगा चाहे बैंक ने अपने नियमों में यह व्यवस्था कर रखी हो कि प्रत्येक ग्राहक को अपनी चैक बुक ताले के भीतर रखनी होगी अन्यथा वह ग्राहक को किसी प्रकार की हानि के प्रति दायी नहीं होगा।[1]

ग्राहक का कर्त्तव्य—प्रत्येक ग्राहक का यह कर्तव्य है कि वह सावधानीपूर्वक चैक लिखे ताकि जालसाजी की सम्भावना न्यूनतम रहे। यदि ग्राहक की असावधानी के कारण जालसाजी द्वारा चैक की राशि में वृद्धि कर दी जाती है और बैंक उसका भुगतान कर देता है तो उस हानि को ग्राहक ही भुगतेगा, बैंक नही।[2].

यदि किसी ग्राहक को यह पता लग जाय कि उसके खाते में से जाली हस्ताक्षरों द्वारा धनराशी निकाली जा रही है तो उसे तत्काल अपने बैंक को इसकी सूचना देनी चाहिए। यदि ग्राहक चुप रहता है अथवा अपने बैंक को उस समय सूचना देता है। जब बैंक चैक के धारक के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही कर सकता तो ऐसी हानि भी ग्राहक को ही वहन करनी पड़ेगी।[3]

यदि किसी ग्राहक को उसके अधिकोष द्वारा 'जालसाजी की सूचना दी जावे और वह उस सूचना के बाद भी सतर्क न हो और उसके खाते से जाली धनादेशों से धनराशि निकलती रहे तो इस प्रकार के भुगतानो के लिए भी ग्राहक ही दायी होता है।[4]

यदि किसी ग्राहक को अपने अधिकोषों के एजेण्ट से अपने खाते की जालसाजी का पता लगे किन्तु एजेण्ट उसे चुप रहने का परामर्श दे वे और ग्राहक उस परामर्श को इस विश्वास के साथ मान लेवे कि एजेण्ट ईमानदारी और सद्विश्वास से उसे परामर्श दे रहा है और ग्राहक की चुप्पी के कारण उसे (ग्राहक) हानि हो जाय तो ग्राहक को अपने बैंक से इस प्रकार की क्षति की पूर्ति करवाने का अधिकार होता है। यदि सम्बन्धित ग्राहक को यह आशंका हो कि बैंक का एजेण्ट अच्छी नियत से परामर्श नहीं दे रहा है तो उसे उस एजेण्ट के व्यवहार की बैंक के अधिकारियो को अविलम्ब सूचना देनी चाहिये।[5]

1. ग्रीन वुड बनाम मार्टिन्स बैंक विवाद.—इस विवाद में ग्रीनवुड की धर्मपत्नी ने ग्रीनवुड के खाते मे से ग्रीनवुड के जाली हस्ताक्षरो से 44 बार धन निकलवाया जब ग्रीनवुड को अपनी पत्नी की इस कार्यवाही का पता लगा तो उसकी पत्नी ने उससे इस तथ्य को छिपाये रखने का निवेदन किया। ग्रीनवुड ने इस निवेदन को मान लिया। इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् ग्रीनवुड की पत्नी ने अपने पति से कुछ पैसे मांगे; किन्तु ग्रीनवुड ने

---

1. प्रभुदयाल बनाम ज्वाला बैंक 1938
2. भगवानदास बनाम कीट और स्काटलैण्ड बनाम लेण्ड्स बरो।
3. ग्रीनवुड बनाम मार्टिन्स बैंक।
4. ब्राउन बनाम वेस्ट मिनिस्टर बैंक।
5. ओजिलवी बनाम वेस्ट आस्ट्रेलिया मोरगेज एण्ड एजेन्सी कारपोरेशन 1896.

पैसे देने से इन्कार कर दिया और उसे यह धमकी भी दी की यदि उसने बार-बार पैसा मांगा तो वह उसकी पूर्व कार्यवाही से बैंक को सूचित कर देगा। श्रीमती ग्रीनवुड ने इस धमकी से डरकर आत्महत्या करली। अपनी स्त्री की आत्महत्या के पश्चात् ग्रीनवुड ने अपने अधिकोष के विरुद्ध जाली भुगतान के लिए हानि-पूर्ति का दावा प्रस्तुत किया किन्तु न्यायालय ने उस दावे को अस्वीकार कर दिया। न्यायालय ने यह अभिमत प्रकट किया कि वादी ने प्रस्तुत विवाद में अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना की है। उसे चुप न रहकर अपने अधिकोष को जालसाजी की कार्यवाही से तुरन्त अवगत कराना चाहिए था।

2. ब्राउन बनाम वेस्ट मिस्टर विवाद :—प्रस्तुत विवाद में वेस्ट मिस्टर बैंक के मैनेजर ने श्रीमती ब्राउन को व्यक्तिगत रूप से यह सूचना दी थी कि उनके खाते पर करलेसर (श्रीमती ब्राउन का नौकर) के पक्ष में लिखे गये अनेक धनादेश भुगतान के लिए प्रस्तुत हो रहे है। श्रीमती ब्राउन ने प्रत्युत्तर में मैनेजर से सन्देह न करने के लिए कहा। श्रीमती ब्राउन के स्पष्टीकरण के पश्चात् भी उसके खाते में से कारलेस के पक्ष में बराबर आहरण होता रहा। इसी बीच श्रीमती ब्राउन के अधिकोष में नए मैनेजर की नियुक्ति हो गई। नए मैनेजर ने भी पूर्व मैनेजर की भांति श्रीमति ब्राउन का खाते की उपर्युक्त स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया; किन्तु उसने नये मैनेजर की चेतावनी पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। निरुपाय होकर नये मैनेजर ने श्रीमती ब्राउन के सुपुत्र डाक्टर ब्राउन को स्थिति से अवगत किया और डाक्टर ब्राउन की प्रेरणा पर श्रीमती ब्राउन ने अपने खाते की जांच की। इस जांच के द्वारा उसे यह ज्ञात हुआ कि उसके खाते में 329 धनादेशों का अनधिकृत रूप से भुगतान हुआ है। उसने अपने अधिकोष के विरुद्ध इन अनधिकृत भुगतानों के लिये दावा प्रस्तुत किया, किन्तु न्यायालय ने श्रीमती ब्राउन के दावे को अस्वीकृत करते हुए यह अभिमत प्रकट किया कि श्रीमती ब्राउन को अपने अधिकोष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करने का कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि उसने अपने व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया था कि सन्दर्भगत धनादेशों पर हस्ताक्षर उसी के हैं।

(झ) यथेष्ट मात्रा में धन (Adequate amount for Payment)-एक धनादेश का भुगतान करने से पूर्व शोधी अधिकोष इस बात पर भी विचार करता है कि (अ) धनादेश के भुगतान के लिए ग्राहक के खाते में यथेष्ट मात्रा में धन जमा है या नहीं और (ब) जमा राशि को भुगतान के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

जब किसी ग्राहक के खाते में पर्याप्त मात्रा में धन जमा नहीं होता है तब शोधी अधिकोष को उसके धनादेशों के भुगतान के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार जब खाते में अपर्याप्त मात्रा में धन जमा होता है तब शोधी अधिकोष उस राशि को सदर्भगत धनादेश के भुगतान के काम में नहीं ले सकता; क्योंकि ग्राहक ने उसे आंशिक भुगतान के लिए अधिकृत नहीं किया है। वह खाते में जमा राशि की मात्रा धनादेश के प्रस्तुतकर्ता को भी नहीं बता सकता; क्योंकि संभव है वह भुगतान के लिए कम पड़ने वाली राशि जमा करवाकर अपने धनादेश का भुगतान प्राप्त करले। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की सूचना देने पर शोधी अधिकोष को गोपनीयता के भंग (Breach of Secrec)) का दोषी माना जाता है, अतः खाते में पर्याप्त राशि जमा न होने पर शोधी बैंक "अपर्याप्त राशी" जैसे संक्षिप्त उत्तर के अलावा धनादेशों पर कुछ भी नहीं लिखते है।

खाते में जमा राशि की यथेष्टता पर विचार करते समय शोधी अधिकोष (1) खाते में जमा राशि (2) ग्राहक के विलेखों की संग्रहित राशि, (3) बैंक द्वारा स्वीकृत अधिविकर्ष की अधिकतम सीमा (4) चिन्हित धनादेश व (5) कुर्क की गई राशि पर विचार करता है। यदि ग्राहक के विलेखों का संग्रहण हो चुका हो, किन्तु धनादेश के प्रस्तुतीकरण तक उसे (संग्रहित राशि) ग्राहक के खाते में जमा नहीं किया गया हो तो जमा राशि की यथेष्टता ज्ञात करने के लिये उसे उस राशि को खाते में अवश्य जमा कर देना चाहिए। जब शोधी अधिकोष इस राशि को खाते में दिखाने से पूर्व ही अपने ग्राहक के धनादेश का अनादरण कर देते हैं (यदि राशि जमा करने पर प्रस्तुत धनादेश का भुगतान हो सकता है) तो वह गलत अनादरण का दोषी माना जाता है। इसी प्रकार यदि बैंक ने अपने किसी ग्राहक को अधिविकर्ष स्वीकृत कर रखा हो तो खाते में जमा राशि की यथेष्टता के लिए उसे अधिविकर्ष की अधिकतम सीमा पूर्व आहरित राशि व प्रस्तुत धनादेश की राशि पर विचार करना पड़ता है। यदि पूर्व आहरित राशि व भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेश की राशि का योग उच्चतम सीमा से अधिक हो रहा हो तो वह धनादेश का अनादरण कर सकता है।

चिन्हित चैक (Marked Cheque)—जब एक अधिकोष अपने किसी ग्राहक अथवा संग्राहक अधिकोष की प्रेरणा पर किसी धनादेश का चिन्हांकन करता है तो शोधी अधिकोष को उसका अनिवार्यतः भुगतान करना पड़ता है। ग्राहक ऐसे धनादेश को रोकने के लिए अपने अधिकोष को आदेश नहीं दे सकता। अतः जमा राशि की यथेष्टता ज्ञात करते समय उसे इस प्रकार के धनादेशों की राशि जमाराशि में से कम कर देनी चाहिए। इसी प्रकार कुर्की आदेश (Garnishee Order) के अन्तर्गत आरक्षित राशि भी कुल जमा द्रव्य से कम की जाती है।

विपत्रों की कटौती—जमा राशि की यथेष्टता पर विचार करते समय बैंक अपने ग्राहक के सम्भावित दायित्वों को जमा राशि में से कम नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, यदि किसी ग्राहक ने अपने अधिकोष से कुछ विपत्रों की कटौती करवा रखी हो तो अधिकोष इन विपत्रों की राशि तब तक सम्बन्धित ग्राहक के नाम नहीं लिख सकता जब तक कि उनका अनादरण नहीं हो जाता है।

अधिविकर्ष की सुविधा—जब किसी ग्राहक के खाते में एक धनादेश के भुगतान के लिए पर्याप्त मात्रा में राशि जमा नहीं होती है और उसका अधिकोष भूल से उसका भुगतान कर देता है तब यह माना जाता है कि शोधी अधिकोष ने उसे अधिविकर्ष की सुविधा दे दी थी। यदि सम्बन्धित अधिकोष ऐसी सुविधा भविष्य में न देना चाहे तो उसे अपने ग्राहक को इस प्रकार से स्वीकृत अधिविकर्ष के शोधन के लिए अविलम्ब लिखना चाहिए अन्यथा ग्राहक भविष्य में भी इस सुविधा के उपयोग का अधिकारी होगा और शोधी अधिकोष को उसके धनादेशों का खाते में पर्याप्त धन जमा न होने पर भी भुगतान करना पड़ेगा। यदि शोधी अधिकोष इस प्रकार से लिखे गए धनादेशों का भुगतान करने से मना कर दे और फलस्वरूप ग्राहक की साख को धक्का पहुँचे तो वह अपने अधिकोष के विरुद्ध साधारण अथवा असाधारण हानि की पूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि उसके अधिकोष ने पूर्व सूचना के अभाव में परम्परा का उल्लंघन किया।

दो चैकों का एक साथ प्रस्तुतीकरण—जब किसी खाते पर एक साथ दो धनादेशों

को व्यक्तिशः प्रस्तुत किया जाता है और खाते में जमा राशि की अपर्याप्तता के कारण दोनों में से केवल एक धनादेश (छोटी राशि वाला) का भुगतान किया जा सकता है तब शोधी अधिकोष उस धनादेश का भुगतान कर देता है भले ही वह धनादेश दूसरे धनादेश की अपेक्षा कुछ विलम्ब से प्रस्तुत किया गया हो। बड़ी राशि वाले धनादेश का धारक यह आपत्ति नहीं उठा सकता कि छोटी राशि वाले धनादेश का भुगतान करके शोधी अधिकोष ने उसके अधिकारों का हनन किया है।

डाक द्वारा प्राप्त चैक--जब कुछ व्यक्तियों अथवा संस्थाओं या संग्राहक अधिकोषों की ओर से डाक से कुछ धनादेश एक साथ प्राप्त होते है और सम्बन्धित खाते में पर्याप्त राशि जमा नहीं होती है तब शोधी अधिकोष उन धनादेशों मे से किसी भी धनादेश का भुगतान नहीं करता है क्योंकि ऐसी स्थिति में प्राथमिकता का निर्णय करना बड़ा कठिन होता है।

(ब) जमा राशि की उपलब्धता--सम्बन्धित ग्राहक के खाते में पर्याप्त मात्रा में धन जमा होने पर भी शोधी अधिकोष एक धनादेश का भुगतान करने मे असमर्थ हो सकता है। हो सकता है कि उस ग्राहक ने सम्पूर्ण जमा राशि अथवा उसके किसी एक भाग को विशिष्ट कार्य के लिए आरक्षित (Reserve) करवा रखा हो। यदि ग्राहक ने वस्तुतः जमा राशि के कुछ भाग को आरक्षित करवा रखा हो तो ग्राहार्यी अधिकोष उस राशि को धनादेशो के भुगतान के काम मे नही ले सकता। शोधी अधिकोष सामान्यतः इस प्रकार से आरक्षित राशि को किसी विशिष्ट खाते में स्थानांतरित कर देता है ताकि भूल-वश भी उस राशि का प्रयोग न किया जा सके। उदाहरणार्थ, श्री इन्द्रकुमार के देना बैंक की सीकर शाखा मे 5,000 रुपये जमा हैं। इस राशि मे से उसने 3,000 रुपये अपने एक देय विपत्र के भुगतान के लिए आरक्षित करवा रखी है। अतः सम्पत्ति उसके खाते मे भुगतान के लिए केवल 2,000 रुपये जमा हैं। ऐसी स्थिति मे यदि इन्द्रकुमार अपने खाते पर 2,001 रुपये का चैक लिखे तो उसका अधिकोष उसे "अपर्याप्त राशि" लिखकर लौटा देगा।

यदि ग्राहक के खाते मे यथेष्ट मात्रा मे द्रव्य जमा हो और वह भुगतान के लिए उपलब्ध हो तो बैंक को भुगतान के लिए प्रस्तुत धनादेशो की राशि की अपर्याप्तता के आधार पर नही लौटाना चाहिए अन्यथा अनुचित अनादरण के कारण उसे ग्राहक की क्षति-पूर्ति करनी पड़ेगी।[1]

यदि किसी धनादेश के भुगतान के पश्चात शोधी अधिकोष को यह पता लगे कि ग्राहक के खाते मे यथेष्ट राशि जमा नहीं थी, अर्थात् उसे अनजाने मे अधिविकर्ष स्वीकृत हो गया तो वह धनादेश के धारक से भुगतान की राशि वापस नही ले सकता क्योंकि धनादेश का भुगतान होते ही मुद्रा मे निहित सम्पत्ति धनादेश के धारक को हस्तान्तरित हो जाती है। चेम्बर्स बनाम मिलर, 1862 के विवाद में इस मत की पुष्टि हो चुकी है।

कार्यकारी दिवस और बैंकिंग कार्यावधि—शोधी अधिकोष एक धनादेश का भुगतान उसे कार्यकारी दिवस व बैंकिंग कार्यावधि मे भुगतान के लिए प्रस्तुत करने पर ही कर

1. डेविडसन बनाम बार्कलेज बैंक, 1940.

सकता है (धारा 65)। जब किसी धनादेश को अवकाश के दिन अथवा बैंकिंग कार्यवाधि के पश्चात् अथवा उसके पूर्व भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो शोधी बैंक उसका भुगतान नही करते हैं, किन्तु उन्हें इन नियमों को कठोरतापूर्वक अपनाने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि किसी धारक ने बैंकिंग कार्यवाधि में बैंक को अपना धनादेश दे दिया हो तो वह उस धनादेश का उसी दिन भुगतान पाने का अधिकारी होता है भले ही शोधी अधिकोष क बैंकिंग कार्यवाधि समाप्त हो चुकी हो। इसी प्रकार यदि बैंकिंग कार्यवाधि समाप्त होते ही एक धारक अपने धनादेश को भुगतान के लिए प्रस्तुत करे तो शोधी अधिकोष उस धनादेश का भुगतान कर सकता है। इस प्रकार से किया गया भुगतान बैंकिंग कार्यविधि में किया गया भुगतान माना जाता है बशर्ते कि शोधी अधिकोष ने भुगतान से पूर्व अपनी पुस्तकें बन्द न कर दी हों।[1] शोधी अधिकोष विशेष परिस्थितियों में अपने ग्राहकों अथवा धनादेशों के प्रस्तुतकर्ताओं को बैंकिंग कार्यविधि के पश्चात् भुगतान करके उपकृत करते रहते है, किन्तु सामान्यतः वे ऐसे भुगतानो को हतोत्साहित करते हैं।

एक अधिकोष अपने कार्यकारी दिवसों की अपने तिथि-पत्रक (कलेण्डर) द्वारा अपने ग्रहकों को वर्ष के प्रारम्भ मे ही दे देता है। जब कलेण्डर में घोषित अवकाश दिवसों के अतिरिक्त अन्य किसी दिवस को अवकाश घोषित किया जाता है तो अधिकोश को उस अवकाश की अग्रिम सूचना अपने सूचना पट्ट पर लगानी पड़ती है व अपने क्षेत्र के बहुपठित समाचार पत्र की सहायता से उसका प्रसारण भी करवाना पडता है अन्यथा किसी ग्राहक को आर्थिक हानि हो जाने पर बैंक को उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। किसी आकस्मिक घटना के घटित होने पर (यथा राजनेता का निधन, मुद्रा का अवमूल्यन या पुनर्मूल्यन) भारत सरकार भी अधिकोषो के लिए सार्वजनिक अवकाश घोषित कर सकती है। इस अवकाश की घोषणा को सार्वजनिक जानकारी के लिए रेडियो व समाचार पत्रों द्वारा प्रसारित किया जाता है।

बैंकिंग कार्यवाधि का नियमन परम्पराओं द्वारा होता है। अतः एक अधिकोष अपनी कार्यविधि में परिवर्तन अपने ग्राहकों को सूचित करने के पश्चात् कर सकता है। ग्राहकों की सूचनार्थ नई समय सारणी अधिकोष के सूचना पट्ट पर लगाई जाती है व उस क्षेत्र के प्रमुख समाचार-पत्र मे भी उसे प्रकाशित कराया जाता है। इस परिपाटी का पालन न करने पर यदि किसी ग्राहक को हानि हो जाय तो वह अपने अधिकोष के विरुद्ध न्यायालय में क्षतिपूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत कर सकता है।

कार्यविधि के पश्चात किये गये भुगतान के परिणाम—जब कोई बैंक किसी धनादेश का अपनी कार्यविधि (Banking hours) के पश्चात् भुगतान कर देता है तो उसे

---

1. बेन्स बनाम नेशनल प्रोविन्शियल बैंक 1927. इस विवाद में शोधी बैंक ने एक धनादेश का सामान्य कार्यवाधि के 5 मिनट बाद भुगतान कर दिया। धनादेश के लेखक ने उस भुगतान को अनियमित्ता मानते हुए बैंक के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। परन्तु न्यायालय ने यह मत प्रकट किया कि धनादेश [illegible] ने अपने अधिकारों का अतिक्रमण नहीं किया।

दोहरी हानि वहन करनी पड़ती है क्योंकि (i) इस प्रकार से किया गया भुगतान यथाविधि भुगतान नहीं माना जाता है। अतः शोधी अधिकोष को धारा 85 द्वारा प्रदत्त सरक्षणों से वंचित होना पड़ता है और एक ग्राहक अपने किसी धनादेश को चलन में डालने के पश्चात् उसका भुगतान रुकवा सकता है। यदि ऐसा ग्राहक यह प्रमाणित करने में सफल हो जाता है कि अनुगामी दिवस की कार्यावधि से पूर्व शोधी अधिकोष के पास भुगतान बन्द करवाने का आदेश पहुंचाना संभव नहीं था व अनुगामी दिवस को अधिकोष के खुलते ही उसे भुगतान बन्द करने के निर्णय से अवगत करा दिया था तो शोधी अधिकोष इस प्रकार से किये गए भुगतान की राशि ग्राहक के नाम नहीं लिख सकता और वह हानि उसे स्वयं ही वहन करनी पड़ती है।

एक शोधी अधिकोष अपने ग्राहक को उसके निजी खाते में से कार्यावधि के-पश्चात् भी भुगतान कर सकता है। संदिग्ध साख वाले ग्राहकों को इस प्रकार से भुगतान करने पर शोधी अधिकोष को हमेशा जोखिम रहती है क्योंकि हो सकता है कि न्यायालय ने उस दिन उसके विरुद्ध कुर्की आदेश जारी कर दिया हो और वह आदेश अनुवर्ती दिवस पर अधिकोष को कार्य प्रारम्भ करते ही प्राप्त हो जाय।

परिस्थितियां जिनमें बैंक को चैकों का भुगतान निश्चित रूप से अस्वीकृत करना पड़ता है (Circumstances when the banker must refuse payment of cheques)—एक अधिकोष को अपने ग्राहक के धनादेशों का निम्नलिखित परिस्थितियों में निश्चित रूप से अनादरण करना पड़ता है—

1. **ग्राहक द्वारा मनाही** (Countermand or payment stopped by custmer)–एक अधिकोष के ग्राहकों को अपने अधिकोष पर धनादेश लिखने व उनके भुगतान रुकवाने का समान रूप से अधिकार होता है। अतः यदि किसी ग्राहक ने किसी विशिष्ट धनादेश का भुगतान करने के लिए अपने अधिकोष को आदेश दिया हो तो अधिकोष को उस आदेश का पालन करना पड़ता है। ग्राहक भुगतान रुकवाते समय धनादेश की संख्या, तारीख, प्रापक का नाम व धनादेश की राशि से अपने अधिकोष को अवगत करा देता है।

(i) जब एक ही व्यक्ति का खाता होता है तो केवल वह खातेदार अपने धनादेश के भुगतान को रुकवा सकता है। (ii) संयुक्त खाते की दशा में कोई भी खातेदार भुगतान को रुकवा सकता है। (iii) साझेदारों, प्रन्यासियों, निष्पादकों अथवा किसी प्रमण्डल का धनादेश होने पर कोई भी साझेदार, प्रन्यासी, निष्पादक या संचालक भुगतान रुकवा सकता है।

लिखित आदेश आवश्यक—भुगतान रुकवाने के इच्छुक ग्राहक को अपने अधिकोष को लिखित आदेश देना पड़ता है। जब अधिकोष को यह सूचना तार या टेलीफोन से प्राप्त होती है तो वह इस प्रकार की सूचना को ग्राहक से पत्र द्वारा पुष्टि करवा लेता है जब तक प्राप्त सूचना का खण्डन या मण्डन नहीं होता है तब तक बैंक विवादास्पद धनादेश का भुगतान नहीं करता है। जब धनादेश का प्रस्तुतकर्ता भुगतान के लिए शीघ्रता करता है तो शोधी अधिकोष एक स्लिप पर भुगतान तार/टेलीफोन द्वारा रोक दिया गया है, सूचना की पुष्टि तक भुगतान स्थगित किया जाता है, "पुनः प्रस्तुत कीजिए" लिखकर

धनादेश वापस कर देता है। इस प्रकार का निर्णय लेने से पूर्व शोधी अधिकोष सन्दर्भगत ग्राहक के भूतकालीन व्यवहार व क्षेत्रीय परम्परा का भी ध्यान रखता है।

सूचना की समय पर प्राप्ति आवश्यक—भुगतान रुकवाने की सूचना धनादेश के भुगतान से पूर्व शोधी अधिकोष के मैनेजर (ऐजेंट) अथवा रोकड़िये को अवश्य प्राप्त हो जानी चाहिए। यदि भुगतान करने तक रोकड़िए को यह सूचना न मिले और फलस्वरूप वह सम्बन्धित धनादेश का भुगतान करदे तो शोधी अधिकोष उस भुगतान के लिए दायी नहीं होता है। इस सम्बन्ध में कोरटिस बनाम लन्दन सिटी एण्ड मिडलैण्ड बैंक 1908 का विवाद महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत विवाद में कोरटिस ने 31 अक्टूबर को तार द्वारा अपने अधिकोष को एक धनादेश के भुगतान को रोकने का आदेश दिया। उस समय बैंक बन्द था। अतः तार वाहक ने उस तार को बैंक की पत्र पेटिका (Lettet Box) में डाल दिया। दूसरे दिन (1 नवम्बर) जब उस पत्र पेटिका में से पत्र निकाले गये तो पत्र निकालने वाले चपरासी का ध्यान उस तार की ओर नहीं गया। फलतः वह तार उस दिन पत्र पेटिका में ही रह गया और दो नवम्बर को निकाला जा सका। इसी बीच सम्बन्धित धनादेश का भुगतान हो गया। कोरटिस ने अपने अधिकोष के विरुद्ध असावधानी का दावा किया किन्तु न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि शोधी अधिकोष को भुगतान के समय तक भुगतान रुकवाने की सूचना प्राप्त नहीं हुई थी। अतः उसे असावधानी का दोषी नहीं माना जा सकता।

जब एक धनादेश के भुगतान को रुकवाने के लिए सम्बन्धित ग्राहक को धनादेश की संख्या व अपनी खाता संख्या अवश्य देनी पड़ती है क्योंकि हो सकता है कि एक ग्राहक के एक ही शाखा पर दो या दो से अधिक खाते हों। पूर्ण सूचना के अभाव में शोधी अधिकोष अपने ग्राहक के आदेश की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है। यदि शोधी अधिकोष को अस्पष्ट आदेश प्राप्त हों तो उसे उसकी अस्पष्टता को अविलम्ब दूर करवा लेना चाहिए और जब तक वांछित सूचना प्राप्त न हो तब तक सावधानी के तौर पर समस्त खातों (यदि एक ही नाम के एक से अधिक खाते हों) से उस धनादेश का भुगतान रोक देना चाहिए।

रीड बनाम रॉयल बैंक ऑफ आयरलैण्ड के विवाद में इस मत की पुष्टि की जा चुकी है। प्रस्तुत विवाद में रीड के रॉयल बैंक में दो खाते थे। उन्होंने अपने अधिकोष को अपने एक धनादेश के भुगतान को रोकने का आदेश दिया, किन्तु खाता संख्या का उल्लेख नहीं किया। आदेश के प्राप्त होने पर अधिकोष के सहायक ने रीड के एक खाते में भुगतान रोकने सम्बन्धी सूचना लगा दी व दूसरे खाते में से उस धनादेश का भुगतान कर दिया। जब रीड को इस बात का पता लगा तो उन्होंने बैंक के विरुद्ध असावधानी बरतने का वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने रीड के मत की पुष्टि की और बैंक को असावधानी का दोषी ठहराया।

अधिकोष द्वारा अपनायी जाने वाली पद्धति :

इस प्रकार के आदेश प्राप्त होते ही शोधी बैंक को प्रार्थी ग्राहक के खाते में सम्पूर्ण विवरण युक्त एक स्लिप लगा देनी चाहिए व उस पर लाल स्याही से "भुगतान रोका गया" अंकित कर देना चाहिए। ताकि स्थगित धनादेश का भुगतान भूलवश भी न हो सके।

यदि खाते के शेष को आगामी पृष्ठ पर ले जाने तक स्थगित धनादेश को भुगतान के लिए प्रस्तुत न किया जावे तो उस सूचना को आगामी पृष्ठ पर भी अंकित करना पड़ता है। इस सूचना को "भुगतान बन्द पंजिका" (Stop payment Register) मे भी तात्कालिक संदर्भ के लिए अंकित किया जाता है। कुछ अधिकोष "खाता पृष्ठ" स्तम्भ में भी लाल स्याही से "भुगतान रोका गया" लिख देते हैं।

यदि शोधी अधिकोष को किसी प्रापक अथवा धारक से किसी धनादेश के खो जाने अथवा चुराये जाने की सूचना प्राप्त हो तो उसे धारक को लेखक से सपर्क स्थापित करने का परामर्श देना चाहिए क्योंकि शोधी अधिकोष केवल अपने ग्राहक के आदेश पर ही इस प्रकार के धनादेश का भुगतान रोक सकता है। ग्राहक से आदेश प्राप्त होने से पहले ही यदि इस प्रकार से खोया हुआ या चुराया हुआ धनादेश भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जावे तो शोधी बैंक को उसकी पूरी तरह से जाच करनी चाहिए और प्रस्तुतकर्ता के अधिकारो से पूर्णतः संतुष्ट होने पर ही उसका भुगतान करना चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि इस प्रकार के धनादेश का भुगतान ग्राहक से सूचना मिलने तक स्थगित कर दिया जाय।

शोधी अधिकोष का दायित्व (Liability of a paying Banker)

जब एक शोधी बैंक अपने ग्राहक के आदेशो का पालन नही करता है तब उसे *निम्नलिखित प्रकार से उत्तरदायी बनना पड़ता है :—*

(i) **ग्राहक के आदेश की अवहेलना** :—जब वह अपने ग्राहक के आदेश की अवहेलना करके किसी धनादेश का भुगतान कर देता है तो वह उस राशि को सम्बन्धित ग्राहक के नाम नही लिख सकता।[1]

(ii) **खाते में कम राशि** :— यदि इस प्रकार से भुगतान के पश्चात् सम्बन्धित ग्राहक के खाते मे जमा राशि बिल्कुल कम रह जाय और फलस्वरूप वह उस ग्राहक के अन्य धनादेशो का भुगतान न कर सके और ग्राहक की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचे तो उसे अपने ग्राहक की इस आघात से होने वाली क्षति की पूर्ति करनी पड़ती है।

(iii) **रोके गये चैक का भुगतान** :—यदि शोधी अधिकोष असावधानीवश किसी अन्य धनादेश का भुगतान रोक दे और ग्राहक द्वारा रोके गये धनादेश का भुगतान कर दे तो अधिकोष को दोहरी हानि वहन करनी पड़ती है। वह ग्राहक द्वारा रोके गये धनादेश के भुगतान की राशि ग्राहक के नाम नही लिख सकता और गलत अनादरण से होने वाली क्षति की भी उसे पूर्ति करनी पड़ती है।

शोधी अधिकोष के अधिकार :

जब एक ग्राहक अपने किसी धनादेश का भुगतान प्रतिफल मे प्राप्त माल की हीनता अथवा कमी के कारण रोकता है और उसका अधिकोष असावधानी से उसका भुगतान कर देता है तो भुगतान के पश्चात् ग्राहक के पास रखे हुए माल पर शोधी अधिकोष का अधिकार हो जाता है। शोधी अधिकोष इस प्रकार से प्राप्त माल के विक्रय द्वारा गलत भुगतान मे हुई हानि की पूर्ति कर सकता है।

2. ग्राहक का निधन (Death of the Customer) :

एक ग्राहक के निधन पर उसकी सम्पत्ति पर उसके वैधानिक उत्तराधिकारी का अधिकार हो जाता है। अतः अपने किसी ग्राहक के निधन की सूचना पाते ही अधिकोष को

1. सैयद मोहम्मद याकूब बनाम इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया, 1940।

उसका खाता बन्द करना पड़ता है। ग्राहक के निधन के पश्चात् उसके खाते से भुगतान नहीं किया जा सकता भले ही धनादेश स्वयं ग्राहक के (निधन पूर्व) लिखे हुए हो। जब तक अधिकोष को ग्राहक के निधन का समाचार नहीं मिलता है तब तक वह उसके खाते में से भुगतान कर सकता है। बैंक को ग्राहक के निधन के सम्बन्ध मे अफवाहों पर नहीं बल्कि अधिकृत लिखित सूचना के आधार पर कार्य करना होगा। वह केवल उपर्युक्त रूप में सूचना प्राप्त करने के बाद ही कार्यवाही कर सकता है। इसी प्रकार सम्मिलित खातेदारों के खाते से किसी एक खातेदार द्वारा दिये गये चैक के भुगतान को बैंक उसकी मृत्यु के बाद रोक सकता है और बैंक को उस चैक का भुगतान उसी अवस्था में करना होगा, जबकि पुनः आदेश अन्य सभी जीवित खातेदारों से प्राप्त कर लेता है।

3. ग्राहक का दिवालिया हो जाना (When the Customer becomes Insolvent) :

यदि किसी ग्राहक के विरुद्ध न्यायालय में दिवालिया घोषित किए जाने के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर दिया गया हो या उसने स्वयं न्यायालय में इस आशय का आवेदन प्रस्तुत कर दिया हो और उसके अधिकोष को इसकी सूचना मिल गई हो तो अधिकोष ऐसे ग्राहक के खाते का संचालन अविलम्ब स्थगित कर देता है। न्यायालीय आदेश के निर्गमन के पश्चात् ऐसे ग्राहक की सम्पत्ति प्रसीडेन्सी नगरों (कलकत्ता, बम्बई और मद्रास) मे राजकीय अभिहस्तांकिती (Official Liquidator) व अन्य स्थानों पर निस्पादकों में निहित हो जाती है। यदि शोधी अधिकोष को प्रार्थना-पत्र की सूचना न्यायालय से प्राप्त न हुई हो किन्तु अन्य किसी स्रोत से इस आशय की सूचना मिल जाय तो यह मान लिया जाता है कि उसे आवश्यक सूचना प्राप्त हो गई थी।

4. ग्राहक का पागल हो जाना (When the customer becomes lanatic) :

पागल व्यक्ति में अनुबंध क्षमता का अभाव होता है। अतः बैंक अपने पागल ग्राहकों के धनादेशों का भुगतान नहीं करते हैं; किन्तु उन्हें अपने पागल ग्राहकों के उन धनादेशों का भुगतान करना पड़ता है जिन्हें उन्होंने अपनी स्वस्थ अवस्था में लिखा था।

वैधानिक दृष्टि से जब तक शोधी अधिकोष अपने ग्राहक के पागल होने की लिखित सूचना किसी न्यायालय से प्राप्त नहीं होती है तब तक वह अपने ऐसे ग्राहकों के धनादेशों का भुगतान कर सकता है; किन्तु यदि सम्बन्धित ग्राहक को पागल खाने में भर्ती करवा दिया गया हो तो अधिकोष उसे पागल मान सकता है। उसकी यह मान्यता विधि-संगत होती है।

यदि पागल ग्राहक को न पागल खाने मे भर्ती करवाया गया हो और न उसका पागलपन स्पष्टतः दिखाई देता हो तो ऐसे पागल ग्राहक की सही स्थिति जानने के लिए अधिकोष को उसके निकटस्थ सम्बंधियों या वैधानिक परामर्शदाता से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। यदि वे उसके पागलपन की पुष्टि कर दें व गलत भुगतान से उत्पन्न सामान्य क्षतिपूर्ति की गारन्टी देवे तो अधिकोष ऐसे ग्राहकों के धनादेशों का भुगतान भी रोक सकता है।

यदि किसी ग्राहक ने अपने खाते के संचालन के लिए एजेन्ट नियुक्त कर रखा हो तो ग्राहक के पागलपन के साथ ही एजेन्ट का यह अधिकार समाप्त हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति अज्ञानता वश ऐसे एजेन्ट के साथ एजेन्ट जैसा व्यवहार करता रहे तो उस कार्य के लिए उसका प्रधान दायी होता है।

पागलपन की सूचना पर अपनायी जाने वाली पद्धति

जब एक ग्राहक पागल हो जाता है तो उसका अधिकोष उसके धनादेशों के बारे में निम्नलिखित पद्धति का अनुसरण करता है :—

(i) खाते में नोट लगाना :—पागलपन की सूचना मिलते ही अधिकोष ऐसे ग्राहक के खाते अथवा खातों मे इस आशय का नोट लगा देता है।

(ii) भुगतान बंद :—पागल ग्राहक के खाते पर ग्राहक के पागलपन के बाद लिखे गए धनादेशों का भुगतान नहीं किया जाता है। शोधी बैंक उन्हें "ग्राहक से मिलिए" लिखकर लौटा देता है। ये धनादेश स्वयं ग्राहक के लिखे हुये होने चाहिए।

(iii) निर्देशों का पालन :-खाते का संचालन पागल ग्राहक द्वारा दी गई सूचना एवं निर्देशो के अनुसार किया जाता है। ऐसी सूचना उसके द्वारा उस समय दी जावे जब वह बिल्कुल स्वस्थ स्थिति मे है।

(iv) खाते का पुनः संचालन :—ग्राहक को खाते का पुनः संचालन का अधिकार केवल न्यायालय की अनुमति से दिया जाता है। यह प्रमाण-पत्र उसी न्यायालय द्वारा निर्गमित किया जाता है जिसने ग्राहक को पागल घोषित किया था।

5. जमा राशि का अभिहस्तांकन (Assignment of deposit money) :

जब एक ग्राहक अपने खाते में जमा सम्पूर्ण राशि का किसी व्यक्ति के पक्ष में अभिहस्तांकन कर देता है और अपने निर्णय से अधिकोष को सूचित कर देता है तो इस सूचना के मिलने के पश्चात् ग्राहक का अधिकोष उसके खाते में से ग्राहक के धनादेशों का भुगतान नहीं करता है। क्योंकि अभिहस्ताकन के कारण जमा राशि पर ग्राहक का अधिकार समाप्त हो जाता है।

6 न्यास सम्पत्ति का दुरुपयोग (Misuse of trust properties) :

जब एक ग्राहक किसी न्यास खाते का संचालन करता है और खाते के संचालन द्वारा वह न्यास सम्पत्ति का दुरुपयोग करना चाहता है और शोधी अधिकोष को उसके इस निश्चय का पता लग जाता है तो वह ऐसे ग्राहक के धनादेशों का भुगतान रोक देता है।

7. प्रस्तुतकर्त्ता का दूषित अधिकार :

जब धनादेश के प्रस्तुतकर्त्ता का धनादेश पर अधिकार दूषित प्रमाणित हो जाता है, तो बैंक उस धनादेश का भुगतान रोक देता है।

8. कुर्की आदेश (Garnishee Order) :

(i) भुगतान बन्द :—जब किसी ग्राहक के विरुद्ध कुर्की का आदेश जारी हो जाता है तो उसके अधिकोष को ऐसे आदेश के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। जब आदेश मे कुर्क की गई राशि का उल्लेख नही किया जाता है अथवा सम्पूर्ण जमा राशि को कुर्क कर लिया जाता है तब शोधी बैंक ऐसे आदेश की प्राप्ति के पश्चात् उस खाते में से भुगतान बन्द कर देता है। जब जमा राशि को अंशतः कुर्क किया जाता है तब शोधी बैंक शेष राशि को भुगतान के काम ले सकता है। असावधानी से बचने के लिए बैंक कुर्क की गई राशि को Suspense Account मे हस्तांतरित कर देता है।

(ii) संयुक्त खाते :—जब किसी संयुक्त खातेदार के विरुद्ध कुर्की का आदेश जारी किया जाता है तो वह संयुक्त खाते पर लागू नहीं होता है। अतः बैंक इस प्रकार के आदेश

प्रथम पृष्ठांकक व प्रापक के नाम या वर्तनी में भिन्नता होती है अथवा अन्य कोई अनियमितता होती है तब इस वाक्यांश का प्रयोग किया जाता है। इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स के मतानुसार शोधी अधिकोष को पृष्ठांकन की अनियमितता की अवस्था में "पृष्ठांकन की पुष्टि की आवश्यकता है" का प्रयोग करना चाहिए।

2. लेखक से सम्पर्क स्थापित कीजिए (Refer to drawer)[1] :—इस वाक्यांश का प्रयोग केवल दो परिस्थितियों में किया जाता है—(1) जब ग्राहक पागल हो जाय अथवा (2) जब उसके खाते में पर्याप्त राशि जमा न हो। पाइक बनाम हिबर्ट मिशन विवाद 1950 में आयरलैण्ड के सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत प्रकट किया कि इस वाक्यांश के प्रयोग से ग्राहक की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचता है। अतः इस वाक्यांश का प्रयोग केवल "अपर्याप्त जमा" की अवस्था में किया जाना चाहिए। अपर्याप्त राशि की अभिव्यक्ति के लिए निम्नलिखित वाक्यांशों का प्रयोग भी किया जाता है—(1) अपर्याप्त कोष (2) अभी तक राशि संग्रहित नहीं हुई है। (3) पुनः प्रस्तुत कीजिए।

3. खाता नहीं है (No Account) :—इस वाक्यांश का प्रयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि यदि भूलवश इसका प्रयोग हो जाता है तो अधिकोष व ग्राहक को भारी आर्थिक हानि वहन करनी पड़ती है। ग्राहक की प्रतिष्ठा को आघात लगता है और अधिकोष को परिणामस्वरूप उसकी क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है।

4. चैक का अनियमित प्रारूप (Cheque irregular drawn) :—जब धनादेश विधि सम्मत ढंग से नहीं लिखा जाता है तब शोधी अधिकोष इस वाक्यांश का प्रयोग करते हैं। अनियमित आलेखन के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(1) शर्तयुक्त आदेश (2) एक ही स्थान पर राशि लिखना आदि।

5. शब्दों व अंकों में अंकित राशि में अन्तर है। (Amount in words and figures differ)

6. ग्राहक के हस्ताक्षर नमूने के हस्ताक्षरों से नहीं मिलते (Drawer's signature differs with the specimen on record)

7. धनादेश विकृत है (Cheque is mutilated)

8. उत्तर तिथीय या काल-तिरोहित धनादेश (Post dated or stale cheque)

9. तारीख नहीं है (No date)

10. ग्राहक का निधन, पागल या दिवालिया हो गया है (Customer deceased, Lunatic or insolvent)

11. लेखक द्वारा काट-छांट की पुष्टि की आवश्यकता है (Alternations require drawer's confirmation)

12. ग्राहक ने भुगतान रोक दिया है अथवा ग्राहक ने तार/टेलीफोन से भुगतान रोक दिया है, पुष्टि की प्रतीक्षा की जा रही है, पुनः प्रस्तुत कीजिए।

---

1. "Refer to drawer" नोट लगाने पर एक विवाद खड़ा हुआ था "जेसन बनाम मिडलैण्ड बैंक 1968" में न्याय मूर्ति ने निर्णय दिया कि "लेखक से सम्पर्क करें" लिखना "अपमानजनक एवं सम्मान को आघात करने वाला शब्द है।" इस प्रकार इसका प्रयोग भी जोखिमपूर्ण है।

अनादरण के कारण

CHEQUE NO.................................FOR Rs...................................
IS RETURNED FOR REASON NO..

1. Effects not yet cleared : Please present again.
2. Not arranged for.
3. ....Payee's endorsement required.
4. ....payee's endorsement Irregular.
5. Refer to drawer.
6. Drawer's Signature differs.
7. Endorsement requires bank's guarantee.
8. Alteration requires full signature.
9. Cheque is post-dated.
10. Cheque is out of date.
11. Amount in words and figures differs.
12. Crossed cheque; must be presented through a bank.
13. No Advice.
14. Payment stopped by the drawer.
15. Payees separate discharge to the Bank required.
16. ....
17. ....
18. ....

STATE BANK OF INDIA

....

..................................19

C.O.S. 50. Branch Manager

प्रथम पृष्ठांकक व प्रापक के नाम या वर्तनी में भिन्नता होती है अथवा अन्य कोई अनियमितता होती है तब इस वाक्यांश का प्रयोग किया जाता है। इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स के मतानुसार शोधी अधिकोष को पृष्ठाकन की अनियमितता की अवस्था में "पृष्ठाकन की पुष्टि की आवश्यकता है" का प्रयोग करना चाहिए।

2. लेखक से सम्पर्क स्थापित कीजिए (Refer to drawer)[1] :—इस वाक्याश का प्रयोग केवल दो परिस्थितियों में किया जाता है—(1) जब ग्राहक पागल हो जाय अथवा (2) जब उसके खाते में पर्याप्त राशि जमा न हो। पाइक बनाम हिबर मिग्रन विवाद 1950 मे आयरलैण्ड के सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत प्रकट किया कि इस वाक्यांश के प्रयोग से ग्राहक की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचता है। अतः इस वाक्याश का प्रयोग केवल "अपर्याप्त जमा" की अवस्था में किया जाना चाहिए। अपर्याप्त राशि की अभिव्यक्ति के लिए निम्नलिखित वाक्यांशों का प्रयोग भी किया जाता है—(1) अपर्याप्त कोष (2) अभी तक राशि समाहित नहीं हुई है। (3) पुनः प्रस्तुत कीजिए।

3. खाता नहीं है (No Account) :—इस वाक्याश का प्रयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि यदि भूलवश इसका प्रयोग हो जाता है तो अधिकोष व ग्राहक को भारी आर्थिक हानि वहन करनी पड़ती है। ग्राहक की प्रतिष्ठा को आघात लगता है और अधिकोष को परिणामस्वरूप उसकी क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है।

4. चेक का अनियमित प्रारूप (Cheque irregular drawn) :—जब धनादेश विधि सम्मत ढंग से नहीं लिखा जाता है तब शोधी अधिकोष इस वाक्यांश का प्रयोग करते हैं। अनियमित आलेखन के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(1) शर्तयुक्त आदेश (2) एक ही स्थान पर राशि लिखना आदि।

5. शब्दो व अंको में अकित राशि में अन्तर है। (Amount in words and figures differ)

6. ग्राहक के हस्ताक्षर नमूने के हस्ताक्षरो से नही मिलते (Drawer's signature differs with the specimen on record)

7. धनादेश विकृत है (Cheque is mutilated)

8. उत्तर तिथीय या काल-तिरोहित धनादेश (Post dated or stale cheque)

9. तारीख नही है (No date)

10. ग्राहक का निधन, पागल या दिवालिया हो गया है (Customer deceased, Lunatic or insolvent)

11. लेखक द्वारा कांट-छांट की पुष्टि की आवश्यकता है (Alternations require drawer's confirmation)

12. ग्राहक ने भुगतान रोक दिया है अथवा ग्राहक ने तार/टेलीफोन से भुगतान रोक दिया है, पुष्टि की प्रतीक्षा की जा रही है, पुनः प्रस्तुत कीजिए।

---

1. "Refer to drawer" नोट लगाने पर एक विवाद खड़ा हुआ था "जेसन बनाम मिडलैण्ड बैंक 1968" मे न्याय मूर्ति ने निर्णय दिया कि "लेखक से सम्पर्क करें" लिखना "अपमानजनक एवं सम्मान को आघात करने वाला शब्द है।" इस प्रकार इसका प्रयोग भी जोखिमपूर्ण है।

अनादरण के कारण

CHEQUE NO...................................FOR Rs......................................

IS RETURNED FOR REASON NO..

1. Effects not yet cleared : Please present again.
2. Not arranged for.
3. ....Payee's endorsement required.
4. ....payee's endorsement Irregular.
5. Refer to drawer.
6. Drawer's Signature differs.
7. Endorsement requires bank's guarantee.
8. Alteration requires full signature.
9. Cheque is post-dated.
10. Cheque is out of date.
11. Amount in words and figures differs.
12. Crossed cheque; must be presented through a bank.
13. No Advice.
14. Payment stopped by the drawer.
15. Payees separate discharge to the Bank required.
16. ....
17. ....
18. ....

STATE BANK OF INDIA

....

....19

C.O.S. 50. Branch Manager

15

विनिमय साध्य विलेखों का अनादरण

(DISHONOUR OF NEGOTABLE IMTRUMEMTS)

अनादरण का अर्थ (Meaning of dishonour)—जब एक विलेख को स्वीकारा नहीं जाता है अथवा उसका भुगतान नहीं किया जाता है तो उस विलेख को अनादरित विलेख माना जाता है और इन अस्वीकृति व भुगतान के लिये मनाही की क्रियाओं को अनादरण कहा जाता है। एक विपत्र को स्वीकृति व एक प्रतिज्ञा-पत्र को दर्शन के लिए अनिवार्यतः प्रस्तुत करना पड़ता है। अतः एक विपत्र व प्रतिज्ञा-पत्र का दोनों प्रकार (अस्वीकृति या निदर्शन और भुगतान के लिए मनाही) से अनादरण हो सकता है; किन्तु एक धनादेश (Cheque) का अनादरण केवल भुगतान के अभाव में होता है। धनादेशों को स्वीकृत अथवा दर्शन के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है।

एक विपत्र अस्वीकृति या भुगतान के अभाव मे अनादरित माना जाता है। *भारतीय परकाम्य विलेख अधिनियम के अन्तर्गत एक विपत्र को निम्नांकित परिस्थितियों* में अस्वीकृति के कारण अनादरित माना जाता है :—

(अ) अस्वीकृति के कारण अनादरण (Dishonour for Non-acceptance)

1. जब एक विपत्र का देनदार विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने पर अपनी स्वीकृति नहीं देता है (धारा 91)।

2. जब विपत्र का देनदार यथोचित खोज के पश्चात् भी उपलब्ध नहीं होता है (धारा 61)। (अनुबन्ध अथवा परम्परा द्वारा अधिकृत व अनुमोदित होने पर विपत्र को स्वीकृति के लिए रजिस्टर्ड-पत्र द्वारा डाक से भी भेजा जा सकता है।)

3. जब एक विपत्र के अनेक देनदारों मे से (परस्पर साझेदार न होने पर) कोई एक देनदार विपत्र पर अपनी स्वीकृति देने से मना कर देता है (धारा 91)।

4. जब विपत्र की स्वीकृति के लिए उसके प्रस्तुतीकरण की अनिवार्यता का परित्याग कर दिया जाता है व बाद में उसी की आड़ मे भुगतान नहीं किया जाता है (धारा 91)।

5. यदि बिल का देनदार कोई काल्पनिक व्यक्ति हो; तो बिल को स्वीकृति के लिए भेजना व्यर्थ होगा।

6. जब विपत्र के देनदार मे अनुबन्ध क्षमता नहीं होती है।,

7. जब धारक सशर्त स्वीकृति (qualified acceptance) देता है और

8. जब धारक 48 घण्टे की अवधि के पश्चात भी अपनी स्वीकृति नहीं देता है। (विपत्र के देनदार द्वारा इच्छा व्यक्त करने पर उसे स्वीकृति के लिए 48 घण्टे का समय

दिया जाता है और इस अवधि मे सार्वजनिक अवकाश आने पर उसे अवकाश काल का अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है।)

9. जब बिल में लिखित देनदार का निधन हो गया हो या दिवालिया हो गया हो तो बिल स्वीकृति के लिए भेजना ऐच्छिक है।

(ब) भुगतान के अभाव में अनादरण (Dishonour for non-payment)

एक विपत्र को निम्नांकित दशाओं में भुगतान के अभाव में अनादरित माना जाता है :—

1. जब विपत्र के भुगतान के लिए विपत्र में किसी विशिष्ट स्थान का उल्लेख किया जाता है और देय-तिथि पर यथोचित खोज-बीन के बाद भी देनदार उस स्थान पर उपलब्ध नहीं होता है (धारा 61)।

(अनुबन्ध अथवा परम्परा द्वारा अनुमोदित होने पर विलेख को भुगतान के लिए पंजीकृत-पत्र द्वारा डाक से भी प्रेषित किया जा सकता है।)

2. जब एक प्रतिज्ञा-पत्र, विपत्र व धनादेश का क्रमशः लेखक, स्वीकारक या देनदार देय-तिथि पर भुगतान करने से मना कर देता है।

3. जब प्रतिज्ञा-पत्र या बिल का लेखक, देनदार या स्वीकारक जानबूझकर विलेख के प्रस्तुतीकरण (भुगतान के लिए) मे बाधा डालता है [धारा 76 (अ)]।

4. जब किसी विलेख (प्रतिज्ञा-पत्र व बिल) का लेखक या स्वीकारक अपने विलेख के भुगतान के लिए व्यापारिक स्थान का उल्लेख करता है और भुगतान-तिथि पर कार्यकारी अवधि (working hours) मे उस स्थान को बन्द रखता है।

5. जब किसी प्रतिज्ञा-पत्र व विपत्र का लेखक या स्वीकारक अपने विलेख के भुगतान के लिए अपने व्यावसायिक स्थान से ईतर स्थान का उल्लेख करता है और भुगतान तिथि पर सामान्य व्यावसायिक कार्यावधि (Busines hours) मे उस स्थान पर वह स्वयं अथवा उसका अभिकर्ता उपलब्ध नहीं होता है [धारा 76 (अ)]।

6. जब भुगतान के लिए किसी विशिष्ट स्थान का उल्लेख नहीं किया जाता है और भुगतान-तिथि पर यथोचित खोज के बाद भी विलेख के लेखक, स्वीकारक या देनदार का पता नहीं लगता है (धारा 76 (अ))।

7. जब एक विलेख का कोई पक्षकार विलेख के प्रस्तुतीकरण (भुगतान के लिए) के अधिकारों का परित्याग कर देता है अर्थात् विलेख के प्रस्तुतीकरण के बिना भी भुगतान करना स्वीकार कर लेता है व देय-तिथि पर प्रस्तुतीकरण की आड़ में भुगतान करने से मना कर देता है।

8. जब विलेख का कोई पक्षकार यह जानते हुए भी कि विलेख को देय-तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था, उसका आंशिक भुगतान कर देता है व बाद मे शेष भुगतान के लिए मना कर देता है। या

जब वह इस प्रकार के विलेख की सम्पूर्ण या आंशिक राशि के भुगतान की प्रतिज्ञा कर लेता है व बाद में भुगतान के लिए मना कर देता है। या

जब वह विलेख की प्रस्तुतीकरण की कमियों द्वारा प्राप्त अधिकारों का परित्याग कर देता है व बाद मे उस विलेख का भुगतान करने से मना कर देता है।

(ii) सूचना की रसीद लेना आवश्यक—स्थानीय व्यक्ति को सूचना देते समय सूचना 'Peon Book' से भेजी जाती है। इसके न होने पर कागज के साधारण टुकड़े पर सूचना के प्रापक से रसीद ले ली जाती है।

(iii) डाक से सूचना—जब डाक से सूचना भेजी जाती है तब उसे रजिस्टर्ड पत्र द्वारा प्रेषित किया जाता है और साथ मे पावती रसीद (Acknowledgement receipt) भी सलग्न की जाती है ताकि प्रापक से स्वतः ही रसीद प्राप्त हो जाय क्योंकि न्यायालीय निर्णय सूचना भेजने के प्रमाण के साथ-साथ इस बात का भी प्रमाण मांगते है कि प्रेषित सूचना प्रापक को मिल गई थी।[1]

(iv) सदेशवाहक द्वारा सूचना—जब डाक से भेजी गई सूचना के असाधारण विलम्ब से पहुचने की सम्भावना होती है तो उसे संदेशवाहक की सहायता से भी पहुंचाया जा सकता है व इस प्रकार से सूचना भेजने पर जितना किया व्यय जाता है उसकी वसूली सूचना के प्रापक से की जा सकती है।[2]

(v) सही पता—डाक द्वारा सूचना प्रेषित करते समय सूचना के प्रेषक को अपने पत्र पर प्रापक का सही व पूर्ण पता अंकित करना पड़ता है। पत्र पर सही या पूर्ण पता न होने पर यदि प्रापक को अनादरण की सूचना प्राप्त न हो तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है और ऐसा अपूर्ण व गलत पता करने वाले पक्ष को अनादरित विलेख की हानि वहन करनी पड़ती है। यदि सही पता करने के पश्चात् भी पत्र प्रापक को न मिले तो उसके लिए प्रेषक को दायी नही ठहराया जा सकता, अर्थात् वह पूर्व पक्ष से विलेख की राशि प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

प्रेषित सूचना का प्रारूप (Specimen of Notice of dishonour)—परक्राम्य विलेख अधिनियम मे अनादरण की सूचना का कोई प्रारूप नही दिया गया है। अतः अनादरण की सूचना किसी भी रूप में दी जा सकती है किन्तु सूचना देने वाले को यह सूचना स्पष्ट शब्दो में देनी पड़ती है अथवा इस सम्बन्ध मे स्पष्ट सकेत देना पडता है। सूचना की स्पष्टता के लिए उसमें विलेख की सख्या, देनदार व लेखक का नाम और उसकी आलेखन, देय व अनादरण की तिथियों का उल्लेख किया जाता है।

सूचना देते समय अनादरण के प्रकार पर भी प्रकाश डाला जाता है अर्थात् यह बताना पडता है कि अनादरण (i) अस्वीकृति के कारण हुआ या (ii) भुगतान के अभाव में। प्रतिज्ञा-पत्र व धनादेश पर केवल द्वितीय अवस्था लागू होती है और विपत्र पर दोनों अवस्थाएं लागू होती हैं।

अनादरण की सूचना द्वारा उसके प्रापक को विलेख की राशि के भुगतान के लिए स्पष्ट शब्दो मे दायी ठहराया जाता है। यदि इस सूचना द्वारा उसे भुगतान के लिए दायी नही ठहराया गया है तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा। अतः अनादरण की सूचना देते समय यह स्पष्ट रूप से लिखा जाता है कि अब विलेख की राशि के भुगतान के लिए आप दायी हो गए हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी सूचना द्वारा पूर्व पक्ष को दायी नहीं ठहराए और उससे विलेख की राशि की मांग न करे तो उस सूचना को अपूर्ण माना जाता है।

1. मोहम्मद रफी बनाम काजी मजहर हुसैन।
2. पीयरसन बनाम क्रेसन।

और फलतः सूचना का प्रापक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।[1] भुगतान के लिए दावा सूचना के साथ अथवा बाद में भी भेजा जा सकता है।

अनादरण की सूचना सम्बन्धित पक्ष को यथोचित समय में उसके व्यावसायिक स्थान या उसके निवास स्थान पर दी जाती है (धारा 94)। यथोचित समय का नीचे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

सूचना का यथोचित समय (Reasonable time of giving notice of dis-honour)—यथोचित समय की गणना करते समय विलेख की प्रकृति व सामान्य परम्पराओं का ध्यान रखा जाता है व उसमे सार्वजनिक अवकाश सम्मिलित नहीं होते हैं (धारा 105)। सूचना के यथोचित समय सम्बन्धी कुछ परम्पराएं निम्न प्रकार हैं—

(i) **प्रथम डाक से सूचना**—जब विलेख का धारक व अनादरण की सूचना का प्रापक भिन्न स्थानों पर व्यवसाय करते है या रहते है तो अनादरण की सूचना अनादरण के तुरन्त पश्चात् जाने वाली प्रथम डाक से भेजी जाती है।

(ii) **24 घण्टे के भीतर सूचना**—*जब प्रथम डाक निकल जाती है तो उस सूचना* को दूसरे दिन की समाप्ति से पूर्व अवश्य भेजना पड़ता है। 24 घटे के भीतर प्रेषित सूचना को यथोचित समय में प्रेषित सूचना माना जाता है (धारा 106)।

(iii) **स्थानीय व्यक्ति को सूचना**—जब अनादरित विलेख के धारक व अनादरण की सूचना के प्रापक एक ही स्थान पर व्यवसाय करते हैं या रहते हैं तो अनादरण की सूचना (डाक से प्रेषित करते समय) इस प्रकार से प्रेषित की जाती है कि वह उसके प्रापक को दूसरे दिन अवश्य मिल जाये। अतः डाक से सूचना प्रेषित करते समय प्रेषक को इस तथ्य से पूर्णतः आश्वस्त होना पड़ता है कि उस दिन की अंतिम डाक सूचना सम्बन्धी पत्र डालने से पूर्व पत्र-मंजूषा (Letter Box) या डाक-घर(जैसी भी स्थिति हो) से निकाली गई थी। यदि उस समय तक अंतिम डाक निकाली जा चुकी हो तो प्रेषक को अपनी सूचना किसी सन्देशवाहक की सहायता से भिजवानी पडती है अन्यथा प्रापक को वह सूचना दूसरे दिन प्राप्त नहीं हो सकेगी। फलतः सभी पूर्व पक्ष अपने दायित्व से मुक्त हो जायेंगे।

(iv) **अभिकर्ता द्वारा सूचना**—जब सूचना का प्रापक अपने पूर्व पक्ष को अनादरण के तथ्य से अवगत करना चाहता है तो उसे भी इस कार्य के लिए उतना ही समय मिलता है जितना कि विलेख के धारक को प्राप्त होता है (धारा 107)। जब किसी विलेख को धारक के अभिकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया जाता है व प्रस्तुतीकरण पर उसका अनादरण हो जाता है तो उसे अपने प्रधान को इस तथ्य से सूचित करने के लिए उतना ही समय मिलता है जितना कि अन्य पक्षों को प्राप्त होता है (धारा 96)।

(v) **विदेश में सूचना**—जब किसी विलेख में भुगतान के लिए भारत जहाँ पर उसे लिखा गया था व पृष्ठांकित किया गया था) के अलावा किसी देश का उल्लेख किया जाता है और देय-तिथि पर उसका अनादरण हो जाता है तो उसके अनादरण व अनादरण की सूचना की यथेष्टता का निर्धारण भुगतान स्थल के नियमो द्वारा किया जाता है (धारा 135)। उदाहरणार्थ, यदि एक विपत्र भारत में लिखा जाये; किन्तु उसका देनदार उसे इस शर्त पर स्वीकार करे कि वह उसका भुगतान फ्रांस मे करेगा व स्वीकृति द

1. कन्हैयालाल बनाम रामकुमार, 1956।

पश्चात् उसका पृष्ठांकन हो जाय और देय-तिथि पर अनादरण हो जाय तो फ्रांस के नियमों के परिप्रेक्ष्य में उनके अनावदरण व अनादरण की सूचना की यथेष्टता का निर्धारण किया जाएगा। यदि इस विपत्र का पृष्ठांकिती विपत्र के लेखक को फ्रांस के नियमानुसार अनादरण की सूचना दे तो उस सूचना को उचित समय में दी गई सूचना माना जायेगा।

अधिकोष व अनादरण की सूचना—जब एक अधिकोष एक विपत्र केवल संग्रहणार्थ प्राप्त करता है तो वह मूल विपत्र को अनादरण तिथि को ही अपने ग्राहक को लौटा देता है। जब वह किसी विपत्र को उसकी देय-तिथि से पूर्व खरीद लेता है अथवा किसी विपत्र की कटौती कर देता है तो ऐसे विपत्रों को लौटाने से पूर्व उनकी राशि सम्बन्धित ग्राहकों के नाम लिख देता है (जब उनके खाते में पर्याप्त मात्रा में राशि जमा होती है अथवा उनका खाता अधिविकर्ष की स्वीकृत सीमा तक आहरित नहीं होता है) किन्तु जब उनके खाते में पर्याप्त मात्रा में राशि जमा नहीं होती है तो वह अनादरित विपत्र को अपने पास रख लेता है, विपत्र के समस्त पूर्व पक्षों को अनादरण की सूचना भेज देता है, सम्बन्धित ग्राहकों के खातों में जमा राशि को अवरुद्ध कर लेता है और अनादरित विपत्रों की राशि के भुगतान के लिए सम्बन्धित ग्राहकों के समक्ष दावा प्रस्तुत करता है। अनादरण की सूचना विपत्र पर अंकित पतों पर प्रेषित की जाती है। जब विपत्र पर ग्राहकों के पते अंकित नहीं होते हैं तब यह सूचना अन्य परिचित पतों पर प्रेषित की जाती है। धनादेशों (संग्रह योग्य) व प्रतिज्ञा-पत्रों के अनादरण पर भी यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।

अनादरण की सूचना अनावश्यक—एक विलेख के धारक को उसके अनादरण की अपने पूर्व पक्षों को निम्नांकित परिस्थितियों में सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है—

(i) **अधिकार का परित्याग** (Notice of dishonour waived)—जब कोई धारक पृष्ठांकन में सूचना पाने के अधिकार का परित्याग कर देता है तो ऐसे धारक को चैक के अनादरण के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए सूचना देना जरूरी नहीं है।

(ii) **चैक के लेखक को**—जब चैक का लेखक अपने धनादेश को वापस ले लेता है व धनादेश अनादरित हो जाता है, तो लेखक को सूचना देना आवश्यक नहीं है क्योंकि उसे पहले से ही इसकी सूचना है।

(iii) **क्षति की सम्भावना न हो**—जब सूचना न मिलने पर सम्बन्धित पक्ष को हानि की सम्भावना नहीं हो तो उसे अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं है। जैसे ग्राहक के खाते में पर्याप्त राशि जमा न हो तो सूचना देना व्यर्थ है।

(iv) **पक्षकार का न मिलना**—जब सूचना पाने का अधिकारी पक्ष यथोचित खोज के पश्चात् नहीं मिलता है या सूचना देने के लिए बाध्य पक्ष असाधारण परिस्थितियों (दुर्घटना, कर्फ्यू, साम्प्रदायिक दंगा, आकस्मिक रोग या किसी निकट परिजन का निधन) के कारण सूचना देने में असमर्थ होने पर।

(v) **प्रतिज्ञा पत्र के लेखक को**—भी सूचना देना उपयोगी नहीं है; क्योंकि इसका अनादरण उसने स्वयं किया था।

(vi) **अनादरण की जानकारी**—जब सूचना पाने का अधिकारी पक्ष विलेख के अनादरण के तथ्य से अवगत होते हुए भी विलेख के भुगतान की प्रतिज्ञा कर लेता है तो उसे अनादरण की सूचना देना व्यर्थ है।

(vii) कॉमन (Common) सदस्य—जब एक प्रतिष्ठान किसी दूसरे प्रतिष्ठान पर विपत्र लिखता है व कुछ व्यक्ति इन दोनों प्रतिष्ठानों के समान रूप से सदस्य होते हैं तो ऐसे प्रतिष्ठान के विलेख के अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है[1] जो पक्ष यह तर्क प्रस्तुत करता है कि दोनों प्रतिष्ठानों के कुल सदस्य कॉमन है उसे अपने इस कथन की पुष्टि करनी पड़ती है अथवा यह प्रमाणित करना पड़ता है कि विलेख के लेखक को सूचना न मिलने के कारण कोई हानि नहीं हुई।[2]

(viii) प्रमाणन के पश्चात्—एक विपत्र के प्रमाणन के पश्चात् उसके अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है। इस अवस्था में केवल प्रमाणन की सूचना दी जाती है। यह सूचना नोटेरी पब्लिक द्वारा दी जाती है और उसी विधि व शर्तों के अन्तर्गत दी जाती है जिनके अन्तर्गत अनादरण की सूचना दी जाती है (धारा 102)।

(ix) गारंटी देने वाले को—यदि किसी व्यक्ति ने बिल या प्रतिज्ञा-पत्र की राशि चुकाने की गारण्टी दी है तो बिल के अनादरण पर उसे सूचना देना आवश्यक नहीं है; क्योंकि वह सम्बन्धित विलेख का पक्षकार नहीं है। किन्तु यदि उसने गारण्टी देते समय सूचना पाने की शर्त लगादी है, जिसके अभाव में उसे हानि की सम्भावना है, तो उसे अनादरण की सूचना देना आवश्यक हो जाता है।

(x) अविनिमय-साध्य प्रतिज्ञा-पत्र—यदि किसी अविनिमय साध्य प्रतिज्ञा-पत्र का बेचान कर दिया जाता है तो इसका अनादरण होना स्वाभाविक है। इसलिए इस अनादरण की सूचना देना भी आवश्यक नहीं है। वैसे सूचना के अभाव में न तो किसी पक्ष को क्षति होने की सम्भावना है और न ही किसी पक्ष के अधिकार का उलंघन हो होता है।

आलोकन (Noting)

अर्थ—जब एक विलेख अनादरित हो जाता है अथवा उसके धारक को विलेख के देनदार से अच्छी प्रतिभूति प्राप्त नहीं होती है तो उस विलेख का आलोकन करवाया जाता है। आलोकन विपत्रों एवं प्रतिज्ञा-पत्रों का करवाया जाता है। धनादेशों का आलोकन नहीं करवाया जाता क्योंकि उनके अनादरण का प्रमाण-पत्र शोधी अधिकोष से प्राप्त हो जाता है।

नोटेरी पब्लिक द्वारा आलोकन—आलोकन नोटेरी पब्लिक (Notory Public) द्वारा किया जाता है। जब वह अनादरण (स्वीकृति या भुगतान) या अच्छी प्रतिभूति के प्रस्ताव की अस्वीकृति को अपने रजिस्टर में अंकित कर लेता है तो उसकी इस प्रक्रिया को आलोकन कहा जाता है। आलोकन को निम्नांकित दो भागों मे बांटा जा सकता है—

(1) अनादरण पर आलोकन—जब एक नोटेरी पब्लिक एवं प्रतिज्ञा-पत्र या बिल के अनादरण के तथ्य को अपने रजिस्टर में लिख लेता है तो उसे अनादरण जनित आलोकन कहा जाता है। आलोकन से पूर्व नोटेरी पब्लिक या कथित अनादरित विलेख को उसके देनदार के समक्ष स्वीकृति या भुगतान (अनादरण के परिप्रेक्ष्य में) के लिए पुनः प्रस्तुत करता है। अनादरित विलेख को नोटेरी पब्लिक स्वयं प्रस्तुत कर सकता है या

1. जेकेण्ड बनाम मॅंच 1810।
2. जम्बू बनाम रामस्वामी व सुन्दर राजा।

अपने क्लर्क की सहायता से प्रस्तुत करवा सकता है और अनुबंध या परम्परा द्वारा अधिकृत या अनुमोदित होने पर डाक से भी प्रस्तुत कर सकता है।

(2) *अच्छी प्रतिभूति के अभाव में अनादरण*—अनादरण के अतिरिक्त एक विलेख का धारक विलेख के देनदार या लेखक से अच्छी प्रतिभूति न मिलने पर भी अपने विलेख का आलोकन करवा सकता है व नोटेरी पब्लिक तत्सम्बन्धि प्रमाण-पत्र ले सकता है। इस प्रकार का आलोकन केवल उस अवस्था में करवाया जाता है जबकि देनदार या लेखक की साख सार्वजनिक रूप से क्षत-विक्षत हो जाती है अथवा वह दिवालिया घोषित कर दिया जाता है व नोटेरी पब्लिक की सहायता से अच्छी प्रतिभूति मांगने पर भी वह देनदार या लेखक से प्राप्त नहीं होती। धारक की प्रार्थना ठुकराए जाने पर नोटेरी पब्लिक सन्दर्भगत विलेख का आलोकन कर देता है। नोटेरी पब्लिक देनदार या लेखक की आर्थिक दुर्बलता से आश्वस्त होने पर ही उससे अच्छी प्रतिभूति की मांग करता है अन्यथा उसके विरुद्ध न्यायालय में मान-हानि का दावा प्रस्तुत किया जा सकता है।

एक लेख के लेखक, पृष्ठांकक या स्वीकारक को अच्छी प्रतिभूति देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और न विलेख का धारक इस प्रकार के अनादरण के आधार पर अपने पूर्व पक्षों के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही कर सकता है। पूर्व पक्षों के विरुद्ध कार्यवाही विलेख की परिपक्वता तिथि के पश्चात् ही की जा सकती है। अतः सामान्यतः इस प्रकार के आलोकन से धारक को कोई लाभ नहीं मिलता। उसे इस आलोकन से केवल उसी अवस्था मे लाभ मिलता है, जबकि आलोकन के पश्चात् उसके विलेख की सम्भावना के लिए स्वीकृति होने की आशा होती है।

यह आलोकन विलेख की परिपक्वता तिथि से पूर्व करवाया जाता है।

आलोकन का समय व स्वरूप—एक विलेख के अनादरण के पश्चात् उसका यथोचित समय में आलोकन करवाना पड़ता है। यथोचित समय के पश्चात् आलोकन नहीं किया जाता है। अच्छी प्रतिभूति के अभाव में करवाए जाने वाले आलोकन को भी यथोचित समय में करवाना पड़ता है।

नोटेरी पब्लिक आलोकन करते समय अपने रजिस्टर मे विलेख की 1. अनादरण तिथि, 2. अनादरण का कारण, (यदि देनदार द्वारा बताया गया हो) व 3. धारक से प्राप्त शुल्क को अंकित करता है। जब एक विलेख को स्पष्ट शब्दों मे अनादरण नहीं किया जाता है तो उस कारण का उल्लेख किया जाता है, जिसके आधार पर धारक अपने विलेख को अनादरित मानता है। (धारा 89)

प्रमाणन (Protesting)

एक विलेख का धारक चाहे तो नोटेरी पब्लिक से विलेख के अनादरण अथवा *अच्छी प्रतिभूति के प्रस्ताव की अस्वीकृति का प्रमाण-पत्र* ले सकता है। इस प्रमाण-पत्र को वैधानिक भाषा मे प्रमाणन या प्रोटेस्ट कहा जाता है। प्रमाणन को निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है—

1. अनादरण के लिए प्रमाणन एवं
2. अच्छी प्रतिभूति के अभाव में प्रमाणन।

नोटेरी पब्लिक अपना प्रमाण-पत्र मूल विलेख पर, उसमें संलग्न कागज (Allonge) पर अथवा अंशतः मूल विलेख पर अंशतः संलग्न कागज पर कर देता है। प्रमाणन

एक बिलेख के अनादरण का अधिकृत प्रमाण-पत्र होता है व प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी विवाद उठने पर विश्वस्त साक्षी का काम देता है।

प्रमाणन का स्वरूप—(यह प्रमाण-पत्र मूल विलेख, संलग्न कागज या अंशतः दोनों पर अंकित किया जाता है)

1. नोटेरी पब्लिक के रजिस्टर की पृष्ठ संख्या,
2. प्रस्तुतीकरण व अनादरण की तिथियां,
3. अनादरण का कारण (यदि बताया गया हो)
4. स्पष्ट अनादरण के अभाव में विलेख के धारक द्वारा विलेख को अनादरित मानने का कारण।
5. आलोकन तिथि।
6. आलोकन शुल्क।

7. हस्ताक्षर नोटेरी पब्लिक
8. स्थान व मोहर (Seal)

प्रमाणन से पूर्व आलोकन करवाया जाता है।

प्रमाणन का समय (Time of Protest)

नोटेरी पब्लिक से यह प्रमाण-पत्र किसी भी समय प्राप्त किया जा सकता है; किन्तु आलोकन के लिए अनादरित विलेख को उसके अनादरण के पश्चात् यथोचित समय मे प्रस्तुत करना पड़ता है।

नोटेरी का अभाव (Non-availability of Notary Public)

हाउस होल्ड से प्रमाणन (Protest by house holders)

जब किसी स्थान पर नोटेरी पब्लिक का कार्यालय नहीं होता है तो गृह-स्वामियों (House holders) से भी यह प्रमाण-पत्र लिया जा सकता है। यह प्रमाण-पत्र किसी सम्मानित व्यक्ति द्वारा दो अन्य सम्भ्रान्त व्यक्तियों की गवाही पर निर्गमित किया जाता है। दोनो साक्षी भी प्रमाण स्वरूप इस प्रमाण-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करते हैं। गृह-स्वामियों का प्रमाण-पत्र भी नोटेरी पब्लिक के प्रमाण-पत्र की भांति ही प्रभावकारी होता है। गृह-स्वामी निम्नांकित स्वरूप में प्रमाण-पत्र देते है।

House holders Protest

Know all men that I, x, y, z (house holder) of.........in the country of.......... in the .... at the request of........there being no Notary public available, did on the....day of....at.... demand, payment of or acceptance of the bill of exchange here by made, from.... to which demand he made answer (state answer if any) Where of I now in the presence of A & B do protest the said bill of exchange.

Sd A. Sd.........................
B. House holder
(Witness)

क्या आलोकन व प्रमाणन अनिवार्य है?

भारत और ब्रिटेन दोनों मे स्वदेशी विलेखों का आलोकन व प्रमाणन पूर्णतः ऐच्छिक है। किन्तु ब्रिटेन मे सभी विदेशी बिलों का आलोकन एवं प्रमाणन करवाना

अनिवार्य है। अतः एक अनादरित विलेख का धारक चाहे तो अपनी स्थिति की सुदृढ़ता के लिए अपने विलेख का आलोकन व प्रमाणन करवा सकता है। विधानतः उसे इस कार्य के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

विदेशी विलेखों का आलोकन व प्रमाणन भी भारत में अनिवार्य नहीं है; किन्तु ऐसे विलेखों के धारकों को केवल उन देशों में लिखे गए विलेखों का प्रमाणन करवाना पड़ता है जहां पर प्रमाणन अनिवार्य होता है (धारा 104)। अतः यदि किसी देश में प्रमाणन अनिवार्य न हो और उस देश में लिखे हुए विलेख का भारत में अनादरण हो जाय तो उसके धारक को अपने विलेख का विधानतः आलोकन व प्रमाणन नहीं करवाना पड़ता किन्तु व्यवहार में प्रत्येक विदेशी विलेख का आलोकन व प्रमाणन करवाया जाता है। क्योंकि (i) प्रमाणन एक विलेख के विभिन्न पक्षकारों को उसके प्रस्तुतीकरण की नियमितता से आश्वस्त करता है। (ii) पूर्व पक्षकारों से विलेख की राशि प्राप्त करने में सहायता देता है। (iii) न्यायालय में वाद प्रस्तुत होने पर प्रमाणन अधिकारी एक शक्तिशाली गवाह का काम करता है और (iv) यह इस तथ्य का अकाट्य प्रमाण है कि विपत्र अमुक तिथि को अनादरित किया गया था।

प्रमाणन की सूचना का स्वरूप एवं उसका सम्प्रेषण (Communication)—जब किसी विलेख का अनिवार्यतः प्रमाणन करवाना पड़ता है तो विलेख के समस्त संबन्धित पक्षकारों को प्रमाणन की सूचना भेजी जा सकती है। यह सूचना नोटेरी पब्लिक द्वारा भी भेजी जा सकती है। प्रमाणन की सूचना भेजते समय उसी विधि का पालन किया जाता है जिसे अनादरण की सूचना के प्रेषण के समय अपनाया जाता है।

प्रमाणन की सूचना के साथ निम्नांकित प्रलेखों व सूचनाओं को अनिवार्यतः संलग्न करना पड़ता है—(धारा 101)।

(i) मूल विलेख—अनादरित मूल विलेख अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि को प्रमाणन की सूचना के साथ संलग्न करना आवश्यक है। यदि विलेख पर कुछ शब्द लिखे हुए हों या छपे हुए हों तो प्रतिलिपि करते समय उन्हें भी उतारा जाता है।

(ii) निम्नलिखित सूचनाओं से युक्त एक विवरण-पत्र

1. नोटेरी पब्लिक ने सम्बन्धित व्यक्ति से स्वीकृति भुगतान या अच्छी प्रतिभूति (Better Security) की मांग की (स्थिति अनुसार)

2. अनादरण का कारण, या देनदार से प्राप्त उत्तर

3. यदि देनदार ने कोई उत्तर न दिया हो या वह उपलब्ध न हुआ हो तो तत्सम्बन्धी उल्लेख।

(iii) पक्षों का ब्योरा—उन व्यक्तियों के नाम जिनके लिए व जिनके विरुद्ध प्रमाणन किया गया है।

(iv) स्थान तथा समय—यदि विपत्र या प्रतिज्ञा-पत्र अनादरित हो जाता है तो अनादरण का समय व स्थान व यदि अच्छी प्रतिभूति मांगी गई हो तो उसके इन्कार करने का स्थान व समय का स्पष्ट ब्योरा देना चाहिए।

(v) शुल्क (Fees)—नोटेरी पब्लिक द्वारा लिये गये शुल्क की राशि भी प्रमाण पत्र पर अंकित करना आवश्यक है। यह राशि अनादरण करने वाले पक्ष से वसूल की जाती है।

(vi) सम्मान के लिए स्वीकृत—यदि सम्मान के लिए स्वीकृति या भुगतान का प्रस्ताव आया हो तो प्रस्तावक प्रस्तावित एवं स्वीकृत शर्तों का उल्लेख भी किया जाता है। साथ ही जिन व्यक्तियों के पक्ष में प्रस्ताव आया जिनके नाम का उल्लेख करना भी अनिवार्य है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर सम्मान के लिए स्वीकारक अथवा भुगतान करने वाला व्यक्ति दोषी पक्ष पर दावा करके यथोचित राशि वसूल करने का अधिकारी हो जाता है।

(vii) नोटेरी पब्लिक की गवाही तथा मोहर—उपर्युक्त सम्पूर्ण ब्यौरा लिखने के बाद स्वयं नोटेरी पब्लिक को अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। इसके अलावा दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों की गवाही (Witness) दिलवानी पड़ती है। तत्पश्चात नोटेरी पब्लिक अपने कार्यालय की मोहर (Seal) लगाता है। गवाह प्रायः वे ही व्यक्ति होते हैं जिन्होंने बिल को स्वीकृति या भुगतान हेतु प्रस्तुत किया था।

प्रस्तुतीकरण के बिना प्रमाणन—

सामान्यतः विलेखों का प्रस्तुतीकरण (भुगतान के लिए) के बाद ही प्रमाणन किया जाता है; किन्तु जब एक विपत्र का देनदार विपत्र के भुगतान के लिए अपने निवास स्थान से भिन्न स्थान का प्रस्ताव करता है और जब ऐसा विपत्र अस्वीकृति के कारण अनादरित हो जाता है तो ऐसे विपत्र का प्रस्तुतीकरण (भुगतान के लिए) के बिना भी प्रमाणन करवाया जा सकता है। जब ऐसे विपत्र का परिपक्वता तिथि पर या उससे पूर्व भुगतान हो जाता है तथा उसका प्रमाणन नहीं करवाया जा सकता है। (धारा 103)

प्रश्न

1. आलोकन एवं अनादर प्रमाणन में क्या अन्तर है? क्या एक बिल या चैक के अनादरण पर आलोकन या अनादर प्रमाणन आवश्यक है?
   (लखनऊ बी॰कॉम॰, 1976)
2. अनादरण की सूचना कब और किस प्रकार दी जानी चाहिए।
3. आलोकन तथा अनादर प्रमाणन मे अन्तर लिखिए। एक अनादृत परक्राम्य विलेख का अनादर प्रमाणन किन परिस्थितियों में आवश्यक है?
   (राज. बी. कॉम. 1973)
4. एक परकाम्य विलेख के अनादरण का क्या तात्पर्य है? एक विलेख को अनादृत कब माना जा सकता है?
5. अनादरण की सूचना किसे कहते हैं? यह सूचना कब और किसके द्वारा दी जानी चाहिए। किन-किन परिस्थितियों में अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं होता।

———

16

बैंकों का ढांचा, संगठन और प्रबन्ध

(STRUCLURE, ORGAMISTION & MANAGEMENT OF BANKS)

व्यापारिक अधिकोषों का ढांचा—

भारतीय व्यापारिक अधिकोषों के ढांचे में विगत तीन दशकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इन तीन दशकों में देश में राजकीय प्रेरणा से तीन नए सस्यागत मोडल-स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, स्टेट बैंक सहायक अधिकोष व क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष की स्थापना की गई, देश के 20 बड़े व्यापारिक अधिकोषों का राष्ट्रीयकरण किया गया और अग्रणी अधिकोष योजना आरम्भ की गई। इन आधारभूत परिवर्तनों के कारण देश के व्यापारिक अधिकोषों के ढांचे मे स्वामित्व, वैधानिक व्यवस्थाओ व निष्पादन कार्यों की दृष्टि से आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं। स्वामित्व की दृष्टि से देश के व्यापारिक अधिकोषो को सार्वजनिक व निजी अधिकोषो मे विभक्त किया जा सकता है। 30 जून, 1980 को देश में कुल 153 अधिकोष कार्य कर रहे थे जिनमें से 101 (क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषो सहित) सार्वजनिक क्षेत्र में व शेष 52 निजी क्षेत्र (38 भारतीय व 14 विदेशी) मे कार्यरत थे।

अधिकोषों के प्रकार—वैधानिक व्यवस्थाओं एवं निष्पादित कार्यों की दृष्टि से देश के व्यापारिक अधिकोषों का निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता सकता है—

(A) अनुसूचित व गैर अनुसूचित अधिकोष (Scheduled & Non-scheduled Bank)—जब किसी अधिकोष का रिजर्व बैंक अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में नाम लिख लिया जाता है तो उसे भारतीय संदर्भ में अनुसूचित अधिकोष कहा जाता है। इस हेतु सम्बन्धित अधिकोष को निम्नांकित शर्तों की पूर्ति करनी पड़ती है—

(i) उसे भारत में बैंकिंग व्यवसाय करना पड़ता है;

(ii) उसका राज्य सहकारी अधिकोष, प्रमण्डल अधिनियम की धारा 3 द्वारा परिभाषित प्रमण्डल, भारत सरकार द्वारा अधिसूचित संस्था या विदेशों मे स्थापित विधि सम्मत प्रमण्डल या निगम का होना आवश्यक होता है;

(iii) उसकी दत्त पूंजी व संचित कोष के वास्तविक या हस्तांतरणीय मूल्य का योग 5 लाख रुपये से कम नहीं होना चाहिए।

(iv) रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि वह अपने जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध कार्य नहीं कर रहा है।

ज्ञातव्य है कि एक अधिकोष की दत्त पूंजी व संचित कोष का मूल्य 5 लाख रुपये हो जाने पर भी उसे अधिनियम की द्वितीय सूची में शामिल करना अनिवार्य नहीं होता है। रिजर्व बैंक ऐसा करने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष की दत्त पूंजी व संचित कोषों की पर्याप्तता पर विचार करता है। पर्याप्तता के निर्धारण के लिए रिजर्व बैंक उस अधिकोष की आवश्यकताओं, उसके कुल निक्षेप, कार्य-क्षेत्र व अन्य सम्बन्धित पहलुओं पर विचार करता है व प्रत्येक दृष्टि से पूंजी व कोष को यथेष्ठ पाने पर भी उसका द्वितीय अनुसूची में नाम लिखता है। जब किसी अधिकोष के संचित कोष उसकी दत्त पूंजी से अपेक्षाकृत कम होते हैं तो रिजर्व बैंक इस कमी के कारणों पर विचार करता है और इसका संतोषजनक कारण मिलने पर ही सम्बन्धित अधिकोष का द्वितीय सूची में नाम लिखता है। जमाकर्त्ताओं के हितों पर विचार करते समय रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोष की वित्तीय स्थिति, व संचालन पद्धति पर विचार करता है। वित्तीय स्थिति के अन्तर्गत वह दत्तपूंजी व संचित-कोषों की पर्याप्तता, उपार्जन शक्ति की यथेष्ठता, दत्तपूंजी, संचित कोष व निक्षेपों के उपयोग व तरल कोषों की यथेष्ठता पर विचार करता है। तरल कोषों की यथेष्ठता पर विचार करते समय वह बैंक के निक्षेपों, अग्रिम व विनियोगों की प्रकृति व ऋण सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर विचार करता है और संचालन-पद्धति के अन्तर्गत वह प्रबन्ध, आंतरिक संगठन व कर्मचारियों की कुशलता पर विचार करता है।

अनुसूची में नाम शामिल करना व निकालना—सामान्यतः द्वितीय अनुसूची में नाम लिखवाने हेतु एक अधिकोष को रिजर्व बैंक के समक्ष एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है और रिजर्व बैंक, उपर्युक्त तथ्यों से संतुष्ट होने पर उसका द्वितीय सूची में नाम अंकित कर लेता है। कभी-कभी रिजर्व बैंक अपनी प्रेरणा पर भी किसी अधिकोष का नाम द्वितीय अनुसूची में अंकित कर लेता है। रिजर्व बैंक ऐसा निर्णय तब लेता है जबकि उसे विश्वास हो जाता है कि वह अधिकोष रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 के समस्त प्रावधानों की पूर्ति कर रहा है। रिजर्व बैंक प्रत्येक अवस्था में अपना निर्णय अपने निरीक्षकों से प्राप्त प्रतिवेदन अथवा उस अधिकोष से प्राप्त विवरणियों के आधार पर लेता है। क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों को प्रारम्भ से ही अनुसूचित अधिकोष मान लिया जाता है।

रिजर्व बैंक एक अधिकोष का नाम द्वितीय अनुसूची से हटा भी सकता है। रिजर्व बैंक नाम हटाने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष का अपने निरीक्षकों से निरीक्षण करवाता है और निरीक्षण की एक प्रति सम्बन्धित अधिकोष को स्पष्टीकरण हेतु भेजता है। स्पष्टीकरण से संतुष्ट न होने पर रिजर्व बैंक उसे अपनी स्थिति सुधारने के लिए समुचित समय

---

1. Banks cohich Carry on the banking business in India, and which (a) have paid up capital and reserver of an aggreate real or exchangeable value of not less Than Rs 5 laks (b) are either state Cooperative banks or Companies as defined in Section or the companies Act, 1936 or corporations or Companeis incorporated by or under any law in any place outside India or In stitutions notefied by the central Govt. in this behalf & (c) satisby the Reserve Bank, that Their officer alt each being condaction in a manner detrimental to the intersts on their depositirs on eligible for inclusion in the 2 nd schedule of the 2 B Act, 1934 & when so included are known as scheduled banKs. Banking Commisionn, Report p 44

देता है; किन्तु असंतोषजनक स्पष्टीकरण प्राप्त होने पर अथवा निर्धारित अवधि में स्थिति न सुधारने पर वह उस अधिकोष का नाम अनुसूची से हटा देता है। सामान्यतः रिजर्व बैंक निम्नांकित परिस्थितियों में एक अधिकोष का द्वितीय सूची से नाम हटा देता है :

(i) जब उसकी दत्तपूंजी व संचित कोष का योग 5 लाख से कम हो जाता है;

(ii) जब धारा 35 के अन्तर्गत निरीक्षण करवाने के पश्चात् उसे यह विश्वास हो जाता है कि बैंक का संचालन जमाकर्ताओं के हितों के प्रतिकूल हो रहा है, और

(iii) जब उसका समापन हो जाता है या वह बैंकिंग मे व्यवसाय करना बन्द कर देता है।

अनुसूचित अधिकोषों के रिजर्व बैंक अन्तिम ऋणदाता का कार्य करता है और ये बैंक आम जनता में अपनी वित्तीय स्थिति व कार्यप्रणाली के प्रति आस्था जागृत करते हैं। इन्हें अपने कुल दायित्वों का 3 प्रतिशत हमेशा रिजर्व बैंक के पास नगद रखना पड़ता है जिस पर कोई ब्याज देय नही होता है। रिजर्व बैंक इस राशि को 158 तक बढ़ा सकता है इस समय उन्हे 7% राशि रिजर्व बैंक के पास रखनी पड़ती है। रिजर्व बैंक चाहे तो 3% से अधिक रखी गई राशि पर ब्याज दे सकता है।

गैर अनुसूचित अधिकोष (Non Scheduled Banks)—जिन अधिकोषों का नाम रिजर्व बैंक अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में शामिल नही होता है उन्हे गैर अनुसूचित अधिकोष कहा जाता है। इन्हें अपने कुल दायित्वों का 3% हमेशा अपने पास, किसी अन्य अधिकृत अधिकोष अथवा रिजर्व बैंक के पास नगद रखना पड़ता है। इन्हें रिजर्व बैंक से ऋण या पुनर्वित्त की सुविधा नही मिल सकती। इन अधिकोषों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

(B) अनुज्ञापत्रधारी व गैरअनुज्ञापत्र धारी अधिकोष—भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम1949 की धारा 22 के अनुसार देश में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यापारिक अधिकोष को रिजर्व बैंक से अनुज्ञापत्र लेना पड़ता है। इस अनुज्ञापत्र के अभाव में वे इस देश मे बैंकिंग व्यवसाय का निष्पादन नही कर सकते किन्तु स्टेट बैंक समूह व राष्ट्रीयकृत अधिकोषों पर यह नियम लागू नही होता है। जिन अधिकोषों के पास रिजर्व बैंक का अनुज्ञापत्र होता है। उन्हे लायसेंस्ड अधिकोष कहा जाता है। इस हेतु प्रत्येक अधिकोष को रिजर्व बैंक के समक्ष एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति से पूर्व रिजर्व बैंक प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों से निरीक्षण करवाता है और निम्नांकित तथ्यों से संतुष्ट होने पर उसे अनुज्ञापत्र निर्गमित कर देता है :

(i) प्रार्थी अधिकोष अपने वर्तमान व भावी जमाकर्ताओं को उनकी सम्पूर्ण जमा राशि का भुगतान करने में समर्थ है,

(ii) प्रार्थी अधिकोष का संचालन उसके वर्तमान व भावी जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है और न ऐसी कोई सम्भावना है।

(iii) प्रार्थी अधिकोष (विदेशी होने पर) के देश मे भारतीय अधिकोषों के विरुद्ध उस देश की सरकार अथवा कानून द्वारा किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा रहा है, उसे अनुज्ञापत्र देना जनहित में है और वह विदेशी अधिकोषों पर लागू होने वाले समस्त प्रावधानों की पूर्ति करता है।
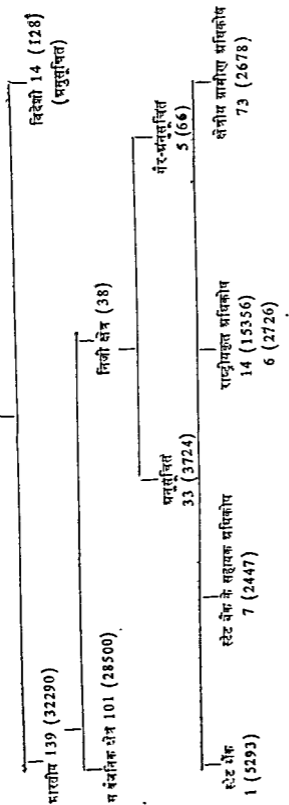
कोष्ठक में दी गई संख्याएं शाखाओं की द्योतक हैं।
स्रोत—रिज़र्व बैंक, वार्षिक प्रतिवेदन 79–80 पृष्ठ 49 ।

रिजर्व बैंक चाहे तो वह प्रार्थी अधिकोष को अन्य किसी शर्त की पूर्ति का भी आदेश दे सकता है और प्रार्थी अधिकोष की उस शर्त को मानना पड़ता है।

रिजर्व बैंक प्राप्त प्रार्थना पत्रों को स्वीकृत/अस्वीकृत करने के लिए पूर्णतः सक्षम होता है और उसके इस निर्णय के विरुद्ध सरकार अथवा किसी न्यायालय मे अपील नहीं की जा सकती। एक प्रार्थना-पत्र किन अवस्थाओ मे अस्वीकृत किया जाएगा, इस सम्बन्ध मे अधिनियम पूर्णतः मौन है और रिजर्व बैंक के व्यापक अधिकारों की पुष्टि करता है।

एक पूर्व निर्गमित अनुज्ञापत्र को रिजर्व बैंक निम्नांकित अवस्थाओं मे निरस्त कर सकता है—

(1) जब एक अधिकोष बैंकिंग व्यवसाय को स्थगित कर देता है अथवा सर्वथा बन्द कर देता है,

(2) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित शर्तों की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है और

(3) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित अतिरिक्त शर्तों को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है।

(4) जब एक व्यापारिक अधिकोष का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है।

रिजर्व बैंक एक अनुज्ञापत्र को निरस्त करने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष को अपने पक्ष के प्रस्तुतीकरण का अवसर देता है किन्तु जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि इस प्रकार का अवसर देने पर उसके जमाकर्ताओं अथवा आम जनता को हानि उठानी होगी तो वह समुचित अवसर दिये बिना भी उसका अनुज्ञापत्र निरस्त कर सकता है। निरस्तीकरण से प्रभावित अधिकोष आदेश प्राप्ति से 30 दिनो के अन्दर केन्द्रीय सरकार के पास अपील कर सकता है। जब उसके द्वारा ऐसी अपील नहीं की जा सकती है तो रिजर्व बैंक का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता है और अपील की अवस्था में केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम व सर्वमान्य होता है। रिजर्व बैंक व केन्द्रीय सरकार के इन निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय मे अपील नहीं की जा सकती।

जिन व्यापारिक अधिकोषों के पास इस प्रकार लायसेंस नहीं होता है उन्हें गैर-अनुज्ञापत्रधारी अधिकोष कहा जाता है। भारत मे दोनो ही प्रकार के अधिकोष पाए जाते हैं। राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को लायसेंस लेने की आवश्यकता नहीं होती है।

(C) स्वदेशी और विदेशी अधिकोष—जिन अधिकोषों की स्थापना किसी भारतीय कानून के अन्तर्गत भारत मे की जाती है उन्हें स्वदेशी अथवा भारतीय अधिकोष कहा जाता है और जिन अधिकोषों की स्थापना विदेशो मे की जाती है उन्हे हमारे देश मे विदेशी अधिकोष कहा जाता है। हमारे देश में सामान्यतः इन अधिकोषों को विदेशी विनिमय अधिकोष के नाम से जाना जाता है क्योंकि ये अधिकोष मुख्यतः विदेशी विनिमय सम्बन्धी व्यवहारों का निष्पादन करते रहे हैं। स्वदेशी अधिकोषों के अन्तर्गत मुख्यतः स्टेट बैंक समूह, राष्ट्रीयकृत अधिकोष, निजी अधिकोष और क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों की गणना की जाती है। विदेशी अधिकोष विदेशी विनिमय सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त विदेशी व्यापार के अर्थप्रबन्ध व सामान्य बैंकिंग कार्यों का निष्पादन करते हैं। पिछले कुछ वर्षों मे इन्होने स्वदेशी व्यापार को भी वित्तीय सहायता देना चालू कर दिया है।

भारत मे सबसे पहले ब्रिटिश अधिकोषो ने पदार्पण किया और देश के प्रमुख बन्दरगाहों पर अपनी शाखायें खोलीं। प्रचुर वित्तीय ससधानो, कुशल कर्मचारियों के बाहुल्य और राजकीय संरक्षण के कारण स्वदेशी अधिकोष इनसे प्रतिस्पर्द्धा में टिक नही पाए और स्वतन्त्रता प्राप्ति तक इनका विदेशी विनिमय के क्षेत्र मे वर्चस्व बना रहा। आजादी के पश्चात् अन्य देशों के बैंकों ने भी हमारे देश में अपनी शाखाएं खोलीं। 30 जून,1980 को हमारे देश में 8 देशों के 141 अधिकोष कार्य कर रहे थे।

(D) क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष (Regional Rural Banks)—क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष भारतीय बैंकिंग प्रणाली की एक नवीनतम कडी है और 2 अक्टूबर,1975 से ये अधिकोष देश मे कार्यरत है। इन अधिकोषो की क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष अध्यादेश 1975 द्वारा स्थापना की गई थी। 1976 में इस अध्यादेश का स्वतन्त्र अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापन कर दिया गया। इन अधिकोषो की मुख्यतः निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति-हेतु स्थापना की गई है :

(1) कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग व अन्य उत्पादक कार्यों का ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास,

(2) सीमान्त किसान, भूमिहीन कृषि श्रमिक, ग्रामीण कारीगर, लघु व्यवसायी व समाज के अन्य कमजोर वर्गों को उत्पादक कार्यों के लिए साख स्वीकृत करना,

(3) ग्रामीण अंचल में संस्थागत साख संगठनों को मजबूत करना,

(4) गांवों के शिक्षित नागरिकों को रोजगार देना और

(5) साख-लागत को कम करना।

इन अधिकोषो की मुख्यतः किसी राष्ट्रीयकृत अधिकोष द्वारा स्थापना की जाती है किन्तु अब राज्य सहकारी अधिकोषों व निजी अधिकोषों को भी प्रायोजक अधिकोषों के रूप मे मान्यता दी जाने लगी है। इन अधिकोषों की अधिकृत व दत्त पूंजी क्रमशः एक करोड़ व 25 लाख रुपये होती है जिसे केन्द्रीय सरकार व प्रायोजक अधिकोष द्वारा क्रमशः 50:15:35 के अनुपात में खरीदते हैं। इस पूंजी में रिजर्व बैंक, प्रायोजक अधिकोष व केन्द्रीय सरकार की पूर्व सहमति व अनुमति से वृद्धि की जा सकती है। इन अधिकोषों का प्रबन्ध एवं संचालन एक नौ सदस्यीय मनोनीत सचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल के अध्यक्ष व 3 सदस्यों का मनोनयन केन्द्रीय सरकार करती है व शेष 5 सदस्यों में से 3 मनोनयन प्रायोजक अधिकोष व 2 का मनोनयन सम्बन्धित राज्य सरकार करती है। इन अधिकोषों के अधिकारियो व कर्मचारियो को राज्य सरकार की वेतन शृंखलाओं में नियुक्ति दी जाती है। एक अधिकोष का कार्यक्षेत्र उसकी स्थापना के समय निर्धारित कर दिया जाता है। सामान्यतः एक अधिकोष 1, 2 या 3 जिलो मे कार्य करता है। कार्यक्षेत्र के निर्धारण के समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सम्पूर्ण क्षेत्र आर्थिक व भौगोलिक दृष्टि से समान हो। ये अधिकोष मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों मे अपनी शाखाएं खोलते हैं और कार्यक्षेत्र की दृष्टि से ये अधिकोष स्थानीय अधिकोष हैं। इन अधिकोषो को भी अनुसूचित अधिकोष माना गया है किन्तु इन्हें सहकारी अधिकोषो की भांति अनेक सुविधाएं उपलब्ध हैं। 30 जून, 1980 को देश मे 73 ग्रामीण अधिकोष कार्यरत थे, जिनकी 130 जिलों मे 2678 शाखाएं थीं।[1]

---

1. Reserve Bank of India Report on Trend and Progress of Banking in India, 1979–80, p. 52.

(E) अग्रणी अधिकोष (Lead Banks)—अग्रणी अधिकोष योजना के अन्तर्गत जिन अधिकोषों को एक जिले के सम्यक् विकास का नेतृत्व प्रदान किया जाता है, उन्हें अग्रणी अधिकोष कहा जाता है। प्रारम्भ में स्टेट बैंक समूह के अधिकोषों व राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को ही अग्रणी अधिकोष बनाया जाता था, किन्तु अब राज्य सहकारी अधिकोषों व निजी अधिकोषों को भी अग्रणी अधिकोष बनाया जा सकता है। ये अधिकोष अपने-अपने जिलों के लिए रिजर्व बैंक से प्राप्त निर्देश के अनुसार साख योजनाएं बनाते हैं, सहयोगी अधिकोषों के सहयोग से संस्थागत साख अन्तराल को दूर करते हैं और जिले की विकास योजनाओं एवं साख-योजनाओं में तारतम्य स्थापित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अधिकोष अपने जिले के सम्भाव्य बैंकिंग केन्द्रों का पता लगाते हैं और वहां पर अपनी शाखाएं खोलते हैं अथवा अन्य सहयोगी अधिकोषों को इसके लिए प्रेरित करते हैं और समस्त व्यापारिक अधिकोषों व राज्याधिकारियों के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं।

(F) राष्ट्रीय व क्षेत्रीय अधिकोष—जिन अधिकोषों की शाखाएं देश के समस्त भागों में समान या लगभग समान रूप से पाई जाती हैं उन्हें राष्ट्रीय अधिकोष कहा जाता है। इनका स्वरूप अखिल भारतीय होता है। ये बैंक सम्पूर्ण देश को अनेक प्रबन्धकीय क्षेत्रों में बांट देते हैं और उनमें स्थित शाखाओं का प्रबन्ध एवं नियमन अपने क्षेत्रीय प्रबन्धकों की सहायता से करते हैं। जिन अधिकोषों की अधिकांश शाखाएं एक क्षेत्र विशेष में कार्यरत होती हैं उन्हें क्षेत्रीय अधिकोष कहा जाता है। ये अधिकोष देश के अन्य भागों में शाखा विस्तार नीति (Branch Expansion Policy) के विभिन्न तत्वों से लाभान्वित होने के लिए ही अपने क्षेत्र से बाहर शाखाएं खोलते हैं। स्टेट बैंक व 20 राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को राष्ट्रीय या अखिल भारतीय अधिकोष माना जाता है और स्टेट बैंक के सहायक अधिकोषों व अन्य व्यापारिक अधिकोषों को क्षेत्रीय अधिकोष माना जाता है। क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष एक प्रकार से स्थानीय अधिकोष हैं क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र एक, दो या तीन जिलों तक सीमित होता है।

(G) मर्चेन्ट बैंक (Merchant Banks)—मर्चेन्ट बैंक निक्षेप स्वीकार करने व ऋण देने के अतिरिक्त प्रमण्डलों के प्रवर्तन, प्रबन्ध, प्रतिभूतियों के विपणन व अभिगोपन, परियोजना निर्माण एवं मूल्यांकन आदि का कार्य करते हैं। भारतवर्ष में स्वतन्त्र रूप से मर्चेन्ट बैंक नहीं पाए जाते हैं पर देश के कुछ बड़े बैंक यथा स्टेट बैंक, बैंक ऑफ इण्डिया, सिण्डीकेट बैंक, यूनियन बैंक, यूनाइटेड कामर्शियल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, चार्टर्ड बैंक, मर्केण्टाइल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा व ग्रिण्डले बैंक द्वारा मर्चेन्ट बैंकिंग का कार्य किया जाता है। इन अधिकोषों में से अधिकांश ने 1970 के दशक से यह कार्य प्रारम्भ किया है। हमारे देश में इन बैंकों ने मर्चेन्ट बैंकिंग से सम्बन्धित कार्यों के लिए स्वतन्त्र विभागों की स्थापना की है जिन्हें मर्चेन्ट बैंकिंग विभाग (Merchant Banking Division) कहा जाता है। ये विभाग मुख्यतः निम्नांकित कार्यों में सहयोग प्रदान करते हैं—

(1) उपयुक्तता प्रतिवेदनों का निर्माण व जांच (Preparation of Feasibility reports)—जो इकाइयां अपने विस्तार कार्यक्रमों अथवा प्रारम्भिक कार्यों के लिए उपयुक्तता प्रतिवेदन तैयार करने में असमर्थ होती हैं उनके लिए ये विभाग इस प्रकार के प्रतिवेदनों को तैयार करते हैं अथवा उनके द्वारा बनाये गए प्रतिवेदनों की वैधानिक

आधार पर जांच करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनमे संशोधन करते हैं। स्टेट बैंक इस कार्य को सफलतापूर्वक कर रहा है।

(2) प्रवर्तन परामर्श (Promotional Guidance)—ये विभाग औद्योगिक इकाइयों को प्रवर्तन, अन्तर्नियमों व सीमा नियमों के निर्माण, पूंजी-संरचना आदि में भी बहुमूल्य परामर्श देते है।

(3) औद्योगिक स्वरूप में परिवर्तन—ये विभाग औद्योगिक इकाइयों को उनके स्वरूप परिवर्तन के लिए भी आवश्यक परामर्श देते हैं। उदाहरणार्थ, जब एक लघु इकाई को मध्यम अथवा वृहद इकाई में बदला जाता है अथवा एक विदेशी का फेरा (FERA) के अन्तर्गत भारतीयकरण किया जाता है तो ये बैंक विभाग महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करते हैं।

(4) प्रतिभूतियों का विपणन व अभिगोपन—ये विभाग औद्योगिक इकाइयों की प्रतिभूतियों (अंशपत्र व ऋणपत्र) के विपणन व अभिगोपन का कार्य भी करते हैं। अभिगोपन का कार्य सामान्यतः कम किया जाता है। अतएव ये विभाग मुख्यतः विपणन सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही को ही सम्पन्न करते हैं।

(5) संयुक्त उपक्रमों की स्थापना में सहयोग—ये बैंक देश/विदेश में स्थापित किए जाने वाले संयुक्त उपक्रमों के उपादेयता प्रतिवेदन (Feasibility Reports) तैयार करते हैं, ऋण स्वीकृति सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही करते हैं और अन्य आवश्यक परामर्श प्रदान करते हैं।

(6) संयुक्त ऋणों की व्यवस्था—जब किसी इकाई को बड़ी मात्रा में ऋण स्वीकृत किया जाता है तो ये बैंक जोखिम के विकेन्द्रीकरण के लिए सिण्डीकेट का निर्माण कर लेते हैं और सामूहिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत ऋण प्रदान करते हैं।

(7) प्रबन्ध सुधार—ये बैंक औद्योगिक इकाइयों विशेषतः रुग्ण इकाइयों के प्रबन्ध एवं संचालन को ठीक करने मे सहायता प्रदान करते हैं। कभी-कभी इन इकाइयों में अपने कुशल प्रबन्धकों को प्रतिनियुक्ति पर भी भेजते हैं।

अपने कार्यकलापों को अधिक उपयोगी व व्यापक बनाने के लिए इन बैंकों को सूचना केन्द्रों की स्थापना करनी चाहिए और ग्राहकों की ओर से स्कन्ध विनिमय गतिविधियों मे भाग लेना चाहिए। इन गतिविधियों से ग्राहकों को सही निर्देश मिल सकता है और बैंकों का स्कन्ध बाजार पर नैतिक किन्तु प्रभावी नियन्त्रण रह सकता है।

व्यापारिक अधिकोषों का संगठन—

संगठन प्रणालियां—विश्व में बैंकिंग उद्योग की मुख्यतः दो प्रणालियां—(1) इकाई प्रणाली (Unit Banking System) और शाखा-प्रणाली (Branch Banking System) पाई जाती हैं।

इकाई प्रणाली के अन्तर्गत एक अधिकोष का एक ही कार्यालय होता है। अतएव इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिकोषों की संख्या काफी होती है; किन्तु उनका आकार बहुत छोटा और कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। ये अधिकोष अपने विभिन्न व्यावसायिक कार्यों के सम्पादन के लिए एक दूसरे को अपना प्रतिनिधि अधिकोष नियुक्त कर लेते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिकोषों का स्वामित्व [illegible] स्थानीय [illegible] के

हाथों में रहता है और वे स्थानीय हितों को सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं। यह प्रणाली मुख्यतः अमेरिका मे पाई जाती है।

शाखा प्रणाली के अन्तर्गत एक अधिकोष की देश-विदेश में अनेक शाखाएं होती हैं अर्थात् उनका आकार व भौगोलिक क्षेत्र काफी विस्तृत होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिकोषों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है; किन्तु उनकी शाखाओं का बहुत बड़े क्षेत्र में जाल बिछा रहता है। उदाहरणार्थ, भारतीय स्टेट बैंक शाखाओं की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा अधिकोष है। इस अधिकोष की 5000 से भी अधिक शाखाएं हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत बैंकों का नियन्त्रण विकेन्द्रित होता है और ये अधिकोष स्थानीय हितो का विशेष ध्यान नहीं रख पाते हैं। अतएव क्षेत्रीय असंतुलन, साख निक्षेप अन्तराल व कमजोर नियन्त्रण की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। विश्व के अधिकांश देशो मे शाखा प्रणाली ही पाई जाती है।

भारत में बैंकिंग संगठन—भारत में आधुनिक अधिकोषों की स्थापना का श्रेय ब्रिटिश नागरिकों एवं प्रमण्डलों को जाता है। उन्होने अपने देश की भांति यहां पर भी अधिकोषों की स्थापना हेतु शाखा प्रणाली को अपनाया। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली ब्रिटेन से उधार ली हुई प्रणाली है। संक्षेप में, भारतीय बैंकिंग प्रणाली शाखा प्रणाली पर कार्य करती है।

प्रमण्डल स्वरूप—सेवा उद्योगों के संचालन के लिए संगठन के अनेक रूपों-निगम, प्रमण्डल, बोर्ड, विभाग में से किसी भी एक स्वरूप को अपनाया जा सकता है। बैंकिंग उद्योग भी एक सेवा उद्योग है। देश में इस उद्योग के संचालन के लिए प्रमण्डल स्वरूप को अपनाया गया है। हमारे देश में व्यापारिक अधिकोषों की स्थापना सामान्यतः 'भारतीय प्रमण्डल अधिनियम' के अन्तर्गत एक 'संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल' के रूप मे की जाती है और प्रमण्डल अधिनियम के अनेक प्रावधान उन पर अविकल लागू होते हैं। कुछ अधिकोषों की स्थापना विशिष्ट अधिनियम-(i) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम (ii) स्टेट बैंक (सहायक अधिकोष) अधिनियम (iii) क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष अधिनियम-के अन्तर्गत भी की गई है; किन्तु इन अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित अधिकोष भी प्रमण्डल के रूप में कार्य करते हैं।

रेखीय एवं स्टाफ संगठन—शाखा प्रणाली के कारण भारतीय अधिकोषों में संचालन एवं प्रबन्ध हेतु रेखीय एव स्टाफ संगठन को अपनाया गया है। इस स्वरूप के अन्तर्गत अधिकारों का शीर्ष से धरातल की ओर प्रत्यार्पण किया जाता है। अधिकारों के प्रत्यार्पण हेतु प्रबन्ध के विभिन्न स्तर बना दिये जाते हैं और प्रत्येक स्तर पर प्रबंध अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों से कार्य करवाता है और अपने से पहले व पिछले वाले स्तरों के मध्य एक सेतु का कार्य करता है। देश की विशालता एवं अधिकोषों की पृथक प्रबन्ध-व्यवस्था के कारण बैंकों के संगठन स्तरों (organiastional tirs) मे एकरूपता नहीं पाई जाती है फिर भी देश के अधिकांश व्यापारिक अधिकोषों मे त्रिस्तरीय संगठन पाया जाता है। कुछ अधिकोषों में 5 या 6 स्तरीय संगठन भी पाया जाता है।

संगठन के विभिन्न स्तर (Organisational tips)—सामान्यतः संगठन के सर्वोच्च स्तर पर संचालक-मण्डल का अध्यक्ष कार्य करता है। उसके नीचे महाप्रबन्धक कार्य करता है। महाप्रबन्धक की सहायतार्थ कुछ उप-महाप्रबन्धकों एवं प्रबन्धकों की नियुक्ति की जाती है। संगठन के द्वितीय स्तर पर क्षेत्रीय प्रबन्धक व चौथे और अन्तिम

प्रधान कार्यालय का संगठन

Operational wing
(संचालन भाग)

1. ऋण एवं अग्रिम विभाग—
2. लेखा विभाग—
3. निरीक्षण विभाग—
4. विधि विभाग—
5. जन-सम्पर्क विभाग—
6. कृषि-वित्त विभाग—
7. लघु उद्योग वित्त विभाग—
8. औद्योगिक वित्त विभाग—
9. विदेशी विनिमय विभाग—
10. भवन एवं निर्माण विभाग—
11. कर्मचारी प्रशिक्षण विभाग—
12. कार्मिक विभाग—
13. आर्थिक शोध एवं सांख्यिकीय विभाग
14. स्टेशनरी आदि विभाग—

Develoment wing
(विकास भाग)

1. अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग-विभाग (International Banking)
2. लीड बैंक विभाग —(Lead Bank)
3. ग्राहक सेवा विभाग—(Cuscemers services)
4. परामर्श—(Consultancy) विभाग
5. परफोर्मेंस बजटन विभाग—(Performance budgeting)
6. प्रबन्ध विज्ञान विभाग—(Management Science)
7. प्रबन्ध-सूचना प्रणाली (Management-Information System)
8. मर्चेण्ट बैंकिंग (Merchant Banking)
9. इन्नोवेटिंग बैंकिंग (Innovating Banking)
10. ग्रामीण बैंकिंग (Rural Banking)
11. विकास बैंकिंग (Development Banking)

प्रत्येक विभाग/प्रकोष्ठ एक प्रबन्धक या प्रभारी अधिकारी की देख-रेख में कार्य करता है।

स्तर पर शाखा प्रबन्धक कार्य करता है। कुछ अधिकोषों मे अन्तिम दो स्तरों के मध्य खण्डीय व एरिया प्रबन्धक की दो कड़िया और पाई जाती हैं। एक क्षेत्रीय प्रबन्धक सामान्यतः 50 शाखाओं की प्रबन्ध व्यवस्था देखता है। महाप्रबन्धक की सहायतार्थ कुछ समितियों का भी गठन किया जाता है जो प्रधान कार्यालय स्तर पर संगठन को 'रेखीय एवं स्टाफ संगठन' का स्वरूप देती हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों में द्विस्तरीय प्रबन्ध पाया जाता है। इन अधिकोषों की प्रत्येक शाखा का प्रधान कार्यालय से सीधा सम्बन्ध होता है।

प्रधान कार्यालय के विभाग—व्यापारिक अधिकोषों के प्रधान कार्यालय की सामान्यतः दो शाखाएं–विकास व संचालन–होती हैं और इनके अंतर्गत अनेक विभाग/प्रकोष्ठ कार्य करते हैं। प्रत्येक विभाग एक प्रबंधक की देख-रेख में कार्य करता है। सामान्यतः प्रधान कार्यालय में निम्नांकित विभाग कार्य करते हैं : ऋण एवं अग्रिम विभाग, लेखा विभाग, निरीक्षण विभाग, विधि विभाग, जनसम्पर्क विभाग, कृषि-वित्त विभाग लघु उद्योग विभाग, औद्योगिक वित्त विभाग, विदेशी विनिमय विभाग, भवन एवं निर्माण विभाग, कर्मचारी प्रशिक्षण विभाग, आर्थिक शोध एवं सांख्यिकीय विभाग, अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग विभाग, लार्ड बैंक विभाग, ग्राहक सेवा विभाग, परामर्श विभाग, परफोर्मेन्स बजटन, प्रबंध-विज्ञान विभाग मर्चेंट बैंकिंग विभाग मैनेजमेण्ट सूचना प्रणाली विभाग आदि।

विभिन्न विभागों के कार्य—प्रधान कार्यालय के उपर्युक्त विभाग सामान्यतः निम्नांकित कार्यों को सम्पन्न करते हैं :

(i) **कार्मिक विभाग (Personnel Department)**—यह विभाग अपने अधिकोष की भर्ती, नियुक्ति, अवस्थापन, प्रशिक्षण, पदोन्नति व श्रम-कल्याण प्रभृति नीतियों के निर्माण व क्रियान्वयन का कार्य करता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं श्रम-आन्दोलन के कारण इस विभाग के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस विभाग की देखरेख श्रम प्रबन्धक (Personnel Manager) द्वारा की जाती है।

(ii) **विदेशी विनिमय विभाग (Foreign Exchange Department)**—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व विदेशी विनिमय के नियंत्रण के कारण आजकल विदेशी विनिमय का कार्य अधिकांश अधिकोषों द्वारा किया जाता है। इन व्यवहारों से अधिकोषों के निक्षेपों और आय में वृद्धि होती है किन्तु इन व्यवहारों को सम्पन्न करने के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता है। अतएव प्रत्येक अधिकोष अपने मुख्यालय पर इस विभाग का संचालन करता है।

(iii) **विधि विभाग (Law Department)**—अधिकोषों को अनेक अधिनियमों व उनके अन्तर्गत निर्मित नियमों का अक्षरशः पालन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन्हें विभिन्न श्रम-नियमों की भी पूर्ण जानकारी रखनी पड़ती है और आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय में अपने पक्ष का विवेचन भी करना पड़ता है। इन समस्त कार्यों के लिए अधिकोष एक पृथक विभाग की स्थापना करते हैं जिसे विधि विभाग कहा जाता है।

(iv) **वित्त विभाग**—यह विभाग अपने अधिकोषों के हिसाब की पुस्तकों व अन्तिम खातों को तैयार करवाता है, आन्तरिक व बाह्य अंकेक्षण की व्यवस्था करता है और समस्त आय, की वसूली व व्यय के भुगतान की व्यवस्था करता है।

(v) योजना विभाग—यह विभाग अधिकोष के नवीन व्यवसाय की सम्भावनाओं का पता लगाता है और उनके परिप्रेक्ष्य में नवीन व्यवसाय योजनाओं का निर्माण करता है और उनके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करता है।

(vi) अभिनव विभाग—यह विभाग एक सर्वथा नवीन विभाग है। यह विभाग नवीन गतिविधियों यथा व्यापारियों एवं उद्योगपतियों की व्यावसायिक योजनाओं की जांच व अपने क्षेत्र के लिए औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं आदि की खोज का कार्य करता है। इस विभाग के अन्तर्गत अनेक अनुभाग यथा परियोजना अनुभाग, छात्रवृत्ति विभाग, शोध विभाग आदि कार्य करते हैं। इस विभाग द्वारा सामान्यतः उन गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया जाता है जिनका मुख्यतः सामाजिक विकास से सम्बन्ध है। यह विभाग हरिजनों, दलितों, विकलांगों एवं असहायों की विविध तरीकों से सहायता करता है व निर्धन छात्रों के माता-पिताओं को अपने बच्चों के लिए पुस्तकें खरीदने हेतु ऋण देता है। यह विभाग तूफान-पीड़ितों को भी सहायता देता है और अनेक शिविरों यथा रक्तदान, नेत्र शिविर आदि का संचालन करता है, नगरपालिकाओं को आधुनिक ढंग के पाखानों के निर्माण के लिए ऋण देता है, हरिजनोद्धार के लिए हरिजन-कल्याण सप्ताहों का आयोजन करता है, विभिन्न सामाजिक समस्याओं का सर्वेक्षण करता है और अपने कर्मचारियों को विशिष्ट सामाजिक सेवाओं के लिए विशेष आकस्मिक अवकाश भी स्वीकृत करता है।

(vii) मर्चेण्ट बैंकिंग विभाग—यह विभाग भी बैंकों का एक नया विभाग है। यह विभाग (1) औद्योगिक इकाइयों के अंशपत्रों के निर्गमन की व्यवस्था करता है। (2) आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सामूहिक रूप से ऋण देता है (3) लघु इकाइयों को मध्यम आकार वाली इकाइयों में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक सहायता देता है (4) विदेशी विनिमय नियन्त्रण अधिनियम (F.E.R.A) के अन्तर्गत आने वाले विदेशी प्रमण्डलों के भारतीयकरण में सहायता करता है और (5) औद्योगिक इकाइयों के पुनर्स्थापन के लिए सहायता करता है। यह विभाग इकाइयों को वित्तीय सहायता देने के साथ-साथ इस समस्या के समाधान हेतु सेमिनार आदि का भी आयोजन करता है।

(viii) प्रबन्ध विज्ञान विभाग—यह विभाग अधिकोषों के पुनर्संगठन व प्रबन्ध विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करता है और बैंक के नियोजन संचालन शाखाओं/विभागों को आवश्यक सहायता करता है। उदाहरणार्थ यह विभाग बैंक के विभिन्न कार्यों यथा निक्षेपों, विदेशी विनिमय व्यवहारों, कृषि ऋणों, आदि का लगातार अध्ययन करता है। इन अध्ययनों के निष्कर्षों ने अधिकोषों की निर्णय-क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि की है। इसी प्रकार से यह विभाग ग्राहकों की लाभदायकता और क्षेत्रीय प्रबन्धकों के कार्यभार व कार्यकुशलता आदि का भी अध्ययन करता है।

(ix) अग्रणी अधिकोष विभाग—जिन अधिकोषों को अग्रणी अधिकोष योजना के अन्तर्गत अग्रणी अधिकोष चुना गया है उन्होंने इस योजना के क्रियान्वयन के लिए 'अग्रणी अधिकोष योजना विभाग' की भी स्थापना की है। यह विभाग इस योजना से सम्बन्धित सभी कार्यों यथा आर्थिक सर्वेक्षण, साख योजना निर्माण व साख योजना क्रियान्वयन का कार्य करता है और जिला स्तर पर विकास प्रबन्धक की नियुक्ति करता है व उनके कार्यों की देखरेख करता है।

(x) संचालन और व्यवस्था विभाग (O. & M.)—यह विभाग मितव्ययिता व संचालन-कुशलता की वृद्धि-हेतु पुस्तपालन, लेखाविधि व प्रशासनिक सम्प्रेषण प्रणाली की समीक्षा करता है। यह विभाग अधिकोष की सामान्य नीतियों के अन्तर्गत संचालन नीतियों (Operating Policies) का निर्माण करता है और कार्य-पद्धतियों (Working Procedurses) की समीक्षा करता है।

(xi) जन-सम्पर्क विभाग—यह विभाग अपने अधिकोष की विभिन्न योजनाओं एवं उपलब्धियों से आम जनता को अवगत करता है और विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सुझावों और शिकायतों को सर्वोच्च प्रबन्ध तक पहुँचाता है। संक्षेप में, यह विभाग प्रबन्ध एवं जनता के मध्य एक सेतु का कार्य करता है।

(xii) ऋण एवं अग्रिम विभाग (Loans & Advances Deptt.)—यह विभाग शाखाओं से प्राप्त ऋण आवेदन-पत्रों की जांच करता है और उन्हें स्वीकृत करता है, शाखा-प्रबन्धकों के ऋण एवं अग्रिम स्वीकृति के अधिकारों को निश्चित करता है, रिजर्व बैंक और भारत सरकार से प्राप्त निर्देशों के अनुसार ऋण एवं अग्रिम नीति का निर्माण करता है और उससे शाखाओं को अवगत कराता है।

(xiii) स्टेशनरी विभाग (Stationery Deptt.)—यह विभाग अधिकोष के लिए आवश्यक पुस्तकों, रजिस्टरों एवं रसीदों आदि का मुद्रण करवाता है, अन्य आवश्यक वस्तुओं को बाजार से खरीदता है और उन्हें समुचित मात्रा में व ठीक समय पर शाखाओं के पास पहुंचाता है।

(ivx) भवन-निर्माण विभाग—यह विभाग प्रधान कार्यालय व क्षेत्रीय कार्यालयों के लिए भवन बनवाता है अथवा सभी कार्यालयों के लिए किराए पर भवन की व्यवस्था करता है, अपने अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए आवासीय भवनों का निर्माण करवाता है, निजी भवनों के रंग-रोगन व मरम्मत का कार्य करता है, उनके लिए उपस्कर आदि खरीदता है और बेकार सामान के विक्रय की व्यवस्था करता है।

(xv) क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा निष्पादित कार्य—ये कार्यालय मुख्यतः प्रधान कार्यालय व शाखा कार्यालयों के मध्य डाकघर का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अपने अधीनस्थ कार्यालयों के निरीक्षण, नियमन व नियंत्रण का भी कार्य करते हैं। इस हेतु क्षेत्रीय प्रबन्धकों के रूप में सुदक्ष एवं अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है, ताकि वे अपने अधिकोष की विभिन्न नीतियों को आत्मसात कर सकें, उनका शाखा-प्रबन्धकों से क्रियान्वयन करवा सकें, शाखाओं की समस्याओं को महाप्रबन्धक के समक्ष सही रूप में रख सकें और अपने अनुभव के आधार पर शाखा प्रबन्धकों का सूझ-बूझ व सही तरीके से मार्गदर्शन कर सकें। क्षेत्रीय कार्यालयों में भी अनेक प्रकोष्ठ होते हैं।

(iii) शाखा संगठन—बड़ी शाखाओं में कार्य की विविधता व मात्रा को दृष्टिगत रखते हुए अनेक अनुभाग हैं यथा नकद, चालू व स्थाई जमा अनुभाग, ड्राफ्ट व हुण्डी अनुभाग, कृषि-ऋण अनुभाग, टेलर अनुभाग, अन्य ऋण अनुभाग, नकद अनुभाग, (राजकीय प्राप्तियाँ अनुभाग, राजकीय भुगतान अनुभाग, अन्य प्राप्तियाँ व भुगतान अनुभाग) विदेशी विनिमय अनुभाग, सेफ डिपाजिट वॉल्ट अनुभाग, स्टेशनरी व पोस्टेज अनुभाग स्थापित किए जाते हैं और प्रत्येक अनुभाग एक अधिकारी की देख-रेख

करता है। छोटी शाखाओं पर सारा कार्य एक या दो-तीन व्यक्तियों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। वहाँ पर पृथक प्रकोष्ठो/अनुभागो की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

शाखाओं का वर्गीकरण—रिजर्व बैंक ने जनसंख्या के आधार पर शाखा-कार्यालयों को ग्रामीण, अर्द्ध-ग्रामीण, नगरीय व महानगरीय वर्गों मे विभक्त कर रखा है। इसके अतिरिक्त निष्पादित कार्य, कार्य-प्रणाली व कार्यरत कर्मचारियो के आधाय पर भी शाखाओं का वर्गीकरण किया गया है। निष्पादित कार्य के आधार पर उन्हें पूर्णकाय, उपशाखा, भुगतान कार्यालय व विस्तार कार्यालयों में बाँटा गया है। कार्य-प्रणाली के आधार पर उन्हे सेटेलाइट, स्थिर व चलिष्णु वर्गों में विभाजित किया गया है और कर्मचारियों के आधार पर इन्हे एकल व बहु कर्मचारी शाखाओं में बाँटा गया है। विभिन्न शाखाओं की कार्यविधि में भी अन्तर रखा गया है। उदाहरणार्थ, एकल कर्मचारी शाखाएं प्रतिदिन 3 घंटे कार्य करती हैं, ग्रामीण शाखाएं प्रतिदिन 4 घंटे कार्य करती हैं जबकि अन्य शाखाएं प्रतिदिन साढे-पांच घंटे कार्य करती हैं। सेटेलाइट कार्यालय सप्ताह मे दो या तीन कार्य करते है। विस्तार शाखाएं नगरों में पाई जाती हैं और ये शहर की किसी मुख्य शाखा का ही अंग मानी जाती हैं। किसी संस्था या कार्यालय को बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के लिए इन कार्यालयों की उस संस्था के प्रांगण में इनकी स्थापना की जाती है। ये शाखाएं अपनी व्यवसाय-वृद्धि के लिए,अन्य लोगो को भी बैंकिंग सुविधाएं दे देती हैं, किन्तु ये ऋण-प्रक्रियाओ का सम्पादन नही करती हैं।

अधिकोषों का प्रबन्ध (Management of Banks)—अधिकोषों के प्रबन्ध में उन समस्त पहलुओं को शामिल किया जाता है जिनसे अधिकोषो की घोषित नीतियो के क्रियान्वयन एवं लक्ष्यों की प्राप्ति और दैनिक कार्यों के संचालन में सहयोग प्राप्त होता है। इस दृष्टि से एक अधिकोष के प्रबन्ध मे (i) प्रबन्ध की प्रकृति (ii) संचालक-मंडल का गठन (iii) प्रबन्धकीय अधिकारी (iv) प्रबन्धकीय उपकरण व (v) अधिकोष संगठन की गणना की जा सकती है। संगठन का वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। अतएव यहाँ पर शेष पहलुओं की संक्षिप्त चर्चा की जा रही है :—

(i) **प्रबन्ध की प्रकृति**—व्यावसायिक प्रबन्ध (Professional Management) ही वस्तुतः प्रबन्ध की कोटि मे आता है: किन्तु हमारे देश में बैंकिंग उद्योग में इस प्रकार के प्रबन्ध की ओर स्टेट बैंक की स्थापना से पूर्व कोई ध्यान नहीं दिया गया। जब स्टेट बैंक अधिनियम का निर्माण किया गया तब उसके संचालक-मण्डल की गठन प्रणाली मे व्यावसायिक व वैज्ञानिक प्रबन्ध के तत्वो का समावेश किया गया और यह व्यवस्था की गई कि बैंक का अध्यक्ष एक पूर्णकालिक अध्यक्ष होगा और रिजर्व बैंक के परामर्श मे भारत सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले संचालक मे से कम-से-कम दो ग्रामीण अर्थव्यवस्था व सहकारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली अथवा वाणिज्य, उद्योग, बैंकिंग व वित्त के विशेषज्ञ होंगे। 1959 में जब स्टेट बैंक के सहायक अधिकोषो का गठन किया गया तब पुनः इस विशिष्टता का ध्यान रखा गया और फलतः स्टेट बैंक के अध्यक्ष को ही इन अधिकोषों का अध्यक्ष बनाया गया। इन छुटपुट प्रयत्नों के अतिरिक्त 1968 तक अधिकोषों में व्यावसायिक प्रबन्ध को लागू करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। 1968 में जब अधिकोषों के सामाजिक नियन्त्रण की योजना लागू की गई तब प्रबन्ध के इस पहलू को देश के समस्त व्यापारिक अधिकोषों पर लागू कर दिया गया। इस हेतु बैंकिंग कानून अधिनियम मे

शाखा कार्यालयों का वर्गीकरण
(A) जनसंख्या के आधार पर
ग्रामीण (Rural) 10,000 जनसंख्या तक वाले केन्द्र
अर्द्ध-ग्रामीण (Semi-Urban) 1,00,01 से 1,00,000 जनसंख्या तक वाले केन्द्र
नगरीय (Urban) 10,00,021 से 10,00,000 जनसंख्या तक वाले केन्द्र
महानगरीय (Metropolitans ports) 10,00,000 से अधिक जनसंख्या वाले केन्द्र व बन्दरगाह
(B) कार्य के आधार पर
पूर्णकाय (Full Fledged)
उपशाखा (Sub office)
भुगतान शाखा (Pay office)
संलग्न शाखा (Satellite)
विस्तार शाखा (Exleusion counter)
(C) कार्य-प्रणाली के आधार पर
स्थिर (Fixed)
चलिष्णु (Mobile)
(D) कार्यरत कर्मचारियों की संख्या के आधार पर
एकल कर्मचारी (One man office)
बहुकर्मचारी (Multi personnel)
(E) कार्य/उद्देश्य के आधार पर
एक उद्देश्यीय (Single purpose जैसे A & B)
बहुउद्देश्यीय (Multi purpose जैसे gen. branches)

1969 में संशोधन किया गया। संशोधित कानून के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि भविष्य में देश के प्रत्येक अधिकोष का मुख्य कार्यकारी अधिकारी (अध्यक्ष, संचालक मंडल) एक पूर्णकालिक व्यक्ति होगा, उसके लिए बैंकिंग, अर्थशास्त्र, वित्त या व्यावसायिक प्रशासन का सैद्धांतिक व व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक होगा और इस व्यक्ति की नियुक्ति भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्व सहमति से की जाएगी। प्रबन्ध के इस पक्ष को व्यापक स्वरूप देने के लिए बैंकिंग नियमन अधिनियम में भी संशोधन किया गया और धारा 10 अ के द्वारा प्रत्येक अधिकोष के लिए अपने कुल सचालकों में से कम-से-कम 51 प्रतिशत संचालकों को लेखाकर्म, कृषि, ग्रामीण वित्त, सहकारिता, बैंकिंग, वित्त, अर्थशास्त्र, विधि व लघु उद्योगों के विशेषज्ञों में से निर्वाचन करना अनिवार्य कर दिया गया। क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों का अध्यक्ष भी एक पूर्णकालिक अध्यक्ष होता है और इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है।

(ii) संचालक मण्डलों का गठन—भारतीय स्टेट बैंक, स्टेट बैंक के सहायक बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंक व क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों के सचालकों की नियुक्ति उनसे सम्बन्धित अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार की जाती है। स्टेट बैंक का एक 20 सदस्यीय केन्द्रीय सचालक मण्डल व 11 स्थानीय सचालक मण्डल हैं। केन्द्रीय सचालक मण्डल की सहायतार्थ स्थानीय समितियों का भी गठन किया जा सकता है। केन्द्रीय संचालक मण्डल, स्थानीय संचालक मण्डल और केन्द्रीय समितियों का अध्यक्ष एक ही व्यक्ति होता है। अध्यक्ष की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जा सकती है। स्टेट बैंक के सहायक अधिकोषों के संचालक मण्डलों की सदस्य संख्या 10 होती है। प्रत्येक राष्ट्रीयकृत अधिकोष का एक 15 सदस्यीय सचालक मण्डल होता है जिनमें से 2 पूर्णकालिक सदस्यों के रूप में कार्य करते हैं। शेष 13 सदस्यों में से 2 अधिकोष कर्मचारी 1 सरकार, 1 रिजर्व बैंक व 4 किसानों, दस्तकारों व कार्यशील वर्ग के निक्षेपकर्त्ताओं के प्रतिनिधि व 5 बैंकिंग उद्योग के विशेषज्ञ होते हैं। इन सबका मनोनयन भारत सरकार द्वारा किया जाता है। एक क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष का 9 सदस्यीय संचालक-मण्डल होता है, जिनमें से 4 केन्द्रीय सरकार, 2 राज्य सरकार व 3 प्रायोजक(Sponsor) बैंक द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। इन अधिकोषों के संचालक-मण्डल की सदस्य संख्या 15 तक बढ़ाई जा सकती है। अध्यक्ष अथवा चेयरमैन की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है; किन्तु उसकी पुनर्नियुक्ति की जा सकती है।

अन्य व्यापारिक अधिकोष एक प्रमण्डल के रूप में कार्य करते हैं। अतएव भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की व्यवस्थानुसार उन्हें संचालक मण्डल में कम-से-कम 3 सदस्य तो रखने ही पड़ते हैं; किन्तु सामान्यतः वे 5, 7 या 11 संचालक रखते हैं। इन अधिकोषों को कम-से-कम 51 प्रतिशत लेखाकर्म, कृषि, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सहकारी बैंकिंग, वित्त, अर्थशास्त्र, विधि व लघु उद्योगों के जानकारों में से निर्वाचित करने पड़ते हैं।

विदेशी विनिमय अधिकोष भारत में अपनी शाखाओं के संचालन के लिए एक परामर्शदात्री समिति का गठन करते हैं। अध्यक्ष के अतिरिक्त इन परिषदों के शेष सभी सदस्य भारतीय नागरिक होते हैं।

संचालक-मण्डलों का अधिकार—एक अधिकोष के संचालक-मंडल में अधिकोष के समस्त अधिकार समाहित होते हैं। अतएव प्रबन्ध की दृष्टि से इसका सर्वोपरि स्थान होता है। यह भारत सरकार की अधिकोष नीति व रिजर्व बैंक से प्राप्त निर्देशों के परिप्रेक्ष्य में

अपने अधिकोष की नीतियों का निर्माण करता है, उनके क्रियान्वयन के लिए समुचित व्यवस्था करता है और अपने अधिकोष के संचालन के लिए आवश्यक सुविधाओं की पूर्ति करता है व आवश्यक वातावरण का निर्माण करता है।

अध्यक्ष अथवा प्रबन्ध संचालक—प्रबन्ध संचालक बैंक का पूर्णकालिक अधिकारी होता है और संचालक मंडल के निर्देशन एवं नियन्त्रण में कार्य करता है। यह उन सभी कार्यों को करता है जिनके लिए वह अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत है अथवा जो उसे संचालक मंडल द्वारा सौंपे जाते हैं। संक्षेप में, यह अपने अधिकोष के दैनिक कार्यों की देख-रेख करता है और संचालक-मण्डल द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन करता है। वह अपने कार्यों को अतिरिक्त महाप्रबन्धक, संयुक्त महा प्रबन्धक, वरिष्ठ उप-महाप्रबन्धको एवं उप-महाप्रबन्धकों को प्रत्यायित कर सकता है।

एक अधिकोष का अध्यक्ष केवल ऐसे व्यक्ति को बनाया जा सकता है जिसे (i) बैंकिंग प्रमण्डल या अन्य किसी वित्तीय संस्था की कार्य-प्रणाली का विशिष्ट ज्ञान व व्यावहारिक अनुभव होता है अथवा (ii) जिसे वित्तीय, आर्थिक और व्यावसायिक प्रशासन का विशिष्ट ज्ञान व व्यावहारिक अनुभव होता है।

प्रबन्धकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध—बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 10 प्रबन्धकों की नियुक्ति पर निम्नांकित प्रतिबन्ध लगाती है :—

(i) अन्य प्रमण्डलों का संचालक—एक अधिकोष किसी ऐसे व्यक्ति को अपना प्रबन्धक नियुक्त नहीं कर सकता जो किसी अन्य प्रमण्डल का संचालक होता है, किन्तु यह प्रावधान उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है, जो—(i) उस अधिकोष के किसी सहायक प्रमण्डल के संचालक होते हैं अथवा (ii) व्यापार, कला, धर्म व विज्ञान जैसे विषयों के विकास के लिए स्थापित प्रमण्डलों के संचालक होते हैं। जब एक व्यक्ति अपनी नियुक्ति के समय किसी प्रमण्डल का संचालक होता है तो उसे अपनी नियुक्ति के 3 माह के अन्दर उस प्रमण्डल के संचालक पद का त्याग करना पड़ता है। रिजर्व बैंक की अनुमति से एक व्यक्ति 9 माह तक अपने पूर्व पद पर बना रह सकता है।

(ii) अन्य व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति :—ऐसे व्यक्तियों को भी प्रबन्धक नहीं बनाया जा सकता जो अधिकोषण के अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय में संलग्न होते हैं।

(iii) रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति:—एक प्रबन्धक की नियुक्ति अथवा पुनर्नियुक्ति को भारतीय रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है। एक प्रबन्धक को एक बार में 5 वर्ष से अधिक समय के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता। इस अवधि के पश्चात् उसकी पुनर्नियुक्ति की जा सकती है, किन्तु पुनर्नियुक्ति भी एक बार में 5 साल से अधिक समय के लिए नहीं की जा सकती।

(iv) प्रमण्डल अधिनियम द्वारा स्वीकृत पारिश्रमिक :—एक प्रबन्धक को सामान्यतः प्रमण्डल अधिनियम द्वारा स्वीकृत पारिश्रमिक से अधिक पारिश्रमिक पर नियुक्त नहीं किया जा सकता, किन्तु जब किसी प्रबन्धक को इस राशि से अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है तो सम्बन्धित अधिकोष को रिजर्व बैंक व केन्द्रीय सरकार से ऐसे पारिश्रमिक के लिए पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है।

प्रबन्ध संचालक के कर्त्तव्य :—एक सर्वोच्च अधिकारी के रूप में प्रबन्ध संचालक को अपने अधिकोष के दैनिक कार्यों की देख-रेख करनी पड़ती है और संचालक मण्डल द्वारा निर्धारित नीति का क्रियान्वयन करना पड़ता है। फिर भी उसके कर्त्तव्य निम्नांकित किए जा सकते हैं :—

(i) मुख्य कार्यालय व शाखा कार्यालय के लिए अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था,

(ii) आवश्यकतानुसार सहायक प्रबन्धकों एवं प्रादेशिक प्रबन्धकों की नियुक्ति,

(iii) शाखा विस्तार के लिए कार्यक्रम बनाना, उसे रिजर्व बैंक से स्वीकृत करवाना और कार्यक्रम के अनुसार शाखाएं खुलवाना;

(iv) अधिकोष सेवाओं का विस्तार;

(v) अधिकोष कर्मचारियो के अवस्थापन, पदोन्नति, प्रशिक्षण व स्थानांतरण-हेतु नीतियों का निर्माण;

(vi) ग्राहकों के ऋण आवेदन-पत्रों को स्वीकार करना;

(vii) अधिकोष कोषों का विनियोजन;

(viii) रिजर्व बैंक द्वारा घोषित बैंक नीति, साख नीति व विनियोग नीति के परिप्रेक्ष्य में अपने अधिकोष की विभिन्न नीतियों में संशोधन;

(ix) बैंकिंग विधि एवं व्यवहार का पालन करना व बैंक द्वारा प्रयुक्त अनियमितताओं की ओर संचालकों का ध्यान आकर्षित करना;

(x) रिजर्व बैंक, भारत सरकार व अन्य संस्थानों को विभिन्न प्रकार की सूचनाएं देना;

(xi) समय-समय पर विभिन्न प्रविवरणों को तैयार करवाना और उन्हें रिजर्व बैंक और भारत सरकार के पास पहुंचाना;

(xii) अन्तिम खातों को तैयार करवाना, उनका अंकेक्षण करवाना और उन्हें नियमानुसार प्रसारित करवाना;

(xiii) संचालकों के आदेश पर अंशधारियों की समस्याओं को बुलाना;

(xiv) अधिकोष द्वारा पारित विशेष प्रस्तावों की प्रतियों को प्रमण्डल पंजीयक के पास भेजना;

(xv) रिजर्व बैंक के निरीक्षण के समय निरिक्षकों को आवश्यक सूचनाएं व पुस्तकें आदि उपलब्ध करवाना और

(xvi) ग्राहकों, कर्मचारियों व अन्य व्यक्तियों से प्राप्त सुझावों व शिकायतों पर विचार करना और आवश्यकता समझने पर उन पर आवश्यक कार्यविधयां करना।

प्रबन्ध संचालक के अधिकार :—प्रबन्ध संचालक के अधिकारों का वर्णन अधिकोष अन्तर्नियमों में किया जाता है फिर भी यह कहा जा सकता है कि उसे सर्वोच्च अधिकारी और प्रतिनिधी के रूप में कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। सर्वोच्च अधिकारी के रूप में वह संचालक मण्डल द्वारा नीति का क्रियान्वयन करवाता है और दैनिक कार्यों की देख-रेख करता है और प्रतिनिधि के रूप में वह अपने अधिकोष की ओर से समस्त अनुबन्धों पर हस्ताक्षर करता है और उन्हें क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करता है, बैंक नीति का स्पष्टीकरण करता है व सभी विवादों में बैंक के पक्ष का प्रतिपादन करता है जब एक अधिकोष प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति के पश्चात् नियुक्ति की शर्तों में ऐसे परिवर्तन करता है जिनसे उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो ऐसे परिवर्तनों को लागू नहीं किया जा सकता।

अध्यक्ष अथवा प्रबन्ध संचालक की पदमुक्ति :—यद्यपि एक अध्यक्ष अथवा प्रबंध संचालक की 5 वर्षों के लिए नियुक्ति अथवा नपुर्नियुक्ति की जाती है किन्तु निम्नांकित अवस्थाओं में उसे इस अवधि से पूर्व भी हटाया जा सकता है :

(अ) अयोग्यताएं अर्जित करने पर :—जब एक अध्यक्ष निम्नांकित अयोग्यताएं अर्जित कर लेता है तो उसे अपने पद से हटाना पड़ता है :—

(i) जब वह धारा 10B(2) में वर्णित प्रमण्डल के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमण्डल का संचालक बन जाता है;

(ii) जब वह किसी ऐसी फर्म का साझेदार बन जाता है जो किसी व्यापार, व्यवसाय अथवा उद्योग का संचालन करती है;

(iii) जब वह किसी प्रमण्डल या फर्म में पर्याप्त मात्रा में स्वार्थ रखता है;

(iv) जब वह किसी व्यापारिक, वाणिज्यिक या औद्योगिक संस्थान का संचालक, प्रबन्धक, प्रबन्धक अभिकर्ता, साझेदार या स्वामी बन जाता है और

(v) जब वह अन्य किसी व्यापार या व्यवसाय का संचालन करने लग जाता है। 10 B (a)

(ब) रिजर्व बैंक द्वारा अयोग्य घोषित किए जाने पर :—जब रिजर्व बैंक यह अनुभव करता है कि प्रस्तावित व्यक्ति अध्यक्ष पद के अयोग्य है तो वह सम्बन्धित अधिकोष को नवीन अध्यक्ष की नियुक्ति का आदेश दे सकता है और सम्बन्धित अधिकोष को 2 माह की अवधि में इस आदेश का पालन करना पड़ता है। जब एक अधिकोष रिजर्व बैंक के इस आदेश की अवहेलना करता है तो रिजर्व बैंक ऐसे व्यक्तियों को अपने अधिकोषों का प्रयोग करते हुए हटा देता है और उसके स्थान पर किसी अन्य उपयुक्त व्यक्ति को अध्यक्ष बना देता है। हटाया गया व्यक्ति चाहे तो भारत सरकार से अपनी पद-मुक्ति के खिलाफ अपील कर सकता है और इस सम्बन्ध मे भारत सरकार का निर्णय अन्तिम निर्णय होता है। 10B(2) 210B(6)

(स) संचालकों द्वारा पद-मुक्ति :—जब एक अध्यक्ष अपने कर्त्तव्यों को उचित रूप से पालन नहीं करता है अथवा अपने अधिकारों का व्यक्तिगत हित में प्रयोग करता है तो संचालक-मण्डल उसे पद-मुक्त कर सकता है। सामान्यतः उसे निम्नांकित अवस्थाओं मे पद-मुक्त किया जाता है:

(i) संचालक-मण्डल की अनुमति के बिना अवांछनीय क्षेत्रों में अधिकोष कोषों का विनियोजन,

(ii) अपने सम्बन्धियों अथवा स्वयं को उचित जमानत बिना ऋण स्वीकृत करना,

(iii) बैंक कोषों अथवा पद के दुरुपयोग द्वारा व्यक्तिगत लाभ कमाना,

(iv) अधिकोष सम्पत्ति का जानबूझ कर दुरुपयोग करना,

(v) अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निष्ठा व हर सम्भव सावधानी से पालन न करना और

(vi) आपराधिक कार्य करना।

जब उपर्युक्त आरोप स्वयंसिद्ध होते है तो ऐसे अध्यक्ष को अविलम्ब हटा दिया जाता है अन्यथा उसे मुक्ति से पूर्व स्पष्टीकरण का उचित अवसर दिया जाता है।

अध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र :—एक अध्यक्ष अपने सेवा-काल में अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है, किन्तु जब तक नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं की जाती है तब तक उसे अपने पद पर कार्य करना पड़ता है। 10B(5)

अस्थाई अध्यक्ष की नियुक्ति :—जब एक चेयरमैन बिना पूर्व सूचना के अवकाश पर चला जाता है, त्यागपत्र दे देता है, अपना कार्य करने मे किसी कारणवश असमर्थ हो जाता है अथवा मर जाता है तो सम्बन्धित अधिकोष चार माह के लिए अन्य किसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है। यह नियुक्ति भारतीय रिजर्व बैंक की सहमति से की जाती है और उस समय की जाती है, जबकि चेयरमैन का पद रिक्त नहीं माना जाता है। 10B(9)

चेयरमैन द्वारा अंशकालिक अवैतनिक कार्य :—भारतीय रिजर्व बैंक जनहित मे एक चेयरमैन को ऐसा अंशकालिक अवैतनिक कार्य स्वीकार करने की अनुमति दे सकता है, जिससे उसके अध्यक्षीय कार्य में बाधा न पहुंचती हो।

अध्यक्ष की योग्यताएं अथवा गुण :—एक अध्यक्ष की सफलता अनेक घटकों और परिस्थितियों पर आश्रित होती है। किन्तु इसमे उसके व्यक्तित्व का योगदान सबसे अधिक होता है। सामान्यतः एक अध्यक्ष मे (i) आकर्षक व्यक्तित्व (ii) तीक्ष्ण बुद्धि एव सुदृढ़ निर्णय शक्ति(iii)कार्यशीलता एवं कल्पनाशीलता(iv)मिलनसारिता (v) व्यवस्था पन क्षमता (vi) व्यावसायिक चातुर्य एव निष्पक्षता (vii) विनम्रता (viii) पारस्परिक विश्वास और अधिकारों प्रत्यार्पण और विद्वता व सज्जनता जैसे गुणों की अपेक्षा की जाती है। इन गुणों के कारण एक अध्यक्ष आत्म-विश्वास के साथ कार्य करता है, ग्राहकों को सहज ही अपनी ओर प्रभावित करता है, और अपने अधिकोष को वांछित दिशा व गति प्रदान करता है।

रिजर्व बैंक और सर्वोच्च प्रबन्ध :—भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम सर्वोच्च प्रबन्ध की दृष्टि से भारतीय रिजर्व बैंक को अनेक अधिकार प्रदान करता है। इन अधिकारों कि सहायता से रिजर्व बैंक भारतीय अधिकोषों के प्रबन्ध को वांछित दिशा प्रदान करने का प्रयास करता है। रिजर्व बैंक के विविध अधिकारों का निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :—

(1) महाप्रबन्धक आदि—एक अधिकोष के दैनिक कार्यों का संचालन उसके महा प्रबन्धक व उसके अधिनस्थ अन्य प्रबन्धकों व अधिकारियों द्वारा किया जाता है। एक अधिकोष के कार्यक्षेत्र, व्यवसाय की मात्रा व प्रकृति के आधार पर एक अधिकोष मे प्रबन्धकों (महाप्रबन्धक, संयुक्त महाप्रबन्धक, अतिरिक्त महाप्रबन्धको, वरिष्ठ उप महाप्रबन्धको) व अधिकारियों और कर्मचारियों की एक लम्बी श्रृंखला होती है।

भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम और भारतीय प्रमण्डल अधिनियम प्रबन्धकों व अन्य अधिकारियो एव कर्मचारियो की नियुक्ति पारिश्रमिक व पद मुक्ति का नियमन करते हैं और प्रत्येक अधिकोष को इन प्रावधानों का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

बैंकिंग नियमन अधिनियम के नियुक्ति-सम्बन्धी प्रावधानों का (i) सामान्य व (ii) प्रबन्धकीय प्रावधानों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है।

सामान्य प्रावधानों का अग्रांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :

(i) अयोग्यता प्राप्त व्यक्ति:—एक अधिकोष अपने यहां पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकता जिन्हें (i) न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जा चुका हो (ii) जिन्होंने अपने दायित्वों का भुगतान स्थगित कर दिया हो (iii) जिन्होंने अपने ऋणदाताओं से समझौता कर लिया हो और (iv) जिन्हें न्यायालय द्वारा अपराधी (नैतिक अपराधों सहित) घोषित किया जा चुका हो। जब एक व्यक्ति अपने सेवा काल में इन अयोग्यताओं को प्राप्त कर लेता है तो नियोजक अधिकोष को ऐसे अधिकारियों को अविलम्ब सेवा मुक्त करना पड़ता है।

(ii) अधिकोष के लाभ में से पारिश्रमिक/कमीशन प्राप्त करना:—एक अधिकोष अपने यहां पर ऐसे व्यक्तियों के भी नियुक्त नहीं कर सकता जिन्हें अधिकोष के लाभ में से पूर्ण या आंशिक पारिश्रमिक व कमीशन प्राप्त होता है। बोनस को इस अयोग्यता में शामिल नहीं किया गया है। इसी प्रकार दलालों, ठेकेदारों, रोकड़ियों नीलामकर्ताओं आदि को देय कमीशन भी इस अयोग्यता में शामिल नहीं है।

(iii) रिजर्व बैंक द्वारा मान्य पारिश्रमिक—एक अधिकोष ऐसे व्यक्तियों को भी अपने यहां पर नियुक्त नहीं कर सकता जिनका पारिश्रमिक रिजर्व बैंक को अत्यधिक प्रतीत होता है। रिजर्व बैंक अत्यधिक परिश्रम का निर्णय लेते समय सम्बन्धित अधिकोष की आर्थिक स्थिति, पूर्व इतिहास, आकार, कार्य-क्षेत्र, वित्तीय संसाधन, व्यवसाय की मात्रा, अपेक्षित आय, अपेक्षित लाभ, शाखा संख्या, नियुक्त व्यक्ति की आयु, अनुभव व योग्यता, अन्य अधिकोषों द्वारा उसी प्रकार के कार्य के लिए उसी योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रदत्त पारिश्रमिक व जमाकर्ताओं के हितों पर विचार करता है।

शाखा प्रबन्धक—शाखा प्रबन्धक के कर्त्तव्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है प्रधान कार्यालय के प्रति कर्त्तव्य और ग्राहकों के प्रति कर्त्तव्य। शाखा प्रबन्धक प्रधान कार्यालय की देखरेख में कार्य करता है। अतएव उसे प्रधान कार्यालय। क्षेत्रीय कार्यालय से प्राप्त निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है और सामाजिक प्रविवरणों व मांगी गई सूचना को प्रधान कार्यालय के पास यथा समय पहुंचाना पड़ता है। उसे अपन समस्याओं और आवश्यकताओं से भी प्रधान कार्यालय को अवगत करते रहना चाहिए।

शाखा प्रबन्धक अपने अधिकोष का स्थानीय प्रतिनिधि भी होता है। यही वह व्यक्ति होता है जो ग्राहकों के सर्वाधिक सम्पर्क में आता है। अपने अधिकोष की छवि को अच्छा बनाने के लिए उसे इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि ग्राहकों को किसी प्रकार की असुविधा व असंतोष न हो और उनके कार्य में अनावश्यक विलम्ब न हो।

शाखा प्रबन्धक के गुण:—एक शाखा प्रबन्धक में भी उन्हीं गुणों की अपेक्षा की जाती है जिनकी एक महाप्रबन्धक में अपेक्षा की जाती है अर्थात् उसे अधिकोष से सम्बन्धित विविध कानूनों का ज्ञान होना चाहिए, उसका व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए और उसमें तीव्र निर्णायक शक्ति होनी चाहिए। वह सज्जन, वाक्पटु, व्यवहार कुशल व मिलनसार होना चाहिए और लेखाविधि व पुस्तपालन का जानकार होना चाहिए।

प्रबन्धकीय गुण—एक अधिकोष में नियुक्त सभी व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके प्रबन्ध में सहयोग प्रदान करते हैं। अतएव बैंक के समस्त कर्मचारियों को बैंकर के रूप में गणना की जा सकती है। एक बैंकर को अपने व्यावसायिक दायित्वों के निष्पादन हेतु प्रतिदिन अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आना पड़ता है, अनेक पेचीदगीपूर्ण

समस्याओं का समाधान खोजना पड़ता है, अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अविलम्ब निर्णय लेने पड़ते हैं और भविष्य के लिए योजनाएं बनानी पड़ती हैं। इन सारी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उसे बहुमुखी प्रतिभा का धनी बनना पड़ता है और प्रतिभाओं व बुद्धमत्ता में सामन्जस्य स्थापित करना पड़ता है। वह केवल प्रतिभा अथवा बुद्धिमता के आधार पर व्यावसायिक सफलता के शिखर पर नहीं पहुंच सकता। सक्षेप में, उसमें निम्नांकित विशेषताएं मिलनी चाहिये :

(i) लेखाकर्म के आधारभूत सिद्धान्तो की जानकारी (ii) आर्थिक विश्लेषण की क्षमता (iii) तीव्र निर्णय शक्ति (iv) प्रशंसनीय प्रशासकीय क्षमता (v) व्यावसायिक चातुर्य व निष्पक्षता (vi) अधिकारों की प्रत्यार्पण कला (vii) अधीनस्थ व सहयोगी साथियो से काम लेने की कला। इसके अतिरिक्त उसमे मिलनसारिता, सज्जनता, पारस्परिक विश्वास, सच्चाई जैसे गुण भी होने चाहिए। इन गुणो के सम्पुट से उसके व्यक्तित्व में निखार आता है और कार्य करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

भर्ती एवं प्रशिक्षण—भर्ती एवं प्रशिक्षण भी प्रबन्ध का एक अंग है। कर्मचारियों एव अधिकारियो की नियुक्ति के लिए देश में कुछ 'भर्ती बोर्ड' (Recruitment Boards) का गठन किया है। ये बोर्ड बैंकों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर क्षेत्रीय आधार पर कर्मचारियों का चयन करते हैं। स्टेट बैंक समूह ने अपने कर्मचारियों के चयन के लिए पृथक बोर्ड का गठन कर रखा है। इसी प्रकार विभिन्न अधिकोषो ने प्रशिक्षण की व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से व्यवस्था कर रखी है। रिजर्व बैंक ने भी ट्रेनिंग हेतु शीर्ष कॉलेजों की स्थापना कर रखी है।

प्रबन्धकीय उपकरण (Management Tools)—अधिकोषों के प्रबन्ध हेतु अनेक उपकरणों को काम में लिया जाता है, जिनमें से मुख्य निम्नांकित हैं—

(i) निष्पत्ति बजटन (Performance Budgeting)—यह अधिकोषो के प्रबन्ध का नवीनतम उपकरण है। इस विधि के अन्तर्गत एक अधिकोष का एक वर्ष के लिए व्यावसायिक बजट बनाया जाता है। इस बजट को तीन स्तरों–शाखास्तर, क्षेत्रीय स्तर व मुख्यालय स्तर–पर बनाया जाता है। शाखा स्तर पर शाखा व्यवस्थापक अपने स्थानीय सहकर्मियों के सहयोग से स्थानीय परिस्थितियों और पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में अपनी शाखा के लिए बजट बनाता है और उसे क्षेत्रीय प्रबन्धक के समक्ष प्रस्तुत करता है। क्षेत्रीय प्रबन्धक इन बजटों की व्यवहारिकता पर शाखा प्रबन्धकों से व्यक्तिगत रूप से विचार-विमर्श करता है, शाखा बजटो को इन विचार-विमर्शों के आधार पर अन्तिम रूप देता है, इनके आधार पर अपने क्षेत्र के लिए एकीकृत बजट बनाता है और उसे अपने मुख्यालय को भेजता है। प्रधान कार्यालय इन क्षेत्रीय बजटों के आधार पर सम्पूर्ण अधिकोष के लिए बजट बनाता है। प्रधान कार्यालय बैंक के लिए बजट बनाते समय क्षेत्रीय प्रबन्धकों से विचार-विमर्श किया जाता है।

शाखा प्रबन्धक प्रतिमाह अपनी उपलब्धियों से क्षेत्रीय प्रबन्धक को अवगत करते रहते हैं और क्षेत्रीय प्रबन्धक अपने क्षेत्र की उपलब्धियों से प्रधान कार्यालय को अवगत करते रहते हैं। जब प्रस्तावित बजट व वास्तविक उपलब्धियों में अन्तर होता है, उन अन्तरों के कारणों को ज्ञात किया जाता है और तदानुसार बजट में संशोधन किया जाता है।

(i) अयोग्यता प्राप्त व्यक्ति:—एक अधिकोष अपने यहां पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकता जिन्हें (i) न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जा चुका हो (ii) जिन्होंने अपने दायित्वों का भुगतान स्थगित कर दिया हो (iii) जिन्होंने अपने ऋणदाताओं से समझौता कर लिया हो और (iv) जिन्हें न्यायालय द्वारा अपराधी (नैतिक अपराधों सहित) घोषित किया जा चुका हो। जब एक व्यक्ति अपने सेवा काल में इन अयोग्यताओं को प्राप्त कर लेता है तो नियोजक अधिकोष को ऐसे अधिकारियों को अविलम्ब सेवा मुक्त करना पड़ता है।

(ii) अधिकोष के लाभ में से पारिश्रमिक/कमीशन प्राप्त करना:—एक अधिकोष अपने यहां पर ऐसे व्यक्तियों के भी नियुक्त नहीं कर सकता जिन्हें अधिकोष के लाभ में से पूर्ण या आंशिक पारिश्रमिक व कमीशन प्राप्त होता है। बोनस को इस अयोग्यता में शामिल नहीं किया गया है। इसी प्रकार दलालों, ठेकेदारों, रोकड़ियों नीलामकर्ताओं आदि को देय कमीशन भी इस अयोग्यता में शामिल नहीं है।

(iii) रिजर्व बैंक द्वारा मान्य पारिश्रमिक—एक अधिकोष ऐसे व्यक्तियों को भी अपने यहां पर नियुक्त नहीं कर सकता जिनका पारिश्रमिक रिजर्व बैंक को अत्यधिक प्रतीत होता है। रिजर्व बैंक अत्यधिक परिश्रम का निर्णय लेते समय सम्बन्धित अधिकोष की आर्थिक स्थिति, पूर्व इतिहास, आकार, कार्य-क्षेत्र, वित्तीय संसाधन, व्यवसाय की मात्रा, अपेक्षित आय, अपेक्षित आय, शाखा संख्या, नियुक्त व्यक्ति की आयु, अनुभव व योग्यता, अन्य अधिकोषों द्वारा उसी प्रकार के कार्य के लिए उसी योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रदत्त पारिश्रमिक व जमाकर्ताओं के हितों पर विचार करता है।

शाखा प्रबन्धक—शाखा प्रबन्धक के कर्त्तव्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है प्रधान कार्यालय के प्रति कर्त्तव्य और ग्राहकों के प्रति कर्त्तव्य। शाखा प्रबन्धक प्रधान कार्यालय की देखरेख में कार्य करता है। अतएव उसे प्रधान कार्यालय। क्षेत्रीय कार्यालय से प्राप्त निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है और सामाजिक प्रविवरणों व मांगी गई सूचना को प्रधान कार्यालय के पास यथा समय पहुंचाना पड़ता है। उसे अपन समस्याओं और आवश्यकताओं से भी प्रधान कार्यालय को अवगत करते रहना चाहिए।

शाखा प्रबन्धक अपने अधिकोष का स्थानीय प्रतिनिधि भी होता है। यही वह व्यक्ति होता है जो ग्राहकों के सर्वाधिक सम्पर्क में आता है। अपने अधिकोष की छवि को अच्छा बनाने के लिए उसे इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि ग्राहकों को किसी प्रकार की असुविधा व असंतोष न हो और उनके कार्य में अनावश्यक विलम्ब न हो।

शाखा प्रबन्धक के गुण:—एक शाखा प्रबन्धक में भी उन्हीं गुणों की अपेक्षा की जाती है जिनकी एक महाप्रबन्धक में अपेक्षा की जाती है अर्थात् उसे अधिकोष से सम्बन्धित विविध कानूनों का ज्ञान होना चाहिए, उसका व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए और उसमें तीव्र निर्णायक शक्ति होनी चाहिए। वह सज्जन, वाक्पटु, व्यवहार कुशल व मिलनसार होना चाहिए और लेखाविधि व पुस्तपालन का जानकार होना चाहिए।

प्रबन्धकीय गुण—एक अधिकोष में नियुक्त सभी व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके प्रबन्ध में सहयोग प्रदान करते हैं। अतएव बैंक के समस्त कर्मचारियों की बैंकर के रूप में गणना की जा सकती है। एक बैंकर को अपने व्यावसायिक दायित्वों के निष्पादन हेतु प्रतिदिन अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आना पड़ता है, अनेक वैधोदर्शापूर्ण

समस्याओं का समाधान खोजना पडता है, अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अविलम्ब निर्णय लेने पड़ते है और भविष्य के लिए योजनाएं बनानी पड़ती हैं। इन सारी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उसे बहुमुखी प्रतिभा का धनी बनना पडता है और प्रतिभाओं व बुद्धमत्ता में सामन्जस्य स्थापित करना पड़ता है। वह केवल प्रतिभा अथवा बुद्धिमता के आधार पर व्यावसायिक सफलता के शिखर पर नही पहुंच सकता। सक्षेप में, उसमे निम्नांकित विशेषताएं मिलनी चाहिये :

(i) लेखाकर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की जानकारी (ii) आर्थिक विश्लेषण की क्षमता (iii) तीव्र निर्णय शक्ति (iv) प्रशसनीय प्रशासकीय क्षमता (v) व्यावसायिक चातुर्य व निष्पक्षता (vi) अधिकारों की प्रत्यार्पण कला (vii) अधीनस्थ व सहयोगी साथियो से काम लेने की कला। इसके अतिरिक्त उसमें मिलनसारिता, सज्जनता, पारस्परिक विश्वास, सच्चाई जैसे गुण भी होने चाहिए। इन गुणो के सम्पुट से उसके व्यक्तित्व मे निखार आता है और कार्य करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

भर्ती एवं प्रशिक्षण—भर्ती एवं प्रशिक्षण भी प्रबन्ध का एक अंग है। कर्मचारियों एव अधिकारियो की नियुक्ति के लिए देश में कुछ 'भर्ती बोर्ड' (Recruitment Boards) का गठन किया है। ये बोर्ड बैंकों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर क्षेत्रीय आधार पर कर्मचारियो का चयन करते है। स्टेट बैंक समूह ने अपने कर्मचारियों के चयन के लिए पृथक बोर्ड का गठन कर रखा है। इसी प्रकार विभिन्न अधिकोषों ने प्रशिक्षण की व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से व्यवस्था कर रखी है। रिजर्व बैंक ने भी ट्रेनिंग हेतु शीर्ष कॉलेजो की स्थापना कर रखी है।

प्रबधकीय उपकरण (Management Tools)—अधिकोषों के प्रबन्ध हेतु अनेक उपकरणो को काम मे लिया जाता है, जिनमे से मुख्य निम्नांकित हैं—

(i) निष्पत्ति बजटन (Performance Budgeting)—यह अधिकोषों के प्रबन्ध का नवीनतम उपकरण है। इस विधि के अन्तर्गत एक अधिकोष का एक वर्ष के लिए व्यावसायिक बजट बनाया जाता है। इस बजट को तीन स्तरो–शाखास्तर, क्षेत्रीय स्तर व मुख्यालय स्तर–पर बनाया जाता है। शाखा स्तर पर शाखा व्यवस्थापक अपने स्थानीय सहकर्मियों के सहयोग से स्थानीय परिस्थितियो और पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य मे अपनी शाखा के लिए बजट बनाता है और उसे क्षेत्रीय प्रबन्धक के समक्ष प्रस्तुत करता है। क्षेत्रीय प्रबन्धक इन बजटो की व्यवाहारिकता पर शाखा प्रबन्धकों से व्यक्तिगत रूप से विचार-विमर्श करता है, शाखा बजटो को इन विचार-विमर्शों के आधार पर अन्तिम रूप देता है, इनके आधार पर अपने क्षेत्र के लिए एकीकृत बजट बनाता है और उसे अपने मुख्यालय को भेजता है। प्रधान कार्यालय इन क्षेत्रीय बजटों के आधार पर सम्पूर्ण अधिकोष के लिए बजट बनाता है। प्रधान कार्यालय बैंक के लिए बजट बनाते समय क्षेत्रीय प्रबन्धकों से विचार-विमर्श किया जाता है।

शाखा प्रबन्धक प्रतिमाह अपनी उपलब्धियों से क्षेत्रीय प्रबन्धक को अवगत करते रहते है और क्षेत्रीय प्रबन्धक अपने क्षेत्र की उपलब्धियों से प्रधान कार्यालय को अवगत करते रहते हैं। जब प्रस्तावित बजट व वास्तविक उपलब्धियों मे अन्तर होता है, उन अन्तरों के कारणों को ज्ञात किया जाता है और तदानुसार बजट में संशोधन किया जाता है।

प्रबन्ध की इस विधि में बैंक के लगभग सभी व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। व्यक्तिगत सहभागिता के कारण समस्त सम्बद्ध व्यक्ति बजट के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

(ii) सामूहिक विचार-विमर्श (Collective discussions)—यह भी प्रबन्ध का एक प्रभावी उपकरण है। इस विधि के अन्तर्गत एक उच्चाधिकार प्रबन्धसमिति (High Power mangement Committee)का गठन किया जाता है। प्रबन्ध संचालक उप महा प्रबन्धक, व सह महाप्रबन्धक इस समिति के सदस्य होते हैं। यह समिति अपने अधिकोष के लिए सामान्य लक्ष्यों का निर्धारण करती है और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्य करती है। समिति के सदस्यों का उत्तरदायित्व उनके वैयक्तिक एवं पदेन उत्तरदायित्व से सर्वथा भिन्न होता है। यह उपकरण प्रबन्धकों को विचार-विमर्श के लिए मंच प्रदान करता है। सामान्यतः यह समिति निम्नांकित विषयों पर विचार-विमर्श करती है और निर्णय लेती है–

(1) व्यावसायिक लक्ष्यों का निर्धारण,
(2) उपलब्ध संसाधनों पर विचार व निर्धारित लक्ष्यो के सन्दर्भ में उनकी उपयुक्तता,
(3) संसाधनों का आवन्टन,
(4) संचालन नीतियों का निर्धारण एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यूह-रचना,
(5) अवस्थापन व स्थानांतरण नीतियों का निर्धारण,
(6) लक्ष्यों व उपलब्धियों की समीक्षा व सुधारात्मक उपाय,
(7) साख स्रोतों पर ऋणी, प्रतिभूति, उद्देश्य, साख प्रवाह-दिशा आदि की दृष्टि से विचार।

(iii) अंकेक्षण (Auditing)—इस उपकरण के अंतर्गत सभी कार्यालयों–प्रधान कार्यालय, क्षेत्रीय कार्यालय व शाखा कार्यालय के व्यापक अंकेक्षण की व्यवस्था की जाती है। इस विधि के अन्तर्गत मुख्यतः दो प्रकार का अंकेक्षण–(1) लेखा अंकेक्षण व (2) कुशलता अंकेक्षण (Efficeincy Audits) किया जाता है। लेखा अंकेक्षण की गणना परम्परागत अंकेक्षण के अन्तर्गत की जाती है, किन्तु कुशलता अंकेक्षण प्रबन्ध की एक नवीन विधि मानी जाती है।

(iv) संचालकों का एकीकृत नियंत्रण (Unified control of Operation)—इस विधि के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रबन्ध को अनेक स्तरों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक स्तर पर सक्षम अधिकारियों के कुछ कर्त्तव्यों एवं अधिकारियों का आवंटन कर दिया जाता है और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सीमाओं में रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे अर्थात् वे अपने अधीनस्थ स्तर के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से काम तो लेंगे, किन्तु साथ ही उनके अधिकारों की रक्षा भी करेंगे। संक्षेप में, इस उपकरण के अन्तर्गत नियन्त्रण के अनेक स्तर बना दिये जाते हैं और प्रत्येक स्तर पर स्वायत्तता की रक्षा की जाती है। नियन्त्रण रेखा शीर्ष से धरातल की ओर चलती है।

प्रश्न

1. भारतीय अधिकोषों के संगठन व ढांचे पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. भारत में अधिकोषों के संचालकों की नियुक्ति व पद-मुक्ति सम्बन्धी व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए। इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक को प्राप्त अधिकारों का भी वर्णन कीजिए।
3. अधिकोष संचालकों के कार्यों व कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय अधिकोषों के प्रधान कार्यालयों पर कार्यरत विभिन्न विभागों का वर्णन कीजिए।
5. अधिकोषों के प्रबन्धकीय उपकरणों का वर्णन कीजिए।
6. एक अधिकोष के महाप्रबन्धक की योग्यताओं व कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।

17

बैंकिंग लेखे एवं उनका अंकेक्षण

(BANKING ACCOUNTS AND THEIR AUDIT)

प्राक्कथन—अन्य व्यवसायियों की भांति अधिकोषों को भी अपने वित्तीय व्यवहारों को नियमित रूप से लिपिबद्ध करना पड़ता है। ये सारे लेखे 'दोहरा लेखा प्रणाली' के आधार पर लिखे जाते हैं।

अधिकोषों के वित्तीय व्यवहारों को दो भागों—(i) नकद व्यवहार और (ii) हस्तांतरण व्यवहार—में बाँटा गया है। नकद व्यवहारों के अन्तर्गत अधिकोष के पास कोई व्यक्ति; संस्था या विभाग नकद राशि जमा करवाता है अथवा अधिकोष किसी व्यक्ति संस्था या विभाग को नकद राशि का भुगतान करता है। हस्तांतरण व्यवहारों में केवल पुस्तकीय प्रविष्टियाँ की जाती हैं अर्थात् इन व्यवहारों के अन्तर्गत एक खाते से दूसरे खाते में धनराशि स्थानांतरित की जाती है। उदाहरणार्थ एक खातेदार अपने खाते में जमा राशि में से 500 रुपए करों के भुगतान स्वरूप धनादेशों के रूप में जमा करवाता है। उसके इस व्यवहार को हस्तांतरण व्यवहार कहा जाएगा; क्योंकि इस व्यवहार के अन्तर्गत एक खाते में जमा राशि दूसरे खाते में स्थानांतरित हुई है।

भारत में जो अधिकोष राजकीय कोष (Govermment Treasury) का कार्य करते है वे (i) व्यक्तिगत व्यवहारों और (2) राजकीय व्यवहारों के लिए पृथक-पृथक पुस्तकें रखते हैं।

अधिकोषों की लेखा पद्धति के अन्तर्गत एक ही सौदे की अनेक स्थानों पर प्रविष्टि की जाती है ताकि किसी व्यवहार के गलत आलेखन पर उसका आसानी से पता लगाया जा सके। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सौदे का आलेखन इस प्रकार से किया जाता है कि अधिकोष को अपने कुल दायित्वों व अन्य व्यवहारों के परिणामों का प्रतिदिन पता लगता रहता है और प्रत्येक व्यवहार के आलेखन का एक निश्चित क्रम है। उस क्रम में से प्रत्येक व्यवहार को गुजरना पड़ता है।

प्रारम्भ में प्रत्येक व्यवहार का आलेखन किसी लिपिक द्वारा किया जाता है और अन्तिम स्तर पर उसकी किसी नियंत्रक अधिकारी द्वारा पुष्टि की जाती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर अधिकोषीय लेखों की निम्नांकित विशेषताएं हो सकती हैं—

1. अधिकोषीय खाते 'दोहरा लेखा प्रणाली' के अनुसार तैयार किए जाते हैं।

2. अधिकोषों के व्यवहारों को (1) हस्तांतरण व्यवहारों मे विभक्त किया जा सकता है;
3. प्रत्येक व्यवहार के आलेखन का एक निश्चित क्रम होता है। इस क्रम के अन्तिम भाग पर किसी नियंत्रक अधिकारी द्वारा प्रत्येक व्यवहार की पुष्टि की जाती है;
4. अधिकोषीय व्यवहारों का प्रतिदिन आलेखन किया जाता है, ताकि प्रत्येक शाखा अपनी स्थिति से क्षेत्रीय कार्यालय को प्रति सप्ताह सूचित कर सके।
5. अधिकोषीय व्यवहारों को राजकीय व गैर-राजकीय व्यवहारों मे भी बांट जा सकता है। राजकीय व्यवहारो को पृथक पुस्तको मे लिपि-बद्ध किया जाता है।

अधिकोषीय लेखों की आवश्यकता—अधिकोषों को निम्नांकित कारणों से अपने व्यवहारों का आलेखन करना पड़ता है :

(i) **वैधानिक आवश्यकता**—प्रत्येक अधिकोष को अपने कुल दायित्वों का 5% हमेशा अपने पास, अन्य किसी अधिकोष के पास अथवा रिजर्व बैंक के पास नकद रूप मे रखना पड़ता है; इसे अपने कुल दायित्वों का 28% हमेशा तरल रूप मे रखना पड़ता है, उसे वित्तीय वर्ष की समाप्ति के 3 माह के अन्दर अपने अन्तिम खातों को विभिन्न अधिकारियो के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है और जन-साधारण को जानकारी हेतु उनका अपने सूचना पट पर संचालको व अन्य दोषी अधिकारियों को दण्ड का भागी बनना पडता है। अतएव इन प्रावधानों की पूर्ति हेतु अधिकोषो को अपने समस्त वित्तीय व्यवहारों का नियमित रूप से आलेखन करना पड़ता है।

(ii) **व्यावसायिक दायित्व**—एक अधिकोष के असंख्य लेनदार व देनदार होते है और वे उसके साथ नाना प्रकार के व्यवहार सम्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकोष अपने विभिन्न क्रियाकलापों की पूर्ति के लिए भी भुगतान करते रहते है। इन समस्त व्यवहारों को लिपिबद्ध किए बिना न तो अधिकोष अपने विभिन्न खातेदारो को सही स्थिति बना सकता है, न विभिन्न लेन देनों के परिणामों को लाभ-हानि के रूप मे ज्ञात कर सकता है और न विभिन्न व्यवहारों की लागत व आय का तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है। संक्षेप मे, लेखा कर्म के अभाव में एक अधिकोष न तो अपने व्यावसायिक लक्ष्य (लाभ) को प्राप्त कर पाता है और न अपने ग्राहको को उनकी सही स्थिति की जानकारी दे पाता पाता है।

(ii) **अंशधारियों की जानकारी हेतु**—अंशधारी अथवा सरकार एक अधिकोष की वास्तविक स्वामी होता है। अंशधारियों एवं सरकार को अपने संस्थान के विविध वित्तीय व्यवहारों की जानकारी प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार होता है। यह जानकारी उन्हें अन्तिम खातों के रूप में दी जाती है और अन्तिम खाते विभिन्न व्यवहारों के सही आलेखन पर ही तैयार किए जा सकते हैं। एक अधिकोष को वार्षिक सामान्य सभा में अपने अन्तिम खातों को अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है।

आजकल सरकार भी अपने औद्योगिक एवं व्यावसायिक उपक्रमों का व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार संचालन करती है। अतएव वह भी अधिकोषों के क्रिया कलापों का परिणाम जानना चाहती है। संसदीय नियन्त्रण के कारण भी अधिकोषों को अपने व्य-

व्यवहारों को लिपिबद्ध करना पड़ता है। लोक सभा की 'लोक उद्योग समिति' सरकारी अधिकोषों के लेखेजोखों की बराबर जांच करती रहती है। अपूर्ण अथवा अशुद्ध लेखों की अवस्था में सम्बन्धित अधिकोष की लोक सभा में कटु आलोचना होती है। इन आलोचनाओं से बचने के लिए भी बैंकों को अपने लेखों को नियमित रूप से तैयार करवाना पड़ता है।

लेखा कर्म विधि:— अधिकोष के प्रत्येक व्यवहार (नकद व हस्तांतरण) का प्रारम्भ अधिकोष के किसी काउण्टर से होता है। अपने वित्तीय व्यवहारों की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति को अधिकोष के सम्बन्धित काउण्टर पर एक फ़ॉर्म (जमा पर्ची, आहरण पत्र, धनादेश, चालान, फॉर्म, ऋण प्रार्थना पत्र, ड्राफ्ट प्रार्थना-पत्र, हुण्डी कटौती प्रार्थना पत्र आदि) भर कर देना पड़ता है और यह फॉर्म ही अधिकोष के लेखों के आधार का कार्य करता है।

सम्बन्धित अधिकोष लिपिक इन वाउचर्स के आधार पर अपनी पुस्तकों में प्रथम प्रविष्टि करता है और उसे पुष्टि हेतु पूर्व निर्धारित क्रमानुसार अपने नियंत्रक अधिकारी के पास भेजता है। नियंत्रक अधिकारी लिपिक से प्राप्त सूचना के आधार पर 'बैंक कैश स्क्रोल' में प्रविष्टि कर लेता है अथवा लिपिक द्वारा प्रेषित पुस्तक पर प्रमाण स्वरूप अपने हस्ताक्षर (Initials) कर देता है। 'बैंक कैश स्क्रोल' में केवल नकद व्यवहारों की प्रविष्टि की जाती है। पुष्टि के पश्चात् सम्बन्धित लिपिक ग्राहक को भुगतान कर देता है अथवा उसे राशि जमा करवाने के प्रमाणस्वरूप जमा-पर्ची आदि दे देता है।

इन प्रारम्भिक लेखों के आधार पर शाम को 'डे बुक' व 'स्क्रोल कैश बुक' तैयार की जाती है और स्वरक्ष रोकड़ बही की सहायता से बैंक का जनरल लेजर तैयार किया जाता है।

विभिन्न व्यवहारों का क्रम:— अधिकोष में प्रत्येक व्यवहार को एक निश्चित मार्ग से गुजरना पड़ता है और परिनिर्णित तक पहुंचने से पूर्व उसको अनेक स्थानों पर अनेक व्यक्तियों द्वारा प्रविष्टि की जाती है ताकि अशुद्धियों का शीघ्रतापूर्वक पता लगाया जा सके और बेईमानी, फ्राड आदि पर अंकुश बना रह सके। इस क्रम को सर्वाधिक नकद आहरण व्यवहार की सहायता से समझा जा सकता है।

माना एक आदमी अपने अधिकोष से अपने बचत खाते में से 500 रुपये का आहरण करता है। इस आहरण हेतु (i) वह आहरण-पत्र भरना होगा (ii) उसे काउण्टर लिपिक (बचत खाता) को पास बुक सहित दे देगा (iii) काउण्टर लिपिक उसकी बचत खाता बही मे ग्राहक के खाते मे प्रविष्टि करेगा। ग्राहक को टोकन देगा और खाता बही से पासबुक सहित नियन्त्रक अधिकारी के पास भेजेगा (iv) नियंत्रक अधिकारी खातेदार के हस्ताक्षरो को नमूने के हस्ताक्षरो से जाच करेगा, खाता बही में आहरण प्रविष्ट के समक्ष अपने अद्याक्षर करेगा, बचत खाता बही से काउण्टर लिपिक को लौटाएगा और आहरण पत्र को भुगतानकर्ता रोकड़िए के पास भेजेगा और (v) भुगतान-कर्त्ता रोकड़िया ग्राहक से टोकन लेगा, भुगतान करेगा और अपनी रोकड़ बही में उसकी प्रविष्टि करेगा। निम्नांकित चार्ट इसे स्पष्ट करता है—

भुगतान रूट चार्ट

खातेदार		काउण्टर लिपिक		नियन्त्रक अधिकारी		भुगतान रोकड़िया
1. आहरण पत्र की पूर्ति 2. आहरण पत्र व पास बुक को सौंपना	→	1. आहरण पत्र की जांच 2. खाता बही मे प्रविष्टि 3. टोकन देना 4. खाता बही को नियन्त्रक अधिकारी के पास पहुंचाना	→ ←	1. नमूने के हस्ताक्षरो से मिलान 2. खाता बही में अद्याक्षर 3. आहरण पत्र के रोकड़िए के पास भेजना 4. खाता बही की माल लिपिक को वापसी	→	1. भुगतान रोकड़ में प्रविष्टि 2. टोकन लेना 3. भुगतान देना

(खातेदार → → भुगतान प्राप्ति)
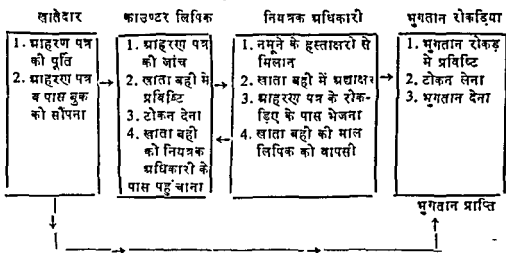
विभिन्न लेखा पुस्तकें :— एक अधिकोष को अनेक लेखा पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें सुविधा की दृष्टि से (i) मुख्य लेखा पुस्तकों और (ii) सहायक लेखा पुस्तकों मे विभक्त किया जा सकता है।

(A) मुख्य लेखा पुस्तकें :— अधिकोषों को मुख्यतः निम्नांकित लेखा पुस्तकें मुख्य लेखा पुस्तकों के रूप में रखनी पड़ती हैं :—

(i) खाता बहियां (Ledgers) :— एक अधिकोष सामान्यतः तीन प्रकार-बचत, चालू व स्थाई जमा-के खाते खोलता है। इन खातों के खातेदारों के लिए क्रमशः बचत खाता बही, चालू खाता बही व स्थाई जमा खाता बही रखी जाती है। जब किसी खाते के खातेदारों की संख्या अधिक हो जाती है तो सुविधा के लिए इन बहियों को वर्णानुसार दो-तीन भागो मे बांट दिया जाता है। ऐसी बहियों को खाता बही संख्या 1 (ए से जी), 2 (एच से एम) और 3 (एन से जेड) आदि कहा जाता है। प्रत्येक बही

में उस पर अंकित वर्णों वाले खातेदारों के खाते रखे जाते हैं और सुविधा के लिए प्रत्येक बही के प्रारम्भ में खातेदारों की अनुक्रमणिका दे दी जाती है।

एक ग्राहक ज्योंही कोई व्यवहार सम्पन्न करता है त्योंही उसकी प्रविष्टि उसके खाते में कर दी जाती है। अधिकोष के कुल निक्षेपों (दायित्वों) का पता लगाने के लिए बचत खाता बही के खातों का माह में एक बार व चालू खाता बही के खातों का सप्ताह में एक बार योग निकाला जाता है।

तीनों खाता बहियों का संचालन अलग-अलग लिपिकों द्वारा किया जाता है। अतएव ये बहियाँ शाखा के अलग-अलग काउण्टरों पर रखी जाती हैं। जब किसी खाते में किसी व्यवहार—नकद अथवा हस्तांतरण—को लिपिबद्ध किया जाता है तो उसकी किसी नियंत्रक अधिकारी द्वारा अपने अद्याक्षरों (Iniltials) से अविलम्ब पुष्टि करदी जाती है। इन बहियों के नमूने नीचे दिए जा रहे हैं :—

खाता बहियों के नमूने

(1) बचत खाता बही खाता संख्या 123

नाम खातेदार—मन मोहन मालवीय

व्यवसाय—शासकीय सेवा (ब्याज खाता)

पता—शासकीय महाविद्यालय, सीकर

धनादेश पुस्तक संख्या..............

तारीख	विवरण	धनादेश सं.	आहरण रु.	पै.	निक्षेप रु.	पै.	शेष रु.	पै.	शेष Dr./Cr.	हस्ताक्षर नियन्त्रक अधिकारी

(ii) चालू खाता बही — खाता संख्या 254

नाम खातेदार—मन मोहन मालवीय
व्यवसाय—वस्त्र व्यापारी विवरण-व्यक्ति
पता—पटेल मार्ग, सीकर
डी. पी. (Drawing Power)..........................
(शब्दों व अंकों में)
खाता खोलने की दिनांक — खाता खोलने की फॉर्म संख्या.........
नमूने के हस्ताक्षर (प्रकार) — नमूने के हस्ताक्षर संख्या............
निर्गमित धनादेशों की संख्या.................. ...
धनादेशों के निर्गमन की तारीख................

तारीख	विवरण	बैंक नाम	धनादेश संख्या	नाम रु.	पै.	जमा रु.	पै.	शेष रु.	पै.	Dr. Cr.	हस्ताक्षर अधिकारी	दिन/Dr. /Cr.	ब्याज or व्यय	Cr. ब्याज

(ii) नकदी रजिस्टर (Cash Registers) :—नकद व्यवहारों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रत्येक शाखा पर कम-से-कम तीन रजिस्टर रखे जाते हैं जिन्हें क्रमशः (i) नकद-प्राप्ति रजिस्टर (Receiving Cashiers' Counter Cash Book) (ii) नकद भुगतान रजिस्टर (Paying Cashiers' Counter Cash Book) और (iii) बैंक नकदी रजिस्टर (Bank Cash Scroll) कहा जाता है।

(अ) नकद प्राप्ति रजिस्टर :—यह रजिस्टर प्राप्ति रोकडिए के पास रहता है। वह जमा पुर्जी (Pay in Slip) के आधार पर जमाकर्त्ता से धन गिनकर लेता है और उसकी प्राप्ति रजिस्टर में प्रविष्टि करता है। प्रविष्टि के समय वह धनादेशों, सिक्कों व नोटों आदि को अलग-अलग अंकित करता है और नोटों को उनके मूल्यांनुसार अंकित करता है। इस रजिस्टर में सामान्यतः स्तम्भ होते हैं :—

Receiving Cashier's Counter Cash Book

पृष्ठ संख्या·······

क्र. सं.	नाम ग्राहक/ जमाकर्त्ता	योग		धनादेश		नोट		सिक्के		हस्ताक्षर
		रु.	पै.	रु.	पै.	मूल्य	सं.	मूल्य	सं.	

जब एक शाखा पर कई काउण्टरों पर पैसा जमा किया जाता है तो प्रत्येक काउण्टर पर यह बही रखी जाती है। इस बही की प्रत्येक प्रविष्टि की पुष्टि नियंत्रक अधिकारी द्वारा की जाती है। पुष्टि करते समय वह इस बही की प्रविष्टियों को अपने नकदी रजिस्टर (Cash Scroll) में अंकित कर लेता है।

(ब) नकद भुगतान रजिस्टर :—यह रजिस्टर नकद भुगतान लिपिक के पास रहता है। भुगतान लिपिक भुगतान करने से पूर्व इस रजिस्टर में प्रत्येक व्यवहार की प्रविष्टि करता है। प्रविष्टि करते समय वह प्राप्ति लिपिक की भांति धनादेशों, सिक्कों व नोटों का पृथक से अंकन करता है और प्रत्येक प्रविष्टि की नियंत्रक अधिकारी से पुष्टि करवा लेता है। नियंत्रक अधिकारी इस बही के आधार पर अपने नकदी रजिस्टर में भुगतानों की प्रविष्टि कर लेता है। इस बही में सामान्यतः अग्रांकित स्तम्भ होते हैं :—

Paying Cashier's Counter Cash Book

पृष्ठ संख्या.......

क्र. स.	नाम ग्राहक/ जमाकर्ता	योग		धनादेश		नोट		सिक्के		हस्ताक्षर
		रु.	पै.	रु.	पै.	मूल्य	सं.	मूल्य	सं.	

प्रतिदिन कार्यविधि के पश्चात् इन दोनों पंजिकाओं का योग किया जाता है। जब इन बहियों के योग का नियंत्रक अधिकारी के योग से मिलान हो जाता है तो यह मान लिया जाता है कि उस दिन के रोकड़ी लेन-देनो में कोई अंकगणितीय अशुद्धि नहीं है।

(स) बैंक नकदी रजिस्टर :—यह रजिस्टर बैंक मैनेजर या अन्य सक्षम अधिकारी के पास रहता है। यह अधिकारी इस रजिस्टर में प्राप्ति व भुगतान लिपिकों से प्राप्त वाउचर्स के आधार पर प्रविष्टियाँ करता है और शाम को सारे लेन देनो का शेष निकालता है। इस बही से यह ज्ञात हो जाता है कि किसी विशेष दिन को अधिकोष के रोकड़ी लेन-देनो की शुद्ध स्थिति क्या रही और प्राप्ति व भुगतान रजिस्टरों में नकद व्यवहारों के अंकन में कोई त्रुटि नहीं है। यह रजिस्टर सामान्यतः निम्नांकित प्रारूप में रखा जाता है—

BANK CASH SCROLL

Dated.................... 1981

Dr. Cr.

No.	Particulars	Amount Rs.	P.	No	Particulars	Amount Rs.	P.

(iii) स्वच्छ रोकड़ बही (Clean Cash Book)--इस बही में एक शाखा के एक दिन के समस्त व्यवहारों को विभिन्न सहायक पुस्तकों की सहायता से संक्षेप में अंकित किया जाता है। इस पुस्तक मे अधिकोष की ओर से विभिन्न व्यवहारो के लिए शीर्षक मुद्रित होते हैं और प्रत्येक शाखा को इन पूर्व निर्धारित शीर्षकों के अन्तर्गत ही दिन भर के व्यवहारो को अंकित किया जाता है। जब इस बही की दोनो दिशाए मिल जाती है तो यह मान लिया जाता है कि प्रविष्टियां सही हैं। यदि किसी दिन सारे व्यवहारो की दिशाएं नही मिल पाती हैं और अन्तर का कारण मालूम नहीं हो पाता है तो अन्तर को भूल-चूक (suspense) खाते मे स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इस बही मे समस्त (नकदी व हस्तातरण) व्यवहारों को प्रतिदिन अंकित किया जाता है और इसके व्यवहारों की प्रतिदिन बैंक के जनरल लेजर मे खतौनी की जाती है। यह बही निम्नांकित स्वरूप मे बनाई जाती है।

(iv) सामान्य खाता बही (General Ledger)—यह एक अधिकोष की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बही होती है। यह बही सम्पूर्ण वित्तीय वर्ष के लिए बनाई जाती है और इसमे एक शाखा के वर्ष भर के समस्त व्यवहारों–रोकडी व हस्तातरण–का सारांश अंकित किया जाता है। यह बही स्वच्छ नकदी बही (Clean Cash Book) की सहायता से बनाई जाती है। इस बही की सहायता से अधिकोष की किसी भी तिथि की वित्तीय स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है। एक अधिकोष इस बही के आधार पर ही अपने विभिन्न प्रविवरणो को तैयार करता है व विभिन्न निधियों और तरलताओं सम्बन्धी प्रावधानों की पूर्ति करता है। इस बही में सामान्यतः निम्नांकित स्तम्भ होते हैं—

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर—जनरल लेजर

खाते का नाम पृष्ठ संख्या.......

Date	Debit	Credit	Dr./ Cr.	Balance	Days	Particulars of Products	Remarks

(v) अधिकोष ट्रांस्फर स्क्रोल (Bank transfer Scroll)—हस्तांतरण व्यवहारो के सन्तुलन के लिए इस रजिस्टर को तैयार किया जाता है। इस रजिस्टर मे केवल हस्तांतरण व्यवहारों को अंकित किया जाता है और यह स्वच्छ रोकड़ बही के सहायक के रूप मे कार्य करता है; क्योंकि इसके समस्त व्यवहारों को स्वच्छ रोकड़ बही मे हस्तांतरित किया जाता है। इस रजिस्टर में दो प्रकार के हस्तांतरण व्यवहारो–बैंक ट्रांस्फर व राजकीय ट्रांस्फ़र–से सम्बद्ध वाउचर्स की प्रविष्टि की जाती है। हस्तांतरण पुर्जों पर हस्तांतरण मुद्रा (Transfer Seal) अंकित कर दी जाती है। इस मुद्रा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्दर्भगत व्यवहार के लिए नकद लेन-देन नहीं हुए हैं। हस्तांतरण पत्रिका अग्रांकित स्वरूप में रखी जाती है—

Bank Transfer Scroll

Dated..........................1981

Dr.													Cr.
No.	Particulars	Transfer from Bank		Transfer from govt.		No.	Particulars	Transfer to Bank		Transfer to Govt.			
		Rs.	P.	Rs.	P.			Rs.	P.	Rs.	P.		

डे बुक (Day Book)—यह रजिस्टर बैंक की विविध सहायक पुस्तकों की सहायता से तैयार किया जाता है। इस पुस्तक को विभिन्न खातों यथा चालू खाता, बचत खाता, स्थाई जमा खाता आदि की डिटेल्स से तैयार किया जाता है। इस पुस्तक की सहायता से स्वच्छ रोकड़ बही (Clean Cash Book) तैयार की जाती है। कुछ समय पूर्व तक डे बुक को ही स्वच्छ रोकड बही कहा जाता था; किन्तु आजकल ये दोनों बहियां अलग-अलग बनाई जाती हैं।

DAY BOOK

to..............Ledger no..............

..............1981

Folio Number	Name of Account	Debit Rs.	Debit P.	Credit Rs.	Credit P.

(B) सहायक पुस्तकें—मुख्य पुस्तकों के अतिरिक्त एक अधिकोष को अनेक सहायक पुस्तकें भी रखनी पड़ती हैं, जिनमे मुख्य निम्नांकित हैं—

(i) ऋण एवं अग्रिम रजिस्टर—आजकल व्यापारिक अधिकोष नाना प्रकार के ऋण स्वीकृत करते है। अधिकोषों में पृथक-पृथक ऋणों के लिए पृथक-पृथक रजिस्टर रखे जाते हैं। इस रजिस्टर मे प्रत्येक ऋणी का खाता खोला जाता है और उसमे ऋणी का नाम, स्वीकृत ऋण राशि, आहरित ऋण राशि, ऋण आहरण की तिथि, ब्याज दर, ऋण अवधि, ऋण प्रकार, ऋण वापसी की तिथि, ब्याज राशि आदि अंकित किए जाते हैं।

जब सुरक्षित ऋण स्वीकृत किए जाते हैं तब एक प्रतिभूति रजिस्टर खोला जाता है और उसमें प्राप्त प्रतिभूतियों का विस्तृत वर्णन अंकित किया जाता है।

(ii) टोकन बही (Token Register)—जिन अधिकोषो मे टेलर प्रणाली प्रारम्भ नही की गई है उनमें सामान्यतः यह बही रखी जाती है। कुछ अधिकोषो में यह बही बिल्कुल नहीं रखी जाती। यह बही भुगतानो के लिए प्रयुक्त की जाती है।

जब कोई व्यक्ति बैंक से धनादेश, आहरण प्रपत्र अथवा अन्य किसी विधि से पैसा निकालना चाहता है तो काउण्टर लिपिक उसे किसी धातु-पीतल अथवा अल्युमूनियम का एक गोल या अन्य किसी आकृति का एक टुकडा देता है। इस टुकड़े पर बैंक व शाखा का नाम और क्रम संख्या अंकित रहती है। इस टोकन का यह आशय है कि सन्दर्भगत विलेख भुगतान योग्य है, उसका उस दिन भुगतान हो जाएगा और टोकनधारी व्यक्ति भुगतान

प्राप्त करने का अधिकारी है। जब काउण्टर क्लर्क ग्राहक को टोकन देता है तो सन्दर्भगत टोकन की संख्या विलेख पर व टोकन पुस्तिका में अंकित कर देता है। जब एक टोकन-धारी शाम तक भुगतान नहीं लेता है तो उस विलेख को उस दिन के भुगतान में से काट दिया जाता है। प्रतिदिन शाम को टोकन बही से टोकनों का मिलान किया जाता है। इस जांच से यह ज्ञात हो जाता है कि समस्त व्यक्तियों ने भुगतान प्राप्त किया या नहीं।

(iii) प्राप्य एवं देय विपत्र रजिस्टर—अधिकोष अपने ग्राहकों की ओर से अनेक विपत्रों, धनादेशों आदि का संग्रहण करते हैं और उनकी ओर से देय विलेखों का भुगतान करते हैं। इन दोनों विलेखों को क्रमशः प्राप्य एवं देय विलेख कहा जाता है और दोनों के लिए पृथक-पृथक रजिस्टर रखे जाते हैं, जिन्हें क्रमशः बाह्य बिल संग्रहण रजिस्टर (outward bills for collection register) और आन्तरिक बिल संग्रहण रजिस्टर (inward bills for collection register) कहा जाता है। इन पंजिकाओं में विलेखों का सम्पूर्ण विवरण यथा प्राप्ति की तारीख, जमा करवाने वाले का नाम, लेखक, स्वीकारक एवं आहार्यी का नाम, देय तिथि, भुगतान स्थल, रकम आदि अंकित की जाती है।

OUTWARD BILLS RECEIVED FOR COLLECTION REGISTER

क्रम संख्या	प्राप्ति तिथि	जमाकर्ता का नाम	लेखक	स्वीकारक	विपत्र दिनांक	देय तिथि	भुगतान स्थल	रकम	भुगतान मिलने की तिथि

(iv) बिल कटौती रजिस्टर (Bill Discounting Register)—अधिकोष सामान्यतः विपत्रों की कटौती करते हैं। इन विपत्रों की प्रविष्टि बिल कटौती रजिस्टर में की जाती है। इस रजिस्टर में कटौती तिथि, कटौती करवाने वाले का नाम, स्वीकारक का नाम, लेखक का नाम, देय तिथि आदि अंकित की जाती है।

BILL RECEIVED FOR DISCOUNTING REGISTER

बिल सख्या	विक्रेता	स्वीकारक	लेखक	भुगतान स्थल	रकम	देय तिथि	कटौती दर	कटौती तिथि	कटौती अवधि	बट्टा Rs. P.

गैर लेखा पुस्तकें (Non Account Books)— एक अधिकोष एक सयुक्त प्रमण्डल के रूप मे कार्य करता है। अतएव उसे अन्य प्रमण्डलो की भाति कुछ विशेष पुस्तकें यथा—(i) अंशधारी पजिका (ii) अंश प्रमाण पत्र पजिका (iii) लाभांश पंजिका (iv) सचालक पजिका (v) अंश हस्तानरण पजिका (vi) प्रसंविदा पजिका (vii) जमा विवरण पंजिका आदि भी रखनी पड़ती हैं।

अधिकोषो के अन्तिम खाते :—

भारत मे कार्यरत अधिकोष भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 और भारतीय प्रमण्डल अधिनियम 1956 के विभिन्न प्रावधानों व रिजर्व बैंक द्वारा अनुशंसित विधि व प्रारूपो के अनुसार अपने अन्तिम खाते तैयार करने हैं। सुविधा की दृष्टि से अंतिम खातो का अध्ययन (i) वैधानिक प्रावधान (ii) स्थिति विवरण और (iii) हानि-लाभ खाते के प्रारूप के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(A) *अन्तिम खातों के लिए वैधानिक प्रावधान*—भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम और भारतीय प्रमण्डल अधिनियम में अन्तिम खातो के निर्माण, हस्ताक्षर, प्रस्तुतीकरण, सार्वजनिक प्रदर्शन आदि के बारे मे अनेक व्यवस्थाएं दी गई हैं जिनका सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :—

(i) अंतिम खातों को तैयार करना—भारत में स्थापित प्रत्येक अधिकोष को अपने अन्तिम खाते कलेण्डर वर्ष के आधार पर तैयार करने पड़ते है। विदेशी अधिकोष चाहें तो अपने अन्तिम खाते नवम्बर से अक्टूबर तक तैयार कर सकते है। (धारा 29)

भारतीय अधिकोषों को अपने अन्तिम खाते बैंकिंग नियमन अधिनियम की अनुसूची 3–फॉर्म अ (कम्पनी का चिट्ठा) व फार्म ब (हानि-लाभ खाता) के अनुरूप अथवा उससे मिलते-जुलते स्वरूप मे तैयार करने पड़ते हैं। भारत सरकार इस तालिका के स्वरूप मे 3 माह की अग्रिम सूचना पर परिवर्तन कर सकती है। इन खातो मे एक अधिकोष की समस्त शाखाओं द्वारा सम्पन्न व्यवसाय को शामिल किया जाता है। [29 (1) & 29 (4)]

भारत में कार्यरत विदेशी अधिकोषो को भी अपनी भारतीय शाखाओं के अन्तिम खाते उपर्युक्त विधि से तैयार करने पड़ते हैं। [(धारा 29 (1)]

(ii) अंतिम खातो पर हस्ताक्षर—भारतीय अधिकोषो के अन्तिम खातो पर अधिकोष के प्रबन्धक या मुख्य कार्यकारी अधिकारी व कम-से-कम 3 संचालकों को हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। जब किसी अधिकोष के सचालकों की संख्या 3 या 3 से कम होती है तो उस अधिकोष के समस्त संचालकों को अन्तिम खातों पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।

[(धारा 29 (2) (9)]

विदेशी अधिकोषों के अन्तिम खातों पर भारत स्थित प्रधान कार्यालय का अभिकर्ता अथवा उसका प्रबन्धक हस्ताक्षर करता है। [धारा–29 (2) (b)]

अन्तिम खातों को तैयार करते समय प्रत्येक अधिकोष को भारतीय प्रमण्डल अधिनियम के उन प्रावधानों का भी पालन करना पड़ता है जिनके लिए 'बैंकिंग नियमन अधिनियम' में कोई पृथक व्यवस्था नहीं की गई है और जो बैंकिंग नियमन अधिनियम की व्यवस्थाओं के प्रतिकूल नहीं हैं। [धारा–29 (3)]

अन्तिम खातों का प्रस्तुतीकरण :—

प्रत्येक अधिकोष को सामान्यतः 31 मार्च तक अपने अन्तिम खातों और अंकेक्षकों व संचालकों के प्रतिवेदनों की तीन प्रतियां रिजर्व बैंक और प्रमण्डल पंजीयक के पास जमा करवानी पड़ती है। एक अधिकोष की प्रार्थना पर रिजर्व बैंक इस अवधि में 3 माह की वृद्धि कर सकता है; किन्तु 30 जून तक उसे तीनों प्रलेखों की 3 प्रतियां रिजर्व बैंक व प्रमण्डल पंजीयक के पास अवश्य जमा करवानी पड़ती हैं। (धारा–31 और 32)

रिजर्व बैंक किसी अधिकोष से उसकी सम्पत्तियों एवं दायित्वों के बारे में धारा 27 (2) के अन्तर्गत अन्तिम खातों के बारे में अतिरिक्त सूचना भी मांग सकता है। सम्बन्धित अधिकोष को इस अतिरिक्त सूचना की एक प्रति प्रमण्डल पंजीयक को भी देनी पड़ती है।

अन्तिम खातों का प्रदर्शन—भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 223 के अनुसार भारत में स्थापित प्रत्येक सीमित दायित्व वाले अधिकोष को अपनी सम्पत्तियों एवं दायित्वों का एक विवरण व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व व व्यवसाय प्रारम्भ करने के पश्चात् प्रतिवर्ष फरवरी व अगस्त मास के प्रथम सोमवार को अपने प्रधान कार्यालय व समस्त शाखाओं के सूचना-पटों पर प्रदर्शनार्थ लगाना पड़ता है। इस विवरण के साथ हानि-लाभ खाता, चिट्ठा व अंकेक्षक के प्रतिवेदन की भी एक प्रति लगानी पड़ती है। ये प्रलेख वर्ष-पर्यन्त सूचना-पट पर लगे रहते हैं। अधिकोष का कोई भी सदस्य अथवा ऋणदाता इस प्रविवरण की एक प्रति अधिकोष से निर्धारित शुल्क जमा करवाने पर ले सकता है। सम्बन्धित अधिकोष को प्रार्थना-पत्र की प्राप्ति के सात दिनों के भीतर इस प्रविवरण की प्रति प्रार्थी को देनी पड़ती है और जो अधिकोष इस आदेश (प्रदर्शन आदेश) की निर्धारित अवधि में पूर्ति नहीं कर पाते हैं उन्हें व उनके अधिकारियों को अर्थदण्ड भुगतना पड़ता है।

भारत में कार्यरत विदेशी अधिकोषों को भी भारत में सम्पन्न व्यापार के अन्तिम खातों की एक प्रति अगस्त मास के प्रथम सोमवार तक अपने भारत स्थित प्रधान कार्यालय व समस्त भारतीय शाखाओं के सूचना पटों पर प्रदर्शनार्थ लगानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त उसे अपने सम्पूर्ण व्यवसाय के अन्तिम खातों की भी एक प्रति प्रदर्शनार्थ लगानी पड़ती है। ये प्रतियां वर्ष पर्यन्त सूचना-पटों पर लगी रहती हैं और नई प्रतियों के लगाते समय इन्हें उतारा जाता है। सम्पूर्ण व्यवसाय के अन्तिम खातों की प्रति को सूचना-पट पर लगाने के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की गई है। अतएव जब यह प्रतिलिपि उपलब्ध हो जाती है तब उसे प्रदर्शनार्थ लगा दिया जाता है। (धारा–33)

अन्तिम खातों का प्रकाशन—प्रत्येक अधिकोष को अर्थ वर्ष की समाप्ति के 6 माह के भीतर अपने अन्तिम खातों व अंकेक्षक के प्रतिवेदन को अपने प्रधान कार्यालय वाले

नगर से मुद्रित समाचार-पत्र का आशय दैनिक या साप्ताहिक पत्र से है व इनमें बैंकिंग, व्यापारिक, आर्थिक व वित्तीय पत्रों की गणना की जाती है। इन प्रलेखों के साथ संचालकों का प्रतिवेदन भी प्रकाशित किया जाता है (बैंकिंग कम्पनी नियम 52)

अन्तिम खातों का अंकेक्षण—प्रत्येक अधिकोष को अपने अन्तिम खातों (चिट्ठा व हानि लाभ खाता) का नियमानुसार अंकेक्षण करवाना पड़ता है। यह अंकेक्षण सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अंकेक्षकों से करवाया जाता है। (धारा–29)

अन्य—अन्तिम खातों के अतिरिक्त प्रत्येक अधिकोष को प्रतिमाह अपनी भारतीय सम्पत्तियों व दायित्वों का एक विवरण (माह के अन्तिम शुक्रवार तक का) रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रारूप व विधि से भेजना पड़ता है। जब किसी माह में अन्तिम शुक्रवार भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम के अन्तर्गत सार्वजनिक अवकाश होता है तो उस माह इस विवरण में सार्वजनिक अवकाश के पहले दिन तक की सूचना सम्मिलित की जाती है। प्रत्येक अधिकोष को यह प्रविवरण आगामी माह की समाप्ति से पूर्व रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ता है। [धारा–27 (1)]

(B) चिट्ठा (Balance Sheet) :

प्रत्येक अधिकोष को बैंकिंग नियमन अधिनियम की तृतीय अनुसूची के 'अ' भाग अथवा उससे मिलते-जुलते स्वरूप में अपना चिट्ठा तैयार करना पड़ता है। इस चिट्ठे में बाईं ओर गत वर्ष व चालू की पूंजी और देयताएं (Capital & Liabilities) और दायीं ओर सम्पत्ति व आस्तियां (Property & Assets) प्रदर्शित की जाती हैं। चिट्ठे पर अधिकोष के संचालकों, मुख्य लेखाकार, महाप्रबन्धक व उसके अंकेक्षकों के हस्ताक्षर होते हैं। इस पर इसे तैयार करने की तारीख भी अंकित की जाती है।

चिट्ठे में निम्नांकित मदों को शामिल किया जाता है। इन मदों का मूल्य अंकेक्षण विधि एवं व्यवहारों के प्रचलित मानदण्डों के आधार पर दिखाया जाता है। चिट्ठे में सम्पत्तियां एवं आस्तियां सर्वाधिक तरलता के क्रम में और पूंजी एवं दायित्व सर्वाधिक जड़ता के क्रम में दिखाए जाते हैं।

चिट्ठे की मदें

पूंजी एवं दायित्व	सम्पत्ति एव आस्तियां
1. पूंजी	1. नकदी
2. प्रारक्षित निधि और अन्य प्रारक्षित राशियां	2. अन्य अधिकोषों के पास शेष
3. जमा राशियां व अन्य खाते	3. मांग व अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशि
4. अन्य अधिकोषों, अभिकर्ताओं आदि से उधार ली गई राशियां	4. निवेश
5. देय बिल	5. अग्रिम
6. वसूली के लिए बिल जो सामने लिखे अनुसार प्राप्य बिल हैं।	6. प्राप्य बिल जो सामने लिखे अनुसार वसूली के लिए हैं।

7. अन्य देयताएं	7. सामने लिखे अनुसार स्वीकृतियों, पृष्ठांकनों और अन्य दायित्वों के लिए असामियों की देयताएं
8. सामने लिखे अनुसार स्वीकृतियां पृष्ठांकन और अन्य दायित्व	8. परिसर (मूल्य ह्रास घटाकर)
9. लाभ और हानि	9. फर्नीचर व फिक्सचर (मूल्य ह्रास घटाकर)
10. आकस्मिक देयताएं	10. अन्य आस्तियां
	11. दावों के बदले प्राप्त की गई बैंकिंग आस्तियां (पुस्त मूल्य पर)

चिट्ठे में कुछ मदें सम्पत्ति एवं दायित्व दोनों ओर दिखाई जाती हैं। इन मदों को कोण्ट्रा मद कहा जाता है। प्राप्य विपत्र व विपत्रों की स्वीकृतियां व पृष्ठांकन इन्हीं मदों के अन्तर्गत आते हैं।

चिट्ठे के साथ अनुसूची 'अ', अग्रिमों का विवरण व अंकेक्षकों का प्रतिवेदन संलग्न किया जाता है। ये समस्त प्रलेख स्थिति विवरण के आवश्यक अंग माने जाते हैं।

चिट्ठे की विभिन्न मदों का संक्षिप्त विश्लेषण—चिट्ठे की पूंजी एवं दायित्व एवं सम्पत्ति और आस्तियों का योग बराबर होता है। इनमें प्रदर्शित मुख्य मदों का विवरण निम्न प्रकार है :—

(i) पूंजी (Capital)—इस मद के अन्तर्गत अधिकृत, निर्गमित, दत्त व अभ्र की गई पूंजी का विवरण दिया जाता है और साथ ही प्रत्येक अंश का अभिदान व संख्या दी जाती है।

(ii) आरक्षित निधि—इस मद के अन्तर्गत वैधानिक निधि, कृषि (स्थिरीकरण) साख निधि, भवन निधि, लाभांश समानीकरण निधि, विशिष्ट बट्टा खाता निधि, बट्टा व संदिग्ध बट्टा खाता निधि, विनियोग ह्रास कोष व अन्य निधियों का प्रदर्शन किया जाता है। एक अधिकोष को लाभांश की घोषणा से पूर्व अपना 20 प्रतिशत वार्षिक लाभ अपने वैधानिक कोष में उस समय तक जमा करवाना पड़ता है जब तक कि उसका कुल कोष उसकी दत्त पूंजी के बराबर नहीं हो जाता है।

(iii) निक्षेप (Deposits)—निक्षेपों के अन्तर्गत व्यक्तियों, केन्द्रीय सहकारी अधिकोष व अन्य समितियों के बचत, चालू व स्थाई जमाओं को दिखाया जाता है व स्थाई जमाओं में समितियों, कर्मचारियों, भविष्य निधि कोषों, कर्मचारी सुरक्षा जमाओं, आवर्ती जमाओं और नकद प्रमाणपत्रों को शामिल किया जाता है।

(iv) ऋण (Borrowings)—ऋणों के अन्तर्गत रिजर्व बैंक, राज्य व केन्द्रीय सहकारी अधिकोष से प्राप्त अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋणों को दिखाया जाता है और उनके लिए दी गई प्रतिभूतियों का वर्णन किया जाता है।

(v) देयनीय बिल (Bills payable)—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन सभी बैंक बिलों की राशि का योग दिखाया जाता है जिनके भुगतान के लिए बैंक उत्तरदायी होता है।

FORM A
FORM OF BALANCE-SHEET

CAPITAL AND LIABILITIES	Rs.	Rs.	PROPERTY AND ASSETS	Rs	Rs.
1. CAPITAL			1. CASH		
(i) Authorised Capital :			In hand & with Reserve Bank, State Bank of		
........shares of Rs.........each			India, State Cooperative Bank & Central		
........shares of Rs........each			Cooperative Bank		
(ii) Subscribed Capital :			2. BALANCE WITH OTHER BANKS		
........shares of Rs........			(i) Current deposits		
........shares of Rs........			(ii) Saving banks deposits		
(iii) Amount called up ι on...........shares at			(iii) Fixed deposits		
Rs........each less calls unpaid of					
(iv) above held by			3. MONEY AT CALL & SHORT NOTICE		
(a) Individuals			4. INVESTMENTS		
(b) Cooperative institutions			(i) In Central & State Govt. securites (at		
(c) State government			book value) Face Value Rs...........		
RESERVE FUND AND			Market Value Rs.		
OTHER RESERVE :			(ii) Other Trustee securities		
(i) Statutory Reserve			(iii) Shares in cooperative institutions other		
Agricultural (credit stabilization Fund)			than in item 5 below		
[illegible] ing Fund					
end equalization Fund			(iv) Other investments (to be specified)		

Liabilities	Rs.	Rs.	Assets	Rs.	Rs.
(v) Special Bad Debts Reserve			5. INVESTMENT OUT OF THE PRINCIPAL/ SUBSIDIARY STATE PARTNERSHIP FUND		
(vi) Bad and doubtful debts Reserve			In shares of :		
(vii) Investment Depreciation Reserve			(i) Central Cooperative banks		
(viii) Other Funds & Reserves (to be specified)			(ii) Primary agricultural credit societies		
3. PRINCIPAL/SUBSIDIARY STATE PARTNERSHIP FUND ACCOUNT :			(iii) Other societies....		
For share capital of			6. ADVANCES :		
(i) Central cooperative banks			(i) Short term loans, Cash credits, Over-drafts & bills discounted of which sec-ured against		
(ii) Primary agricultural credit societies			(a) Government & other approved securities		
(iii) Other societies			(b) Other tangible securities of the advances, amount due from individuals........of the advances, amount over due........of the advances, amount over due		
4. DEPOSITS & OTHER ACCOUNTS			Considered bad & doubtful of recovery :		
(i) Fixed deposits			(ii) Medium term loans of which secured against		
(a) Individuals			(a) Government & other approved secu-rities		
(b) Central Co-operative Bank					
(c) Other societies					
(ii) Savings Bank deposits					
(a) Individuals					
(b) Central co-operative banks					
(c) Other societies					
(iii) Current deposits					
(a) Individuals					
(b) Central cooperative banks					
(c) Other societies					
(iv) Money at calls short notice					

	Rs.	Rs.		Rs	Rs.
5. BORROWINGS			(b) Other tangible securities of the advances, amount due from individuals of the advances, amount overdue :		
(i) From the Reserve Bank of India/State/ Central Cooperative Bank			Considered bad & doubtful of recovery		
(a) Short term loans cash credits & overdrafts of which secured against :			(iii) Long, term loans of which secured aginst		
(A) Government & other approve securities			(a) Government & other approved securities		
(B) Other tangible securities			(b) Other tangible securities of the advances, amount due from individuals of the advances amount overdue :		
(b) Medium term loans of which secured against			Considered bad & doubtful of recovery		
(A) Government & other approved securities			7. INTEREST RECEIVABLE		
(B) Other tangible securities			of which overdue............considered bad & doubtful of recovery		
(C) Long term loans of which secured against			8. BILLS RECEIVABLE BEING BILLS FOR COLLECTION AS PER CENTRES		
(A) Government & other approved securities			9. BRANCH ADJUSTMENTS		
(B) Other tangible securities					
(ii) *From the State Bank of India*					
(a) Short trem loans, Cash credits & overdrafts of which secured against					

	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.
(A) Government & other approved securities			10. PREMISES LESS DEPREUATION		
(B) Other tangible securities			11. FURNITURES & FIXTURES LESS DEPRECATION		
(b) Medium term loans of which secured against			12. OTHER ASSETS (to be specified)		
(A) Government & other approved securities			13. NON-BANKING ASSETS ACQURED IN SATISFACTION OF CLAIMS (staling mode of valuation)		
(B) Other tangible securities			14. PROFIT AND LOSS....		
(c) Long term loans : Of which secured against					
(A) Government & other approved securities					
(B) Other tangible securities					
(iv) Loans from other sources (source & security to be specified)					
6. BILLS FOR COLLECTION BEING BILLS RECEIVABLE As per contra—					
7. BRANCH ADJUSTMENTS					
8. OVER DUE INTEREST RESERVE					
9. INTEREST PAYABLE					

	Rs.	Rs.
10. OTHER LIABILITIES		
(i) Bills payable		
(ii) Unclaimed dividends		
(iii) Suspense		
(iv) Sundries		
11. PROFIT & LOSS		
Profit as per last balance sheet		
Less appropriation		
Add profit for the year brought from two profit & loss Account		
Total		
CONTINGENT LIABILITIES		
(i) Outstanding liabilities for guaranties Issued		
(ii) Others		
Total		

	Rs.	Rs.
Total		

NOTES

1. Fixed deposits will *include reserve fund deposits of* societies, employees providend fund deposits, staff security deposits, recurring deposits, cash certificates etc.
2. Under the items 'individuals' deposits from institutions other than cooperative banks & societies may be included.
3. Borrowings & Advances–short term loans will be for periods up to 15 months, medium-term loans from 15 months to *5 years & long term loans over 5 years.*
4. Other tangible security will include borrowings against gold & *gold ornaments, upledge of goods, mortgage of land etc.*

   General Instiuctions—The corresponding figures (to the nearest rupee, if so desired) for the year immediately preceding the year to which the balance sheet relates should be shown in separate columns.

(vi) प्राप्य बिल—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विपत्रों को शामिल किया जाता है जिन्हें बैंक ने अपने ग्राहकों की ओर से एकत्र करने हेतु प्राप्त किया है। जब इन विपत्रों की राशि प्राप्त हो जाती है तो उसे ग्राहकों को दे दिया जाता है। अतएव इन विपत्रों की राशि को चिट्ठे या तुलनपत्र के दोनों ओर दिखाया जाता है। वसूली से पूर्व ये बिल बैंक की लेनदारियाँ होती हैं; किन्तु वसूली के पश्चात् ये बैंक की देनदारियाँ बन जाती हैं।

(vii) स्वीकृतियाँ एवं बेचान—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विपत्रों की राशि को दिखाया जाता है जिन्हें बैंक अपने ग्राहकों की ओर से स्वीकार करता है। स्वीकृति के कारण ही ये बैंक की देनदारियाँ बन जाती हैं।

(viii) सामयिक तथा आकस्मिक देयताएं—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन दायित्वों को दिखाया जाता है जिनके बारे में न्यायालय या अन्य वैधानिक संस्थानों में वाद चल रहा होता है और बैंक को जिनके भुगतान की आशंका होती है।

(ix) लाभ-हानि शेष—इस शीर्षक के अन्तर्गत वार्षिक शुद्ध लाभ को दिखाया जाता है। यह सारा लाभ अंशधारियों को देय होता है। इसलिए यह बैंक की देयता होती है।

सम्पत्तियों एवं आस्तियों के अन्तर्गत प्रदर्शित मदों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम ने अपने संसाधनों का निवेश कैसे किया है और अपने दायित्वों के भुगतान के लिए क्या व्यवस्था की है? इस स्तम्भ के अन्तर्गत निम्नांकित मदें प्रदर्शित की जाती हैं—

(i) नकदी—प्रत्येक बैंक को अपनी व्यावसायिक, वैधानिक व निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु नकद-राशि सदैव अपने पास रखनी पड़ती है। इस राशि को सुरक्षा की प्रथम पंक्ति कहा जाता है।

(ii) मांग व अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशि—बैंक प्रायः सम्भाव्य काल के लिए भी ऋण स्वीकृत करता है। ये ऋण बैंकों, बड़े व्यापारियों व ब्रोकरों को दिए जाते

है, मांग पर देय होते हैं और अधिक से अधिक 15 दिनों के लिए स्वीकृत किए जाते हैं। इन्हें तीन भागों-(i) याचना ऋण (ii) पूर्व सूचना के बिना माग पर देय और (iii) अल्पकालीन ऋण -मे बाटा जा सकता है। भारत मे याचना-ऋण केवल अधिकोषों को दिए जाते है और सामान्यत. एक रात के लिए स्वीकृत किए जाते हैं। शेष दोनो ऋण सात से 15 दिनों के लिए दिए जाते हैं। याचना-ऋणों को बैंकों की सुरक्षा की दूसरी पंक्ति कहा जाता है।

(iii) अन्य अधिकोषों के पास शेष—गैर-अनुसूचित अधिकोषों को अपनी कुल जमाओं का 3% अपने पास या अन्य किसी अधिकोष के पास जमा रखना पड़ता है। अन्य अधिकोष भी व्यावसायिक दायित्वों की पूर्ति के लिए सहयोगी अधिकोषो के पास अपने खाते खोलते हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत इसी प्रकार की कुल राशि को दिखाया जाता है।

(iv) भुनाए तथा खरीदे गए बिल—व्यापारिक अधिकोष अपने ग्राहकों के विपत्रों की खरीद व कटौती का भी कार्य करते हैं। देय-तिथि पर क्रेता अधिकोष को इनकी पूर्ण धनराशि मिल जाती है। अतः इन विपत्रों की राशि प्रास्तियों के अन्तर्गत दिखाई जाती है। इनकी पुनर्कटौती सम्भव है। इन्हे सुरक्षा की तीसरी पंक्ति कहा जाता है।

(v) ऋण व अग्रिम—यह बैंक का एक मुख्य कार्य है। वह अपनी विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत अपने ग्राहकों को अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण देता है। ये ऋण सुरक्षित अथवा स्वच्छ (clean) हो सकते हैं। सुरक्षित ऋण प्रतिभूतियों अथवा माल के आधार पर उचित सीमान्तर रखते हुए दिए जाते हैं। स्वच्छ ऋण व्यक्तिगत गारण्टी अथवा बिना गारण्टी के स्वीकृत दिए जाते हैं।

(vi) निवेश—इस शीर्षक के अन्तर्गत बैंकों के कुल विनियोगों के मूल्य को दिखाया जाता है। निवेशों को सरकारी प्रतिभूतियों, न्यास प्रतिभूतियों, सहकारी संस्थाओं के अंशपत्रों मे विनियोजित राशि व अन्य विनियोगों के अन्तर्गत पृथक-पृथक दिखाया जाता है। इनका अंकित व बाजार मूल्य भी दिखाया जाता है।

(vii) परिसर, उपस्कर व अन्य सम्पत्तियां—इस शीर्षक के अन्तर्गत बैंक की समाप्त चल-अचल सम्पत्ति को विशुद्ध मूल्यों (ह्रास घटाकर) पर दिखाया जाता है।

(viii) स्वीकृतियां एवं बेचान—इस शीर्षक के अन्तर्गत दायित्व स्तम्भ में स्वीकृतियां एवं बेचान शीर्षक के अन्तर्गत दिखाए गए विपत्रों के योग को दिखाया जाता है।

गतवर्ष रु.	अग्रिमों का विवरण	चालू वर्ष रु.
........(1)	शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए बैंक के पास पूरी जमानत है।	
........(2)	शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए बैंक के पास ऋणकर्ताओं की ... ... व्यक्तिगत जमानत के सिवाय कोई दूसरी जमानत नहीं है।	
........(3)	शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए ऋणकर्ताओं की व्यक्तिगत जमानत........ के अतिरिक्त एक या एक से अधिक पार्टियों की व्यक्तिगत देयताओं के रूप में जमानत है।	
........(4)	संदिग्ध या अशोध्य माने गए ऋण जिनके लिए कोई व्यवस्था........ नहीं की गई है।	

NOTES

1. Fixed deposits will include reserve fund deposits of societies, employees providend fund deposits, staff *security deposits*, recurring deposits, cash certificates etc.
2. *Under the items 'individuals'* deposits from institutions other than cooperative banks & societies may be included.
3. Borrowings & Advances–short term loans will be for periods up to 15 months, medium-term loans from 15 months to 5 years & long term loans over 5 years.
4. *Other tangible security will include* borrowings against gold & gold ornaments, upledge of goods, mortgage of land etc.

General Instluctions—The corresponding figures (to the nearest rupee, if so desired) for the year immediately preceding the year to which the balance sheet relates should be shown in *separate columns.*

(vi) अन्य बिल—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विपत्रों को शामिल किया जाता है जिन्हें बैंक ने अपने ग्राहकों की ओर से एकत्र करने हेतु प्राप्त किया है। जब इन विपत्रों की राशि प्राप्त हो जाती है तो उसे ग्राहकों को दे दिया जाता है। अतएव इन विपत्रों की राशि को चिट्ठे या तुलनपत्र के दोनों ओर दिखाया जाता है। वसूली से *पूर्व ये बिल बैंक की लेनदारियाँ होती हैं; किन्तु वसूली के पश्चात् ये बैंक की देनदारियाँ* बन जाती हैं।

(vii) स्वीकृतियाँ एवं बेचान—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विपत्रों की राशि को दिखाया जाता है जिन्हें बैंक अपने ग्राहकों की ओर से स्वीकार करता है। स्वीकृति के कारण ही ये बैंक की देनदारियाँ बन जाती हैं।

(viii) *सामयिक तथा आकस्मिक देयताएं—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन दायित्वों* को दिखाया जाता है जिनके बारे में न्यायालय या अन्य वैधानिक संस्थानों में वाद चल रहा होता है और बैंक को जिनके भुगतान की आशंका होती है।

(ix) लाभ-हानि शेष—इस शीर्षक के अन्तर्गत वार्षिक शुद्ध लाभ को दिखाया जाता है। यह सारा लाभ अंशधारियों को देय होता है। इसलिए यह बैंक की देयता होती है।

सम्पत्तियों एवं आस्तियों के अन्तर्गत प्रदर्शित मदों से ज्ञात होता है कि अधिकोष ने अपने संसाधनों का विनियोग कैसे किया है और अपने दायित्वों के भुगतान के लिए क्या व्यवस्था की है? इस खण्ड के अन्तर्गत निम्नांकित मदें प्रदर्शित की जाती हैं—

(i) नकदी—प्रत्येक बैंक को अपनी व्यावसायिक, वैधानिक व निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु नकद राशि सदैव अपने पास रखनी पड़ती है। इस राशि को सुरक्षा की प्रथम पंक्ति कहा जाता है।

(ii) मांग व अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशि—बैंक प्रायः अल्पकाल के लिए भी ऋण स्वीकार करता है। ये ऋण बैंकों, बड़े व्यापारियों व सटोरियों को दिए जाते

है, माग पर देय होते है और अधिक से अधिक 15 दिनों के लिए स्वीकृत किए जाते हैं। इन्हें तीन भागो-(i) याचना ऋण (ii) पूर्व सूचना के बिना माग पर देय और (iii) अल्पकालीन ऋण -मे बाटा जा सकता है। भारत मे याचना-ऋण केवल अधिकोषो को दिए जाते है और सामान्यत: एक रात के लिए स्वीकृत किए जाते हैं। शेष दोनो ऋण सात से 15 दिनो के लिए दिए जाते हैं। याचना-ऋणों को बैंको की सुरक्षा की दूसरी पंक्ति कहा जाता है।

(iii) अन्य अधिकोषों के पास शेष – गैर-अनुसूचित अधिकोषों को अपनी कुल जमाओं का 3% अपने पास या अन्य किसी अधिकोष के पास जमा रखना पड़ता है। अन्य अधिकोष भी व्यावसायिक दायित्वों की पूर्ति के लिए सहयोगी अधिकोषो के पास अपने खाते खोलते हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत इसी प्रकार की कुल राशि को दिखाया जाता है।

(iv) भुनाए तथा खरीदे गए बिल—व्यापारिक अधिकोष अपने ग्राहको के विपत्रो की खरीद व कटौती का भी कार्य करते हैं। देय-तिथि पर क्रेता अधिकोष को इनकी पूर्ण धनराशि मिल जाती है। अतः इन विपत्रो की राशि आस्तियों के अन्तर्गत दिखाई जाती है। इनकी पुनर्कटौती सम्भव है। इन्हें सुरक्षा की तीसरी पंक्ति कहा जाता है।

(v) ऋण व अग्रिम—यह बैंक का एक मुख्य कार्य है। वह अपनी विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत अपने ग्राहको को अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण देता है। ये ऋण सुरक्षित अथवा स्वच्छ (clean) हो सकते हैं। सुरक्षित ऋण प्रतिभूतियों अथवा माल के आधार पर उचित सीमान्तर रखते हुए दिए जाते हैं। स्वच्छ ऋण व्यक्तिगत गारण्टी अथवा बिना गारण्टी के स्वीकृत दिए जाते हैं।

(vi) निवेश—इस शीर्षक के अन्तर्गत बैंको के कुल विनियोगों के मूल्य को दिखाया जाता है। निवेशों को सरकारी प्रतिभूतियो, प्रन्यास प्रतिभूतियो, सहकारी संस्थाओं के अंशपत्रो मे विनियोजित राशि व अन्य विनियोगों के अन्तर्गत पृथक-पृथक दिखाया जाता है। इनका अंकित व बाजार मूल्य भी दिखाया जाता है।

(vii) परिसर, उपस्कर व अन्य सम्पत्तियां—इस शीर्षक के अन्तर्गत बैंक की समाप्त चल-अचल सम्पत्ति को विशुद्ध मूल्यों (ह्रास घटाकर) पर दिखाया जाता है।

(viii) स्वीकृतियां एवं बेचान—इस शीर्षक के अन्तर्गत दायित्व स्तम्भ में स्वीकृतियां एवं बेचान शीर्षक के अन्तर्गत दिखाए गए विपत्रों के योग को दिखाया जाता है।

गतवर्ष रु.	अग्रिमों का विवरण	चालू वर्ष रु.
....	(1) शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए बैंक के पास पूरी जमानत है।	
....	(2) शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए बैंक के पास ऋणकर्त्ताओं की व्यक्तिगत जमानत के सिवाय कोई दूसरी जमानत नहीं है।	
....	(3) शोध्य माने गए ऋण जिनके लिए ऋणकर्त्ताओं की व्यक्तिगत जमानत के अतिरिक्त एक या एक से अधिक पार्टियों की व्यक्तिगत देयताओं के रूप मे जमानत है।	
....	(4) संदिग्ध या अशोध्य माने गए ऋण जिनके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई है।	

........(5) बैंक के निदेशकों या अधिकारियों से या उनमें से किसी से पृथक रूप .... से या किन्हीं अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से प्राप्य ऋण।

........(6) उन कम्पनियों या फर्मों से प्राप्य ऋण जिनमें निदेशकों, साझेदारों या .... प्रबन्ध एजेन्टों के रूप में या गैर-सरकारी कम्पनियों के मामले में सदस्यों के रूप में बैंक निदेशक हित-बद्ध हैं।

........(7) बैंक के निदेशकों या प्रबन्धकों का अधिकारियों को या उनमें से किसी .... को पृथक रूप से या किन्हीं अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से इस वर्ष के दौरान किसी समय दिए गए अग्रिमों की अधिकतम कुल राशि जिसमें अस्थाई अग्रिम भी शामिल है।

........(8) उन कम्पनियों या फर्मों को जिनमें निदेशकों, साझेदारों या प्रबन्ध .... एजेन्टों के रूप में या गैर-सरकारी कम्पनियों के मामले में सदस्य के रूप में बैंक के निदेशक हितबद्ध हों, इस वर्ष के दौरान दिए गए अग्रिमों की अधिकतम कुल राशि जिसमें अस्थाई अग्रिम भी शामिल है।

........(9) बैंकिंग कम्पनियों, बैंकिंग कम्पनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) .... अधिनियम 1970 के अन्तर्युक्त बैंकों और विदेशी बैंकों से प्राप्य।

(C) लाभ-हानि खाता—

लाभ-हानि खाता अन्तिम खातों का एक अनिवार्य भाग होता है और इसे बैंकिंग नियमन अधिनियम की अनुसूची तीन के 'ख' भाग या उससे मिलते-जुलते रूप में तैयार किया जाता है। इसमें गत वर्ष व चालू वर्ष के लाभ-हानि के मदों को प्रदर्शित किया जाता है। इस खाते में बाईं ओर व्यय व दाईं ओर आय की मदें प्रदर्शित की जाती हैं।

सामान्यतः इस खाते में निम्नांकित मदें प्रदर्शित की जाती हैं—

व्यय	आय
1. जमा तथा उधार पर दिया गया ब्याज	1. ब्याज और बट्टा
2. वेतन, भत्ते और भविष्य निधि	2. कमीशन, विनिमय शुल्क, दलाली
3. निदेशकों तथा स्थानीय समिति के सदस्यों की फीस व भत्ते	3. किराया
4. किराया, कर, बीमा, रोशनी आदि	4. निवेशों, सोना, चांदी, भूमि आदि के विक्रय से शुद्ध लाभ
5. विधि प्रभार	5. निवेशों सोना, चांदी, भूमि आदि के पुनर्मूल्यांकन से शुद्ध लाभ
6. डाक, तार, टेलिफोन और टिकट खर्च	6. गैर-बैंकिंग आस्तियों से आय व ऐसी आस्तियों की बिक्री या लेनदेन से लाभ
7. लेखा परीक्षकों की फीस	7. अन्य प्राप्तियां
8. बैंक की सम्पत्ति पर मूल्यह्रास व मरम्मत	
9. लेखन सामग्री, छपाई व विज्ञापन आदि	
10. गैर-बैंकिंग आस्तियों की बिक्री से हानि	
11. अन्य व्यय	
12. लाभ शेष	

FORM B

FORM OF PROFIT AND LOSS ACCOUNT

Profit & loss account for the year ended..........

EXPENDITURE	Rs.	INCOME	Rs.
1. Interest on deposits borrowings etc.		1. Interest & discount	
2. Salaries and allowances & provident fund.		2. Commission, exchange & brokerage	
3. Directors and local committee members' fees & allowances		3. Subsidies & domations	
4. Rent, taxes, insurance lighting etc.		4. Income from non-banking assets & profit fnom sale of or dealing with such assets	
5. Law charges		5. Other receipts	
6. Postage, telegrams and telephone charges		6. Loss (if any)	
7. Auditors fees			
8. Depreciation on and repairs to property			
9. Stationery, printing and advertisement etc.			
10. Loss from sale of or dealing with non banking assets			
11. Other expenditure			
12. Balance & profit			
Tolal		Tolal	

General Instructions: The corresponding figures (to the nearest rupee, if so desired) for the year immedialety preceding the year to which the profit & loss account relates should be shown in separate columns.

लाभ-हानि खाते के साथ एक नोट लगाया जाता है जिसमें अध्यक्ष व महाप्रबन्धक के वेतन आदि पर खर्च की गई कुल राशि व वेतन में शामिल बोनस आदि का पृथक से प्रदर्शन किया जाता है।

इस प्रलेख पर भी उन समस्त अधिकारियों व व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं, जो कि तुलन-पत्र पर हस्ताक्षर करते हैं।

लाभ-हानि की विभिन्न मदों व उसके स्वरूप को समझने के लिए युनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया के लाभ-हानि खाते की नकल दी जा रही है। (पृष्ठ 371)

अंकेक्षण (3)

अधिकोष लेखों का अंकेक्षण—

भारत में अधिकोष लेखों का अंकेक्षण एक वैधानिक आवश्यकता है। इस वैधानिक आवश्यकता के कारण भारत में कार्यरत प्रत्येक अधिकोष को अपने लेखों का अंकेक्षण करवाना पड़ता है और अन्तिम खातों को अंकेक्षण से पूर्व अंशधारियों, भारत के राष्ट्रपति, रिजर्व बैंक व प्रमण्डल पंजीयक के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
[30 (1) & 31]

अन्तिम खातों का अंकेक्षण विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता है। सम्प्रति भारत में चार्टर्ड लेखापालों को अंकेक्षण हेतु मान्यता प्राप्त है। अतएव भारतीय अधिकोषों को अपने अन्तिम खातों का अंकेक्षण चार्टर्ड लेखापालों से ही करवाना पड़ता है; किन्तु विदेशी अधिकोष अपने देश के मान्यता प्राप्त अंकेक्षकों से भी अपने अन्तिम खातों का अंकेक्षण करवा सकते हैं।

अंकेक्षकों की नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति व पदमुक्ति अंशधारियों द्वारा अधिकोष की वार्षिक सामान्य सभा में एक साधारण प्रस्ताव द्वारा की जाती है, किन्तु सम्बन्धित अधिकोष को अपने इस कार्य के लिए रिजर्व बैंक की पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती है।
[धारा 30 (1A)]

एक अधिकोष एक या एक से अधिक अंकेक्षकों की नियुक्ति कर सकता है। अंकेक्षकों की संख्या अधिकोष के कार्यक्षेत्र व कार्य की मात्रा को दृष्टिगत रखते हुए निर्धारित की जाती है। सामान्यतः राष्ट्रीयकृत अधिकोषों में तीन व निजी अधिकोषों में एक अंकेक्षक की नियुक्ति की जाती है।

अधिकोषों के अंकेक्षण को दो—सामान्य व विशिष्ट—भागों में बाँटा जा सकता है। जब एक अंकेक्षक अपने अंशधारियों के निर्णय हेतु किसी वर्ष पर एक अधिकोष के लेखों का अंकेक्षण करता है तो उसे सामान्य अंकेक्षण कहा जाता है और जब वह रिजर्व बैंक के किसी आदेश के अन्तर्गत अपने अधिकोष के किसी विशिष्ट सौदे या सौदों के किसी वर्ग का अंकेक्षण करता है तो उसे विशिष्ट अंकेक्षण कहा जाता है। इस अंकेक्षण हेतु रिजर्व बैंक अधिकोष अंकेक्षक को विशेष आदेश देता है और अंकेक्षक को इस आदेश

का पालन करना पड़ता है। रिजर्व बैंक जन हित, अधिकोष हित अथवा निक्षेपकों के हितों की रक्षार्थ विशिष्ट अंकेक्षण का आदेश निर्गमित करता है। इस अंकेक्षण के पश्चात् अंकेक्षक रिजर्व बैंक के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और उसकी एक प्रति सम्बन्धित अधिकोष को भी देता है। इस अंकेक्षण का सम्पूर्ण वित्तीय-भार सम्बन्धित अधिकोष को वहन करना पड़ता है। [धारा 30(1C)]

अधिकोष अंकेक्षकों को अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह हेतु वे ही अधिकार, सुविधाएं व दण्ड (कर्त्तव्यों की अवहेलना पर) प्राप्त हैं जो कि अन्य प्रमण्डलों के अंकेक्षकों को भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 227 के अन्तर्गत सुलभ हैं। [धारा 30 (2)]

अधिकोष अंकेक्षक अन्य बातों (भारतीय प्रमण्डल अधिनियम, धारा 227) के अतिरिक्त अपने प्रतिवेदन में भारतीय अधिकोषों के लिए निम्नांकित तथ्यों का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं— [धारा 30 (3)]

(a) उसके द्वारा मांगी गई सूचनाओं एवं स्पष्टीकरणों का उत्तर संतोषजनक मिला या नहीं;
(b) अधिकोष द्वारा सम्पन्न व्यवहार अधिकोष के कार्यक्षेत्र में थे या नहीं;
(c) शाखाओं से प्राप्त प्रविवरण अंकेक्षण की दृष्टि से समुचित थे या नहीं;
(d) लाभ-हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ या हानि वस्तुतः सही है या नहीं और
(e) अन्य ऐसी कोई सूचना जिसे वह अंशधारियों के ध्यान में लाना उचित समझता हो।

भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 228 की व्यवस्थानुसार एक अधिकोष को अपनी प्रत्येक शाखा का अपने अंकेक्षक से अथवा ऐसे किसी व्यक्ति से अंकेक्षण करवाना पड़ता है जो कि अंकेक्षण के लिए सक्षम होता है किन्तु प्रमण्डल अधिनियम की धारा 228 (4) की व्यवस्थानुसार केन्द्रीय सरकार किसी भी शाखा कार्यालय को इस अनिवार्य अंकेक्षण से मुक्त कर सकती है। इस मुक्ति-हेतु सम्बन्धित अधिकोष को केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है किन्तु इस प्रार्थना-पत्र को प्रस्तुत करने से पूर्व उसे अपने अंशधारियों की बैठक में इस आशय का एक साधारण प्रस्ताव पारित करवाना पड़ता है।

वैधानिक अंकेक्षण के अतिरिक्त अधिकोष आन्तरिक अंकेक्षण की भी व्यवस्था करते हैं। इस हेतु उन्होंने अंकेक्षण विभाग की स्थापना कर रखी है।

अंकेक्षण में अपेक्षित सावधानियाँ—

एक अधिकोष अंकेक्षक को अपने उत्तरदायित्वों का भली प्रकार से निर्वाह करना पड़ता है अन्यथा उसे भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 227 द्वारा प्रस्तावित दण्ड और व्यावसायिक प्रयत्न का भागी बनना पड़ता है। अपने उत्तरदायित्व के सफल निर्वाह के लिए उसे निम्नांकित सावधानियों को काम में लेना चाहिए—

(अ) विभिन्न वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन—

भारतीय अधिकोषों का नियमन एवं नियन्त्रण अनेक अधिनियमों यथा (i) बैंकिंग नियमन अधिनियम (ii) भारतीय प्रमण्डल अधिनियम (iii) भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम (iv) विदेशी विनिमय नियन्त्रण अधिनियम (v) स्टेट बैंक अधिनियम (vi) स्टेट बैंक (सहायक अधिकोष) अधिनियम

लाभ-हानि खाते के साथ एक नोट लगाया जाता है जिसमे अध्यक्ष व महाप्रबन्धक के वेतन आदि पर खर्च की गई कुल राशि व वेतन मे शामिल बोनस आदि का पृथक से प्रदर्शन किया जाता है।

इस प्रलेख पर भी उन समस्त अधिकारियो व व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं, जो कि तुलन-पत्र पर हस्ताक्षर करते है।

लाभ-हानि की विभिन्न मदो व उसके स्वरूप को समझने के लिए युनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया के लाभ-हानि खाते की नकल दी जा रही है। (पृष्ठ 371)

अंकेक्षण (3)

अधिकोष लेखों का अंकेक्षण—

भारत में अधिकोष लेखों का अंकेक्षण एक वैधानिक आवश्यकता है। इस वैधानिक आवश्यकता के कारण भारत मे कार्यरत प्रत्येक अधिकोष को अपने लेखो का अंकेक्षण करवाना पड़ता है और अन्तिम खातो को अंकेक्षण से पूर्व अंशधारियो, भारत के राष्ट्रपति, रिजर्व बैंक व प्रमण्डल पंजीयक के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। [30 (1) & 31]

अन्तिम खातो का अंकेक्षण विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता है। सम्प्रति भारत में चार्टेड लेखापालों को अंकेक्षण हेतु मान्यता प्राप्त है। अतएव भारतीय अधिकोषो को अपने अन्तिम खातो का अंकेक्षण चार्टेड लेखापालो से ही करवाना पड़ता है; किन्तु विदेशी अधिकोष अपने देश के मान्यता प्राप्त अंकेक्षको से भी अपने अन्तिम खातो का अंकेक्षण करवा सकते है।

अंकेक्षकों की नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति व पदमुक्ति अंशधारियो द्वारा अधिकोष की वार्षिक सामान्य सभा मे एक साधारण प्रस्ताव द्वारा की जाती है; किन्तु सम्बन्धित अधिकोष को अपने इस कार्य के लिए रिजर्व बैंक की पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती है। [धारा 30 (1A)]

एक अधिकोष एक या एक से अधिक अंकेक्षको की नियुक्ति कर सकता है। अंकेक्षकों की संख्या अधिकोष के कार्यक्षेत्र व कार्य की मात्रा को दृष्टिगत रखते हुए निर्धारित की जाती है। सामान्यत: राष्ट्रीयकृत अधिकोषों में तीन व निजी अधिकोषो मे एक अंकेक्षक की नियुक्ति की जाती है।

अधिकोषो के अंकेक्षण को दो—सामान्य व विशेष—भागो में बाँटा जा सकता है। जब एक अंकेक्षक अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह हेतु निजी प्रेरणा पर एक अधिकोष के लेखों का अंकेक्षण करता है तो उसे सामान्य अंकेक्षण कहा जाता है और जब वह रिजर्व बैंक के किसी आदेश के अन्तर्गत अपने अधिकोष के किसी विशिष्ट सौदे या सौदो के किसी वर्ग का अंकेक्षण करता है तो उसे विशिष्ट अंकेक्षण कहा जाता है। इस अंकेक्षण हेतु रिजर्व बैंक अधिकोष अंकेक्षक को विशेष आदेश देता है और अंकेक्षक को इस आदेश

का पालन करना पड़ता है। रिजर्व बैंक जन हित, अधिकोष हित अथवा निक्षेपकों के हितों की रक्षार्थ विशिष्ट अंकेक्षण का आदेश निर्गमित करता है। इस अंकेक्षण के पश्चात् अंकेक्षक रिजर्व बैंक के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और उसकी एक प्रति सम्बन्धित अधिकोष को भी देता है। इस अंकेक्षण का सम्पूर्ण वित्तीय-भार सम्बन्धित अधिकोष को वहन करना पड़ता है। [धारा 30(1C)]

अधिकोष अंकेक्षकों को अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह हेतु वे ही अधिकार, सुविधाएं व दण्ड (कर्त्तव्यों की अवहेलना पर) प्राप्त हैं जो कि अन्य प्रमण्डलों के अंकेक्षकों को भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 227 के अन्तर्गत सुलभ हैं। [धारा 30 (2)]

अधिकोष अंकेक्षक अन्य बातों (भारतीय प्रमण्डल अधिनियम, धारा 227) के अतिरिक्त अपने प्रतिवेदन में भारतीय अधिकोषों के लिए निम्नांकित तथ्यों का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं— [धारा 30 (3)]

(a) उसके द्वारा मांगी गई सूचनाओं एवं स्पष्टीकरणों का उत्तर संतोषजनक मिला या नहीं;
(b) अधिकोष द्वारा सम्पन्न व्यवहार अधिकोष के कार्यक्षेत्र में थे या नहीं;
(c) शाखाओं से प्राप्त प्रविवरण अंकेक्षण की दृष्टि से समुचित थे या नहीं;
(d) लाभ-हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ या हानि वस्तुतः सही है या नहीं और
(e) अन्य ऐसी कोई सूचना जिसे वह अंशधारियों के ध्यान में लाना उचित समझता हो।

भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 228 की व्यवस्थानुसार एक अधिकोष को अपनी प्रत्येक शाखा का अपने अंकेक्षक से अथवा ऐसे किसी व्यक्ति से अंकेक्षण करवाना पड़ता है जो कि अंकेक्षण के लिए सक्षम होता है किन्तु प्रमण्डल अधिनियम की धारा 228 (4) की व्यवस्थानुसार केन्द्रीय सरकार किसी भी शाखा कार्यालय को इस अनिवार्य अंकेक्षण से मुक्त कर सकती है। इस मुक्ति-हेतु सम्बन्धित अधिकोष को केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है किन्तु इस प्रार्थना-पत्र को प्रस्तुत करने से पूर्व उसे अपने अंशधारियों की बैठक में इस आशय का एक साधारण प्रस्ताव पारित करवाना पड़ता है।

वैधानिक अंकेक्षण के अतिरिक्त अधिकोष आन्तरिक अंकेक्षण की भी व्यवस्था करते हैं। इस हेतु उन्होंने अंकेक्षण विभाग की स्थापना कर रखी है।

अंकेक्षण में अपेक्षित सावधानियां—

एक अधिकोष अंकेक्षक को अपने उत्तरदायित्वों का भली प्रकार से निर्वाह करना पड़ता है अन्यथा उसे भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 227 द्वारा प्रस्तावित दण्ड और व्यावसायिक पतन का भागी बनना पड़ता है। अपने उत्तरदायित्व के सफल निर्वाह के लिए उसे निम्नांकित सावधानियों को काम में लेना चाहिए—

(अ) **विभिन्न वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन—**
भारतीय अधिकोषों का नियमन एवं नियंत्रण अनेक अधिनियमों यथा (i) बैंकिंग नियमन अधिनियम (ii) भारतीय प्रमण्डल अधिनियम (iii) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम (iv) विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम (v) स्टेट बैंक अधिनियम (vi) स्टेट बैंक (सहायक

(vii) सनदी लेखापाल अधिनियम (viii) अधिकोष प्रमण्डल (उपक्रमों का अर्जन एवं अन्तरण) और उनके अन्तर्गत निर्मित नियमों द्वारा होता है। अतएव अधिकोष अंकेक्षकों को अपने विभिन्न दायित्वों के सफल एवं निर्विघ्न निर्वाह के लिए इन अधिनियमों के अधिकोष सम्बन्धी प्रावधानों व उनके लिए निर्मित नियमों का भली प्रकार से अवलोकन कर लेना चाहिए। इस अध्ययन से उनके अंकेक्षण के सैद्धान्तिक पक्ष को बल प्राप्त होगा।

(ब) विभिन्न वैधानिक प्रावधानों की पूर्ति—देश में कार्यरत अधिकोषों को "भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम" के अनेक प्रावधानों की पूर्ति करनी पड़ती है। अतएव अधिकोष अंकेक्षकों को इन प्रावधानों की पूर्ति सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र करनी चाहिएं और इस तथ्य से आश्वस्त होना चाहिए कि अधिकोषों ने इन प्रावधानों की अवहेलना नहीं की है। अंकेक्षक को सामान्यतः (i) बैंकिंग व्यवसाय (ii) न्यूनतम पूंजी (iii) लाभांश वितरण (iv) लाभ स्थानान्तरण (v) नकद कोष (vi) तरल कोष (vii) सम्पत्तियों का अनुपात (ix) प्रबन्धकों को दत्त राशि आदि के बारे में सूचनाएं एकत्र करनी चाहिएं, उनकी वैधानिक प्रावधानों के साथ तुलना करनी चाहिए और दोषों व कमियों का अपने प्रतिवेदन में उल्लेख करना चाहिए।

(स) विनियोगों एवं ऋणों की जांच—अधिकोष अंकेक्षक को अपने अधिकोष के विनियोगों की लाभदायकता व सुरक्षा की जांच करनी चाहिए। इस हेतु उसे विनियोग प्रलेखों व विलेखों का भौतिक सत्यापन करना चाहिए, उनके बाजार मूल्यों व पुस्त मूल्यों को ज्ञात करना चाहिए और इस तथ्य से आश्वस्त होना चाहिए कि तुलना में उनके ह्रास के लिए समुचित व्यवस्था कर दी गई है व उन्हें बाजार मूल्य अथवा क्रय मूल्य—जो भी कम हो—पर दिखाया गया है। अंशधारियों को सही स्थिति से अवगत करने के लिए उसे तुलन-पत्र में विनियोगों के दोनों मूल्यों—बाजार मूल्य व पुस्त मूल्य—को दिखाना चाहिए। प्राप्य विपत्रों की जांच करते समय उसे यह देखना चाहिए कि वे विपत्र श्रेष्ठ-कोटि के है और उनकी कटौती उचित दरों पर की गई है। विनियोगों की जांच करते समय विनियोग सम्बन्धी मूल प्रस्तावों का भी अवलोकन करना चाहिए।

ऋणों व गारण्टियों के अंकेक्षण के समय-अंकेक्षक को निम्नांकित बिन्दुओं को दृष्टिगत रखना चाहिए—

(1) अधिकांश ऋण अल्पकालीन हैं;
(2) पुराने ऋणों का लगातार नवीनीकरण नहीं किया जा रहा है;
(3) ऋण समुचित मात्रा में सुरक्षित हैं और उनके लिए उचित सीमान्तर रखा गया है। सुरक्षा की यथेष्ठता के लिए प्रतिभूतियों का भौतिक सत्यापन किया जाना चाहिए;

(4) ब्याज की दरें–प्राप्य व देय–उपयुक्त हैं और दोनों में अत्यधिक अन्तर नहीं है।

(5) गारण्टी पर दिए गए ऋणों की गारण्टी व अन्य सम्बद्ध शर्तें अधिकोष हितों के प्रतिकूल नहीं हैं व ऋणी पक्ष के साथ अनुचित पक्षपात नहीं किया गया है।

(6) मूल ऋण प्रस्तावों का अध्ययन करना चाहिए।

(7) बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 20, 21 व 21 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किया गया है।

(द) प्रबन्धकों को दत्त राशि—एक अधिकोष अंकेक्षक को अपने अधिकोष के अंकेक्षण के समय–(i) अधिकोष अधिकारियों एवं कर्मचारियों को देय पारिश्रमिक (ii) अधिकोषों में निहित उनके हितों (iii) उनकी आर्थिक सुदृढ़ता और (iv) उनके अन्य व्यवसाय आदि की जांच करनी चाहिए व वैधानिक प्रावधानों अथवा रिजर्व बैंक के निर्देशों के प्रतिकूल तथ्यों का पता लगने पर उसका अपने प्रतिवेदन में उल्लेख करना चाहिए।

(इ) अन्तिम खाते—अधिकोषों के अन्तिम खाते एक विशिष्ट पद्धति से तैयार किए जाते हैं। अतएव इनके बारे में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने से पूर्व अंकेक्षक को इस तथ्य से आश्वस्त हो जाना चाहिए कि उन्हें विधि सम्मत रूप में तैयार किया गया है और उनसे सम्बन्धित समस्त औपचारिकताओं को पूर्ण कर लिया गया है।

(ई) अन्य—उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त एक अंकेक्षक को निम्नांकित बातों पर भी ध्यान देना चाहिए—

(1) अधिकोष की समस्त शाखाओं का अंकेक्षण हुआ है या नहीं,

(2) उसे कितनी शाखाओं का अंकेक्षण करना है,

(3) अधिकोष ने आन्तरिक अंकेक्षण की समुचित व्यवस्था कर रखी है या नहीं,

(4) क्या अधिकोष ने गुप्त कोषों का निर्माण कर रखा है,

(5) विभिन्न खातों की दैव निदर्शन पद्धति से जांच,

(6) समस्त व्यय वाउचरों पर किसी अधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर हैं या नहीं और अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं हुआ है;

(7) अधिकोष के नकद एवं उधार सौदों के यथेष्ट रेकार्ड व फाइलें रखी जा रही हैं या नहीं हैं।

जब एक अंकेक्षक जानबूझकर किसी तथ्य को छिपाता है या छिपाने की चेष्टा करता है तो उसे प्रमण्डल अधिनियम की धारा 462 (1) के अन्तर्गत 3 वर्ष की जेल तथा आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। अतः अंकेक्षक को पूर्ण सावधानी व पूर्ण ईमानदारी से कार्य करने की आवश्यकता होती है।

प्रश्न

1. व्यापारिक अधिकोषों को वित्तीय लेखों की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? सविस्तार समझाइए।
2. व्यापारिक अधिकोषों द्वारा रखी जाने वाली निम्नांकित पुस्तकों का वर्णन कीजिये—(i) स्वच्छ रोकड़ बही (ii) सामान्य खाता बही (iii) बैंक कैश स्क्रोल और (iv) खाता बही।
3. बैंकिंग नियमन अधिनियम की बैंकों के अन्तिम खातों सम्बन्धी व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
4. व्यापारिक अधिकोषों का तुलन-पत्र कैसे बनाया जाता है ? इसकी मुख्य-मुख्य मदों का वर्णन कीजिए।
5. व्यापारिक अधिकोषों के लाभ-हानि खाते के वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिए व उसका एक काल्पनिक नमूना दीजिए।
6. व्यापारिक अधिकोषों के अन्तिम खातों के अंकेक्षण सम्बन्धी वैधानिक व्यवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

18

समाशोधन-गृह

(Clearing-Houses)

परिभाषा—

समाशोधन गृह अधिकोषों का एक सामान्य संगठन होता है जो उनके प्राप्य एवं देय धनादेशों के विनिमय–पुस्तकीय प्रविष्टियों एवं नकद भुगतान द्वारा–कार्य का विधिवत् संचालन करता है। प्रो० टॉजिग के शब्दों में, "समाशोधन-गृह किसी स्थान के अधिकोषों का एक सामान्य संगठन है जिसका मुख्य उद्देश्य धनादेशों द्वारा निर्मित पारस्परिक दायित्वों का निपटारा या भुगतान करना होता है।" इस परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि (i) समाशोधन-गृह एक स्थान पर कार्यरत अधिकोषों का एक सामान्य संगठन होता है (ii) यह संगठन सदस्य अधिकोषों के धनादेशों द्वारा निर्मित दायित्वों का भुगतान या निपटारा करता है और यह (iii) एक सामान्य स्थान पर पूर्व निर्मित नियमों के अन्तर्गत कार्य करता है।

समाशोधन-गृह के साथ-साथ समाशोधन शब्द का अर्थ जानना भी आवश्यक है। इंग्लैण्ड की बुलियन कमेटी, 1810 के अनुसार, "समाशोधन एक ऐसी पद्धति है जिसके अन्तर्गत समस्त लेखपत्र प्रतिदिन एक सामान्य स्थान पर लाए जाते हैं और वहां पर इनका एक-दूसरे से संतुलन किया जाता है। इस प्रकार समाशोधन के अन्तर्गत अधिकोष अपने ग्राहकों से प्राप्त संग्रहण योग्य धनादेशों का परस्पर विनिमय करते हैं और पारस्परिक दायित्वों का निपटारा या भुगतान करते हैं।

समाशोधन का इतिहास—लन्दन समाशोधन-गृह को विश्व का प्रथम समाशोधन गृह माना जाता है। इस गृह की 1775 में विधिवत् स्थापना की गई थी; किन्तु विद्वानों की यह मान्यता है कि समाशोधन का कार्य इससे पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था।

समाशोधन-गृहों की स्थापना के पूर्व प्रत्येक संग्राहक अधिकोष अपने धनादेशों के संग्रहणार्थ अपने किसी कार्यालय सहायक को शोधी अधिकोष के पास भेजा करता था। यह पद्धति अत्यन्त कष्ट एवं श्रम साध्य थी। अतएव विभिन्न अधिकोषों के सहायकों ने अपने श्रम एवं समय में बचत करने की दृष्टि से धनादेशों के संग्रहणार्थ अनधिकृत रूप से 'कॉफी निकेतनों' में मिलना प्रारम्भ कर दिया। अधिकोषों के तत्कालीन अधिकारियों एवं संचालकों ने अपने कर्मचारियों की इस कार्यवाही का प्रबल विरोध किया, उन्हें फटकारा और भविष्य में 'कॉफी निकेतनों' में धनादेशों का निपटारा न करने हेतु सख्त आदेश दिए। किन्तु कालान्तर में इन अधिकारियों एवं संचालकों को अपनी भूल का एहसास हुआ और फलतः उन्होंने अपने कर्मचारियों द्वारा प्रतिपादित

इस पद्धति को एक सुनोयोजित ढंग से अपनाने का निश्चय किया। श्री गिलबर्ट के अनुसार 'समाशोधन-गृह' श्री इरविन नामक एक अधिकोष कर्मचारी की देन है।

संचालन—समाशोधन-गृहों का संचालन देश के केन्द्रीय अधिकोष, उसके प्रतिनिधि व्यापारिक अधिकोष अथवा अन्य किसी व्यापारिक अधिकोष द्वारा किया जाता है। सामान्यतः संचालन की प्रथम दो अवस्थाओं को प्राथमिकता दी जाती है। जब देश का भौगोलिक आकार काफी बड़ा होता है व केन्द्रीय अधिकोष के कार्यालय प्रत्येक बड़े व्यावसायिक और औद्योगिक स्थान पर नहीं होते हैं तब उस देश का केन्द्रीय अधिकोष समाशोधन-गृहों की देखरेख एवं संचालन का भार ऐसे अधिकोषों को सौंप देता है जिसकी देश के कोने-कोने में शाखाएं होती हैं; किन्तु जिन स्थानों पर केन्द्रीय अधिकोष के कार्यालय होते हैं वहां पर वह स्वयं इन गृहों का संचालन करता है। सामान्यतः समाशोधन-गृह संचालक अधिकोष के भवन में कार्य करते हैं। जो अधिकोष समाशोधन-गृहों का संचालन करता है उसे संचालक अधिकोष कहा जाता है और यह अधिकोष इन गृहों का पूर्व निर्धारित नियमों व व्यवस्था के अन्तर्गत संचालन करता है।

इन गृहों की स्थापना उन व्यावसायिक स्थानों पर की जाती है जहां पर अनेक अधिकोषों की शाखाएं या अधिकोष कार्यरत होते हैं। सामान्यतः एक गृह की स्थापना के लिए 5 शाखाओं का होना आवश्यक माना जाता है।

सदस्य अधिकोष अधिकृत—समाशोधन-गृहों द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ केवल सदस्य अधिकोषों को प्राप्त होता है। अतएव जिन स्थानों पर इन गृहों की स्थापना की जाती है वहां पर कार्यरत प्रत्येक अधिकोष इसकी सदस्यता प्राप्त करने का प्रयास करता है। प्रत्येक सदस्य अधिकोष को संचालक अधिकोष के पास अपना एक खाता खोलना पड़ता है व इस खाते में समाशोधन-गृह की नियमावली द्वारा निर्धारित राशि जमा करवानी पड़ती है। समाशोधन की अवधि के पश्चात् प्रतिदिन इस खाते में प्राप्य अथवा देय राशि का जमा खर्च कर दिया जाता है।

जब समाशोधन-गृह का संचालन केन्द्रीय बैंक के प्रतिनिधि अधिकोष द्वारा किया जाता है तो सदस्य अधिकोषों को अपना खाता प्रतिनिधि अधिकोष (संचालक अधिकोष) के पास और प्रतिनिधि अधिकोष को अपना खाता केन्द्रीय अधिकोष के पास खोलना पड़ता है। प्रतिनिधि अधिकोष समाशोधन के दैनिक परिणामों से केन्द्रीय अधिकोष को अवगत करता है और केन्द्रीय-अधिकोष प्राप्त सूचना के आधार पर उस अधिकोष व 'समाशोधन अधिकोष' खाते में प्रविष्टियां कर देता है।

विलम्ब से प्राप्त धनादेश—जब एक धनादेश समाशोधन की अवधि के पश्चात् प्राप्त होता है तो उसे उस दिन के समाशोधन में शामिल नहीं किया जाता है। जब शोधी अधिकोष उसे भुगतान के लिए उपयुक्त मानता है तो वह उसका चिह्नांकन (Marking) कर देता है और उसे दूसरे दिन के समाशोधन में प्राथमिकता देता है।

अनादरण—जब किसी धनादेश का अनादरण कर दिया जाता है तो समाशोधन अधिकारी व सम्बद्ध अधिकोष को एतद् विषयक सूचना उसी दिन दे दी जाती है और दूसरे दिन के समाशोधन बण्डलों साथ उसे संग्राहक अधिकोष के पास भेज दिया जाता

है। संग्राहक अधिकोष इस प्रकार से अप्रतिष्ठित धनादेश को अपने 'बाह्य समाशोधन' में सम्मिलित कर लेता है।

कार्य-प्रणाली—प्रत्येक अधिकोष के धनादेशों को आन्तरिक व बाह्य समाशोधनों में विभक्त किया जाता है। प्राप्य धनादेशों को आन्तरिक समाशोधन व देय धनादेशों को बाह्य समाशोधन कहा जाता है।

समाशोधनों की एक निश्चित कार्यावधि होती है। उस अवधि में प्रत्येक सदस्य अधिकोष का लिपिक अपने बाह्य और आन्तरिक समाशोधनों के धनादेशों को लेकर समाशोधन-गृह में उपस्थित रहता है। समाशोधन-गृह में आने से पूर्व वह प्रत्येक सदस्य अधिकोष से प्राप्य धनादेशों के पृथक्-पृथक् बण्डल बनाता है और प्राप्य व देय धनादेशों के लिए एक तालिका तैयार करता है। इस तालिका के तीन भाग (i) प्राप्य धनादेश (ii) देय धनादेश और (iii) सम्बन्धित अधिकोष का नाम होते हैं। तालिका के प्रथम और तृतीय भाग की पूर्ति प्रत्येक लिपिक समाशोधन-गृह में आने से पूर्व कर लेता है और द्वितीय भाग (देय धनादेश की राशि) की पूर्ति समाशोधन-गृह में की जाती है।

जब समाशोधन का समय प्रारम्भ हो जाता है तब प्रत्येक लिपिक अपने अधिकोष के प्राप्य धनादेशों का बण्डल शोधी अधिकोषों के लिपिकों को सौंप देता है और उनसे देय धनादेशों का बण्डल ले लेता है। इन धनादेशों की सहायता से वह तालिका के द्वितीय भाग की पूर्ति करता है और समाशोधन की निर्धारित अवधि की समाप्ति पर प्रथम व द्वितीय खानों के योग का शेष निकालता है। यह राशि उसे उस दिन देनी या लेनी होती है। समाशोधन का संचालक अधिकोष इस राशि का विभिन्न सदस्य अधिकोषों के खाते में जमा खर्च कर देता है।

समाशोधन-गृह के संचालनार्थ एक समिति का गठन किया जाता है। इस समिति के सर्वोच्च अधिकारी समाशोधन-गृह की प्रबन्ध समिति के निर्देशानुसार कार्य करता है व प्रत्येक सदस्य अधिकोष के दैनिक स्थिति विवरण पर हस्ताक्षर करता है।

भारत में समाशोधन-गृह—भारतीय समाशोधन-गृह लन्दन समाशोधन-गृह की कार्य-प्रणाली के अनुसार अपना कार्य करते हैं।

रिजर्व बैंक की स्थापना के पूर्व देश में समाशोधन-गृहों का संचालन तत्कालीन इम्पीरियल बैंक द्वारा किया जाता था; किन्तु रिजर्व बैंक की स्थापना के पश्चात् यह भार उसके सबल कन्धों पर आ गया।

सम्प्रति देश में समाशोधन-गृहों का संचालन भारतीय रिजर्व बैंक और भारतीय स्टेट बैंक समूह और बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा किया जा रहा है। 30 जून, 1979 को देश में 651 समाशोधन-गृह कार्य कर रहे थे। इनमें से रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक व उसके सहायक अधिकोष और बैंक ऑफ इण्डिया के क्रमशः 11, 515, 124 व एक समाशोधन गृहों का संचालन कर रहे थे।

भारतीय रिजर्व बैंक के कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर, नई दिल्ली, बंगलोर, नागपुर, पटना, हैदराबाद, भुवनेश्वर, अहमदाबाद आदि स्थानों पर समाशोधन-गृह हैं।

भारत में जिन स्थानों पर रिजर्व बैंक के 'करेन्सी चेस्ट' हैं वहीं पर समाशोधन-गृह कार्य कर सकते हैं। 30 जून, 1978 को देश में विभिन्न अधिकोषों द्वारा 2311 चेस्टों (भारतीय रिजर्व बैंक 10, स्टेट बैंक समूह 2161 व अन्य राष्ट्रीयकृत अधिकोष 140) का संचालन किया जा रहा था। इन समंकों के आधार पर यह कहा जा

है कि आने वाले वर्षों में देश में बड़ी मात्रा में समाशोधन-गृहों की स्थापना हो सकेगी। इस कथन की पुष्टि रिजर्व बैंक ने देश में उन सभी स्थानों पर समाशोधन-गृह स्थापित करने का निश्चय किया है जिनकी जनसंख्या 1 लाख या 1 लाख से अधिक है अथवा जहां पर कम-से-कम 5 व्यापारिक अधिकोष कार्यरत हैं।

भारत के प्रत्येक समाशोधन के नियम लगभग समान हैं। इन नियमों के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य अधिकोष को संचालक अधिकोष के पास अपना एक खाता खोलना पड़ता है जिसे 'बैंकर्स समाशोधन खाता' कहा जाता है। इस खाते में उसे सदा एक पूर्वनिर्धारित राशि जमा करवानी पड़ती है। इस राशि का निर्धारण स्थानीय परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है जब यह राशि कभी कम पड़ जाती है अथवा खाते का शेष ऋणात्मक हो जाता है तो सदस्य अधिकोष, संचालक अधिकोष या किसी अन्य स्थानीय अधिकोष से ऋण लेकर खाते में न्यूनतम वांछित शेष कर देता है अथवा अपनी किसी शाखा या प्रधान कार्यालय से टी०टी० (telegraphic transfer) मंगवाकर खाते में वांछित शेष कर देता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य अधिकोष को समाशोधन सदस्यता शुल्क भी देना पड़ता है। इस शुल्क का त्रैमासिक भुगतान किया जाता है और शुल्क राशि मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता रहता है।

भारत में समाशोधन-गृह सामान्यतः दिन में दो बार, प्रातः 10·30 बजे और साय 5·30 बजे—कार्य करते है; किन्तु छोटे स्थानो पर ये गृह केवल सुबह एक बार कार्य करते हैं।

एक अधिकोष समाशोधन के समय अपने प्राप्य धनादेशों की निम्न प्रारूप में एक सूची बनाता है :

State Bank of Bikaner & Jaipur
List of Cheques etc.
delivered by SBBJ, Sikar
to........................(Name of Bank)

First Special Clearing			First Special Clearing			First Special Clearing		
Cheque No.	Rs.	P.	Cheque No.	Rs.	P.	Cheque No.	Rs.	P.

संचालक अधिकोष समाशोधन खाते के अतिरिक्त एक रजिस्टर भी रखता है, जिसे 'समाशोधन-गृह रजिस्टर' कहा जाता है। इस रजिस्टर को निम्नांकित स्वरूप में रखा जाता है :

State Bank of Bikaner & Jaipur

Clearing Housing Register

S. No.	For credit of	Cheque no.	Drawn on.	Amount Rs. P.	Voucher total	Initial	Remarks	Initials for Remarks

जो स्थानीय अधिकोष समाशोधन-गृह के सदस्य नहीं होते हैं उनके पास विलेखों को निम्नांकित प्रारूप में संग्रहणार्थ भेजा जाता है :

State Bank of Bikaner & Jaipur
Local Collection Schedule

To
The Manager,
..............Bank Ltd.

We forward here with the under noted cheques etc. for payment by cheques/cash through our employee.

L.C. No.	No. of Cheques etc.	Amount Rs.	P.	Remarks

Manager

भारत में अभी तक केवल स्थानीय धनादेशों का समाशोधन किया जाता है। रिजर्व बैंक की नवीनतम नीति के अन्तर्गत किसी स्थान पर कार्यरत समस्त प्रकार के अधिकोष-अनुसूचित, गैर-अनुसूचित, सहकारी व अन्य समाशोधन-गृहों के सदस्य बन सकते हैं। विगत वर्षों में भारत में समाशोधन-गृहों की संख्या और व्यवसाय में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है।

(अ) भारत में समाशोधन गृह

वर्ष	संचालक अधिकोष				
30 जून	रिजर्व बैंक	स्टेट बैंक	स्टेट बैंक के स. अधिकोष	कुल समाशोधन-गृह	वार्षिक वृद्धि
1969	8	70	19	97	—
1970	9	76	18	103	6
1971	9	98	22	129	26
1972	9	117	28	154	25
1973	9	141	37	187	33
1974	9	162	43	214	27
1975	9	173	44	226	12
1976	9	200	50	259	33
1977	10	290	67	367	108
1978	11	482	111	604	237
1979	11	515	124+1	651	47

+1 बैंक ऑफ इण्डिया

(ब) समाशोधन-गृहों द्वारा सम्पन्न व्यवसाय

धनादेश—हजारों में राशि—करोड़ रुपयों में

वर्ष	रिजर्व बैंक		स्टेट बैंक समूह		बैंक समूह कुल	
30 जन	धनादेश	राशि	धनादेश	राशि	धनादेश	राशि
1971	9341	3080	3237	781	12578	3861
1974	11161	4721	3686	1245	14847	5966
1975	12302	5903	4181	1655	16483	7558
1976	13625	6954	5201	1956	18826	8910
1977	15889	8768	7025	2859	22913	11627

स्रोत : रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाइनेन्स, 78–79 पृष्ठ 58 & 59

समाशोधन-गृहों के लाभ—समाशोधन-गृहों की स्थापना से ग्राहकों, अधिकोषों व राष्ट्र समान रूप से लाभान्वित होते हैं। इन गृहों के कारण संग्राहक अधिकोषों को अपने धनादेशों के संग्रहण में सुविधा रहती है; क्योंकि उन्हें इस कार्य के लिए प्रत्येक अधिकोष ग्रोधी के पास पृथक से नहीं जाना पड़ता और संग्रहण योग्य धनादेशों की परिणिति का भी तत्काल ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार अधिकोषों के समय व श्रम की बचत होती है और ग्राहकों को अपने धनादेशों की राशि तत्काल मिल जाती है।

समाशोधन-गृहों के कारण सदस्य अधिकोषों को अपने पास अधिक मात्रा में नकद कोष रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है; क्योंकि अधिकांश लेन-देनों का निपटारा केवल पुस्तकीय प्रविष्टियों के माध्यम से हो जाता है। इस सुविधा के कारण व्यापारिक अधिकोषों को तरल संसाधनों की कम आवश्यकता पड़ती है। फलतः वे व्यापार, उद्योग व कृषि को अधिक मात्रा में ऋण आदि स्वीकृत कर सकते हैं।

समाशोधन-गृह सदस्य अधिकोषों को निकट सम्पर्क मे लाते हैं। फलतः वे पारस्परिक समस्याओं का समाधान आसानी से निकाल लेते हैं और प्रतिस्पर्द्धा का स्थान पारस्परिक सहयोग ले लेता है। कालान्तर में यह सहयोग बैंकिंग उद्योग के बहुमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण योग देता है।

भारतीय समाशोधन-गृहों की कमियां—सम्प्रति भारतीय समाशोधन-गृहों की कार्य-प्रणाली में एकरूपता नहीं है, केवल स्थानीय धनादेशों का समाशोधन किया जाता है और समाशोधन-गृहों की संख्या अपर्याप्त है।

विकास के लिए सुझाव—समाशोधन-गृहों के संचालन में एकरूपता लाई जाय। यह कार्य भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बाह्य धनादेशों के समाशोधन के लिए अविलम्ब कदम उठाए जायें और समाशोधन-गृहों की संख्या में वृद्धि की जाय।

प्रश्न

1. समाशोधन-गृह की परिभाषा दीजिए और इनके संगठन व कार्यप्रणाली की भारतीय सन्दर्भ में विवेचना कीजिए।
2. समाशोधन-गृह की परिभाषा दीजिए और इनकी कार्य-प्रणाली को समझाइए।
3. समाशोधन-गृहों के लाभों का वर्णन करते हुए इनके सुधार के लिए सुझाव दीजिए।

19

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का वैधानिक स्वरूप

(LEGAL FRAME WORK OF THE INDIAN BANKING SYSTEM)

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था के नियमन व नियंत्रण और देश के बैंकिंग उद्योग को एक इच्छित दिशा प्रदान करने के लिए देश मे समय-समय पर अनेक अधिनियम पारित किए गए हैं, जिनमे से मुख्य निम्नांकित हैं—

बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949
(The Banking Regulation Act, 1949)

संक्षिप्त इतिहास:—केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति 1929 ने अपने प्रतिवेदन मे प्रथम बार एक स्वतंत्र बैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता पर बल दिया किन्तु तत्कालीन सरकार ने समिति की इस महत्त्वपूर्ण सिफारिश पर कोई ध्यान नहीं दिया। 1936 मे जब भारतीय कम्पनी अधिनियम का संशोधन किया गया और जाच समिति की कुछ सिफारिशों को इस अधिनियम मे सम्मिलित कर लिया गया; किन्तु इन प्रावधानों को अपर्याप्त व प्रशासनिक दृष्टि से कठिन समझा गया। दक्षिण भारत के बैंकिंग संकट को दृष्टिगत रखते हुए रिजर्व बैंक ने भी 1939 में एक स्वतन्त्र बैंकिंग अधिनियम हेतु सरकार से सिफारिश की और इस हेतु सरकार के समक्ष एक विधेयक भी प्रस्तुत किया। सरकार ने इस विधेयक को जनमत जानने के लिए प्रसारित किया; किन्तु युद्ध के कारण इस सम्बन्ध में कोई ठोस कार्य नहीं किया जा सका। युद्ध-समाप्ति पर भारत सरकार ने रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तुत स्वतन्त्र विधेयक को सशोधित रूप में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के विचारार्थ प्रस्तुत किया किन्तु विधेयक के पारित होने से पूर्व ही व्यवस्थापिका सभा को भंग कर दिया गया और फलतः वह विधेयक भी काल तिरोहित हो गया।

1946 में सरकार ने नवीन केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के विचारार्थ पुराने विधेयक के स्थान पर एक नया विधेयक रखा जिसे व्यवस्थापिका सभा ने प्रवर समिति को विचारार्थ सौंप दिया। प्रवर समिति ने इस विधेयक में आमूलचूल परिवर्तनों-हेतु सुझाव दिए। इन सुझावों को विधेयक में शामिल करने हेतु सरकार ने पुन विधेयक को नए सिरे से लिखवाया और मार्च 1948 मे उसे संविधान सभा के पटल पर रखा। संविधान सभा ने इस विधेयक को 17 फरवरी, 1949 में पारित किया, 10 मार्च, 1949 को इस पर तत्कालीन गवर्नर जनरल ने अपने हस्ताक्षर किए और 16 मार्च, 1949 को इसे बैंकिंग समवाय अधिनियम के नाम से लागू किया गया।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएं :—इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं—

(i) 1949 में इसे 'बैंकिंग प्रमण्डल अधिनियम' (Banking Companies Act) के नाम से पारित व लागू किया गया किन्तु 1965 में इस अधिनियम का नाम 'बैंकिंग नियमन अधिनियम' (The Banking Regulation Act) कर दिया गया और आज यह अधिनियम इसी नाम से जाना जाता है।

(ii) प्रारम्भ में यह अधिनियम जम्मू-कश्मीर में कार्यरत अधिकोषों पर लागू नहीं होता था, किन्तु 1956 में इसे देश में कार्यरत समस्त अधिकोषों पर लागू कर दिया गया।

(iii) 1949 के पश्चात् इस अधिनियम में अनेक बार संशोधन किए गए हैं; किन्तु 65 के पश्चात् इसमें आमूलचूल परिवर्तन किए गए हैं।

(iv) फरवरी, 1966 तक यह अधिनियम केवल व्यापारिक अधिकोषों पर लागू होता था; किन्तु 1 मार्च, 1966 से इस अधिनियम ने शीर्ष, केन्द्रीय व प्राथमिक सहकारी अधिकोषों का भी आंशिक (अनुज्ञापत्र, तरलकोष, नकद कोष ऋण व अग्रिम आदि) रूप से नियमन प्रारम्भ कर दिया और 1968 से यह अधिकोष इनके समामेलन, समापन, पुनर्निर्माण आदि का भी नियमन करने लगा।

(v) अब यह अधिनियम केन्द्रीय औद्योगिक सहकारी अधिकोषों पर लागू होता है।

(vi) इस अधिनियम में कुल 56 धाराएं, 5 तालिकाएं और एक परिशिष्ट है। कुल धाराओं में से प्रथम 55 धाराएं व्यापारिक अधिकोषों पर व एक अंतिम धारा सहकारी अधिकोषों पर लागू होती हैं। यह धारा काफी व्यापक है और इसमें उन समस्त प्रावधानों का समावेश किया गया है जो सहकारी अधिकोषों पर लागू होते हैं। 5 तालिकाओं में से प्रथम तालिका 'अग्रिमों के विवरण' तृतीय तालिका अन्तिम खातों, चतुर्थ तालिका देनदारों की सूची और पंचम् तालिका क्षतिपूर्ति के सिद्धान्तों से सम्बद्ध है। द्वितीय तालिका को निरस्त किया जा चुका है। परिशिष्ट में 1956 व 1960 में किए गए संशोधनों को अधिनियम के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

(vii) इस अधिनियम को 5 भागों में विभक्त किया गया है।

(viii) अधिकोषों पर भारतीय प्रमण्डल अधिनियम व अन्य अधिनियमों के सम्बद्ध प्रावधान इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् भी यथावत् लागू हैं।

(ix) रिजर्व बैंक के लिखित आवेदन पर केन्द्रीय सरकार उचित समझने पर इस अधिनियम के समस्त प्रावधानों या कुछ प्रावधानों की क्रियान्विति को अधिक से अधिक 60 दिनों के लिए स्थगित कर सकती है। केन्द्रीय सरकार को अपने इस आदेश को राज-पत्र में प्रकाशित करवाना पड़ता है।

रिजर्व बैंक का गवर्नर या उसकी अनुपस्थिति में इसका उप गवर्नर-मनोनीत होने पर-विशेष आपात-स्थिति में केन्द्रीय सरकार के उपर्युक्त अधिकार का स्वयं भी प्रयोग कर सकता है किन्तु वह इस अधिकार को केवल 30 दिनों के लिए काम में ले सकता है और उसे अपने इस अधिकार प्रयोग की सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी होगी।

केन्द्रीय सरकार गजट (राजपत्र) में प्रकाशित करके अपने स्थगन अवधि में वृद्धि भी कर सकती है। किन्तु वह एक समय में 60 दिनों से अधिक अवधि नहीं बढ़ा सकती और कुल स्थगन अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

अधिनियम के मुख्य प्रावधान:—वैसे तो सम्पूर्ण अधिनियम ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अधिनियम बैंकिंग उद्योग के विविध पहलुओं का नियमन व नियन्त्रण करता है। किन्तु अधिनियम के प्रथम तीन भाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि ये भाग इस उद्योग के दैनिक क्रियाकलापों पर प्रभावी नियन्त्रण रखते हैं।

अधिकोषों के संगठन व प्रबन्ध सम्बन्धी प्रावधानों का विशद् वर्णन 'अधिकोषों का संगठन व प्रबन्ध' अध्याय में पृथक् से किया गया है। अतएव आगामी पृष्ठों में इन दो पहलुओं से सम्बद्ध प्रावधानों का वर्णन नहीं किया गया है। अधिनियम के अन्य मुख्य प्रावधान इस प्रकार हैं:—

1. केवल विधि सम्मत कार्यों का सम्पादन : (धारा 6)

बैंकिंग व्यवसाय के अतिरिक्त एक अधिकोष निम्नांकित कार्यों का सम्पादन कर सकता है।

(अ) (i) ऋण लेना तथा जमा एवं प्रतिभूति के उधार देना,

(ii) विपत्र, प्रणपत्र, हुण्डी, ड्राफ्ट, कूपन, जहाजी बिल्टी, रेल्वे रसीद, अधिपत्र, ऋणपत्र, प्रमाणपत्र, प्रतिभूतियों आदि का आलेखन, क्रय-विक्रय, कटौती व स्वीकृति ;

(iii) साख-पत्रों, यात्री धनादेशों, गश्ती-पत्रों आदि का निर्गमन ;

(iv) सिक्कों व धातु का क्रय-विक्रय;

(v) विदेशी विनिमय व विदेशी बैंक नोट का क्रय-विक्रय;

(vi) बॉण्डों, ऋणपत्रों, प्रमाणपत्रों, स्कन्ध-पत्रों, प्रतिभूतियों आदि का अपने नाम में क्रय, कमीशन पर निर्गमन व अभिगोपन;

(vii) ग्राहकों के आदेश पर प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय;

(viii) ऋणों व अग्रिमों का परामर्श;

(ix) प्रण-पत्रों, ऋण-पत्रों, प्रतिभूतियों आदि को सुरक्षार्थ जमा करना;

(x) 'सेफ डिपोजिट वॉल्ट्स' की व्यवस्था करना;

(xi) प्रतिभूतियों एवं मुद्राओं का संग्रहण व प्रेषण।

(ब) राज्य, स्वायत्तशासी संस्थाओं व व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह के लिए अभिकर्ता का कार्य करना व प्रत्येक प्रकार के अभिकर्ता व्यवसाय का संचालन, किन्तु अधिकोष एक प्रबन्धक के प्रबन्ध अभिकर्ता का कार्य नहीं कर सकते।

(स) व्यक्तिगत व सार्वजनिक ऋणों के लिए अनुबन्ध करना व उनका निर्गमन करना।

(द) निजी, सार्वजनिक, राजकीय व नगरपालिकाओं के प्रमाणपत्रों, ऋणपत्रों, स्कन्ध-पत्रों आदि की गारण्टी देना, उनके निर्गमन में भाग लेना, उनका अभिगोपन करना व इन कार्यों के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों या संस्थाओं को ऋण स्वीकृत करना,

(ई) गारण्टी व क्षतिपूरक कार्यों का सम्पादन,

(एफ) अपने दावे की संतुष्टि के लिए प्राप्त सम्पत्ति की व्यवस्था, विक्रय व विक्रय राशि की वसूली।

(जी) ऋण व अग्रिमो की प्रतिभूति स्वरूप प्राप्त सम्पत्ति, अधिकार या हितों की देख-रेख व प्राप्ति।

(एच) प्रन्यासी व निष्पादन के कार्यों का सम्पादन;

(आई) अपने वर्तमान व सेवा-निवृत्ति कर्मचारियों, उनके बच्चो के कल्याण के लिए संस्थाओं, निधियों, प्रन्यासों व सुविधाओं की स्थापना या स्वीकृति। अधिकोष ऐसी संस्थाओं की स्थापना मे सहयोग व सहायता भी दे सकते हैं, अपने कर्मचारियों को पेंशन दे सकते है और उनका बीमा करवा सकते हैं;

(जे) सार्वजनिक कार्यों के लिए ऋण स्वीकृति;

(के) निजी आवश्यकता पूर्ति के लिए भवन आदि का निर्माण, क्रय व उनकी देख-भाल;

(एल) अपनी सम्पत्ति व अन्य अधिकारों का विक्रय, प्रबन्ध, विकास, विनिमय व विबन्धन;

(एम) व्यक्तियों व संस्थाओं के ऐसे व्यवसायों का क्रय जो बैंकिंग व्यवसाय[1] के अन्तर्गत आते हों

(एन) अपने व्यवसाय के विकास व अभिवृद्धि से सम्बद्ध कार्यों को करना और

(ओ) केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकृत अन्य कार्यों का सम्पादन। केन्द्रीय सरकार को राजपत्र मे अपनी कार्य स्वीकृति को प्रकाशित करवाना पड़ता है।

2. नाम [7 (1) व 49 B)—प्रत्येक अधिकोष को अपने नामांग के रूप मे 'बैंक', 'बैंकर' या 'बैंकिंग' शब्द का अनिवार्यतः प्रयोग करना पड़ता है। एक फर्म, व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपने नाम मे इन शब्दो को काम में नहीं ले सकता। इन शब्दों के अतिरिक्त प्रत्येक अधिकोष को 'लिमिटेड' शब्द भी काम मे लेना पड़ता है किन्तु राजकीय अधिकोषो को 'लिमिटेड' शब्द लगाने की आवश्यकता नही होती है।

प्रमण्डल अधिनियम की धारा 20 की व्यवस्थानुसार एक नवस्थापित अधिकोष का नाम किसी पूर्व स्थापित अधिकोष के नाम से पूर्णतः मिलता-जुलता अथवा लगभग मिलता-जुलता नही हो सकता, किन्तु जब पूर्व स्थापित अधिकोष के समापन की कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है तो नवस्थापित अधिकोष उस प्रमण्डल अधिकोष की पूर्वानुमति से और प्रमण्डल पंजीयक द्वारा निर्देशित विधि के अनुपालन पर पूर्व स्थापित अधिकोष का नाम भी अपना सकता है।

जब प्रस्तावित नाम से अन्य कोई प्रमण्डल (अधिकोष के अतिरिक्त) कार्य कर रहा होता है तो प्रमण्डल पंजीयक प्रार्थी अधिकोष को उस नाम को अपनाने की अनुमति दे सकता है। पंजीयक यह अनुमति तभी देता है जबकि उसे यह विश्वास हो जाता है कि ऐसा करने से पूर्व स्थापित गैर अधिकोषीय प्रमण्डल को किसी प्रकार की वित्तीय हानि नहीं होगी।

---

1. Banking means the accepting, for the purpose of lending or investment of deposits of money from the public, repayable on demand or otherwise, and withdrawable by cheque, draft, order or other wise."
5 (b) Banking Regulation Act, 1949

एक अधिकोष के प्रस्तावित नाम में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता जिनसे राज्याश्रय की गन्ध आती हो।

एक अधिकोष अपनी प्रेरणा से अथवा केन्द्रीय सरकार के निर्देश पर अपने नाम मे परिवर्तन कर सकता है। जब वह अपनी प्रेरणा से अपने नाम में परिवर्तन करना चाहता है तो (i) उसे इस आशय का एक विशेष प्रस्ताव पारित करना पडता है (ii) रिजर्व बैंक से सहमति लेनी पड़ती है। और (iii) अपने सीमा नियमो में तत्सम्बन्धी परिवर्तन करना पड़ता है और तत्पश्चात् (iv) केन्द्रीय सरकार से नाम-परिवर्तन की अनुमति लेनी पडती है। प्रार्थी अधिकोष को केन्द्रीय सरकार के पास अपने प्रार्थनापत्र के साथ रिजर्व बैंक का इस आशय का प्रमाण-पत्र भी सलग्न करना पड़ता है कि उसे प्रस्तावित परिवर्तन के प्रति कोई आपत्ति नहीं है। केन्द्रीय सरकार इस प्रमाण-पत्र के प्रस्तुतीकरण पर नाम-परिवर्तन के लिए अपनी सहमति दे देती है।

जब केन्द्रीय सरकार के निर्देश पर नाम बदला जाता है तब सम्बन्धित अधिकोष को इस हेतु केवल एक साधारण प्रस्ताव पारित करना पड़ता है। केन्द्रीय सरकार एक अधिकोष को उस समय नाम-परिवर्तन के लिए आदेश देता है जबकि उसे वह नाम अवांछनीय प्रतीत होता है अथवा भूलवश वह नाम किसी अन्य अधिकोष को दे देता है।

(3) निषिद्ध कार्य (धारा 8) – एक अधिकोष केवल अधिकोषण व्यवसाय व बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 6 द्वारा अधिकृत व्यवसाय का संचालन कर सकता है। वह अन्य किसी प्रकार का व्यवसाय यथा माल का क्रय-विक्रय आदि नहीं कर सकता। माल शब्द को अधिनियम मे व्यापक अर्थों मे प्रयुक्त किया गया है। इसका आशय समस्त प्रकार की चल सम्पत्ति से है; किन्तु एक अधिकोष निम्नांकित अवस्थाओ मे माल का भी क्रय-विक्रय कर सकता है—

(i) जब एक अधिकोष के पास उसका कोई ऋण किसी सम्पत्ति को गिरवी रखता है तो ऋणदाता अधिकोष अपने ऋण के शोधनार्थ प्राप्त सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है;

(ii) एक अधिकोष अपने ग्राहकों के परक्राम्य सलेखो की कटौती कर सकता है, उनका संग्रहण भी कर सकता है;

(iii) वह न्यासी या निष्पादक की क्षमता से सम्पत्ति की देख-रेख कर सकता है और

(iv) वाद योग्य अभ्यर्थना (Actisnable claims), ऋणपत्र, स्कन्धपत्र, मुद्रा, स्वर्ण, रजत और धारा 6 की उपधारा 1 के वाक्यांश 'अ' मे वर्णित प्रलेखों को माल नहीं माना जाता है। अतः एक अधिकोष इन समस्त प्रलेखों व वस्तुओं मे भी व्यवहार कर सकता है।

(4) स्थाई सम्पत्ति पर प्रतिबन्ध (धारा 9)– एक अधिकोष केवल निजी प्रयोग के लिए स्थाई सम्पत्ति खरीद सकता है किन्तु वह लाभार्जन की दृष्टि से उनमे अपने संसाधनो का विनियोजन नहीं कर सकता।

जब एक अधिकोष को अपने ऋणों के शोधनस्वरूप स्थाई सम्पत्ति प्राप्त होती है तो वह उसे सामान्यतया सात वर्ष तक अपने पास रख सकता है किन्तु रिजर्व बैंक

की अनुमति से वह उसे 12 वर्ष तक अपने पास रख सकता है और उसमें व्यवहार कर सकता है। यह व्यवहार सम्पत्ति के विक्रय की सुविधा की दृष्टि से किया जाना चाहिए। रिजर्व बैंक अवधि में तभी वृद्धि करता है जबकि उसे यह विश्वास हो जाता है कि अवधि बढ़ाने से *सम्बन्धित* अधिकोष के जमाकर्त्ताओं के हितों की रक्षा हो सकेगी। एक अधिकोष को इस बढ़ी हुई *अवधि की समाप्ति* से पूर्व अपनी इस प्रकार से प्राप्त स्थाई सम्पत्ति का विक्रय करना पड़ता है।

(5) न्यूनतम पूंजी (*धारा 11 व 12*)—*स्वदेशी व विदेशी अधिकोषों के लिए* न्यूनतम पूंजी सम्बन्धी पृथक्-पृथक् प्रावधान किए गए हैं। *ये प्रावधान* अधिकोषों की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए किए गए हैं।

(1) **विदेशी अधिकोष**—भारत में कार्यरत प्रत्येक विदेशी अधिकोष की दत्त पूंजी व संचित कोषों का योग 15 लाख रुपए से कम नहीं होना चाहिए; किन्तु कलकत्ता, बम्बई या इन दोनों स्थानों पर कार्यरत विदेशी अधिकोषों की न्यूनतम दत्त पूंजी व संचित कोषों का योग 20 लाख रुपए से कम नहीं होना चाहिए।

प्रत्येक विदेशी अधिकोष को उपर्युक्त राशि रिजर्व बैंक के पास नकद या विबन्धन मुक्त अनुमोदित प्रतिभूतियों में या अंशतः नकद व अंशतः अनुमोदित प्रतिभूतियों में *जमा करवानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विदेशी अधिकोष को अतिरिक्त प्रतिभूति के रूप में प्रतिवर्ष भारत में अर्जित वार्षिक लाभ का 20 प्रतिशत रिजर्व बैंक* के पास जमा करवाना पड़ता है।

एक विदेशी अधिकोष किसी भी समय रिजर्व बैंक के पास जमा करवाई गई प्रतिभूतियों को वापस ले सकता है; किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसे निकाली जानी वाली प्रतिभूतियों के वास्तविक मूल्य के बराबर नकद राशि जमा करवानी पड़ती है। इसी प्रकार एक अधिकोष अपनी जमा नकद राशि का भी आहरण कर सकता है; किन्तु नकद राशि के आहरण से पूर्व उसे *उस राशि के बराबर मूल्य (वास्तविक मूल्य) वाली प्रतिभूतियां जमा करवानी पड़ती हैं।*

जब रिजर्व बैंक के पास किसी विदेशी अधिकोष का काफी मात्रा में लाभ जमा हो जाता है तो केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक की सिफारिश पर उस अधिकोष को यह आदेश दे सकती है कि उसे आदेश में वर्णित अवधि तक भारत में अर्जित वार्षिक *लाभ का* 20 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा करवाने की आवश्यकता नहीं है।

जब एक विदेशी अधिकोष भारत में अपना व्यवसाय बन्द कर देता है तो उस अधिकोष की रिजर्व बैंक के पास जमा राशि को *सबसे पहले उस अधिकोष के ऋण-दाताओं के दावों की सतुष्टि के लिए प्रयुक्त किया जाएगा।*

जब रिजर्व बैंक को किसी अधिकोष से नकद राशि या प्रतिभूतियां प्राप्त होती हैं तो वह उस अधिकोष को निर्धारित प्रपत्र में रसीद देता है।

स्वदेशी अधिकोष—जिन स्वदेशी अधिकोषों की स्थापना 16 सितम्बर, 1962 से पूर्व हो चुकी थी और जो केवल एक ही राज्य में व्यवसाय करते थे, उनकी दत्त पूंजी व सुरक्षित कोषों का योग 50,000 रुपयों से कम नहीं हो सकता था किन्तु ऐसे अधिकोषों का *कार्य-क्षेत्र बम्बई या कलकत्ता नहीं हो सकता था। सन् 1962 के पश्चात्*

प्रत्येक स्वदेशी अधिकोष की दत्त पूंजी व सुरक्षित कोषों का न्यूनतम योग 5 लाख रुपए कर दिया गया। इस प्रमुख प्रावधान के अतिरिक्त स्वदेशी अधिकोषों पर उनके आकार व कार्य-क्षेत्र के आधार पर निम्नांकित प्रावधान लागू होते हैं—

एक से अधिक राज्यों में शाखाएं होने पर—जब एक अधिकोष एक से अधिक राज्यों में कार्य करता है व उसकी कुछ शाखाएं कलकत्ता या बम्बई या दोनों स्थानों पर कार्य करती है तो उसकी दत्त पूंजी और सुरक्षित कोष (संयुक्त रूप में) कम से कम 10 लाख रुपए अवश्य होने चाहिएं। उपर्युक्त दो स्थानों पर शाखाएं न होने पर न्यूनतम पूंजी 5 लाख रुपए हो सकती है।

एक ही राज्य में शाखाएं होने पर —(अ) जब एक अधिकोष केवल एक राज्य में कार्य करता है और उसकी शाखाएं कलकत्ता या बम्बई में भी कार्य करती हैं तो उसे अपने प्रधान कार्यालय के लिए 5 लाख रुपए व प्रत्येक अन्य कार्यालय के लिए 25 हजार रुपए की दर से पूंजी व संचित कोष रखने पड़ते हैं; किन्तु उसे कुल राशि 10 लाख रुपए से ज्यादा रखने की आवश्यकता नहीं है।

(ब) जब एक अधिकोष के सारे कार्यालय एक ही राज्य में स्थित होते है और उनमें से कोई भी कार्यालय बम्बई या कलकत्ता में स्थित नहीं होता है तब उसे अपने प्रधान कार्यालय के लिए 1 लाख रुपए, प्रधान कार्यालय वाले जिले में स्थित समस्त शाखाओं के लिए 10 हजार रुपए प्रति शाखा व राज्य के अन्य भागों में स्थित शाखाओं के लिए 25 हजार रुपए प्रति कार्यालय की दर से न्यूनतम पूंजी व कोष रखने पड़ते हैं, किन्तु उसे 5 लाख रुपए से अधिक पूंजी व कोष (न्यूनतम) रखने की आवश्यकता नहीं होती है।

जिन कार्यालयों की स्थापना प्रधान कार्यालय से 25 मील के क्षेत्र में की जाती है उन्हें एक ही राज्य में स्थित कार्यालय माना जाता है, भले ही वे राजनैतिक दृष्टि से किसी अन्य राज्य में स्थित हो।

जब दत्तपूंजी व संचित कोषों के योग के बारे में किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न होता है तो इस सम्बन्ध मे भारतीय रिजर्व बैंक का अभिमत अन्तिम व सर्वमान्य होता है।

न्यूनतम पूंजी व सुरक्षित निधियों की गणना उनके वास्तविक मूल्य के आधार पर की जाती है अर्थात् अंशधारियों के कोष (दत्त पूंजी व सुरक्षित कोष) का वास्तविक मूल्य ज्ञात किया जाता है व विभिन्न सम्पत्तियों का मूल्यांकन उनकी प्रकृति व अन्य सम्बद्ध घटकों के आधार पर किया जाता है। यह मूल्यांकन सम्बन्धित अधिकोष को 'चालू संस्थान' मानकर किया जाता है। सामान्यतः नकद राशि अन्य अधिकोषों में जमा राशि व राजकोष प्रतिभूतियों का पूरे मूल्य पर मूल्यांकन किया जाता है; भवन, फर्नीचर व अन्य इसी प्रकार की सम्पत्तियों का मूल्यांकन-अवक्षयण के लिए समुचित प्रावधान की अवस्था में-उनके पुस्त मूल्य पर व अन्य सम्पत्तियों का मूल्यांकन बाजार मूल्य पर किया जाता है। अग्रिमों के मूल्यांकन में विशेष सतर्कता का प्रयोग किया जाता है।

अपील रिजर्व बैंक से निर्णय की प्राप्ति के 30 दिनों के अन्दर करनी पड़ती है व इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम व मान्य होता है। [धारा 14 A(3)]

12. सुरक्षित कोष:—भारत में स्थापित प्रत्येक अधिकोष को एक सुरक्षित कोष की अनिवार्यतः स्थापना करनी पड़ती है और लाभांश की घोषणा से पूर्व प्रतिवर्ष अपने अन्तिम खातों में प्रदर्शित लाभ का कम-से-कम 20 प्रतिशत इस निधि में स्थानांतरित करना पड़ता है। [धारा 17 (1)]

जब किसी अधिकोष की दत्त पूंजी व सचित निधि उसके कुल निक्षेपों के अनुपात में पर्याप्त हो जाती है तो केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक की अनुशंसा पर उस अधिकोष को 20 प्रतिशत लाभ के स्थानांतरण के प्रावधान से कुछ समय के लिए मुक्त कर सकती है। केन्द्रीय सरकार को इस आशय की लिखित घोषणा करनी पड़ती है व उसमें छूट की अवधि का भी उल्लेख करना पड़ता है। जब तक संचित निधि व अंश प्रब्याजि का योग दत्त पूंजी के बराबर नहीं हो जाता है तब तक केन्द्रीय सरकार इस प्रकार का आदेश निर्गमित नहीं कर सकती। [धारा 17 (1 A)]

जब एक अधिकोष अपनी सचित निधि अथवा दत्त पूंजी के किसी भाग को काम में ले लेता है तो उसे उस राशि को काम में लेने की तिथि से 21 दिनों के भीतर रिजर्व बैंक को इस तथ्य से अवगत करना पड़ता है। विशिष्ट परिस्थितियों में रिजर्व बैंक इस अवधि में आवश्यकतानुसार वृद्धि कर सकता है अथवा विलम्ब से सूचना देने वाले अधिकोष को क्षमा कर सकता है। [धारा 17(2)]

13. नकद कोष (Cash Reserves):—नकद कोषों की व्यवस्था को साख नियंत्रण का एक माध्यम माना जाता है। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 (1) और बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 18 नकद कोष सम्बन्धी प्रावधानों का नियमन करती है। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा अनुसूचित अधिकोषों पर व बैंकिंग अधिनियम की धारा गैर अनुसूचित अधिकोषों पर लागू होती है।

गैर-अनुसूचित अधिकोष:—प्रत्येक गैर अनुसूचित अधिकोष को अपने कुल दायित्वों का 3% सदैव नकद रूप में अपने पास, रिजर्व बैंक के पास, स्टेट बैंक के पास या भारत सरकार द्वारा घोषित अन्य किसी अधिकोष के पास रखना पड़ता है अथवा वह इसे अंशतः अपने पास व अंशतः इन अधिकोषों के पास रख सकता है।

प्रत्येक गैर-अनुसूचित अधिकोष को प्रत्येक माह की समाप्ति के 15 दिनों के अन्दर प्रत्येक माह के प्रत्येक शुक्रवार की स्थिति से रिजर्व बैंक को अवगत करना पड़ता है। इस हेतु वह रिजर्व बैंक के पास एक विवरण भेजता है। इस विवरण में माग व सावधि दायित्वों को अलग-अलग प्रदर्शित किया जाता है। जब शुक्रवार सार्वजनिक अवकाश होता है तो इस विवरण में बृहस्पतिवार की स्थिति को प्रदर्शित किया जाता है।

14. अनुसूचित अधिकोष (Scheduled Banks):—प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को अपने कुल औसत दैनिक दायित्वों का 3 प्रतिशत हमेशा रिजर्व बैंक के पास नकद जमा रखना पड़ता है। रिजर्व बैंक चाहे तो भारत सरकार के गजट में अधिसूचना निर्गमित कर इस प्रतिशत को बढ़ा सकता है; किन्तु वह इसे 15 प्रतिशत से अधिक नहीं कर सकता।

प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को अपने नकद कोषों के बारे में रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रपत्र में सूचना देनी पड़ती है। यह प्रपत्र प्रति शुक्रवार को तैयार किया जाता है और जब शुक्रवार सार्वजनिक अवकाश होता है, तब यह प्रपत्र बृहस्पतिवार को बनाया

जाता है व प्रत्येक शाखा द्वारा इसे उसी दिन प्रधान कार्यालय को प्रेषित कर दिया जाता है। इस प्रविवरण पर अधिकोष के दो उत्तरदायी अधिकारियों को अपने हस्ताक्षर बनाने पड़ते हैं। प्रधान कार्यालय इस प्रविवरण को 5 दिन के अन्दर रिजर्व बैंक के पास भेज देता है। जो अधिकोष इन प्रावधानों का पालन नहीं करते हैं उन पर 100 रुपया प्रतिदिन की दर से अर्थदण्ड किया जाता है।

जब भौगोलिक बाधाओं के कारण एक अधिकोष उपर्युक्त अवधि में उपर्युक्त प्रविवरण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है तो रिजर्व बैंक उसे प्रावीजनल विवरण प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है। रिजर्व बैंक कुछ अधिकोषों को मासिक विवरण प्रस्तुत करने की भी अनुमति देता है। ऐसे अधिकोषों को सम्बन्धित मास की समाप्ति के 14 दिनों के अन्दर रिजर्व बैंक के पास अपना प्रविवरण प्रस्तुत करना पड़ता है।
(धारा 42 (2) (i) (ii)]

जब किसी अधिकोष का न्यूनतम नकद कोष वैधानिक सीमा से कम हो जाता है तो उसे न्यूनतम कोष से कम पड़ने वाली राशि पर ब्याज देना पड़ता है। ब्याज की दर प्रथम सप्ताह में बैंक दर से 3 प्रतिशत अधिक होती है किन्तु द्वितीय सप्ताह में उसे 5 प्रतिशत कर दिया जाता है। [धारा 42 (3)]

जो अधिकारी (संचालक, प्रबन्धक या सचिव) नकद कोष की अल्पता के लिए दोषी (5 प्रतिशत ब्याज के बावजूद) पाए जाते हैं उनमें से प्रत्येक पर 500 रुपये का अर्थ-दण्ड किया जाता है व जितने सप्ताह तक यह कोष चालू रहता है उतने सप्ताह तक उन्हें 500 रुपए प्रति सप्ताह की दर से यह दण्ड देना पड़ता है। [धार 42 3A (a))]

दीर्घ अवधि तक इन कोष के चालू रहने पर रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोष को नवीन निक्षेप स्वीकार करने से मना कर सकता है। जो अधिकोष इस आदेश का उल्लंघन करते हैं उनके संचालकों पर 500 रुपए प्रति-दिन की दर से अर्थ-दण्ड किया जाता है।
[धारा 42 B (A)(b)]

उपर्युक्त अर्थदण्ड के भुगतान के लिए रिजर्व बैंक एक आदेश निर्गमित करता है और प्रत्येक अधिकोष व अधिकारी को आदेश प्राप्ति के 14 दिनों के भीतर इस अर्थ-दण्ड का भुगतान करना पड़ता है। भुगतान न करने पर रिजर्व बैंक किसी अधिकृत न्यायालय में अपील करता है और न्यायालय द्वारा दोषी पाए जाने पर सम्बन्धित व्यक्तियों/अधिकोष के विरुद्ध एक प्रमाण-पत्र निर्गमित करता है। यह प्रमाण-पत्र न्यायालय डिग्री के समान प्रभावी होता है। [धारा 42 (5) (a व b)]

दायित्वों में निम्नांकित कोषों की गणना नहीं की जाती है—

(i) दत्त पूंजी, सुरक्षित निधि व लाभ-हानि खातों में जमा धन का शेष,
(ii) रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास अधिकोष व कृषि पुनर्वित्त निगम से लिया गया ऋण, व
(iii) राज्य सहकारी बैंक द्वारा राज्य सरकार से लिया गया ऋण व उसके अन्तर्गत कार्य करने वाली सहकारी बैंकों से नकद कोष के रूप में प्राप्त राशि। इस राशि का अधिनियम ... परिभाषित होना आवश्यक है। .

जब रिजर्व बैंक नकद कोष के प्रतिशत में वृद्धि करता है तो वह बढ़े हुए प्रतिशत के कारण जमा करवाई गई अतिरिक्त राशि पर अपनी ओर से अनुसूचित अधिकोषों को अपनी ओर से निर्धारित दर से ब्याज भी दे सकता है। [धारा 42 (1B)]

15. सहायक प्रमण्डलों के निर्माण व अन्य प्रमण्डलों में निवेश पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष केवल निम्नांकित कार्यों के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण कर सकता है :

(i) प्रन्यास कार्य
(ii) प्रन्यासी, निष्पादक व अन्य किसी क्षमता में सम्पत्ति के प्रशासनार्थ
(iii) सुरक्षित निक्षेप कक्ष (Safe Deposit Vaults) की सुविधा प्रदान करने हेतु और
(iv) भारत से बाहर अधिकोषण सेवाओं को चालू करने के लिए। इस कार्य के लिए सम्बन्धित अधिकोष को कार्यारम्भ से पूर्व भारतीय रिजर्व बैंक से लिखित स्वीकृति लेनी पड़ती है।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त एक अधिकोष अन्य किसी कार्य के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण नहीं कर सकता। [धारा 19(1)]

16. विनियोगों पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष किसी प्रमण्डल में उसकी दत्त पूंजी या अपनी दत्त पूंजी और सुरक्षित कोष के 30 प्रतिशत से अधिक राशि (जो भी कम हो) का विनियोजन कर सकता है। विनियोजन में अंश-पत्रों के क्रय, विबन्धन व गिरवी की गणना की जाती है। [धारा 19 (2)]।

एक अधिकोष ऐसे प्रमण्डलों में भी अपने कोषों का विनियोजन नहीं कर सकता जिनमें उसके किसी संचालक अथवा प्रबन्धक का किसी प्रकार का हित होता है अथवा उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध होता है। [धारा 19 (3)]।

17. ऋणों व अग्रिमों पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष (i) अपने अंश पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (ii) अपने किसी संचालक को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (iii) ऐसे फर्म व प्रमण्डल को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता जिसमें उनके किसी संचालक का हिस्सेदार, संचालक, प्रबन्धक, कर्मचारी या अन्य किसी क्षमता में किसी प्रकार का हित होता है और (iv) ऐसे व्यक्ति को ऋण नहीं दे सकता जिसमें (ऋण)अधिकोष संचालक का हिस्सा होता है अथवा जिसकी संचालक ने गारण्टी दी हो। [धारा (20)]

18. ऋणों का नियमन व नियन्त्रण:—रिजर्व बैंक भारत में कार्य करने वाले समस्त व्यापारिक अधिकोषों की ऋणनीति का नियमन करता है। ऋणों के नियमन-हेतु रिजर्व बैंक प्रवृत्य-सार नियन्त्रण (Selective credit control) व ब्याज दर नियंत्रण प्रभृति नीतियों का अनुपालन करता है। प्रथम नीति के अन्तर्गत रिजर्व बैंक अग्रिमों के उद्देश, सीमान्तर की मात्रा, अग्रिमों की अधिकतम मात्रा, गारण्टी की अधिकतम सीमा आदि के बारे में अधिकोषों को निर्देश देती है व द्वितीय नीति के अन्तर्गत वह ब्याज दर व उससे सम्बद्ध विषयों पर परामर्श या आदेश देता है। रिजर्व बैंक सम्पूर्ण बैंकिंग उद्योग अथवा किसी अधिकोष विशेष के लिए ऋण नीति का निर्माण कर सकता है और

प्रत्येक अधिकोष को इस नीति का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

[धारा 21 (1 2, व 3)]

19. अनुज्ञा-पत्र आवश्यक (License is essential):–भारत वर्ष में कार्य करने के इच्छुक प्रत्येक व्यापारिक अधिकोष को अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व रिजर्व बैंक से व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए अनुज्ञा-पत्र लेना आवश्यक है। जब तक उसे वह अनुज्ञा-पत्र नहीं मिलता है तब तक वह इस देश में अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकता। जो अधिकोष इस अधिनियम के लागू होने से पहले ही इस देश में कार्य कर रहे थे उनके लिए भी अनुज्ञापत्र लेना अनिवार्य किया गया; किन्तु रिजर्व बैंक की स्वीकृति या अस्वीकृति तक उन्हें कार्य करने की अनुमति दी गई। स्टेट बैंक समूह व राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को अनुज्ञापत्र लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। [धारा 22 (1 व 2)]

अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने से पूर्व रिजर्व बैंक प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों की सहायता से निरीक्षण करवाता है और निम्नलिखित तथ्यों से संतुष्ट होने पर उसे अनुज्ञापत्र दे देता है :—

(i) प्रार्थी अधिकोष अपने वर्तमान व भावी जमाकर्त्ताओं को उनकी सम्पूर्ण जमा राशि का भुगतान करने में समर्थ है व समर्थ रहेगा। भावी जमाकर्त्ताओं के निक्षेपों की भुगतान क्षमता से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक प्रार्थी अधिकोष के संचालक-मण्डल व प्रमुख कार्यकारी अधिकारी की सामाजिक प्रतिष्ठा, अधिकोष संगठन व अधिकोष संचालन नीति को प्राथमिकता देते हैं।

(ii) प्रार्थी अधिकोष का संचालन वर्तमान व भावी जमाकर्त्ताओं के हितों के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है और न ऐसी कोई सम्भावना है। इस तथ्य से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक अधिकोष की (i) पूंजी व सुरक्षित निधि (ii) अर्जन क्षमता (iii) संचालक मण्डल का गठन व संचालकों की सामाजिक प्रतिष्ठा (iv) संचालकों की ईमानदारी (v) संचालन नीति और (vi) अधिकोष कर्मचारियों की योग्यता आदि पर विचार करते हैं।

(iii) प्रार्थी अधिकोष (विदेशी होने पर) के देश में भारतीय अधिकोषों के विरुद्ध उस देश की सरकार अथवा कानून द्वारा किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा रहा है, उसे अनुज्ञापत्र होना जनहित में है और वह विदेशी अधिकोषों पर लागू होने वाले समस्त प्रावधानों की पूर्ति करता है। [धारा 21 (3)]

उपर्युक्त तथ्यों से सन्तुष्ट होने पर रिजर्व बैंक सामान्यतः प्रार्थी अधिकोष को अनुज्ञापत्र स्वीकृत कर देता है; किन्तु वह चाहे तो अपनी ओर से प्रार्थी को अन्य किसी शर्त की पूर्ति का भी आदेश दे सकता है और प्रार्थी अधिकोष को उस आदेश का पालन करना पड़ता है।

जब प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है तो रिजर्व बैंक के इस निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय या सरकार से अपील नहीं की जा सकती। प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र किन अवस्थाओं में अस्वीकृत किया जायेगा, इस सम्बन्ध में अधिनियम पूर्णत: मौन है; किन्तु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त तीनों शर्तों की पूर्ति न होने पर ही रिजर्व बैंक किसी अधिकोष का प्रार्थनापत्र रद्द करता है।

जब रिजर्व बैंक नक़द कोष के प्रतिशत में वृद्धि करता है तो वह बढ़े हुए प्रतिशत के कारण जमा करवाई गई अतिरिक्त राशि पर अपनी ओर से अनुसूचित अधिकोषों को अपनी ओर से निर्धारित दर से ब्याज भी दे सकता है। [धारा 42 (1B)]

15. सहायक प्रमण्डलों के निर्माण व अन्य प्रमण्डलों में निवेश पर प्रतिबन्धः—एक अधिकोष केवल निम्नांकित कार्यों के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण कर सकता है :

(i) प्रन्यास कार्य
(ii) प्रन्यासी, निष्पादक व अन्य किसी क्षमता में सम्पत्ति के प्रशासनार्थ
(iii) सुरक्षित निक्षेप कक्ष (Safe Deposit Vaults) की सुविधा प्रदान करने हेतु और
(iv) भारत से बाहर अधिकोषण सेवाओं को चालू करने के लिए। इस कार्य के लिए सम्बन्धित अधिकोष को कार्यारम्भ से पूर्व भारतीय रिजर्व बैंक से लिखित स्वीकृति लेनी पड़ती है।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त एक अधिकोष अन्य किसी कार्य के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण नहीं कर सकता। [धारा 19(1)]

16. विनियोगों पर प्रतिबन्धः—एक अधिकोष किसी प्रमण्डल में उसकी दत्त पूंजी या अपनी दत्त पूंजी और सुरक्षित कोष के 30 प्रतिशत से अधिक राशि (जो भी कम हो) का विनियोजन कर सकता है। विनियोजन में अंश-पत्रों के क्रय, विबन्धन व गिरवी की गणना की जाती है। [धारा 19 (2)]।

एक अधिकोष ऐसे प्रमण्डलों में भी अपने कोषों का विनियोजन नहीं कर सकता जिनमें उसके किसी संचालक अथवा प्रबन्धक का किसी प्रकार का हित होता है अथवा उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध होता है। [धारा 19 (3)]।

17. ऋणों व अग्रिमों पर प्रतिबन्धः—एक अधिकोष (i) अपने अंश पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (ii) अपने किसी संचालक को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (iii) ऐसे फर्म व प्रमण्डल को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता जिसमें उनके किसी संचालक का हिस्सेदार, संचालक, प्रबन्धक, कर्मचारी या अन्य किसी क्षमता में किसी प्रकार का हित होता है और (iv) ऐसे व्यक्ति को ऋण नहीं दे सकता जिसमें (ऋण)अधिकोष संचालक का हिस्सा होता है अथवा जिसकी संचालक ने गारण्टी दी हो। [धारा (20)]

18. ऋणों का नियमन व नियंत्रणः—रिजर्व बैंक भारत में कार्य करने वाले समस्त व्यापारिक अधिकोषों की ऋणनीति का नियमन करता है। ऋणों के नियमन-हेतु रिजर्व बैंक प्रवृत्य-साख नियन्त्रण (Selective credit control) व ब्याज दर नियंत्रण प्रभृति नीतियों का अनुपालन करता है। प्रथम नीति के अन्तर्गत रिजर्व बैंक अग्रिमों के उद्देश, सीमान्तर की मात्रा, अग्रिमों की अधिकतम मात्रा, गारण्टी की अधिकतम सीमा आदि के बारे में अधिकोषों को निर्देश देती है व द्वितीय नीति के अन्तर्गत वह ब्याज दर व उससे सम्बद्ध विषयों पर परामर्श या आदेश देता है। रिजर्व बैंक सम्पूर्ण बैंकिंग उद्योग अथवा किसी अधिकोष विशेष के लिए ऋण नीति का निर्माण कर सकता है और

प्रत्येक अधिकोष को इस नीति का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

[धारा 21 (1 2, व 3)]

19. अनुज्ञा-पत्र आवश्यक (License is essential):–भारत वर्ष में कार्य करने के इच्छुक प्रत्येक व्यापारिक अधिकोष को अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व रिजर्व बैंक से व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए अनुज्ञा-पत्र लेना आवश्यक है। जब तक उसे यह अनुज्ञा-पत्र नहीं मिलता है तब तक वह इस देश में अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकता। जो अधिकोष इस अधिनियम के लागू होने से पहले ही इस देश में कार्य कर रहे थे उनके लिए भी अनुज्ञापत्र लेना अनिवार्य किया गया; किन्तु रिजर्व बैंक की स्वीकृति या अस्वीकृति तक उसे कार्य करने की अनुमति दी गई। स्टेट बैंक समूह व राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को अनुज्ञापत्र लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। [धारा 22 (1 व 2)]

अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने से पूर्व रिजर्व बैंक प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों की सहायता से निरीक्षण करवाता है और निम्नलिखित तथ्यों से संतुष्ट होने पर उसे अनुज्ञापत्र दे देता है :—

(i) प्रार्थी अधिकोष अपने वर्तमान व भावी जमाकर्ताओं को उनकी सम्पूर्ण जमा राशि का भुगतान करने में समर्थ है व समर्थ रहेगा। भावी जमाकर्ताओं के हितों की भुगतान क्षमता से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक प्रार्थी अधिकोष के संचालक-मण्डल व प्रमुख कार्यकारी अधिकारी की सामाजिक प्रतिष्ठा, अधिकोष संगठन व अधिकोष संचालन नीति को प्राथमिकता देते हैं।

(ii) प्रार्थी अधिकोष का संचालन वर्तमान व भावी जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है और न ऐसी कोई सम्भावना है। इस तथ्य से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक अधिकोष की (i) पूँजी व सुरक्षित निधि (ii) अर्जन क्षमता (iii) संचालक मण्डल का गठन व संचालकों की सामाजिक प्रतिष्ठा (iv) संचालकों की ईमानदारी (v) संचालन नीति और (vi) अधिकोष कर्मचारियों की योग्यता आदि पर विचार करते हैं।

(iii) प्रार्थी अधिकोष (विदेशी होने पर) के देश में भारतीय अधिकोषों के विरुद्ध उस देश की सरकार अथवा कानून द्वारा किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा रहा है, उसे अनुज्ञापत्र देना जनहित में है और वह विदेशी अधिकोषों पर लागू होने वाले समस्त प्रावधानों की पूर्ति करता है। [धारा 21 (3)]

उपर्युक्त तथ्यों से सन्तुष्ट होने पर रिजर्व बैंक सामान्यतः प्रार्थी अधिकोष को अनुज्ञापत्र स्वीकृत कर देता है; किन्तु वह चाहे तो अपनी ओर से प्रार्थी को अन्य किसी शर्त की पूर्ति का भी आदेश दे सकता है और प्रार्थी अधिकोष को इस आदेश का पालन करना पड़ता है।

जब प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है तो रिजर्व बैंक के इस निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय या सरकार के यहाँ अपील नहीं की जा सकती। प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र किन परिस्थितियों में अस्वीकृत किया जायगा, इस सम्बन्ध में अधिनियम पूर्णतः मौन है; किन्तु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त तीनों शर्तों की पूर्ति न होने पर ही रिजर्व बैंक किसी अधिकोष का प्रार्थनापत्र रद करता है।

जब रिजर्व बैंक नकद कोष के प्रतिशत में वृद्धि करता है तो वह बढ़े हुए प्रतिशत के कारण जमा करवाई गई अतिरिक्त राशि पर अपनी ओर से अनुसूचित अधिकोषों को अपनी ओर से निर्धारित दर से ब्याज भी दे सकता है। [धारा 42 (1B)]

15. सहायक प्रमण्डलों के निर्माण व अन्य प्रमण्डलों में निवेश पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष केवल निम्नांकित कार्यों के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण कर सकता है :

(i) प्रन्यास कार्य
(ii) प्रन्यासी, निष्पादक व अन्य किसी क्षमता में सम्पत्ति के प्रशासनार्थ
(iii) सुरक्षित निक्षेप कक्ष (Safe Deposit Vaults) की सुविधा प्रदान करने हेतु और
(iv) भारत से बाहर अधिकोषण सेवाओं को चालू करने के लिए। इस कार्य के लिए सम्बन्धित अधिकोष को कार्यारम्भ से पूर्व भारतीय रिजर्व बैंक से लिखित स्वीकृति लेनी पड़ती है।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त एक अधिकोष अन्य किसी कार्य के लिए सहायक प्रमण्डल का निर्माण नहीं कर सकता। [धारा 19(1)]

16. विनियोगों पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष किसी प्रमण्डल में उसकी दत्त पूंजी या अपनी दत्त पूंजी और सुरक्षित कोष के 30 प्रतिशत से अधिक राशि (जो भी कम हो) का विनियोजन कर सकता है। विनियोजन में अंश-पत्रों के क्रय, विबन्धन व गिरवी की गणना की जाती है। [धारा 19 (2)]।

एक अधिकोष ऐसे प्रमण्डलों मे भी अपने कोषों का विनियोजन नहीं कर सकता जिनमें उसके किसी संचालक अथवा प्रबन्धक का किसी प्रकार का हित होता है अथवा उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध होता है। [धारा 19 (3)]।

17. ऋणों व अग्रिमों पर प्रतिबन्ध:—एक अधिकोष (i) अपने अंश पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (ii) अपने किसी संचालक को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता (iii) ऐसे फर्म व प्रमण्डल को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता जिसमें उनके किसी संचालक का हिस्सेदार, संचालक, प्रबन्धक, कर्मचारी या अन्य किसी क्षमता मे किसी प्रकार का हित होता है और (iv) ऐसे व्यक्ति को ऋण नहीं दे सकता जिसमें (ऋण)अधिकोष संचालक का हिस्सा होता है अथवा जिसकी संचालक ने गारण्टी दी हो। [धारा (20)]

18. ऋणों का नियमन व नियंत्रण:—रिजर्व बैंक भारत मे कार्य करने वाले समस्त व्यापारिक अधिकोषों की ऋणनीति का नियमन करता है। ऋणों के नियमन-हेतु रिजर्व बैंक प्रवृत्य-साख नियन्त्रण (Selective credit control) व ब्याज दर नियंत्रण प्रभृति नीतियों का अनुपालन करता है। प्रथम नीति के अन्तर्गत रिजर्व बैंक अग्रिमों के उद्देश, सीमान्तर की मात्रा, अग्रिमों की अधिकतम मात्रा, गारण्टी की अधिकतम सीमा आदि के बारे मे अधिकोषों को निर्देश देती है व द्वितीय नीति के अन्तर्गत वह ब्याज दर व उससे सम्बद्ध विषयों पर परामर्श या आदेश देता है। रिजर्व बैंक सम्पूर्ण बैंकिंग उद्योग अथवा किसी अधिकोष विशेष के लिए ऋण नीति का निर्माण कर सकता है और

प्रत्येक अधिकोष को इस नीति का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

[धारा 21 (1 2, व 3)]

19. अनुज्ञा-पत्र आवश्यक (License is essential):–भारत वर्ष में कार्य करने के इच्छुक प्रत्येक व्यापारिक अधिकोष को अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व रिजर्व बैंक से व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए अनुज्ञा-पत्र लेना आवश्यक है। जब तक उसे वह अनुज्ञा-पत्र नहीं मिलता है तब तक वह इस देश में अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकता। जो अधिकोष इस अधिनियम के लागू होने से पहले ही इस देश में कार्य कर रहे थे उनके लिए भी अनुज्ञापत्र लेना अनिवार्य किया गया; किन्तु रिजर्व बैंक की स्वीकृति या अस्वीकृति तक उन्हें कार्य करने की अनुमति दी गई। स्टेट बैंक समूह व राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को अनुज्ञापत्र लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। [धारा 22 (1 व 2)]

अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने से पूर्व रिजर्व बैंक प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों की सहायता से निरीक्षण करवाता है और निम्नलिखित तथ्यों से संतुष्ट होने पर उसे अनुज्ञापत्र दे देता है :—

(i) प्रार्थी अधिकोष अपने वर्तमान व भावी जमाकर्त्ताओं को उनकी सम्पूर्ण जमा राशि का भुगतान करने में समर्थ है व समर्थ रहेगा। भावी जमाकर्त्ताओं के निक्षेपों की भुगतान क्षमता से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक प्रार्थी अधिकोष के संचालक-मण्डल व प्रमुख कार्यकारी अधिकारी की सामाजिक प्रतिष्ठा, अधिकोष संगठन व अधिकोष संचालन नीति को प्राथमिकता देते हैं।

(ii) प्रार्थी अधिकोष का संचालन वर्तमान व भावी जमाकर्त्ताओं के हितों के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है और न ऐसी कोई सम्भावना है। इस तथ्य से आश्वस्त होने के लिए रिजर्व बैंक के निरीक्षक अधिकोष की (i) पूंजी व सुरक्षित निधि (ii) अर्जन क्षमता (iii) संचालक मण्डल का गठन व संचालकों की सामाजिक प्रतिष्ठा (iv) संचालकों की ईमानदारी (v) संचालन नीति और (vi) अधिकोष कर्मचारियों की योग्यता आदि पर विचार करते हैं।

(iii) प्रार्थी अधिकोष (विदेशी होने पर) के देश में भारतीय अधिकोषों के विरुद्ध उस देश की सरकार अथवा कानून द्वारा किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा रहा है, उसे अनुज्ञापत्र होना जनहित में है और वह विदेशी अधिकोषों पर लागू होने वाले समस्त प्रावधानों की पूर्ति करता है। [धारा 21 (3)]

उपर्युक्त तथ्यों से संतुष्ट होने पर रिजर्व बैंक सामान्यतः प्रार्थी अधिकोष को अनुज्ञापत्र स्वीकृत कर देता है; किन्तु वह चाहे तो अपनी ओर से प्रार्थी को अन्य किसी शर्त की पूर्ति का भी आदेश दे सकता है और प्रार्थी अधिकोष को उस आदेश का पालन करना पड़ता है।

जब प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है तो रिजर्व बैंक के इस निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय या सरकार के पास अपील नहीं की जा सकती। प्रार्थी अधिकोष का प्रार्थनापत्र किन परिस्थितियों में अस्वीकृत किया जायगा, इस सम्बन्ध में अधिनियम पूर्णतः मौन है; किन्तु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त तीनों शर्तों की पूर्ति न होने पर ही रिजर्व बैंक किसी अधिकोष का प्रार्थनापत्र रद्द करता है।

अनुज्ञापत्र का निरस्तीकरण (Cancellation of License)—रिजर्व बैंक निम्नांकित अवस्थाओं एक अधिकोष का अनुज्ञापत्र निरस्त कर सकता है।

(i) जब एक अधिकोष बैंकिंग व्यवसाय को स्थगित कर देता है अथवा उसे सर्वथा बन्द कर देता है;

(ii) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित शर्तों की पूर्ति नहीं करता है और

(iii) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित अतिरिक्त शर्तों को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है। [धारा 21 (4)]

रिजर्व बैंक एक अनुज्ञापत्र को निरस्त करने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष को अपने पक्ष के प्रस्तुतीकरण के लिए समुचित अवसर देता है। किन्तु जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि सम्बन्धित अधिकोष को इस प्रकार से समय देने पर जनता अथवा जमाकर्ताओं को हानि होगी तो वह समुचित अवसर दिए बिना भी एक अधिकोष के अनुज्ञापत्र को निरस्त कर सकता है। [धारा 21 (4)]

जिस अधिकोष का अनुज्ञापत्र रद्द किया जाता है वह निरस्तीकरण के आदेश की प्राप्ति के 30 दिनों के अन्दर केन्द्रीय सरकार के पास रिजर्व बैंक के इस निर्णय के विरुद्ध अपील कर सकता है। जब उसके द्वारा इस निर्धारित अवधि में अपील नहीं की जाती है तो रिजर्व बैंक का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता है और जब अपील की जाती है तो केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता है व वह निर्णय रिजर्व बैंक और प्रार्थी अधिकोष पर समान रूप से लागू होता है। रिजर्व बैंक और केन्द्रीय सरकार के इन निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। [धारा 21 (5 & 6)]

20. शाखा-विस्तार एवं स्थानान्तरण (Branch Expansion and Transfer)—एक अधिकोष को भारत से बाहर किसी नवीन स्थान पर कार्यालय (शाखा, उपशाखा, वेतन कार्यालय व उपवेतन कार्यालय) खोलने या स्थानांतरित करने से पूर्व रिजर्व बैंक की अनुमति लेनी पड़ती है; किन्तु निम्नांकित अवस्थाओं में उसे इस अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती है :

(i) जब एक अधिकोष एक ही नगर, कस्बे अथवा ग्राम में शाखा स्थान बदलता है और,

(ii) जब एक अधिकोष की शाखा अपने वर्तमान कार्य-क्षेत्र में किसी मेले, प्रदर्शनी, कान्फ्रेंस या अन्य इसी प्रकार के अवसर पर अस्थाई रूप से बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के लिए एक माह के लिए शाखा खोलना चाहता है। [धारा 23 (1) (a & b)]

नवीन शाखा खोलने या पुरानी शाखा के स्थानांतरण की अनुमति देने से पूर्व रिजर्व बैंक बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 35 के अन्तर्गत प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों से निरीक्षण करवाता है।

निरीक्षक अग्रांकित तथ्यों के बारे में रिजर्व बैंक को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं—

(i) प्रार्थी अधिकोष की वित्तीय स्थिति व इतिहास,
(ii) प्रार्थी अधिकोष के प्रबन्ध की सामान्य दशा,
(iii) प्रार्थी अधिकोष की पूंजी की पर्याप्तता,
(iv) भावी अर्जन की सम्भावनाएं,
(v) जनहित और
(vi) गोदाम, रोप्य प्रेषण, जनसंख्या व उसका व्यवसाय, व्यापार, उद्योग, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा व प्रशिक्षित कर्मचारियों की उपलब्धि आदि।

एक अधिकोष के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करने से पूर्व रिजर्व बैंक उसे उन शर्तों की पूर्ति का आदेश दे सकता है जिनकी पूर्ति वह आवश्यक समझता है और प्रार्थी अधिकोष को उन शर्तों को पूर्ण करना होगा।

शाखा सम्बन्धी आदेश की वापिसी—शाखा खोलने/स्थानांतरित करने के पश्चात् यदि रिजर्व बैंक यह अनुभव करे कि प्रार्थी अधिकोष ने शाखा-सम्बन्धी समस्त शर्तों को पूर्ण नहीं किया तो वह सम्बन्धित शाखा को स्पष्टीकरण का समुचित अवसर देने के पश्चात् अपना आदेश वापस ले सकता है। रिजर्व बैंक को अपना यह आदेश लिखित में देना पड़ता है। [धारा 23 (3 & 4)]

एक अधिकोष को विदेशों में शाखाएं खोलने की अनुमति देने से पूर्व रिजर्व बैंक उसकी पूंजी, संचित कोष की मात्रा और अधिकोषीय परम्पराओं पर भी विचार करता है।

कार्यालयों की सूची—प्रत्येक अधिकोष को प्रत्येक तिमाही की समाप्ति के एक माह के अन्दर रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रपत्र में अपने कार्यालयों की सूची प्रेषित करनी पड़ती है।

21. **तरल कोष (Liquid Assets)**—भारत में कार्यरत प्रत्येक अधिकोष को अपने कुल (माग पर देय व सावधि) दायित्वों का 25 प्रतिशत नकद, स्वर्ण या भारमुक्त अनुमोदित प्रतिभूतियों में प्रतिदिन भारत में रखना पड़ता है। जब तरल कोषों को स्वर्ण या प्रतिभूतियों[1] में रखा जाता है तो उनका मूल्यांकन बाजार मूल्य के आधार पर किया जाता है। [धारा 24 (1)]

इस धारा के प्रावधानों की पूर्ति के अतिरिक्त भारत में कार्यरत अधिकोषों को रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 व बैंकिंग अधिनियम की धारा 18 के प्रावधानों की भी पूर्ति करनी पड़ती है अर्थात् प्रत्येक अधिकोष को अपने 28 प्रतिशत दायित्व हमेशा तरल रूप में रखने पड़ते हैं। [धारा 24 (2A) (i & ii)]

25 प्रतिशत तरल कोषों में निम्नांकित कोष भी सम्मिलित किए जाते हैं—
(i) विदेशी अधिकोषों द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक के पास जमा करवाई गई राशि;

---

1. अनुमोदित प्रतिभूतियों का तात्पर्य उन प्रतिभूतियों से है जिनमें एक प्रन्यासी भारतीय प्रन्यास अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत प्रन्यास राशि का विनियोजन कर सकता है।

अनुज्ञापत्र का निरस्तीकरण (Cancellation of License)—रिजर्व बैंक निम्नांकित अवस्थाओं एक अधिकोष का अनुज्ञापत्र निरस्त कर सकता है।

(i) जब एक अधिकोष बैंकिंग व्यवसाय को स्थगित कर देता है अथवा उसे सर्वथा बन्द कर देता है;

(ii) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित शर्तों की पूर्ति नहीं करता है और

(iii) जब वह रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित अतिरिक्त शर्तों को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है। [धारा 21 (4)]

रिजर्व बैंक एक अनुज्ञापत्र को निरस्त करने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष को अपने पक्ष के प्रस्तुतीकरण के लिए समुचित अवसर देता है। किन्तु जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि सम्बन्धित अधिकोष को इस प्रकार से समय देने पर जनता अथवा जमाकर्ताओं को हानि होगी तो वह समुचित अवसर दिए बिना भी एक अधिकोष के अनुज्ञापत्र को निरस्त कर सकता है। [धारा 21 (4)]

जिस अधिकोष का अनुज्ञापत्र रद्द किया जाता है वह निरस्तीकरण के आदेश की प्राप्ति के 30 दिनों के अन्दर केन्द्रीय सरकार के पास रिजर्व बैंक के इस निर्णय के विरुद्ध अपील कर सकता है। जब उसके द्वारा इस निर्धारित अवधि में अपील नहीं की जाती है तो रिजर्व बैंक का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता है और जब अपील की जाती है तो केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता है व वह निर्णय रिजर्व बैंक और प्रार्थी अधिकोष पर समान रूप से लागू होता है। रिजर्व बैंक और केन्द्रीय सरकार के इन निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। [धारा 21 (5 & 6)]

20. शाखा-विस्तार एवं स्थानान्तरण (Branch Expansion and Transfer)—एक अधिकोष को भारत से बाहर किसी नवीन स्थान पर कार्यालय (शाखा, उपशाखा, वेतन कार्यालय व उपवेतन कार्यालय) खोलने या स्थानांतरित करने से पूर्व रिजर्व बैंक की अनुमति लेनी पड़ती है; किन्तु निम्नांकित अवस्थाओं में उसे इस अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती है :

(i) जब एक अधिकोष एक ही नगर, कस्बे अथवा ग्राम में शाखा स्थान बदलता है और,

(ii) जब एक अधिकोष की शाखा अपने वर्तमान कार्य-क्षेत्र में किसी मेले, प्रदर्शनी, कान्फ्रेंस या अन्य इसी प्रकार के अवसर पर अस्थाई रूप से बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के लिए एक माह के लिए शाखा खोलना चाहता है।

[धारा 23 (1) (a & b)]

नवीन शाखा खोलने या पुरानी शाखा के स्थानांतरण की अनुमति देने से पूर्व रिजर्व बैंक बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 35 के अन्तर्गत प्रार्थी अधिकोष का अपने निरीक्षकों से निरीक्षण करवाता है।

निरीक्षक अग्रांकित तथ्यों के बारे में रिजर्व बैंक को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं—

(i) प्रार्थी अधिकोष की वित्तीय स्थिति व इतिहास,
(ii) प्रार्थी अधिकोष के प्रबन्ध की सामान्य दशा,
(iii) प्रार्थी अधिकोष की पूंजी की पर्याप्तता,
(iv) भावी अर्जन की सम्भावनाएं,
(v) जनहित और
(vi) गोदाम, रौप्य प्रेषण, जनसंख्या व उसका व्यवसाय, व्यापार, उद्योग, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा व प्रशिक्षित कर्मचारियों की उपलब्धि आदि।

एक अधिकोष के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करने से पूर्व रिजर्व बैंक उसे उन शर्तों की पूर्ति का आदेश दे सकता है जिनकी पूर्ति वह आवश्यक समझता है और प्रार्थी अधिकोष को उन शर्तों को पूर्ण करना होगा।

शाखा सम्बन्धी आदेश की वापिसी—शाखा खोलने/स्थानांतरित करने के पश्चात् यदि रिजर्व बैंक यह अनुभव करे कि प्रार्थी अधिकोष ने शाखा-सम्बन्धी समस्त शर्तों को पूर्ण नहीं किया तो वह सम्बन्धित शाखा को स्पष्टीकरण का समुचित अवसर देने के पश्चात् अपना आदेश वापस ले सकता है। रिजर्व बैंक को अपना यह आदेश लिखित में देना पड़ता है। [धारा 23 (3 & 4)]

एक अधिकोष को विदेशों में शाखाएं खोलने की अनुमति देने से पूर्व रिजर्व बैंक उसकी पूंजी, संचित कोष की मात्रा और अधिकोषीय परम्पराओं पर भी विचार करता है।

कार्यालयों की सूची—प्रत्येक अधिकोष को प्रत्येक तिमाही की समाप्ति के एक माह के अन्दर रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रपत्र में अपने कार्यालयों की सूची प्रेषित करनी पड़ती है।

21. **तरल कोष (Liquid Assets)**—भारत में कार्यरत प्रत्येक अधिकोष को अपने कुल (मांग पर देय व सावधि) दायित्वों का 25 प्रतिशत नकद, स्वर्ण या भारमुक्त अनुमोदित प्रतिभूतियों में प्रतिदिन भारत में रखना पड़ता है। जब तरल कोषों को स्वर्ण या प्रतिभूतियों[1] में रखा जाता है तो उनका मूल्यांकन बाजार मूल्य के आधार पर किया जाता है। [धारा 24 (1)]

इस धारा के प्रावधानों की पूर्ति के अतिरिक्त भारत में कार्यरत अधिकोषों को रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 व बैंकिंग अधिनियम की धारा 18 के प्रावधानों की भी पूर्ति करनी पड़ती है अर्थात् प्रत्येक अधिकोष को अपने 28 प्रतिशत दायित्व हमेशा तरल रूप में रखने पड़ते हैं। [धारा 24 (2A) (i & ii)]

25 प्रतिशत तरल कोषों में निम्नांकित कोष भी सम्मिलित किए जाते हैं—
(1) विदेशी अधिकोषों द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक के पास जमा करवाई गई राशि,

---

1. अनुमोदित प्रतिभूतियों का तात्पर्य उन प्रतिभूतियों से है जिनमें एक प्रन्यासी भारतीय प्रन्यास अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत प्रन्यास राशि का विनियोजन कर सकता है।

(ii) अनुसूचित अधिकोषों द्वारा रिजर्व बैंक के पास रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 द्वारा वांछित राशि से अधिक जमा करवाई गई राशि;

(iii) गैर-अनुसूचित अधिकोषों द्वारा रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक या भारत सरकार द्वारा अधिकृत अन्य किसी अधिकोष या अपने पास धारा 18 द्वारा वांछित राशि से अधिक रखी गई राशि और

(iv) किसी अधिकोष द्वारा रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक व भारत सरकार द्वारा अधिकृत किसी अन्य अधिकोष के पास चालू खाते में जमा राशि। [धारा 24 (2)]

प्रत्येक अधिकोष को प्रतिमाह अपने तरल कोषों का विवरण रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रपत्र व निर्धारित पद्धति में भेजना पड़ता है। उसे यह विवरण आगामी माह की 15 तारीख तक रिजर्व बैंक के पास अनिवार्यतः भेजना पड़ता है। इस विवरण में प्रत्येक शुक्रवार के कुल दायित्वों व तरल कोषों को प्रदर्शित किया जाता है। [धारा 24 (3)]

22. भारत में सम्पत्ति (Assets in India)—प्रत्येक अधिकोष को प्रत्येक तिमाही के अन्तिम शुक्रवार को अपने कुल दायित्वों का 75 प्रतिशत भाग सम्पत्ति के रूप में भारत में रखना पड़ता है। [धारा 25 (1)]

कुल दायित्वों में दत्त पूंजी, संचित कोष व लाभ-हानि खाते के शेष को शामिल नहीं किया जाता है। [25 (3) (b)]

अधिनियम में सम्पत्ति की व्याख्या नहीं की गई है; किन्तु कुछ सम्पत्तियां इस प्रकार की है जिन्हें भारत से बाहर होते हुए भी भारत में माना जाता है यथा भारत में लिखे गए निर्यात बिल या भारत में दत्त आयात बिल। इन बिलों की सम्पत्ति में तभी गणना की जाती है जब ये रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित मुद्राओं में लिखे जाते हैं। एक अधिकोष रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित प्रतिभूतियों में भी अपनी आस्तियां रख सकता है। ये प्रतिभूतियां भारत में अथवा भारत के बाहर रखी जा सकती हैं; किन्तु इनकी गणना भारत में रखी गई आस्तियों में की जाती है। [धारा 25 (3) (a)]

प्रत्येक अधिकोष को एक-तिमाही की समाप्ति के एक माह के अन्दर अपनी भारत में रखी गई आस्तियों का विवरण, निर्धारित प्रपत्र व निर्धारित पद्धति में, रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ता है। जब अन्तिम शुक्रवार सार्वजनिक अवकाश होता है तो यह विवरण अन्तिम वृहस्पतिवार की स्थिति का प्रदर्शन करता है। [धारा 25 (2)]

एक तिमाही 31 मार्च, 30 जून, 30 सितम्बर व 31 दिसम्बर को समाप्त होती है। 25 (3) (c)

23. अयाचित जमा-राशियों का विवरण—प्रत्येक अधिकोष को कलेण्डर वर्ष (31 दिसम्बर को समाप्त) की समाप्ति के 30 दिनों के अन्दर अर्थात् आगामी वर्ष की 30 जनवरी तक रिजर्व बैंक के पास अपनी भारत स्थित समस्त शाखाओं के ऐसे खातों की सूची (जमा राशि के अंकों सहित) भेजनी पड़ती है जिनमें विगत 10 वर्षों में कोई व्यवहार नहीं हुआ है। यह सूची रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विधि व प्रपत्र में भेजी जाती है। स्थाई निक्षेप खातों की अवधि की गणना उनकी परिपक्व तिथि से की जाती है।

संचालकों की नियुक्तिः—एक निजी क्षेत्र के व्यापारिक अधिकोष के प्रथम संचालकों की नियुक्ति अधिकोष प्रवर्तकों द्वारा की जाती है, इनका नाम अधिकोष के अन्तर्नियमों व प्रविवरण में दिया जाता है। ये संचालक अपने अधिकोष की प्रथम वार्षिक सामान्य सभा तक कार्य करते है और जब इस सभा में अंशधारियों द्वारा अपने संचालकों का विधिवत्-निर्वाचन किया जाता है। अधिकोष संचालकों की नियुक्ति 3 वर्षों के लिए की जाती है किन्तु अवधि समाप्त होने पर उनका पुनर्निर्वाचन किया जा सकता है। संचालक-मण्डल के एक-तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष निवर्तमान होते रहते हैं।

संचालकों की नियुक्ति के लिए अंशधारियों को अपने अधिकोष के पास नियमानुसार प्रस्ताव भेजना पड़ता है और सम्बन्धित अधिकोष को स्थानीय व राष्ट्रीय सूचनापत्रो में एतद्विषयक सूचना प्रकाशित करवानी पड़ती है। प्रस्तावकों को संचालक के लिए प्रस्तावित व्यक्ति की लिखित सहमति भी प्रस्ताव के साथ अधिकोष के पास भिजवानी पड़ती है। एक व्यापारिक अधिकोष को अपने संचालक–मण्डल में कम–से–कम 3 सदस्य अवश्य रखने पडते है। राष्ट्रीयकृत अधिकोषों व क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषो के सचालकों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, सम्बन्धित सरकारें व प्रायोजक अधिकोषों द्वारा की जाती हैं।

संचालकों की अयोग्यताएंः—भारतीय प्रमण्डल अधिनियम और भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम उन परिस्थितियों का वर्णन करते है जिनमे एक व्यक्ति को अधिकोष का सचालक नही बनाया जा सकता।

प्रमण्डल अधिनियम (Companies Act) की धारा 274 के अन्तर्गत निम्नांकित परिस्थितियों में एक व्यक्ति को एक अधिकोष का सचालक नही बनाया जा सकता.—

(i) जिसे किसी अधिकृत न्यायालय ने अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति घोषित कर दिया हो और वह घोषणा निरस्त न की गई हो।

(ii) न्यायालय द्वारा घोषित दिवालिया व्यक्ति जिसे निर्वाचन तक उन्मुक्त न किया गया हो अथवा जिसने दिवालिया घोषित किए जाने के लिए किसी न्यायालय मे आवेदन दे रखा हो।

(iii) किसी अनैतिक कार्य के लिए न्यायालय द्वारा कम–से–कम 6 माह के लिए दण्डित व्यक्ति हो। ऐसा व्यक्ति इस आदेश की समाप्ति के 5 वर्ष के पश्चात् सचालक बनाया जा सकता है।

(iv) जिसने अपने द्वारा खरीदे गए अंशों की याचना राशि का अन्तिम तिथि की समाप्ति के 6 माह तक भुगतान न किया हो।

(v) जिसे न्यायालय ने प्रमण्डल अधिनियम की धारा 203 के अन्तर्गत धोखा घड़ी व अनियमित कार्यों के कारण सचालक होने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया हो।

भारतीय बैंकिग नियमन अधिनियम निम्नलिखित अवस्थाओ मे एक व्यक्ति को संचालक पद के अयोग्य मानता है—

1. एक व्यक्ति एक समय में एक से अधिक अधिकोषो का सचालक नही बन सकता। (16)

2. जिसके पास अर्हक अंश (Qualifying Shares) नही हैं, किन्तु रिजर्व बैंक द्वारा मनोनीत संचालको पर यह शर्त लागू नही होती है।

3. उन प्रमण्डलों के किसी संचालक को एक ऐसे अधिकोष का संचालक नियुक्त नही किया जा सकता जिनका सामूहिक रूप से उस अधिकोष के 20 प्रतिशत से अधिक

मतों पर अधिकार होता है। जब ऐसे व्यक्ति को उस अधिकोष के संचालक के रूप में चुना जाता है तो उसे रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अवधि में अधिकोष के संचालक पद से त्याग पत्र देना पड़ता है अथवा उस प्रमण्डल समूह की कुछ इकाइयों के संचालक पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है ताकि उस पर 20 प्रतिशत मतदान का प्रावधान लागू न हो सके। रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त संचालकों पर उपयुक्त प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

4. किसी संस्था या प्रमण्डल को किसी अधिकोष का संचालक नहीं बनाया जा सकता।

संचालकों की योग्यताएं:— भारतीय प्रमण्डल अधिनियम अथवा भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम में संचालकों की योग्यताओं का कहीं पर भी वर्णन नहीं किया गया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि जिन अंशधारियों (व्यक्तियों) पर उपर्युक्त अयोग्यताएं लागू नहीं होती है उन्हें संचालकों के रूप में निर्वाचित किया जा सकता है। फिर भी परम्परा एवं अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिकोषों के संचालक-(i) सुशिक्षित (ii) अनुभवी (iii) व्यवहारकुशल (iv) नीति-निपुण (v) ईमानदार (vi) सेवा भावी (vii) सम्पन्न और (viii) दृढ निर्णय शक्ति वाले होने चाहिएं। इन गुणों से संचालकों के व्यक्तित्व में निखार आता है और वे अधिकोषण जैसे परिष्कृत एवं जटिलतापूर्ण उद्योग के निर्विघ्न संचालन में सफल हो जाते हैं और इस उद्योग के प्रति जन-मानस में एक आस्था पैदा कर देते हैं।

संचालकों की वित्तीय सुदृढता अंशधारियों व आम जनता में आत्म-विश्वास पैदा करती है। इसीलिए भारतीय प्रमण्डल अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि एक संचालक को अपने निर्वाचन के दो माह के अन्दर योग्यता अंश खरीद लेने चाहिए। एक व्यक्ति एक अंश खरीदने पर भी एक अधिकोष का संचालक बन सकता है; किन्तु योग्यता अंशों का अधिकतम मूल्य 5,000 रुपये रखा गया है। जब एक संचालक 2 माह में योग्यता अंशों को नहीं खरीद पाता है तो उसे अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है और स्थान रिक्त न करने पर प्रतिदिन 50 रुपए अर्थ-दण्ड देना पड़ता है। (प्र. अ. 270)

संचालकों की पद-मुक्ति:— व्यापारिक अधिकोषों के संचालकों को निम्नांकित विधियों से पद-मुक्त किया जा सकता है :—

(i) न्यायालय द्वारा:—किसी भी संचालक को अनैतिकता अथवा जालसाजी का दोषी पाए जाने पर न्यायालय उसे पद मुक्त करने की सिफारिश कर सकता है और भारतीय रिज़र्व बैंक न्यायालय की ऐसी सिफारिश पर सम्बन्धित संचालक को पद-मुक्त कर देता है।

(ii) अंशधारियों द्वारा.—जब एक संचालक (i) अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता है अथवा (ii) प्रमण्डल हितों के विरुद्ध कार्य करता है अथवा (iii) अन्तर्नियमों के विरुद्ध कार्य करता है तो उसे, अधिकोष के अंशधारी एक विशेष प्रस्ताव द्वारा ऐसे संचालक को अपने पद से हटा सकते हैं। अंशधारियों से प्राप्त प्रस्ताव को सामान्य सभा में प्रस्तुत करने से पूर्व प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि सम्बन्धित संचालक के पास प्रेषित की जाती है और उससे स्पष्टीकरण मांगा जाता है। संचालक चाहे तो अपने स्पष्टीकरण को समस्त अंशधारियों में प्रसारित करने के लिए निवेदन कर सकता है। इस प्रस्ताव के तीन-चौथाई मतों से पारित होने पर सम्बन्धित संचालक अपने पद से मुक्त हो जाता है।

अंशधारी निम्नांकित संचालकों को मदमुक्त नहीं कर सकते—

(i) धारा 408 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत संचालक

(ii) किसी निजी प्रमण्डल द्वारा मनोनीत ऐसे आजीवन संचालक जिनकी नियुक्ति 1.4.52 से पूर्व की जा चुकी थी और

(iii) अन्तर्नियमो के अन्तर्गत आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा निर्वाचित संचालक।

3. वैधानिक अयोग्यताएं प्राप्त करने पर—जब एक संचालक वैधानिक प्रतिबन्धो के कारण किसी अधिकोष का संचालक नहीं बन सकता है या सचालक के पद पर कार्य नहीं कर पाता है तो उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। एक संचालक को निम्नांकित अवस्थाओं में अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है—

(1) योग्यता अंश न खरीदने पर,

(2) पागल घोषित किए जाने पर,

(3) दिवालिया घोषित किए जाने पर अथवा इस हेतु न्यायालय में आवेदन करने पर,

(4) न्यायालय द्वारा अनैतिक कार्यों व धोखाधड़ी के लिए अपराधी घोषित किए जाने पर व 6 माह से अधिक की सजा पाने पर,

(5) संचालक-मण्डल की बैठकों से लगातार तीन माह तक अनुपस्थित रहने पर अथवा सचालक मण्डल को तीन बैठकों मे लगातार अनुपस्थित रहने पर,

(6) व्यावसायिक लेन-देनों में निहित अपने हितो को संचालक-मण्डल के समक्ष प्रकट न करने पर,

(7) अधिकोष के 20 प्रतिशत से अधिक अंशों पर अधिकार कर लेने पर अथवा ऐसे प्रमण्डल समूह का सचालक बन जाने पर जिसका अधिकोष के 20 प्रतिशत से अधिक अंशो पर अधिकार हो।

अधिकोष संचालकों के कर्त्तव्य—अधिकोष संचालक अपने अधिकोषों के प्रबन्धक होते हैं। प्रबन्धक के नाते इन्हें अनेक कार्यों को करना पड़ता है, जिनका सुविधा की दृष्टि से निम्नांकित दो शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

(I) प्रारम्भिक कार्य—अधिकोष के प्रथम संचालकों को इन कार्यों को करना पडता है। इन कार्यों मे निम्नांकित कार्यों को शामिल किया जाता है—

(1) भारतीय प्रमण्डल अधिनियम की धारा 56 के प्रावधानों के अनुसार अपने अधिकोष के अन्तर्नियमो व सीमा नियमों को तैयार करवाना व उनका मुद्रण करवाना। इन दोनो प्रलेखों पर संचालको को अपने हस्ताक्षर भी करने पड़ते हैं। (धारा 149)

(2) अधिकोष के अंशपत्रों के विक्रय-हेतु आवेदन-पत्र आमन्त्रित करना, अंशो का आवंटन करना और व्यापार प्रारम्भ करने के लिए प्रमण्डल पंजीयक से प्रमाण-पत्र लेना।

(3) अधिकोष के वरिष्ठ अधिकारियों व प्रथम अंकेक्षकों की नियुक्ति करना।

(4) प्रमण्डल पंजीयक को सचालक पद पर कार्य करने हेतु अपनी सहमति भेजना।

(II) सामान्य प्रबन्धकीय कार्य – अपने अधिकोष के दैनिक कार्यों के सुगम संचालन के लिए भी संचालकों को अनेक कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है जिनमें से मुख्य निम्नांकित हैं—

(i) 65 वर्ष की आयु-प्राप्ति पर अधिकोष को इस आशय की सूचना देना; [281 (1)]

(ii) अपनी नियुक्ति के दो माह के अन्दर योग्यता अंशों को खरीदना; (धारा 270)

(iii) अपनी नियुक्ति के 20 दिनों के भीतर अन्य प्रमण्डलों में धारित संचालक पदों की घोषणा। उसे यह भी घोषित करना होगा कि उन प्रमण्डलों के पास अधिकोष के कितने अंश हैं। (धारा 305)

(iv) यह घोषणा करना कि वह अन्य किसी अधिकोष का संचालक नहीं है।

(v) अधिकोष के साथ सम्पन्न व्यावसायिक लेनदेनों में निहित अपने स्वत्वों से संचालक मण्डल को सूचित करना, (धारा 299)

(vi) अधिकोष की लेखा-पुस्तकों व अन्य वैधानिक पुस्तकों को तैयार करवाना,

(vii) अधिकोष के वार्षिक लेखों को तैयार करवाना व उन्हें वार्षिक सभा में प्रस्तुत करना,

(viii) साधारण व असाधारण-आवश्यकता समझने पर-सभाओं को आहूत करना,

(ix) लाभांश की घोषणा करना व उसके भुगतान की समुचित व्यवस्था करना,

(x) भारत सरकार, रिजर्व बैंक, प्रमण्डल पंजीयक व अन्य कार्यालयों को आवश्यक प्रलेखों को भिजवाना,

(xi) संचालक-मण्डल की समय-समय पर बैठकें बुलाना व उनमें भाग लेना,

(xii) कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति व प्रशिक्षण आदि की समुचित व्यवस्था करना व उन पर समुचित नियंत्रण रखना,

(xiii) अपने अधिकोष के विनियोग, हिसाब-किताब व तरल संसाधनों से रिजर्व-बैंक को नियमानुसार सूचित करना,

(xiv) प्रमण्डल अधिनियम, बैंकिंग नियमन अधिनियम और भारतीय रिजर्व बैंक के विविध प्रावधानों का पालन करना व अपने अधिकोषों में उनका पालन करवाना।

(xv) अधिकोष अंशधारियों व ग्राहकों के हितों की रक्षा करना।

भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 46 संचालक मण्डल के अध्यक्ष, संचालक, अंकेक्षक, प्रबन्धक अवसायक व बैंक कर्मचारियों को सार्वजनिक सेवक (Public Servant) मानती है। अतएव जानबूझकर कर्त्तव्यों की अवहेलना करने पर इन्हें भारतीय दण्ड संहिता अध्याय 9 की व्यवस्थानुसार दण्ड का भागी बनना पड़ता है।

संचालकों के दायित्व—अधिकोष संचालकों के दायित्वों को निम्नांकित चार भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) अंशधारियों के प्रति दायित्व – अधिकोष संचालक अंशधारियों के प्रति निम्नलिखित प्रकार से दायी होते हैं—

(i) मिथ्यावर्णन जनित क्षतिपूर्ति—अधिकोष प्रविवरण (Prospectus) में मिथ्यावर्णन करने से यदि अंशधारियों को किसी प्रकार की हानि हो जाये तो संचालकों को प्रमण्डल अधिनियम की व्यवस्थानुसार अंशधारियों की मिथ्या वर्णन जनित हानि की पूर्ति करनी पड़ती है।

(ii) अंशपत्रों की धनराशि की वापसी—जब प्रविवरण में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि अधिकोष अंशों के क्रय-विक्रय के लिए स्कन्ध बाजार को आवेदन किया जाएगा तो संचालकों को प्रविवरण निर्गमन के 10 दिन के अन्दर किसी स्कन्ध बाजार के पास अपना आवेदन-पत्र भेज देना चाहिए और विक्रय-सूची (Subosription-list) के बन्द करने के चार सप्ताह और ज्यादा-से-ज्यादा 7 सप्ताह में यह आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए। यदि अधिकोष संचालक ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें प्रमण्डल अधिनियम की व्यवस्थानुसार उन अंशधारियों के अंशपत्रों की धनराशि वापस करनी होगी जिन्होंने इस विश्वास के साथ अंशपत्र खरीदे थे कि उनका किसी स्कन्ध बाजार में क्रय-विक्रय किया जाएगा।

(iii) आवंटन जनित क्षति-पूर्ति—जब अधिकोष संचालक अंशपत्रों के आवंटन सम्बन्धी व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हैं और फलस्वरूप अंशधारियों को किसी प्रकार की क्षति हो जाती है तो उन्हें प्रमण्डल अधिनियम की व्यवस्थानुसार अंशधारियों की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है।

(ब) जमाकर्त्ताओं के प्रति दायित्व—अधिकोषों को अधिकांश प्राय निक्षेपों के विनियोगों से प्राप्त होती है। अतएव संचालकों का यह कर्त्तव्य है कि वे निक्षेपों की सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखें अर्थात् उनका यह कर्त्तव्य है कि वे प्राप्त निक्षेपों का (i) श्रेष्ठ प्रतिभूतियों में विनियोजन करें (ii) उत्पादक कार्यों व श्रेष्ठ परियोजनाओं हेतु ऋण देवें (iii) अधिकोष के सीमा नियमों व अन्तर्नियमों के ऋण व अग्रिमों सम्बन्धी प्रावधानों का अतिक्रमण न करें और (iv) वर्जित कार्यों में उपलब्ध साधनों को प्रयुक्त न करें अन्यथा वे लापरवाही, धन के दुरुपयोग एवं विश्वास भंग के दोषी माने जाएंगे।

(स) तीसरे पक्षों के प्रति दायित्व—तृतीय पक्ष से आशय उन व्यक्तियों से है जिनके साथ अधिकोष व्यवहार करता है। निम्नांकित अवस्थाओं में अधिकोष इन व्यक्तियों के प्रति भी दायी होते है—

(i) अधिकारों से बाहर कार्य करने पर—जब एक अधिकोष अपने उद्देश्य *वाक्य में वर्णित कार्यों से बाहर कोई कार्य करता है तो अधिकोष संचालक तीसरे पक्षों* के प्रति इन कार्यों के परिणामों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं; क्योंकि *अधिकोष अंशधारी उनके इन कार्यों की पुष्टि नहीं कर सकते अर्थात् वे ऐसे कार्यों के* परिणामों के लिए अपने अधिकोष को उत्तरदायी नहीं बना सकते।

(ii) अभिकर्त्ता के रूप में अनाधिकृत कार्य करने पर—जब संचालक अपने अधिकोष के अभिकर्त्ता के रूप में अनधिकृत कार्य करते हैं, तो उन कार्यों के परिणामों के लिए वे तृतीय पक्षों के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होते हैं जैसे एक अभिकर्त्ता प्रसंविदे के अन्तर्गत एक अभिकर्त्ता होता है।

(iii) स्वयं के नाम से प्रसंविदा करने पर—जब एक संचालक किसी कार्य के लिए तृतीय पक्ष के साथ अपने नाम से प्रसंविदा करता है तो उसके परिणाम के लिए भी वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है भले ही वह कार्य अधिकोष का कार्य हो। उदाहरणार्थ एक अधिकोष का संचालक अपने अधिकोष के एक प्राप्य विपत्र का अधः-लिखित प्रकार से पृष्ठांकन करता है—

रामनाथ, संचालक, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया लिमिटेड। इस पृष्ठांकन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि रामनाथ ने विपत्र का पृष्ठांकन अपने अधिकोष की ओर से किया है अथवा अपनी ओर से। अतः अनादरण की अवस्था में रामनाथ को विपत्र की राशि के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी ठहराया जा सकता है। जब संचालक भूल से ऐसा कर लेता है और ध्यान मे आते ही उस ओर बैंक का ध्यान आकर्षित कर देता है तो वह अपने ऐसे कार्यों के परिणामों के लिए अपने अधिकोष को उत्तरदायी बना सकता है।

(द) अधिकोष के प्रति दायित्व:—अधिकोष संचालक अपने अधिकोष के प्रन्यासी के रूप मे कार्य करते हैं। अतएव उन्हें अपने कर्त्तव्यों के पालन में सम्पूर्ण सम्भव सावधानी को काम में लेना चाहिए अन्यथा उन्हें लापरवाही का दोषी माना जाता है। सामान्यतः सचालकों को निम्नांकित अवस्थाओं मे व्यक्तिशः दोषी माना जाता है—

(i) लापरवाही के लिए दोषी:—जब एक संचालक अपने कर्तव्यों का निर्वाह लापरवाही से करता है और फलस्वरूप उसके अधिकोष को किसी प्रकार की क्षति हो जाती है, तो दोषी संचालक को उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती है। लापरवाही में निम्नांकित बिन्दुओं को शामिल किया जाता है। (i) पूंजी में से लाभांश वितरण (ii) अवांछनीय ऋण स्वीकृत करना (iii) अनियमित अधिविकर्ष स्वीकृत करना (iv) कोषों का अनुचित उपयोग (v) जाल-साजी से बनाए गए लेखों पर हस्ताक्षर करना (vi) अधिकोष के अन्तिम खातों को यथोचित रूप में तैयार न करना और (vii) प्रत्यायित अधिकारों के उपयोग की जाँच न करना। उदाहरणार्थ, यदि एक अधिकोष के संचालक बैंक के किसी अधिकारी को कोई कार्य सौंप देवें और वह अधिकारी नियमित रूप से अवैधानिक व अनियमित कार्य करता रहे और संचालक उसकी इस कार्यवाही के उपरान्त भी शान्त बने रहें या उसके कार्यों की जाँच न करे तो संचालकों को लापरवाही का दोषी माना जाएगा।

यदि अन्तर्नियमों में संचालकों को उनकी लापरवाही से मुक्त करने के लिए कोई व्यवस्था की जाती है तो वह निष्प्रभावी होती है—

(ii) कर्तव्य भंग और प्रन्यास भंग के दोषी:—अधिकोष संचालक अपने अधिकोष की सम्पत्ति के प्रन्यासी होते हैं। अतएव जब एक संचालक अपने अधिकोष की सम्पत्ति को व्यक्तिगत लाभ के लिए काम मे लाता है तो उसे प्रन्यास-भंग का दोषी माना जाता है। इसी प्रकार जब एक संचालक अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता है तो उसे कर्तव्य भंग का दोषी माना जाता है। जब एक संचालक न्यायालय में यह प्रमाणित करने का प्रयास करता है कि उसने अधिकोष हित में अधिकोष सम्पत्ति का दुरुपयोग किया है तो न्यायालय उसकी इस बात को नहीं मानता है क्योंकि यह अधिकारों का अतिक्रमण माना जाता है।

(iii) गुप्त लाभार्जन के लिए दोषी:—एक अधिकोष संचालक को अपने अधिकोष के व्यवसाय से गुप्त लाभ नहीं कमाना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो पता लगने पर उसे इस लाभ को अपने अधिकोष को वापस करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक संचालक किसी व्यक्ति को अपने अधिकोष से ऋण दिलवाने के लिए ऋणी से कमीशन लेता है तो वह कमीशन संचालक का गुप्त लाभ कहलाएगा और उसे इस लाभ को अपने बैंक को वापस करना होगा।

(iv) आपराधिक कार्यों के लिए दोषी:—संचालकों के निम्नांकित कार्यों की अपराधों में गणना की जाती है—

(1) प्रविवरण में कपटपूर्ण कथन;
(2) आवेदन राशि को किसी अनुसूचित अधिकोष में जमा न करवाना;
(3) लाभांश की घोषणा के पश्चात् उसका तीन माह तक भुगतान न करना;
(4) अंकेक्षित हिसाब को साधारण सभा में प्रस्तुत न करना या इसके साथ संचालकों के प्रतिवेदन को सलग्न करना;
(5) अधिकोष के साथ सम्पन्न अनुबन्धो मे निहित अपने हितो को छिपाना;
(6) अंशधारियों के रजिस्टर को तैयार न करवाना;
(7) संचालको के रजिस्ट्रार को तैयार न करवाना;
(8) अंशपत्रो को सुपुर्दगी के लिए तैयार न करवाना;
(9) बन्धक रजिस्टर न रखना;
(10) विशेष प्रस्तावों को प्रमण्डल पंजीयक के पास न भिजवा ना;
(11) असत्य प्रतिवेदन मुद्रित करवाना;
(12) गलत सूचना देना;
(13) अशुद्ध एव अनियमित लेखों को प्रस्तुत करना, व
(14) अधिकोष के कोषो का दुरूपयोग।

उपर्युक्त अपराधो के लिए सचालको को अर्थदण्ड व सजा या दोनो का भागीदार बनाया जा सकता है।

सचालकों को संरक्षण (Protection to Directors):-अधिकोष संचालक अपने अधिकोष के वेतन भोगी कर्मचारी नही होते है। अतएव उनसे यह अपेक्षा नही की जा सकती कि वे अपना अधिकांश समय और शक्ति अधिकोष कार्यों की देख-रेख में लगाएंगे। उनसे केवल यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्यो के निर्वाह मे हर सम्भव सावधानी को काम मे लेंगे। इस सावधानी के बावजूद यदि अधिकोष को किसी प्रकार की हानि हो जाती है तो उस हानि के लिए वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नही माने जाते है।

सचालक अपने अधिकारो का महा-प्रबन्धक व अन्य अधिकारियों को प्रत्यार्पण कर सकते है और इस प्रत्यार्पण के लिए उन्हे दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम को धारा 54(1) और 54(2) की यह व्यवस्था है कि इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो के अनुसार जब कोई कार्य सद्भावना के साथ किया जाता है अथवा करने का विचार किया जाता है तो उस कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक व अधिकोष के किसी भी अधिकारी के विरुद्ध न्यायालय मे दावा प्रस्तुत नही किया जा सकता।

जब एक सचालक अपने वैधानिक अधिकारो का अतिक्रमण करता है तो उसे उपर्युक्त वैधानिक संरक्षण प्राप्त नही होते है।

(4) संचालक को नियुक्ति पद-मुक्ति और रिजर्व बैंक-रिजर्व बैंक को संचालक-मण्डल के पुनर्गठन, अतिरिक्त संचालको की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है:-

(1) सचालक-मण्डल का पुनर्गठन;-रिजर्व बैंक किसी भी समय किसी भी अधिकोष को नवीन संचालक मण्डल के निर्वाचन का आदेश दे सकता है। सम्बन्धित अधिकोष

को इस आदेश की तिथि से 2 माह के भीतर अथवा रिजर्व बैंक द्वारा अधिकृत अन्य किसी अवधि के भीतर अंशधारियों की बैठक बुलानी पड़ती है और संचालक-मण्डल का पुनर्निर्वाचन करना पड़ता है। इस प्रकार से निर्वाचित संचालक-मण्डल अपने पूर्ववर्ती संचालकों के शेष कार्यकाल के लिए निर्वाचित संचालक माने जाते हैं। रिजर्व बैंक को अपने इस आदेश में नव निर्वाचन का कारण देना आवश्यक नहीं होता है (धारा 12 A(1) (2)।

(ii) संचालकों आदि की पद-मुक्ति:-जब रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि सार्वजनिक हित, जमाकर्ताओं के हित अथवा बेहतर प्रबन्ध व्यवस्था के लिए किसी अधिकोष के संचालक, प्रबन्ध संचालक, प्रधान अधिकारी या अन्य किसी कर्मचारी को पद-मुक्त करना आवश्यक है तो वह एक लिखित आदेश द्वारा ऐसे व्यक्ति को सेवा-मुक्त कर सकता है। इस आदेश में रिजर्व बैंक पद-मुक्ति/सेवा मुक्ति का कारण भी अंकित करता है और यह आदेश रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित तिथि से लागू होता है। [36 AA (i)]

रिजर्व बैंक इस आदेश के निर्गमन से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति को अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण का एक अवसर प्रदान करता है; किन्तु जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि इस प्रकार समय देने से सम्बन्धित अधिकोष या उसके जमाकर्ताओं को हानि हो सकती है तो वह स्पष्टीकरण का अवसर दिए बिना भी सम्बन्धित व्यक्ति को मुक्त कर सकता है। पद-मुक्त व्यक्ति अपनी मुक्ति से 30 दिनों के भीतर रिजर्व बैंक के निर्णय के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार को अपील कर सकता है किन्तु इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम होता है। ऐसा व्यक्ति आदेश द्वारा प्रतिबन्धित अवधि के लिए किसी भी अधिकोष का संचालक नहीं बन सकता; किन्तु यह अवधि 5 साल से अधिक नहीं हो सकती। इस आदेश का पालन न करने पर सम्बन्धित व्यक्ति को अवमानना अवधि में प्रतिदिन 250 रुपए की दर से अर्थदण्ड देना पड़ता है। [36 AA (2)]

(iii) अतिरिक्त संचालक की नियुक्ति:-रिजर्व बैंक सार्वजनिक हित, जमाकर्ताओं के हित व अधिकोष के हित में किसी भी अधिकोष में अतिरिक्त संचालकों की नियुक्ति कर सकता है। इन संचालकों की अधिकतम संख्या 5 अथवा संचालक-मण्डल के कुल सदस्यों की एक तिहाई, दोनों में जो भी कम हो, होगी। इन संचालकों के लिए योग्यता अंशों को खरीदना आवश्यक नहीं होता है और वे रिजर्व बैंक की इच्छानुसार अपने पद पर बने रहते हैं अर्थात् इनका कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता है। [36 AA]

(iv) पद-मुक्त संचालक के स्थान पर नियुक्ति;—रिजर्व बैंक पद-मुक्त संचालक के स्थान पर किसी अन्य उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। इस प्रकार से नियुक्त व्यक्ति रिजर्व बैंक की इच्छानुसार अपने पद पर कार्य कर सकता है किन्तु उसे एक बार में 3 वर्ष से अधिक समय के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता और यह व्यक्ति किसी दायित्व के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। [36 AA (6)]

(v) अध्यक्ष/प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति व पद-मुक्ति—प्रत्येक अध्यक्ष की नियुक्ति एवं पुनर्नियुक्ति रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति से की जाती है और जब वह किसी अध्यक्ष को अयोग्य समझता है तो वह सम्बन्धित अधिकोष को उसे पद-मुक्त करने का आदेश दे सकता है और उस अधिकोष को दो माह के अन्दर रिजर्व बैंक के इस आदेश का पालन करना पड़ता है। एक अध्यक्ष की एक बार में नियुक्ति/पुनर्नियुक्ति 5 साल के लिए की जाती है।

(vi) अध्यक्ष को देय पारिश्रमिक.—प्रत्येक अध्यक्ष को देय पारिश्रमिक की रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है और किसी भी व्यक्ति को ऐसे पारिश्रमिक पर नियुक्त

(vii) नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति, पारिश्रमिक की शर्तों में संशोधन:–किसी भी अध्यक्ष, प्रबन्ध संचालक अथवा प्रबन्धक की नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति व पारिश्रमिक की शर्तों में रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना संशोधन नहीं किया जा सकता। ये शर्तें सीमा-नियमों, अन्तर्नियमों अथवा किसी प्रस्ताव की अंग हो सकती हैं।

(viii) रिजर्व बैंक द्वारा मान्य पारिश्रमिक—एक अधिकोष अपने यहां पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकता जिनका पारिश्रमिक रिजर्व बैंक को अत्यधिक प्रतीत होता है। रिजर्व बैंक अत्यधिक पारिश्रमिक का निर्णय लेते समय सम्बन्धित अधिकोष की आर्थिक स्थिति, पूर्व इतिहास, आकार, कार्यक्षेत्र, वित्तीय साधन, व्यवसाय की मात्रा, अपेक्षित आय, शाखा-संख्या, नियुक्त व्यक्ति की आयु, अनुभव व योग्यता अन्य अधिकोषों द्वारा उसी प्रकार के कार्य के लिए उसी योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रदत्त पारिश्रमिक व जमाकर्त्ताओं के हितों पर विचार करता है।

24 निरीक्षण (Inspection)—रिजर्व बैंक (i) भारत सरकार के निर्देश अथवा (ii) अपनी निजी प्रेरणा पर किसी भी समय व किसी भी उद्देश्य के लिए किसी भी अधिकोष, उसके खातों व पुस्तकों का निरीक्षण कर सकता है। सामान्यतः निरीक्षण एक अधिकोष की वित्तीय स्थिति एवं सामान्य कार्य-प्रणाली के बारे में केन्द्र अथवा रिजर्व बैंक को जानकारी देने के लिया किया जाता है। ये निरीक्षण बाह्य अथवा आन्तरिक निरीक्षण के प्रतिस्थापनार्थ नहीं किए जाते है। अधिकोषों का निरीक्षण रिजर्व बैंक के निरीक्षकों द्वारा किया जाता है। [धारा 35 (1)]

निरीक्षण के समय अधिकोष के प्रत्येक संचालक, अधिकारी व कर्मचारी को उन समस्त पुस्तकों, खातों व प्रलेखों को निरीक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है जो उनके पास अथवा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के पास होते हैं और जो निरीक्षण के समय मांगे जाते है। उन्हें निरीक्षकों द्वारा मांगी गई सूचनाएं भी निर्धारित अवधि के भीतर प्रस्तुत करनी पड़ती हैं। [धारा 35 (2)]

आवश्यकता पड़ने पर निरीक्षक अधिकोष के किसी संचालक अधिकारी अथवा कर्मचारी से शपथ पर भी सूचना मांग सकते हैं। [धारा 35 (3)]

केन्द्रीय सरकार के निर्देशों पर निरीक्षण—जब रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार के निर्देश पर निरीक्षण करवाता है तो उसे उस निरीक्षण प्रतिवेदन की एक प्रति केन्द्रीय सरकार व सम्बन्धित अधिकोष को अनिवार्यतः देनी पड़ती है।

केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से प्राप्त सूचना का अध्ययन करती है और यदि वह उस अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि सम्बन्धित अधिकोष का संचालन (ii) जमाकर्त्ताओं अथवा (iii) अधिकोष के हितों के विरुद्ध हो रहा है तो वह उस अधिकोष को स्पष्टीकरण का समुचित अवसर देने के पश्चात् निम्नांकित आदेश दे सकती है—

(i) वह भविष्य में जनता से निक्षेप स्वीकार नहीं करेगा;

(ii) वह रिजर्व बैंक को या उस अधिकोष के किसी अन्य अधिकोष के साथ समामेलन के लिए न्यायालय में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती है। [धारा 35 (4)]

केन्द्रीय सरकार सम्बन्धित अधिकोष की सूचना देने के पश्चात् निरीक्षण प्रतिवेदन को अविकल रूप में अथवा उसके किसी भाग को प्रकाशित कर सकती है। केन्द्रीय सरकार उचित प्रतीत होने पर अपने आदेश को वापस ले सकती है अथवा उसे एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित कर सकती हैं। [धारा 35 (5)]

निजी प्रेरणा पर निरीक्षण—रिजर्व बैंक निजी प्रेरणा पर भी अधिकोषों का निरीक्षण करवा सकता है। इन निरीक्षणों को—(1) सामान्य व (2) विशेष; निरीक्षण कहा जाता है।

1. सामान्य निरीक्षण—रिजर्व बैंक सामान्यतः वर्ष में एक बार प्रत्येक (स्वदेशी और विदेशी) अधिकोष का निरीक्षण करवाता है। इस निरीक्षण के समय एक स्वदेशी अधिकोष की समस्त शाखाओं (देशी व विदेशी) व उन सहायक प्रमण्डलों का निरीक्षण किया जाता है जिनकी स्थापना केवल विदेशों में बैंकिंग व्यवसाय के संचालनार्थ की जाती है। विदेशी अधिकोषों की केवल भारत स्थित शाखाओं का निरीक्षण किया जाता है।

सामान्य निरीक्षण के समय सामान्यतः (i) संचित कोषों की पर्याप्तता (ii) डूबत व सम्भाव्य डूबत के लिए प्रावधानों की पर्याप्तता (iii) अधिकोष द्वारा स्वीकृत ऋणों की प्रावृत्ति (iv) विनियोगों की सुदृढ़ता (v) राजकीय प्रतिभूतियों में विनियोजित राशि (vi) तरल कोषों की पर्याप्तता और (vii) ऋणों व अग्रिमों की सुरक्षा पर विचार किया जाता है।

2. विशेष निरीक्षण—सामान्य अथवा वार्षिक निरीक्षणों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक अधिकोषों का विशेष निरीक्षण भी करवाता है। ये विशेष निरीक्षण निम्नांकित अवस्थाओं में करवाए जाते हैं—

(i) अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने से पूर्व अथवा अनुज्ञापत्र की स्वीकृति के पश्चात्। अनुज्ञापत्र की स्वीकृति के पश्चात् उस समय निरीक्षण करवाया जाता है जबकि अनुज्ञापत्र में रिजर्व बैंक की ओर से कोई शर्त रखी गई हो।

(ii) नवीन शाखाओं के खोलने अथवा पुरानी शाखाओं के अन्यत्र स्थानान्तरण की अनुमति देने से पूर्व;

(iii) सम्मेलन के समय;

(iv) एकीकरण व व्यवसाय स्थगन के आदेशों के निर्गमन के समय और

(v) धारा 35 (अ), 36 व 37 के अन्तर्गत प्राप्त निर्देशों के पालनार्थ।

रिजर्व बैंक विशेष निरीक्षण के समय अथवा निरीक्षण के पश्चात् निम्नांकित अधिकारों को काम में ले सकता है। वह

(1) निरीक्षण से सम्बन्धित विषय पर विचार करने के लिए सम्बन्धित अधिकोष को संचालक-मण्डल की सभा बुलाने का आदेश दे सकता है।

(2) अधिकोष के किसी भी अधिकारी को वार्तालाप के लिए बुला सकता है।

(3) अधिकोष के संचालक-मण्डल अथवा संचालक-मण्डल द्वारा गठित समितियों की सभाओं में उपस्थित होने व उनमें सम्भावना के लिए अधिकारियों को अधिकृत कर सकता है। सम्बन्धित अधिकोषों को ऐसे अधिकृत अधिकारियों को सम्बन्धित सभाओं के आयोजन की सूचना देनी पड़ती है व उन सभाओं में उन्हें (अधिकारियों) सुनना पड़ता है।

(4) अपने अधिकारियों को संचालक-मण्डल अथवा उसके द्वारा गठित अन्य समितियों की बैठकों की रिपोर्ट भेजने का आदेश दे सकता है।

(5) सम्बन्धित अधिकोष को एक निश्चित अवधि में अपनी प्रबन्ध व्यवस्था को सुधारने का आदेश दे सकता है।

(6) संचालक-मण्डल व उसके द्वारा गठित समितियों को अपने अधिकृत अधिकारियों को उनके स्थाई पतों पर सभाओं की सूचनाएं भेजने का आदेश दे सकता है।

(7) अपने एक या एक से अधिक अधिकारियों को अधिकोष के प्रधान व शाखा कार्यालयों के निरीक्षण का आदेश दे सकता है।

(8) रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 18 के प्रावधानों के अन्तर्गत ऋण व अग्रिम स्वीकृत कर सकता है;

(9) सम्बन्धित अधिकोष को ऐसा कोई भी आदेश दे सकता है जिसे वह उचित समझता है। यह आदेश उस समय दिया जाता है जबकि रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि अधिकोष का संचालन अधिकोष, निक्षेपकों व जनहित के विरुद्ध हो रहा है। आदेशित अधिकोष को इस आदेश का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

(10) धारा 38 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए सम्बन्धित अधिकोष के समामेलन के लिए उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर सकता है।

जब रिजर्व बैंक किसी अधिकोष का निरीक्षण करवाता है तो उसे सम्बन्धित अधिकोष के पास निरीक्षण प्रतिवेदन की एक प्रति अनिवार्यतः भेजनी पड़ती है। आवश्यकता समझने पर वह निरीक्षण प्रतिवेदन की एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भी भेज सकता है।

25 समामेलन—भारत में व्यापारिक अधिकोषों का समामेलन स्वेच्छा से अथवा केन्द्रीय सरकार और रिजर्व बैंक के आदेश पर किया जा सकता है, जिनका विवरण निम्नलिखित प्रकार है—

(अ) ऐच्छिक एकीकरण—जब दो या दो से अधिक अधिकोष स्वेच्छा से एकीकरण चाहते हैं तब उन्हें अपने एकीकरण की एक योजना बनानी पड़ती है और उसे अंशधारियों की सभा में प्रस्तुत करना पड़ता है। इस उद्देश्य हेतु प्रत्येक अधिकोष को अपने अंशधारियों की पृथक् से सभा बुलानी पड़ती है। जब सभा में उपस्थित अंशधारी (व्यक्तिशः व प्राक्सी द्वारा) बहुमत से एकीकरण की योजना को स्वीकार कर लेते हैं तो उसे मूर्तरूप दिया जा सकता है; किन्तु योजना के पक्ष में मत देने वाले अंशधारियों के पास अधिकोष के कम-से-कम दो-तिहाई मत अवश्य होने चाहिए। सम्बन्धित अधिकोषों के निवेदन पर इस एकीकरण में रिजर्व बैंक मध्यस्थ का कार्य कर सकता है। [धारा 44 A (1)]

उपर्युक्त सभा के आयोजन के लिए प्रत्येक अधिकोष को अपने अन्तर्नियमों के प्रावधानों के अनुसार अपने अंशधारियों को एकीकरण योजना की सूचना देनी पड़ती है व उसे अपने प्रधान कार्यालय वाले स्थान से प्रकाशित होने वाले दो पत्रों में भी प्रकाशित करवाना पड़ता है। यह सूचना लगातार तीन सप्ताह (एक सप्ताह में कम से कम एक

बार) तक प्रकाशित करवानी पड़ती है व दोनों पत्रों में से एक ऐसा पत्र चुनना पड़ता है जिसे उस क्षेत्र के अधिकांश व्यक्ति पढ़ते हैं। इस सूचना में सभा स्थल, सभा समय व सभा के उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है। [धारा 44 A (2)]

जो अंशधारी अंशधारियों की सभा में एकीकरण की योजना के विरुद्ध मतदान करते हैं अथवा सभा से पूर्व या सभा के समय सभा अध्यक्ष को अपनी असहमति (लिखित) से सूचित करते हैं उन्हें एकीकरण योजना की स्वीकृति पर अधिकोष से अपने अंशों का मूल्य प्राप्त करने का अधिकार होता है। अंशों का मूल्यांकन रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है व उसका यह निर्णय अन्तिम माना जाता है। [धारा 44 A (3)]

अंशधारियों की स्वीकृति के पश्चात् एकीकरण योजना को रिजर्व बैंक के पास स्वीकृति हेतु भेजा जाता है। जब रिजर्व बैंक इस योजना को स्वीकृत कर देता है तो सम्बन्धित अधिकोषों को इस योजना को अनिवार्यतः लागू करना पड़ता है। रिजर्व बैंक की स्वीकृति के पश्चात् समामेलित अधिकोष के दायित्व पूंजी और सम्पत्तियाँ व आस्तियाँ समामेलक अधिकोष के पक्ष में हस्तांतरित हो जाते हैं। यह हस्तांतरण एकीकरण योजना के विभिन्न प्रावधानों के अनुसार किया जाता है।

[धारा 44 A (4 & 6)]

योजना-स्वीकृति के पश्चात् रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोषों के हेतु एक आदेश निकालता है। इस आदेश में समामेलित (Amalgamalted) अधिकोष के भंग (Dissolution) होने की तिथि अंकित की जाती है। इस आदेश की एक प्रति प्रमण्डल पंजीयक के पास प्रेषित की जाती है। प्रमण्डल पंजीयक इस आदेश की प्राप्ति पर समामेलित अधिकोष का नाम अपनी पंजिका में से काट देता है। [धारा 45 A (6B)]

एकीकरण की उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत सम्बन्धित अधिकोष अपने ऋणदाताओं अथवा अंशधारियों से समझौता भी कर सकते है; किन्तु इस समझौते को लागू करने से पूर्व उन्हें इस पर सम्बन्धित उच्च न्यायालयों की स्वीकृति लेनी पड़ती है। एक न्यायालय इन समझौतों पर अपनी सहमति देने से पूर्व रिजर्व बैंक से इस आशय का प्रमाण-पत्र लेता है कि सन्दर्भगत समझौतों से अधिकोष के जमाकर्त्ताओं के हितों को आघात नहीं पहुंचेगा और योजना को लागू किया जा सकता है अर्थात् उसके क्रियान्वयन में किसी प्रकार की व्यावहारिक कठिनाई नहीं आएगी। उच्च न्यायालय ऐसे समझौतों में अपनी ओर से भी संशोधन कर सकते हैं; किन्तु इन संशोधनों के समय भी उन्हें रिजर्व-बैंक से उपर्युक्त आशय का प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है। [धारा 44 B (1)]

(ब) अनिवार्य एकीकरण—जब केन्द्रीय सरकार अथवा रिजर्व बैंक के आदेश पर अधिकोषों का एकीकरण किया जाता है तो उस एकीकरण को अनिवार्य एकीकरण कहा जाता है। अनिवार्य एकीकरण का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—

(i) केन्द्रीय सरकार के आदेश पर—भारतीय अधिकोषण अधिनियम की धारा 396 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार जनहित में अधिकोषों का समामेलन करवा सकती है। केन्द्रीय सरकार को इस हेतु एक आदेश निकालना पड़ता है किन्तु इस आदेश के निर्गमन से पूर्व उसे रिजर्व बैंक से अनिवार्यतः परामर्श करना पड़ता है और उसे अपने (अन्तिम) राजपत्र में भी प्रकाशित करवाना पड़ता है। इस आदेश में समामेलन की शर्तों का भी उल्लेख किया जाता है।

केन्द्रीय सरकार इस आदेश को प्रकाशन से पूर्व सम्बन्धित अधिकोषों के पास प्रेषित करती है। अधिकोष इस आदेश प्राप्ति के 2 माह के अन्दर केन्द्रीय सरकार के पास अपने सुझाव प्रेषित कर सकते हैं। इस अवधि के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अपने आदेश को अन्तिम रूप दे देती है और उसे राजपत्र में प्रकाशित करवा देती है। इस आदेश की एक प्रति संसद के दोनों सदनों में भी रखी जाती है।

(ii) रिजर्व बैंक की प्रेरणा पर:—रिजर्व बैंक की प्रेरणा पर भी अधिकोषों का समामेलन किया जा सकता है। समामेलन के पूर्व रिजर्व बैंक प्रभावित अधिकोष/अधिकोषों के व्यवसाय स्थगन हेतु केन्द्रीय सरकार से आवेदन करता है। रिजर्व बैंक अपने इस अधिकार को केवल उसी अवस्था में काम में लेता है, जबकि रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि ऐसा करना उचित है।

केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से प्राप्त प्रार्थना-पत्र पर विचार करती है व उचित प्रतीत होने पर सम्बन्धित अधिकोषों को न्यायसगत एवं उचित शर्तों पर अधिक से अधिक 6 माह के लिए विलम्ब-काल (Moratorium) स्वीकृत कर देता है। इस अवधि में सम्बन्धित अधिकोष न अपने जमाकर्त्ताओं से निक्षेप स्वीकार कर सकते हैं और न अपने दायित्वों का भुगतान कर सकते है।

विलम्ब-काल में जब रिजर्व बैंक को यह संतोष हो जाता है कि सम्बंधित अधिकोषों के समामेलन से आम जनता व जमाकर्त्ताओं का हित होगा अथवा प्रबन्ध व्यवस्था अथवा देश की अधिकोष प्रणाली में सुधार होगा तो वह उनके समामेलन के लिए एक योजना बनाता है और उसे दोनों अधिकोषों के पास विचारार्थ (सुझावों व आपत्तियों के लिए) भेजता है। इन अधिकोषों को रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अवधि में समामेलन योजना के बारे में अपने सुझाव व आपत्तियां प्रस्तुत करनी पड़ती है। सम्बंधित समामेलन योजना पर अधिकोषों के अंशधारी, जमाकर्त्ता व ऋणदाता भी रिजर्व बैंक के पास अपनी आपत्तियां और सुझाव भेज सकते हैं। रिजर्व बैंक प्राप्त आपत्तियों एवं सुझावों पर विचार करता है और उपयुक्त प्रतीत होने पर उन्हें मान लेता है और संशोधित योजना को स्वीकृति हेतु सरकार के पास भेजता है। केन्द्रीय सरकार इस योजना को मूल रूप में अथवा संशोधित रूप में स्वीकार कर लेती है और सरकार द्वारा अधिघोषित तिथि से यह योजना लागू करदी जाती है।

जब केन्द्रीय सरकार एकीकरण की योजना को स्वीकार कर लेती है तो यह सम्बन्धित अधिकोषों, उनके अंशधारियों, जमाकर्त्ताओं व ऋणदाताओं पर अनिवार्य रूप से लागू हो जाती है व समामेलित अधिकोष/अधिकोषों के दायित्वों व सम्पत्ति का समामेलक अधिकोष के पक्ष में हस्तान्तरण हो जाता है। केन्द्रीय सरकार को अपने आदेश की एक प्रति संसद के दोनों सदनों में भी प्रस्तुत करनी पड़ती है।

जब एकीकरण योजना के क्रियान्वयन में किसी प्रकार की कठिनाई आती है तो केन्द्रीय सरकार उस कठिनाई के निवारणार्थ नवीन आदेश निर्गमित करती है किन्तु ये आदेश मूल योजना के प्रावधानों का अतिक्रमण नहीं कर सकते। (धारा-45)

26. समापन (Winding-up): एक अधिकोष का समापन केवल एक उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। इस हेतु केन्द्रीय सरकार प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक स्थाई अवसायक (Liquidator) की नियुक्ति करती है किन्तु अधिकोषों के नगण्य

मात्रा में असफल होने पर अवसायकों को अस्थाई रूप से भी नियुक्ति की जा सकती है। न्यायालय एक अधिकोष के समापन के लिए रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक, भारत सरकार द्वारा अधिकृत किसी अन्य अधिकोष अथवा किसी व्यक्ति को अवसायक नियुक्त कर देता है। [38 A (1) (4)]

एक अधिकोष का समापन (अ) स्वैच्छित अथवा (ब) अनिवार्य हो सकता है और उसे न्यायालय के निरीक्षण मे भी सम्पन्न किया जा सकता है।

(अ) स्वैच्छित समापन (Voluntary winding-up) :—जब एक अधिकोष स्वेच्छा से अपना समापन चाहता है तो उसे इस हेतु एक विशेष प्रस्ताव पारित करना पड़ता है (प्रमण्डल अधिनियम 484) और रिजर्व बैंक से यह प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है कि वह अपने दायित्वों का पूर्ण भुगतान करने में समर्थ है। उसे इन दोनों प्रलेखों को अपने प्रार्थना-पत्र के साथ सलग्न करना पड़ता है। इन प्रलेखो सहित प्रार्थना-पत्र प्राप्त होने पर सम्बन्धित उच्च न्यायालय प्रार्थी अधिकोष के समापन के लिए आदेश निर्गमित कर देता है। उच्च न्यायालय चाहे तो अपने आदेश में यह शर्त भी लगा सकता है कि समापन की कार्यवाही न्यायालय के निरीक्षण मे की जाएगी। [धारा 44 (1) (2)]

(ब) अनिवार्य समापन (Compulsory winding-up) :—एक अधिकोष का अनिवार्य समापन (i) न्यायालय (ii) प्रमण्डल पंजीयक (iii) रिजर्व बैंक या (iv) केन्द्रीय सरकार की प्रेरणा या प्रार्थना पर किया जाता है।

(1) उच्च न्यायालय की प्रेरणा पर—उच्च न्यायालय निम्नांकित अवस्थाओ मे अनिवार्य समापन के लिए आदेश निर्गमित कर सकता है—

जब (i) एक अधिकोष अपने दायित्वों का भुगतान करने में असमर्थ रहता है। निम्नांकित अवस्थाओ मे एक अधिकोष को अपने दायित्वों के भुगतान के लिए असमर्थ माना जाता है—

(अ) जब एक अधिकोष की किसी ऐसी शाखा से, जहाँ पर रिजर्व बैंक का कार्यालय है, भुगतान के लिए वैध मांग की जाती है और वह उस वैध मांग को दो दिनों तक पूरा करने से असमर्थ रहती है और

(ब) जब एक अधिकोष की किसी ऐसी शाखा से, जहाँ पर रिजर्व बैंक का कार्यालय नहीं है, भुगतान के लिए वैध मांग की जाती है और वह शाखा उस वैध मांग की जाती है और वह शाखा उस वैध मांग को 5 दिनों तक पूरा करने मे असमर्थ रहता है। [धारा 30 (1)]

(ii) एक न्यायालय निम्नांकित अवस्थाओ मे स्वैच्छित समापन को अनिवार्य समापन में बदल सकता है—

जब (अ) एक अधिकोष के स्वैच्छित समापन की कार्यवाही के पूर्ण होने से पहले ही उच्च न्यायालय को यह ज्ञात हो जाता है कि सम्बन्धित अधिकोष अपने दायित्वों का पूरा भुगतान करने में असमर्थ रहेगा। [धारा 44 (3) (a)]

(ब) एक अधिकोष का स्वैच्छित अथवा न्यायालीय संरक्षण में समापन किया जाता है और समापन कार्यवाही के पूर्ण होने से पूर्व ही न्यायालय को यह ज्ञात हो जाता है कि समापन जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध हो रहा है। [धारा 44 (3) (b)]।

(स) जब न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि समापन न्याय-संगत नहीं है। [धारा प्र०अ०433]

(2) प्रमण्डल पंजीयक की प्रेरणा पर—एक प्रमण्डल पंजीयक निम्नांकित अवस्थाओं में एक अधिकोष के अनिवार्य समापन के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सकता है—

जब एक अधिकोष—

(i) वैधानिक सभा नहीं बुलाता है अथवा उस सभा का विवरण प्रस्तुत नहीं करता है;

(ii) अपनी स्थापना के पश्चात् एक वर्ष तक कार्यारम्भ नहीं करता है अथवा व्यवसाय प्रारम्भ करने के पश्चात् उसे एक वर्ष तक स्थगित रखता है और

(iii) जब एक सार्वजनिक अधिकोष के सदस्यों की संख्या 7 और एक निजी अधिकोष के सदस्यों की संख्या 2 से कम हो जाती है।

(3) रिजर्व बैंक की प्रेरणा पत्र—रिजर्व बैंक अपनी प्रेरणा पर अथवा केन्द्रीय सरकार के आदेश पर एक अधिकोष के समापन के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सकता है।

(1) निजी प्रेरणा पर—रिजर्व बैंक अपनी प्रेरणा पर निम्नांकित अवस्थाओं में एक अधिकोष के समापन के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सकता है—

जब (i) वह बैंकिंग अधिनियम की धारा 11 (दत्त पूंजी और संचित कोष) के प्रावधानों को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है; [धारा–38 (3) ब]

(ii) उसे अनुज्ञापत्र स्वीकृत नहीं किया जाता है अथवा उसका स्वीकृत अनुज्ञा-पत्र रद्द कर दिया जाता है, [धारा–38 (3) ब]

(iii) रिजर्व बैंक उसे रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 (अ) अथवा बैंकिंग अधिनियम की धारा 35 (4) (अ) के अन्तर्गत नवीन निक्षेप स्वीकार करने से मना कर देता है, [धारा 38 (3) (1)]

(iv) न्यायालय द्वारा स्वीकृत समझौता संशोधन के बावजूद भी अव्यावहारिक पाया जाता है और [धारा–38 (3) ब]

(v) उसका संचालन जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध पाया जाता है। [धारा–37 (4)]

(ii) केन्द्रीय सरकार के आदेश पर—रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार के आदेश पर भी एक अधिकोष के समापन के लिए किसी अधिकृत न्यायालय में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सकता है। केन्द्रीय सरकार इस प्रकार का आदेश देने से पूर्व सम्बन्धित अधिकोष को स्पष्टीकरण का समुचित अवसर देता है और स्पष्टीकरण के अध्ययन के बावजूद भी जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि अधिकोष का संचालन उसके जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध हो रहा है तो वह रिजर्व बैंक को उस अधिकोष के समापन हेतु प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने का आदेश देता है। रिजर्व बैंक यह प्रार्थना-पत्र धारा 38 (3) द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत देता है।

समापन की कार्यवाही—जब समापन की कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है तो सामान्यतः उसे बीच में नहीं रोका जाता है; किन्तु जब उच्च न्यायालय को यह विश्वास

हो जाता है कि सन्दर्भगत अधिकोष अपने दायित्वों के पूर्ण भुगतान में समर्थ है तो वह समापन की कार्यवाही को रोकने का आदेश दे सकता है। (धारा 40)

दावों का भुगतान—अधिकोष अवसायक को अपनी नियुक्ति के 15 दिनों के अन्दर प्राथमिक ऋणदाताओं एवं सुरक्षित ऋणदाताओं को अपने दावे प्रस्तुत करने के लिए अधिसूचना निर्गमित करनी पड़ती है और ऋणदाताओं को इस अधिसूचना के निर्गमन के एक माह के अन्दर अवसायक के पास अपने दावे प्रस्तुत करने पड़ते हैं व समापन आदेश के निर्गमन के 3 माह के अन्दर उनके दावों का भुगतान कर दिया जाता है अथवा उनके भुगतान की व्यवस्था कर दी जाती है।

प्रारम्भिक प्रतिवेदन—समापन आदेश के निर्गमन के दो माह के अन्दर अवसायक को अपने उच्च न्यायालय को एक प्रारम्भिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रतिवेदन में वह (i) वांछित सूचना की उपलब्धि (ii) उपलब्ध नकद राशि और (iii) दो माह मे प्राप्त की गई राशि पर प्रकाश डालता है। उसे अपने कार्यकाल में अधिकतम राशि की वसूली के लिए हर सम्भव प्रयास करना पड़ता है।

देनदारों की सूची—उपर्युक्त प्रतिवेदन के अतिरिक्त अवसायक को अपनी नियुक्ति के 6 माह के अन्दर न्यायालय के पास अधिकोष के देनदारों की एक सूची भी प्रस्तुत करनी पड़ती है। न्यायालय आवश्यक समझने पर इस अवधि मे वृद्धि कर सकता है।

न्यायालय आवश्यक समझने पर अधिकोष देनदारों को नोटिस देता है, उनकी आपत्तियों को सुनता है और तदुपरान्त उनकी अन्तिम सूची बनाता है। यह सूची पूर्ण अथवा आंशिक बनाई जा सकती है। न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में दिया गया निर्णय 'डिक्री' के समकक्ष होता है। जब न्यायालय एक-पक्षीय निर्णय देता है तो सम्बन्धित देनदार निर्णय के 30 दिनों के अन्दर न्यायालय को अपने निर्णय में संशोधन हेतु प्रार्थनापत्र दे सकता है और उचित प्रतीत होने पर न्यायालय अपने निर्णय मे संशोधन कर देता है।

उच्च न्यायालय आवश्यक समझने पर अपील अवधि मे वृद्धि कर सकता है, ऋणी व ऋणदाताओं मे समझौता करवा सकता है और ऋणी को छूट भी स्वीकृत कर सकता है। [45 (D)]

दोषी अधिकारियों की सूची—अवसायक अपने न्यायालय को उन प्रवर्तकों, संचालकों व अंकेक्षकों की भी सूची देता है जिनके किसी कार्य अथवा भूल के कारण अधिकोष को अपनी स्थापना के पश्चात् किसी भी प्रकार की हानि वहन करनी पड़ी हो। न्यायालय इस सूचना पर विचार करता है व आवश्यक समझने पर दोषी व्यक्तियों की सार्वजनिक रूप से जांच करता है। जब न्यायालय अपनी जांच द्वारा इस निर्णय पर पहुंचता है कि दोषी संचालक अधिकोष के संचालक पद के योग्य नहीं थे अथवा अंकेक्षक अंकेक्षण कार्य के योग्य नहीं थे तो वह समुचित सुनवाई के पश्चात् उन्हें कम्पनी, किसी भी प्रमण्डल के प्रबन्ध (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से) मे भाग लेने व अंकेक्षण का कार्य करने से मना कर सकता है। न्यायालय का यह प्रतिबन्ध 5 वर्ष से अधिक अवधि के लिए नहीं लगा सकता। [धारा 45 (ओ)]

सम्पत्ति का दुरुपयोग—जब अधिकोष के किसी प्रवर्तक, संचालक, अवसायक, प्रबन्धक अथवा अन्य किसी अधिकारी के विरुद्ध किसी सम्पत्ति अथवा नकद राशि के दुरुप्रयोग की शिकायत की जाती है तो न्यायालय उस शिकायत पर विचार करता है और शिकायत के सत्य प्रमाणित होने पर सम्बन्धित व्यक्ति को संपत्ति की वापसी अथवा नकद राशि के भुगतान के लिए आदेश दे सकता है। जब यह आदेश दो व्यक्तियों को संयुक्त रूप से दिया जाता है तो वे उस आदेश के पालनार्थ व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते है। जब इस प्रकार की सम्पत्ति का विक्रय कर दिया जाता है तो उसे क्रेता के यहां से जप्त कर लिया जाता है और जो उस समय तक जब्त रखा जाता है जब तक कि उसका स्वामी उसके स्वामित्व का सन्तोषजनक प्रमाण नही दे देता है। [45 (एच) (i & ii)]

रिजर्व बैंक से परामर्श—जब न्यायालय रिजर्व बैंक की अपेक्षा किसी अन्य अधिकोष अथवा व्यक्ति को अवसायक नियुक्त करता है तो वह उसे समापन के बारे में रिजर्व बैंक से परामर्श लेने का आदेश दे सकता है। रिजर्व बैंक को वांछित परामर्श देने से पूर्व उसअधिकोष की पुस्तकों के निरीक्षण व अन्य आवश्यक सूचना मे प्राप्त करने का अधिकार होता है। रिजर्व बैंक, केन्द्रीय सरकार अथवा न्यायालय को अपना निरीक्षण प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

जिलाधीश या प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट द्वारा सहायता—राजकीय अवसायक की प्रार्थना पर मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट अथवा जिलाधीश अधिकोष की किसी भी सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले सकता है। वे इस प्रकार से अधिग्रहीत सम्पत्ति का विक्रय कर सकते है। विक्रय से प्राप्त राशि को उन्हे अवसायक के पास जमा करवाना पड़ता है। [45 (एस)]

जब उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति में कोई राशि बकाया निकाल देता है तो उसकी लगान की भांति वसूली की जाती है अर्थात् उस राशि की वसूली पर समय सीमा नियम लागू नही होता है।

जमाकर्त्ताओं को जमा राशि को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं—

जब एक अधिकोष का समापन प्रारम्भ हो जाता है तो उसके जमकर्त्ताओं को अपनी जमा राशि के भुगतान के लिए दावा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है। यह मान लिया जाता है कि उन्होने अपना जमा राशि के भुगतान के लिए दावा प्रस्तुत कर दिया है।

उन्हें अपनी जमा राशि को प्रमाणित करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। सम्बन्धित न्यायालय उन्हें 'स्व-प्रमाणित' मान लेता है; किन्तु जब अधिकोष अवसायक को जमा राशि की वास्तविकता पर सन्देह हो जाता है तब जमाकर्त्ताओ को अपनी जमा राशि को प्रमाणित करना पड़ता है। (धारा 43)

उपलब्ध राशि का वितरण—अवसायक उपलब्ध राशि में से सबसे पहले प्राथमिक ऋणदाताओं को भुगतान करता है। तत्पश्चात् शेष उपलब्ध राशि मे से सबसे पहले बचत खाते के खातेदारो को भुगतान किया जाता है। जब इन खातेदारो के खातों मे 250 या 250 रुपये से कम रुपया जमा होता है तो इन्हें सम्पूर्ण जमा राशि का भुगतान कर दिया जाता है; किन्तु 250 रुपये से अधिक राशि जमा होने पर प्रथम किश्त मे केवल 250 रुपए का भुगतान किया जाता है।

बचत खाते के खातेदारों को भुगतान करने के पश्चात् जो राशि बच जाती है उससे अधिकोष के अन्य खातेदारों का उपर्युक्त व्यवस्थानुसार भुगतान किया जाता है। जब किसी व्यक्ति के एक अधिकोष में एक से अधिक खाते होते हैं तो उसे प्रथम किश्त के रूप में केवल 250 रुपयों का भुगतान किया जाता है।

जमाकर्त्ताओं को भुगतान करने के पश्चात् यदि धनराशि उपलब्ध रहती है तो उससे शेष ऋणदाताओं को आनुपातिक रूप से भुगतान कर दिया जाता है। [43 (A)]

अधिकोष प्रलेखों व पुस्तकों को साक्ष्य के रूप में मान्यता—जब किसी अधिकोष का समापन किया जाता है तो उसकी हिसाब की पुस्तकों व अन्य प्रलेखों व उनकी प्रतिलिपियों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रतिलिपियां प्रस्तुत करते समय अवसायक को अपने हस्ताक्षरों से यह घोषणा करनी पड़ती है कि जो प्रतिलिपियां प्रस्तुत की जा रही हैं। वे मूल प्रविष्टियां अधिकोष की पुस्तकों या प्रलेखों में विद्यमान हैं।

जब अधिकोष की पुस्तकों में उसके संचालकों, अधिकारियों व अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध इस प्रकार की प्रविष्टियां मिलती हैं तो उन्हें प्रामाणिक माना जाता है।

[धारा 45 (एफ) (1 & 2)]

रिजर्व बैंक का अधिकार—जब एक अधिकोष की समापन कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है तो रिजर्व बैंक उसके अवसायक से किसी भी समय किसी भी प्रकार की सूचना मांग सकता है व अवसायक को निर्धारित समय में रिजर्व बैंक को वांछित सूचना देनी पड़ती है। रिजर्व बैंक आवश्यक समझने पर पूर्व निर्धारित अवधि में वृद्धि भी कर सकता है। [धारा 45 (आर)]

27. अधिकोष प्रमण्डलों से सम्बद्ध निषिद्ध क्रियाएं—अधिनियम की धारा 36 A D बाह्य व्यक्तियों की कुछ क्रियाओं को अवैधानिक मानती है। इस धारा के अनुसार—

(i) कोई भी व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति को किसी प्रमण्डल कार्यालय में विधिपूर्वक जाने अथवा वहां से वापस आने या वहां पर कार्य करने से नहीं रोकेगा;

(ii) कोई भी व्यक्ति बैंक भवन में ऐसा प्रदर्शन नहीं करेगा जो हिंसात्मक होगा या जिससे बैंक के सामान्य कार्य-संचालन में बाधा आए या बाधा आने की सम्भावना हो और

(iii) कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे जमाकर्त्ताओं का अपने अधिकोष पर से विश्वास कम हो जाय।

जो व्यक्ति समुचित कारणों के अभाव में उपर्युक्त प्रावधानों का उल्लंघन करता है उसे एक हजार रुपए का अर्थदण्ड अथवा छः माह का कारावास अथवा दोनों दण्ड दिए जा सकते हैं।

28. अधिकोष प्रमण्डलों का सरकार द्वारा अधिग्रहण—जब एक अधिकोष प्रमण्डल रिजर्व बैंक के बैंकिंग नीति सम्बन्धी किसी (धारा 21 & 35 A) निर्देश का एक से अधिक बार उल्लंघन करता है अथवा उसकी कार्य-प्रणाली जमाकर्त्ताओं के हितों के प्रतिकूल होती है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे अधिकोष को रिजर्व बैंक के प्रतिवेदन के आधार पर अधिग्रहीत कर सकती (धारा 36 E) है। अधिग्रहण से पूर्व सरकार इस बात से आश्वस्त होना चाहती है कि अधिग्रहण बैंकिंग नीति अथवा जमाकर्त्ताओं के हित

में होगा अथवा समाज या समाज के किसी विशिष्ट वर्ग या किसी क्षेत्र विशेष को ऋण सुविधाएं ठीक से मिल सकेंगी। [36 A F]

व्यापारिक अधिकोषों को निर्देश—जब रिजर्व बैंक इस तथ्य से सन्तुष्ट हो जाता है कि लोकहित, बैंक हित, एक बैंक के सुप्रबन्ध अथवा एक बैंक के जमाकर्ताओं व बैंक विरोधी क्रियाकलापों पर अंकुश लगाने के लिए किसी अधिकोष या समस्त अधिकोषों को निर्देश देना आवश्यक है तो वह समय-समय पर व्यापारिक अधिकोषों को आवश्यक निर्देश दे सकता है और बैंक/बैंकों को इन निर्देशों का पालन करना पड़ता है। सम्बन्धित अधिकोषों से ज्ञापन आने पर रिजर्व बैंक अपने पूर्व निर्देशों को सशर्त अथवा निःशर्त निरस्त कर सकता है अथवा उन्हें संशोधित कर सकता है। रिजर्व बैंक किसी अधिकोष या समस्त अधिकोषों को किसी सौदे या सौदों में प्रविष्ट होने के लिए मना अथवा सावधान कर सकता है और किसी भी कम्पनी को परामर्श दे सकता है। [36 (I) (a)]

जब रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि किसी अधिकोष का सचालन जमाकर्त्ता या बैंक के हित में नहीं हो रहा है तो वह (i) उस अधिकोष को सचालक-मण्डल की सभा बुलाने व उसमें उन विषयों पर चर्चा करने का लिखित आदेश दे सकता है अथवा उस अधिकोष के किसी अधिकारी को रिजर्व बैंक के किसी अधिकारी से विचार-विमर्श का आदेश दे सकता है। (ii) अपने किसी अधिकारी को उस अधिकोष के सचालक मण्डल व अन्य किसी समिति की बैठक में पर्यवेक्षक के रूप मे भाग लेने का आदेश दे सकता है। यह अधिकारी बैठक को सम्बोधित भी कर सकता है। 36 (I) (ii) इस प्रकार से प्रतिनियुक्त अधिकारी के आवास पर बैठक आदि की सूचनाएं भेजने का आदेश दे सकता है 36 (i) (iii) (iv) अपने किसी अधिकारी को उस अधिकोष में पर्यवेक्षक के रूप मे नियुक्त कर सकता है। 36 (i) (iv) और (v) बैंक को अपने प्रबन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित समय मे इच्छित परिवर्तन का आदेश दे सकता है। [36 (i) (v)]।

प्रश्न

1. भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 मे वर्णित (i) शाखा विस्तार और अनुज्ञापत्र स्वीकृति की व्यवस्थाओं का विश्लेषण कीजिए।
2. भारतीय अधिकोषो के (i) पूंजीगत ढाचे व (ii) नकद कोष सम्बन्धी भरातीय बैंकिग अधिनियम की प्रमुख धाराओ का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय बैंकिग अधिनियम के अन्तर्गत भारत मे बैंकिग प्रबन्ध को सुदृढ बनाने के लिए रिजर्व बैंक को क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं?
4. भारतीय बैंकिग नियमन अधिनियम 1949 द्वारा रिजर्व बैंक को व्यापारिक अधिकोषों के नियमन एवं नियन्त्रण-हेतु प्रदत्त अधिकारो का वर्णन कीजिए।
5. भारतीय बैंकिग नियमन अधिनियम की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिए।

20

अधिकोष प्रमण्डल (उपक्रमों का अर्जन एवं अन्तरण)

अधिनियम 1970–14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण

BANKING COMPANIES (ACQEISITION AND TRANSFER OF UNDERTAKINGS ACT-1970—NATIONATION OF 14 BANKS.

प्राक्कथन—14 राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को भी (i) भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 और (ii) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के बैंकिंग-सम्बन्धी समस्त प्रावधानों का पालन करना पड़ता है, किन्तु इन अधिकोषों के लिए इस अधिनियम में कुछ अतिरिक्त व्यवस्थाएं की गई हैं, जिनमें से मुख्य व्यवस्थाएं निम्नांकित हैं—

(1) पुनर्गठन—अधिनियम की धारा 9(2) C के अनुसार इन अधिकोषों का पुनर्गठन किया जा सकता है। पुनर्गठन हेतु (i) केन्द्रीय सरकार इन अधिकोषों के लिए दो या दो से अधिक निगम बना सकती है, (ii) एक राष्ट्रीयकृत अधिकोष का दूसरे राष्ट्रीयकृत अधिकोष या किसी अन्य अधिकोष के साथ सम्मेलन किया जा सकता है अथवा (iii) एक राष्ट्रीयकृत अधिकोष को किसी दूसरे राष्ट्रीयकृत या अन्य किसी अधिकोष को हस्तांतरित किया जा सकता है।

(2) केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन—केन्द्रीय सरकार लोक-हित में रिजर्व बैंक की अनुशंसा पर इन अधिकोषों को अपने व्यवसाय के संचालनार्थ कोई भी निर्देश दे सकती है; और प्रत्येक राष्ट्रीयकृत अधिकोष को इन निर्देशों का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

(3) प्रदत्त पूंजी—प्रत्येक अधिकोष की पूंजी पूर्णतः केन्द्रीय सरकार को आवंटित है। केन्द्रीय सरकार इन अधिकोषों की पूंजी के आकार में परिवर्तन कर सकती है किन्तु किसी भी अधिकोष की अधिकतम 15 करोड़ रुपए से अधिक नहीं कर सकती।

(4) प्रबन्ध—इन अधिकोषों का संचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। यह मण्डल केन्द्रीय सरकार की पूर्ण अनुमति से और रिजर्व बैंक के परामर्श से इन अधिकोषों के संचालन-हेतु नियमों का निर्माण कर सकता है। संचालक मण्डल में (i) जमाकर्त्ताओं (ii) कृषकों, शिल्पकारों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों और (iii) अधिकोष कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

(5) लाभ का वितरण—समस्त वैधानिक प्रावधानों की पूर्ति के पश्चात् इन अधिकोषों के लाभ-हानि खाते मे जो लाभ शेष रहता है वह केन्द्रीय सरकार को हस्तांतरित कर दिया जाता है।

(6) गोपनीयता—इन अधिकोषों के लिए बैंकों में प्रचलित उन परम्पराओं व व्यवहारो का पालन करना आवश्यक है जो कि विधि द्वारा मान्य हैं। इसी प्रकार इन्हें अपने विभिन्न घटकों से सम्बद्ध सूचनाओं को गुप्त रखना पड़ता है और केवल वैधानिक दृष्टि से आवश्यक होने पर ही ये इन सूचनाओं को प्रकट करते हैं। इन अधिकोषों के संचालकों व अन्य उच्चाधिकारियों को इसीलिए पद ग्रहण के समय गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है।

(7) संचालकों का दायित्व—संचालक-मण्डल के सदस्य निम्नांकित अवस्थाओं मे हुई हानि, व्यय, दोष या कमी के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नही होते हैं—

(i) अपने पद से सम्बन्धित कार्यों के निष्पादन पर हुई हानि।

(ii) ग्राहक अथवा ऋणी के दिवालिया हो जाने।

अथवा

उसके द्वारा किसी गलत कार्य के कारण हुई हानि।

अथवा

(iii) बैंक को प्राप्त किसी प्रतिभूति अथवा सम्पत्ति के मूल्य में कमी अथवा उसके स्वामित्व मे उत्पन्न दोष के कारण हुई हानि।

जब ऐसी हानि या कमी संचालक की असावधानी या भूल से हो जाती है तो वह उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

प्रश्न

1. अधिकोष प्रमण्डल (उपक्रमों का आर्जन एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

20

अधिकोष प्रमण्डल (उपक्रमों का अर्जन एवं अन्तरण)

अधिनियम 1970–14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण

BANKING COMPANIES (ACQEISITION AND TRANSFER OF UNDERTAKINGS ACT-1970—NATIONATION OF 14 BANKS.

प्राक्कथन—14 राष्ट्रीयकृत अधिकोषों को भी (i) भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 और (ii) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के बैंकिंग-सम्बन्धी समस्त प्रावधानों का पालन करना पड़ता है, किन्तु इन अधिकोषों के लिए इस अधिनियम में कुछ अतिरिक्त व्यवस्थाएं की गई हैं, जिनमें से मुख्य व्यवस्थाएं निम्नांकित हैं—

(1) पुनर्गठन—अधिनियम की धारा 9(2) C के अनुसार इन अधिकोषों का पुनर्गठन किया जा सकता है। पुनर्गठन हेतु (i) केन्द्रीय सरकार इन अधिकोषों के लिए दो या दो से अधिक निगम बना सकती है, (ii) एक राष्ट्रीयकृत अधिकोष का दूसरे राष्ट्रीयकृत अधिकोष या किसी अन्य अधिकोष के साथ समामेलन किया जा सकता है अथवा (iii) एक राष्ट्रीयकृत अधिकोष को किसी दूसरे राष्ट्रीयकृत या अन्य किसी अधिकोष को हस्तांतरित किया जा सकता है।

(2) केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन—केन्द्रीय सरकार लोक-हित में रिजर्व-बैंक की अनुशंसा पर इन अधिकोषों को अपने व्यवसाय के संचालनार्थ कोई भी निर्देश दे सकती है; और प्रत्येक राष्ट्रीयकृत अधिकोष को इन निर्देशों का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

(3) प्रदत्त पूंजी—प्रत्येक अधिकोष की पूंजी पूर्णतः केन्द्रीय सरकार को आवंटित है। केन्द्रीय सरकार इन अधिकोषों की पूंजी के आकार में परिवर्तन कर सकती है किन्तु किसी भी अधिकोष की अधिकतम 15 करोड़ रुपए से अधिक नहीं कर सकती।

(4) प्रबन्ध—इन अधिकोषों का संचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत सचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। यह मण्डल केन्द्रीय सरकार की पूर्ण अनुमति से और रिजर्व बैंक के परामर्श से इन अधिकोषों के संचालन-हेतु नियमों का निर्माण कर सकता है। संचालक मण्डल में (i) जमाकर्त्ताओं (ii) कृषकों, शिल्पकारों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों और (iii) अधिकोष कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

(5) लाभ का वितरण— समस्त वैधानिक प्रावधानों की पूर्ति के पश्चात् इन अधिकोषों के लाभ-हानि खाते मे जो लाभ शेष रहता है वह केन्द्रीय सरकार को हस्तांतरित कर दिया जाता है ।

(6) गोपनीयता—इन अधिकोषों के लिए बैंकों में प्रचलित उन परम्पराओं व व्यवहारों का पालन करना आवश्यक है जो कि विधि द्वारा मान्य है । इसी प्रकार इन्हें अपने विभिन्न घटकों से सम्बद्ध सूचनाओं को गुप्त रखना पड़ता है और केवल वैधानिक दृष्टि से आवश्यक होने पर ही ये इन सूचनाओं को प्रकट करते हैं। इन अधिकोषों के संचालकों व अन्य उच्चाधिकारियों को इसीलिए पद ग्रहण के समय गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है ।

(7) संचालकों का दायित्व —संचालक-मण्डल के सदस्य निम्नांकित अवस्थाओं मे हुई हानि, व्यय, दोष या कमी के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होते हैं—

(i) अपने पद से सम्बन्धित कार्यों के निष्पादन पर हुई हानि ।

(ii) ग्राहक अथवा ऋणी के दिवालिया हो जाने ।

अथवा

उसके द्वारा किसी गलत कार्य के कारण हुई हानि ।

अथवा

(iii) बैंक को प्राप्त किसी प्रतिभूति अथवा सम्पत्ति के मूल्य में कमी अथवा उसके स्वामित्व मे उत्पन्न दोष के कारण हुई हानि ।

जब ऐसी हानि या कमी सचालक की असावधानी या भूल से हो जाती है तो वह उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है ।

प्रश्न

1. अधिकोष प्रमण्डल (उपक्रमो का आर्जन एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए ।

21
भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934
(RESERVE BANK OF INDIA ACT, 1934)

प्रस्तावना—भारतीय रिजर्व बैंक देश का केन्द्रीय अधिकोष है। इस अधिकोष की स्थापनार्थ एक अधिनियम पारित किया गया जिसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम कहा जाता है। इस अधिनियम को 6 मार्च, 1934 को लागू किया गया और रिजर्व बैंक ने 1 अप्रैल, 1935 से कार्य प्रारम्भ किया।

दो चरणों में लागू—इस अधिनियम को दो चरणों में लागू किया गया। प्रथम चरण के रूप में 1 जनवरी, 1935 को अधिनियम की 2 से 19, 47, 50, 53, 55, से 58 व 61वीं धाराओं को लागू किया गया और द्वितीय चरण के रूप में 1 अप्रैल, 1935 को शेष धाराओं को लागू किया गया।

कुल धाराएं—इस अधिनियम में प्रारम्भ में 61 धाराएं थी किन्तु समय-समय पर इसमें से अनेक धाराओं को हटा दिया गया।

कुल अध्याय—इस अधिनियम में 7 अध्याय है जिनमें प्रतिपाद्य विषयों का वर्णन निम्न प्रकार है—

क्र०सं०	अध्याय	प्रतिपाद्य विषय
1.	प्रथम	प्रारम्भिक
2.	द्वितीय	स्थापना, पूंजी, प्रबन्ध व व्यवसाय
3.	तृतीय	केन्द्रीय बैंकिंग के रूप में कार्य
4.	तृतीय अ	साख सूचनाओं का एकत्रीकरण व आपूर्ति
5.	तृतीय ब	निक्षेप प्राप्ति के लिए गैर-बैंकिंग संस्थाओं व अन्य वित्तीय संस्थाओं के बारे में प्रावधान।
6.	चतुर्थ	सामान्य प्रावधान
7.	पंचम्	दण्ड-व्यवस्था

अनुसूचियाँ—प्रारम्भ में इस अधिनियम में 5 अनुसूचियां थी किन्तु कालान्तर में 3 अनुसूचियों को निरस्त कर दिया गया। अब अधिनियम में केवल प्रथम दो अनुसूचियां शेष हैं। प्रथम अनुसूची भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य-क्षेत्रों (पूर्व, पश्चिमी, उत्तरी व दक्षिणी) का निर्धारण करती है व द्वितीय अनुसूची में अनुसूचित अधिकोषों (Scheduled Banks) के नाम अंकित किए जाते हैं। इस अनुसूची में सम्मिलित अधिकोषों की संख्या

बदलती रहती है क्योंकि (i) जो अधिकोष रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित शर्तों को पूर्ण नहीं करते हैं उनके नाम इस सूची मे से निकाल दिए जाते हैं (ii) आवश्यक शर्तों को पूर्ण करने वाले नव-स्थापित (देशी व विदेशी) अधिकोषो के नाम जोड लिए जाते हैं और (iii) राष्ट्रीयकृत अधिकोषों के नाम भी हटा दिए जाते है।

अधिकोषों का नियमन—यद्यपि रिजर्व बैंक का प्रमुख कार्य (भारत में मौद्रिक स्थिरता स्थापित करने व देश के हित में मुद्रा एवं साखप्रणाली के संचालन के उद्देश्य से) नोट निर्गमन का नियमन व रक्षित कोषों का निर्माण है तथापि केन्द्रीय बैंक के रूप मे रिजर्व बैंक भारतीय बैंकिंग प्रणाली का नियमन व नियन्त्रण भी करता है। इस दृष्टि से अधिनियम की 17, 18, 42, 45(1), 45(B), 45(C), 45(D), 45(E) व 58 B धाराएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अधिनियम में संशोधन—रिजर्व बैंक अधिनियम मे 1935 के पश्चात् अनेक बार संशोधन किए जा चुके हैं जिनमें 56, 62, 65 व 1974 के संशोधन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1956 के संशोधन द्वारा देश मे नोट निर्गमन के लिए न्यूनतम कोष पद्धति (Minimum Reserve System) को अपनाया गया, 1962 मे अधिनियम मे एक नवीन अध्याय 'तीन अ' जोडा गया, 1965 में राज्य सहकारी अधिकोषों को द्वितीय अनुसूची में शामिल करने का प्रावधान किया गया और 1974 मे गलत सूचनाएं देने वाले व्यक्तियो/संस्थाओ के लिए दण्ड की व्यवस्थाएं की गईं।

कार्य क्षेत्र—प्रारम्भ मे यह अधिनियम सम्पूर्ण देश पर लागू नही किया गया था। 1956 मे (जम्मू-कश्मीर पर लागू होने के पश्चात्) इसे सम्पूर्ण देश मे लागू कर दिया गया।

प्रमुख प्रावधान—बैंकिंग उद्योग के नियमन व नियंत्रण की दृष्टि से इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधानो का निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

(अ) पुनर्कटौती ऋण एवं अग्रिम (Rediscounting of Bills & Loans and Advances)—केन्द्रीय अधिकोष के रूप मे भारतीय रिजर्व बैंक व्यापारिक अधिकोषो के लिए अन्तिम ऋणदाताओं (Lender of Last Resort) का भी कार्य करता है। अपने इस कार्य के निर्वाह के लिए वह व्यापारिक अधिकोषो के (i) विपत्रों की पुनर्कटौती करता है (ii) प्रतिभूतियो के आधार पर उन्हें ऋण देता है और (iii) आपातकालीन अग्रिम स्वीकार करता है। इन कार्यों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है—

(1) विपत्रों की पुनर्कटौती—भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17 (2) के प्रावधानों के अनुसार रिजर्व बैंक निम्नांकित विपत्रो एवं प्रतिज्ञापत्रों की पुनर्कटौती कर सकता है अथवा उन्हे खरीद सकता है—

(क) वाणिज्यिक विपत्र व प्रतिज्ञापत्र (Commercial Bills & P.N)—रिजर्व बैंक भारत मे लिखे हुए व भारत में देय व्यापारिक विपत्रो एवं प्रतिज्ञापत्रो की कटौती कर सकता है व उन्हे खरीद सकता है। ऐसे विपत्रों/प्रतिज्ञापत्रों पर कम से कम दो अच्छे हस्ताक्षर होने चाहिए जिनमे से एक हस्ताक्षर किसी अनुसूचित अधिकोष, राज्य सहकारी अधिकोष या इसी वित्तीय संस्था के होने चाहिए जो मुख्यतः विपत्रो व प्रतिज्ञापत्रों की स्वीकृति व कटौती का कार्य करती है और रिजर्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त है।

इन विपत्रों/प्रतिज्ञापत्रों में से निर्यात विपत्रों की अधिक से अधिक 180 दिनों व अन्य विपत्रों की 90 दिनों के लिए कटौती की जा सकती है अर्थात् पुनर्कटौती के पश्चात् वे विपत्रादि क्रमशः 180 व 90 दिनों में देय होने चाहिए। इन दिनों में अनुग्रह दिवस शामिल नहीं हैं। [धारा 17(2)(a)]

(ख) कृषि-कार्यों के वित्तपोषण हेतु लिखे गए विपत्र व प्रतिज्ञापत्र—रिजर्व बैंक कृषि-कार्यों (कृषि क्रिया-कलापों व फसलों का विपणन) के वित्त पोषण हेतु लिखे गए व भारत में लिखे गए विपत्रों की पुनर्कटौती अथवा खरीद कर सकता है। इन विपत्रों/प्रतिज्ञापत्रों पर कम-से-कम दो अच्छे हस्ताक्षर होने चाहिए जिनमें कम-से-कम एक हस्ताक्षर किसी अनुसूचित अधिकोष या राज्य सहकारी अधिकोष या किसी ऐसी वित्तीय संस्था के होने चाहिए जो मुख्यतः विपत्रादि की पुनर्कटौती या खरीद का कार्य करती है और रिजर्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त है। ये विपत्रादि पुनर्कटौती/खरीद की तिथि से अधिक से अधिक 15 माह में देय होने चाहिए। इस अवधि में अनुग्रह दिवसों को शामिल नहीं किया जाता है।

(ग) कुटीर एवं लघु उद्योगों के वित्तपोषण हेतु लिखे गए विपत्र—रिजर्व बैंक अपने द्वारा अनुमोदित लघु एवं कुटीर उद्योगों के उत्पादन व विपणन क्रिया-कलापों की वित्तीय सहायता हेतु ऐसे विपत्रों व प्रतिज्ञापत्रों की पुनर्कटौती या खरीद कर सकता है जो (i) भारत में लिखे गए हों और भारत में देय हों (ii) जिन पर दो या दो से अधिक अच्छे हस्ताक्षर हों (iii) इन हस्ताक्षरों में से कम-से-कम एक हस्ताक्षर किसी राज्य सहकारी अधिकोष या राज्य वित्त निगम या ऐसी वित्तीय संस्था के होने चाहिए जो मुख्यतः विपत्रादि की कटौती या खरीद का कार्य करती है और जो इस हेतु रिजर्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त है (iv) ऐसे विपत्रादि पुनर्कटौती तिथि से ज्यादा से ज्यादा 12 माह में परिपक्व होने चाहिए। इस अवधि में अनुग्रह दिवस शामिल नहीं हैं और (v) इन विपत्रों के मूलधन व ब्याज के भुगतान की राज्य सरकार द्वारा गारण्टी होनी चाहिए। [धारा 17 (2) (bb)]

(घ) राजकीय प्रतिभूतियों को धारण करने अथवा उनमें व्यवसाय करने हेतु लिखे गए विपत्र—रिजर्व बैंक ऐसे विपत्रों व प्रतिज्ञापत्रों की पुनर्कटौती या खरीद कर सकता है जो राजकीय (केन्द्रीय व राज्य सरकार) प्रतिभूतियों पर अपना अधिकार बनाए रखने अथवा उनमें व्यवसाय करने के उद्देश्य से लिखे गए हैं। ऐसे विपत्र भारत में देय व भारत में लिखे हुए होने चाहिए, इन पर किसी अनुसूचित अधिकोष के हस्ताक्षर होने चाहिए और वह पुनर्कटौती या खरीद की तिथि से 90 दिनों में देय होना चाहिए। इस अवधि में अनुग्रह दिवस शामिल नहीं हैं। [धारा 17 (2)(c)]

(ङ) विदेशी विपत्र (Foreign B/E)—रिजर्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी भी सदस्य राष्ट्र में लिखे गए ऐसे विपत्रों व कोषागार पत्रों की पुनर्कटौती करता है जो भारतीय निर्यात व्यवहारों अथवा अन्य किसी कारण से लिखे गए हैं। प्रथम अवस्था में ऐसे विपत्र पुनर्कटौती तिथि से अधिक से अधिक 180 दिनों में व द्वितीय अवस्था में 90 दिनों में देय होने चाहिए। रिजर्व बैंक इन विपत्रों आदि को किसी अनुसूचित अधिकोष या राज्य सहकारी अधिकोष से खरीदता है। [धारा 17(3) (b)]

(II) ऋण एवं अग्रिम (Loans & Advances)—रिजर्व बैंक व्यापारिक अधिकोषों को ऋण एवं अग्रिम भी प्रदान करता है। ये ऋण एव अग्रिम (i) प्रतिज्ञापत्रों और (ii) अन्य प्रतिभूतियों के आधार पर दिए जाते हैं जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(क) प्रतिज्ञापत्रों की प्रतिभति पर—रिजर्व बैंक किसी भी अनुसूचित अधिकोष अथवा राज्य सहकारी अधिकोष को माग पर देय अथवा अधिक से अधिक 180 दिनों में परिपक्व होने वाले प्रतिज्ञापत्रों की प्रतिभूति पर निम्नांकित शर्तों पर ऋण व अग्रिम स्वीकार कर सकता है। इस हेतु प्रार्थी अधिकोष को यह लिखित घोषणा करनी पड़ती है कि—

(i) वह ऐसे विपत्रों का धारक है जो भारत में या भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य देश में निर्यात सम्बन्धी लेन-देनों के लिए लिखे गए हैं और इनका मूल्य प्रार्थित ऋण के बराबर है और जब तक स्वीकृत ऋण या अग्रिम का पूर्ण भुगतान नही या हो जाएगा तब तक वह इन विपत्रों (स्वीकृत ऋण राशि के तुल्य) को अपने पास रखेगा।

या

(ii) उसने किसी भारतीय निर्यातक अथवा सम्बन्धित व्यक्ति को पोत लदान पूर्व ऋण या अग्रिम स्वीकार किया है या भारत से निर्यात करने के लिए ऋण दिया है और ऐसे ऋण की राशि प्रार्थित ऋण की राशि से कम नही है। [धारा 17 (3 A)]

(ii) उसने सद् व्यावसायिक या व्यापारिक लेन-देनो के लिए या कृषि-कार्यो या कृषि-उपजों के विपणन के लिए या घोषणा में लिखित अन्य कृषि क्रिया-कलापों के लिए ऋण या अग्रिम स्वीकृत किया है। इस घोषणा में उसे रिजर्व बैंक द्वारा वांछित अन्य तथ्यों या विवरणो को भी शामिल करना पड़ता है। [धारा 17 (3 B)]

(ख) अन्य सम्पत्तियों की प्रतिभूति पर:—रिजर्व बैंक अनुसूचित अधिकोषों को निम्नांकित सम्पत्तियों की प्रतिभूति पर भी माग पर देय अथवा अधिक से अधिक 90 दिनो में परिपक्व होने वाले ऋण स्वीकृत कर सकता है:—

(i) ऐसे स्कन्ध, निधियाँ अथवा प्रतिभूतिया (स्थाई सम्पत्ति के अतिरिक्त) जिनमें एक प्रन्यासी भारतीय ससद के किसी अधिनियम अथवा अन्य किसी प्रचलित कानून के अनुसार प्रन्यास सम्पत्ति का विनियोजन कर सकता है,

(ii) स्वर्ण, रजत या इनके स्वामित्व सम्बन्धी विलेख;

(iii) ऐसे प्रतिज्ञापत्र व विनियम पत्र जिनके क्रय अथवा पुनर्कटौती की लिए रिजर्व बैंक अधिकृत है अथवा जिनके मूलधन व ब्याज के भुगतान की राज्य सरकार ने गारण्टी दी है।

(iv) किसी राज्य सहकारी अधिकोष अथवा अनुसूचित अधिकोष का ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र जो माल के स्वामित्व सम्बन्धी प्रलेखों द्वारा समर्थित है। यह प्रलेख प्रार्थी अधिकोष के पक्ष में वास्तविक व्यावसायिक लेनदेन अथवा कृषि-कार्य के लिए अल्पकालीन ऋण अथवा कृषि उपज को विपणन सम्बन्धी सहायता के लिए दिए गए ऋण की प्रतिभूति के रूप में हस्तांतरित अभिहस्ताक्ति अथवा गिरवी रखा हुआ होना चाहिए। निर्दिष्ट बिलों की अवधि–(ऋण के पश्चात्) 180 दिनो से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ग) आपातकालीन अग्रिम (Emergency Advances) :—रिजर्व बैंक व्यापारिक अधिकोषों को आपात-कालीन ऋण व अग्रिम भी स्वीकृत कर सकता है। जब रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि देश के उद्योग, वाणिज्य व कृषि के हित में ऋणों के नियमन हेतु आपातकालीन ऋण देना आवश्यक है तब वह धारा 17 के विभिन्न प्रावधानों का अतिक्रमण करते हुए आपातकालीन ऋण देता है। रिजर्व बैंक इन ऋणों को निम्नांकित स्वरूपों में स्वीकृत करता है;

(i) धारा 17 द्वारा प्रतिबन्धित विपत्रों एवं प्रतिज्ञापत्रों का क्रय, विक्रय व पुनर्कटौती;

(ii) कम-से-कम एक लाख रुपए के तुल्य विदेशी मुद्रा का क्रय अथवा विक्रय;

(iii) राज्य सहकारी अधिकोष अथवा उसके द्वारा अनुशासित उसके कार्य-क्षेत्र में पंजीकृत सहकारी अधिकोष को ऋण देना व

(iv) किसी अन्य व्यक्ति को ऋण देना।

उपर्युक्त ऋण मांग पर देय अथवा 90 दिनों की अवधि में देय होते हैं और इनकी शर्तें रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

(घ) नकद कोष (Cash Reserves):—प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को अधिनियम की धारा 42 (2) के अन्तर्गत प्रेषित विवरणिका में प्रदर्शित कुल औसत दैनिक दायित्वों का 3 प्रतिशत सदैव रिजर्व बैंक के पास नकद जमा रखना पड़ता है। रिजर्व बैंक चाहे तो भारत सरकार के गजट में अधिसूचना निर्गमित कर इस प्रतिशत में वृद्धि कर सकता है; किन्तु वह इसे 15 प्रतिशत से अधिक नहीं कर सकता। [धारा 42 (1)]

अनुसूचित अधिकोषों के कुल दायित्वों में निम्नांकित कोषों की गणना नहीं की जाती है—

(i) दत्तपूंजी, सुरक्षित निधि व लाभ-हानि खाते का जमा शेष,

(ii) रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास अधिकोष, व कृषि पुनर्वित्त निगम से लिया गया ऋण

(iii) राज्य सहकारी अधिकोष द्वारा (1) सरकार से लिया गया ऋण व (2) उसके अन्तर्गत कार्य करने वाली सहकारी बैंकों से नकद कोष के रूप में प्राप्त राशि। इस राशि का अधिनियम द्वारा अधिकृत होना आवश्यक है। [धारा 42 (1) c]

जब रिजर्व बैंक नकद कोषों में वृद्धि हेतु आदेश निर्गमित करता है तो उसमें प्रस्तावित वृद्धि की दर भी दी जाती है। अतिरिक्त जमा राशि का प्रावधान आदेश निर्गमन के पश्चात् बढ़ने वाले कुल दायित्वों पर लागू होता है। उदाहरणार्थ, रिजर्व बैंक देश के अनुसूचित अधिकोषों को यह आदेश दे सकता है कि उन्हें 1 जनवरी, 1979 के पश्चात कुल दायित्वों में होने वाली वृद्धि का 20 प्रतिशत अतिरिक्त नकद राशि के रूप में रिजर्व बैंक के पास जमा करवाना होगा। इस आदेश के पश्चात् यदि किसी अधिकोष के कुल दायित्वों में 25 लाख रुपए की वृद्धि हो तो उसे 5 लाख रुपए अतिरिक्त नकद कोष के रूप में रिजर्व बैंक के पास जमा करवाने होंगे।

रिजर्व बैंक अतिरिक्त नकद राशि कुल नवीन दायित्वों से अधिक निर्धारित नहीं

कर सकती और पुराने व नवीन नकद कोषों का योग कुल दायित्वों के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। (धारा 42 (1 A)

ब्याज चुकाना:—जब रिजर्व बैंक नकद कोषों के प्रतिशत में वृद्धि करता है तो वह बढ़े हुए प्रतिशत के कारण जमा करवाई गई अतिरिक्त राशि पर अपनी ओर से अनुसूचित अधिकोषों को अपने द्वारा निर्धारित दर से ब्याज भी दे सकता है। एक अधिकोष को इन निधियों पर ब्याज तभी मिल पाता है जब कि वह रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा तक निधियाँ रखता है। [42 (1 B)]

ब्याज की वसूली:—जब किसी अधिकोष का न्यूनतम नकद कोष वैधानिक सीमा से कम हो जाता है तो उसे न्यूनतम कोष से कम पड़ने वाली राशि पर ब्याज देना पड़ता है। प्रथम सप्ताह में ब्याज की दर बैंक दर से 3 प्रतिशत अधिक होती है और द्वितीय सप्ताह में उसे बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया जाता है। [धारा 42 (3)]

अर्थ दण्ड:—जो अधिकारी (संचालक, प्रबन्धक या सचिव) नकद कोषों की अल्पता के लिए दोषी पाए जाते हैं उनमें से प्रत्येक पर 500 रुपए प्रति सप्ताह की दर से अर्थदण्ड भी किया जाता है। यह अर्थदण्ड उपर्युक्त ब्याज से अलग हैं। यह दोष जितने सप्ताह तक चालू रहता है उन्हें 500 रुपए प्रति सप्ताह की दर से यह दण्ड देना पड़ता है।
[धारा 42(3 A)a]

दीर्घ अवधि तक इस दोष के चालू रहने पर रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोष को नवीन निक्षेप स्वीकार करने से मना कर सकता है। जो अधिकोष इस आदेश का उल्लघन करते हैं उनके संचालकों पर 500 रु. प्रतिदिन की दर से अर्थदण्ड किया जाता है।
[धारा 43 (3 A) (B)]

उपर्युक्त अर्थदण्डों के भुगतान के लिए रिजर्व बैंक एक आदेश निर्गमित करता है और प्रत्येक दोषी अधिकोष 9 दोषी अधिकोष अधिकारी को आदेश प्राप्ति के 14 दिनों के भीतर इस अर्थदण्ड का भुगतान करना पड़ता है। भुगतान न करने पर रिजर्व बैंक किसी अधिकृत न्यायालय मे अपील कर सकता है और न्यायालय दोषी पाए जाने पर सम्बन्धित व्यक्तियों और अधिकोषों के विरुद्ध एक प्रमाण-पत्र निर्गमित करता है। यह प्रमाण-पत्र न्यायालीय डिक्री के समान प्रभावी होती है। जब रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि दोषी अधिकोष समुचित कारणोवश धारा 42 (1 A) या 42 (2) ने प्रावधानों की पूर्ति नहीं कर सका तो वह बैंक से उस दर से ब्याज या आर्थिक दण्ड (जो भी स्थिति हो) की मांग नहीं करता है अर्थात् उसे माफ कर देता है। [धारा 42 (5) (a, b & c)]

निर्धारित प्रपत्र में सूचना—प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को अपने नकद कोषों के बारे मे रिजर्व बैंक के पास निर्धारित प्रपत्र में सूचना देनी पड़ती है। यह प्रपत्र प्रति शुक्रवार को तैयार किया जाता है और जब शुक्रवार सार्वजनिक अवकाश (परकाम्य संलेख अधिनियम के अन्तर्गत) होता है तब यह प्रपत्र वृहस्पतिवार को बनाया जाता है व प्रत्येक शाखा द्वारा इसे उसी दिन प्रधान कार्यालय को प्रेषित कर दिया जाता है। इस प्रविवरण पर अधिकोष के दो उत्तरदायी अधिकारियों को अपने हस्ताक्षर बनाने पड़ते हैं। प्रधान-कार्यालय इस प्रविवरण को 5 दिन के अन्दर रिजर्व बैंक के पास भेज देता है। जो अधिकोष इस प्रावधानो का पालन नहीं करते हैं उन पर 100 रुपया प्रतिदिन की दर से अर्थदण्ड किया जाता है।

जब भौगोलिक बाधाओं के कारण एक अधिकोष उपर्युक्त प्रविवरण प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहता है तो रिजर्व बैंक उसे अस्थाई प्रविवरण प्रस्तुत करने की अनुमति दे देता है। रिजर्व बैंक कुछ अधिकोषों को मासिक विवरण प्रस्तुत करने की भी अनुमति देता है। ऐसे अधिकोषों को सम्बन्धित मास की समाप्ति के 14 दिनों के अन्दर रिजर्व बैंक के पास अपना प्रविवरण प्रस्तुत करना पड़ता है। [धारा 42 (2) (i) (ii)]

(स) प्रविवरण (नकद राशि व विनियोग) प्रस्तुत करना (Submission of Returns To R. B. I.) :—प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को रिजर्व बैंक के पास निम्नांकित सूचनाओं से युक्त एक प्रविवरण (Return) प्रस्तुत करना पड़ता है :

(1) माग एवं सावधि देयताओं की कुल राशि,
(2) भारत स्थित अधिकोषों से लिए गए ऋण (मांग एवं सावधि देयताओ मे वर्गीकृत करते हुए);
(3) भारत मे रखे गए विधि मान्य नोट और सिक्के;
(4) भारत में रिजर्व बैंक के पास जमा राशि,
(5) अन्य अधिकोषों मे चालू खाते मे, मांग पर देय तथा अल्प सूचना पर देय जमा राशि;
(6) केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों (कोषागार विपत्र और कोष निक्षेप रसीद सहित) में विनियोजित राशि (पुस्त मूल्यों पर)
(7) भारत में स्वीकृत ऋण एव अग्रिम और
(8) भारत स्वदेशी व विदेशी विपत्रो के क्रय व कटौती मे विनियोजित राशि।

उपर्युक्त प्रविवरण प्रति शुक्रवार को बनाया जाता है और आगामी पांच दिनों मे इसे रिजर्व बैंक के पास भेज दिया जाता है। इस प्रविवरण पर सम्बन्धित अधिकोष के दो उत्तरदायी अधिकारियो को अपने हस्ताक्षर बनाने पड़ते हैं। जब किसी अधिकोष के कुछ कार्यालयों का भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम के अन्तर्गत शुक्रवार को अवकाश रहता है तो इस प्रविवरण मे उन कार्यालयो के पहले दिन के समको को शामिल किया जाता है।

जब रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि भौगोलिक स्थिति के कारण एक अनुसूचित अधिकोष के लिए साप्ताहिक प्रविवरण प्रस्तुत करना अव्यावहारिक है तो रिजर्व बैंक—

(1) उसे अस्थाई साप्ताहिक प्रविवरणभेजने की अनुमति दे सकता है। ऐसे अधिकोष का 10 दिनों की अवधि में अपना अन्तिम या पक्का प्रविवरण भेजना होगा।

(2) उसे साप्ताहिक या प्रविवरण के स्थान पर मासिक प्रविवरण भेजने की अनुमति दे सकता है। यह प्रविवरण उस माह समाप्ति के 14 दिनो के भीतर भेजना पड़ता है। [धारा 42 (2)]

दण्ड (Penalties)—यदि कोई बैंक उपर्युक्त सूचना नही देता है, तो उसे 100 रु. प्रतिदिन दंड देना पड़ता है, जब तक कि त्रुटि जारी रहे।

(द) अनुसूचित अधिकोष (Schedules Books):—जब एक अधिकोष का नाम रिजर्व बैंक अधिनियम की द्वितीय सूची मे अंकित कर लिया जाता है तो उसे अनुसूचित अधिकोष कहा जाता है। एक अधिकोष का नाम इस सूची में अग्रांकित शर्तों की पूर्ति पर लिखा जाता है—

(1) उसकी दत्त पूंजी व संचित निधि का योग 5 लाख रुपए से कम नहीं होना चाहिए,
(2) रिजर्व बैंक को यह विश्वास होना चाहिए कि वह अपने जमाकर्ताओं के हितों के विरुद्ध कार्य नहीं कर रहा है और
(3) वह एक प्रमण्डल या भारत सरकार द्वारा अधिसूचित संस्था होनी चाहिए। इस हेतु भारतीय प्रमण्डल को 'भारतीय प्रमण्डल अधिनियम' की धारा 3 के प्रावधानों की पूर्ति करनी पड़ती है व विदेशी प्रमण्डल को अपने देश विशेष के विधि व विधान की शर्तों को पूर्ण करना पड़ता है।

[धारा 42 (6)]

दत्त पूंजी व संचित निधि का मूल्यांकन उनके वास्तविक मूल्य अथवा बाजार मूल्य के आधार पर किया जाता है। इस मूल्य का अनुमान लगाते समय समस्त सम्पत्तियों एवं देयताओं का बाह्य मूल्य ज्ञात किया जाता है और यदि दोनों का अन्तर +5 लाख रुपए या इससे अधिक आने पर यह मान लिया जाता है कि अधिकोष की दत्त पूंजी व कोष 5 लाख रुपए या इससे अधिक है।

यह आवश्यक नहीं है कि दत्तपूंजी व संचित निधि का मूल्य 5 लाख रुपया होने पर एक अधिकोष को द्वितीय अनुसूची मे शामिल कर लिया जाय। रिजर्व बैंक एक अधिकोष को इस सूची में शामिल करने से पूर्व उसकी दत्त पूंजी व कोष की पर्याप्तता पर भी विचार करता है। पर्याप्तता के निर्धारण के लिए वह उस अधिकोष की (1) आवश्यकता (2) कुल निक्षेप (3) कार्य-क्षेत्र व (4) अन्य सम्बन्धित पहलुओं पर विचार करता है व प्रत्येक दृष्टि से पूंजी व कोष को पर्याप्त पाने पर उसे द्वितीय सूची मे शामिल कर लेता है।

जब किसी अधिकोष की दत्त पूंजी अधिक व संचित निधि अपेक्षाकृत कम होती है तब रिजर्व बैंक उस अधिकोष की इस विशिष्ट स्थिति पर विचार करता है और इस विरोधाभास के लिए समुचित कारण पर उसे द्वितीय अनुसूची मे शामिल कर लेता है।

जमाकर्त्ताओं के हितों पर विचार करते समय रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोष की (1) वित्तीय स्थिति (2) संचालन पद्धति और (3) प्रबन्ध व्यवस्था पर विचार करता।

एक अधिकोष की वित्तीय स्थिति पर विचार करते समय निम्नांकित बिन्दुओं का विश्लेषण किया जाता है:

(1) दत्त पूंजी और संचित निधि की पर्याप्तता;
(2) संतोषजनक उपार्जन शक्ति;
(3) दत्त पूंजी, संचित निधि और निक्षेपो का पलायन व
(4) तरल कोषों की यथेष्ठता।

उपार्जन शक्ति कम होने पर एक अधिकोष पर्याप्त मात्रा मे संचित निधि का निर्माण नहीं कर सकता। अतएव संचित कोषों की अपर्याप्तता का विश्लेषण करते समय रिजर्व बैंक उसके कारणों पर भी विचार करता है। इसी प्रकार तरल कोषो की यथेष्ठता पर विचार करते समय अधिकोष के (1) कार्य-क्षेत्र (2) निक्षेप (3) अग्रिम (4) विनियोगो की प्रकृति और (5) ऋण व्यवस्थाओं का विश्लेषण किया जाता है।

संचालन पद्धति का विश्लेषण करते समय अधिकोष के (1) प्रबन्ध (2) आंतरिक संगठन और (3) कर्मचारियों की कुशलता पर विचार किया जाता है। प्रबन्ध के अन्तर्गत

संचालक मण्डल के गठन, संचालकों की ईमानदारी व साख, मण्डल की ऋण व विनियोग नीति, प्रबन्धकीय उपकरण, शाखा विस्तार व अधिकोष के प्रमुख अधिकारियों की योग्यता आदि का विश्लेषण किया जाता है। आंतरिक संगठन के अन्तर्गत आन्तरिक नियन्त्रण व कर्मचारियों की कुशलता के अन्तर्गत न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता, प्रशिक्षण, अनुभव, भर्ती, चयन, अवस्थापन, पदोन्नति व स्थानान्तरण आदि नीतियों का अध्ययन किया जाता है। इन समान बिन्दुओं पर सामूहिक रूप से विचार किया जाता है।

1 मार्च, 1966 से राज्य सहकारी अधिकोषों को भी अनुसूचित अधिकोषों की सूची में शामिल किया जाने लगा है। अतएव अब अनुसूचित अधिकोषों को दो श्रेणियों—अनुसूचित व्यापारिक अधिकोष व अनुसूचित राज्य सहकारी अधिकोष में विभक्त किया जाता है।

अनुसूची में नाम शामिल करना व निकालना—सामान्यतः द्वितीय अनुसूची में नाम अंकित करवाने के लिए एक अधिकोष को रिजर्व बैंक के समक्ष एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है और रिजर्व बैंक सभी आवश्यक तथ्यों से संतुष्ट होने पर प्रार्थी अधिकोष का नाम द्वितीय सूची में अंकित कर लेता है।

कभी-कभी रिजर्व बैंक अपनी प्रेरणा पर भी एक अधिकोष का नाम द्वितीय अनुसूची में अंकित कर लेता है। रिजर्व बैंक अपनी प्रेरणा पर यह निर्णय केवल उस समय लेता है जबकि उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह अधिकोष धारा 42 के समस्त प्रावधानों की पूर्ति करता है। रिजर्व बैंक यह निर्णय अपने निरीक्षकों से प्राप्त प्रतिवेदनों अथवा उस अधिकोष से प्राप्त विवरणियों (Returns) के आधार पर लेता है।

सूचि से नाम हटाना—रिजर्व बैंक एक अधिकोष का नाम द्वितीय अनुसूची से हटा भी सकता है। एक अधिकोष का नाम तब हटाया जाता है जबकि वह धारा 42 के प्रावधानों की पूर्ति करने में असमर्थ हो जाता है अर्थात् (1) जब उसकी दत्तपूंजी व सुरक्षित निधि का योग 5 लाख रुपये से कम हो जाता है (2) जब धारा 35 (बैंकिंग विनिमय अधिनियम) के अन्तर्गत निरीक्षण करवाने के पश्चात् रिजर्व बैंक को यह विश्वास हो जाता है कि कि बैंक का संचालन जमाकर्त्ताओं के हितों के विरुद्ध हो रहा है और (3) जब उसका समापन हो जाता है अथवा वह बैंकिंग व्यवसाय का संचालन बन्द कर देता है।

स्पष्टीकरण का अवसर—नाम हटाने से पूर्व रिजर्व बैंक सम्बन्धित अधिकोष को स्पष्टीकरण का अवसर देता है और स्पष्टीकरण से संतुष्ट होने पर उसे अपनी स्थिति को सुधारने के लिए समुचित समय देता है किन्तु असन्तोषजनक स्पष्टीकरण प्राप्त होने, पर वह उस अधिकोष का नाम द्वितीय अनुसूची से अविलम्ब हटा देता है—

प्रावधानों से मुक्ति—रिजर्व बैंक चाहे तो किसी को अधिकोष को अथवा उसके कुछ कार्यालयों को विशिष्ट शर्तों पर एक निर्धारित समय के लिए इस धारा 42 (1) के समस्त या कुछ प्रावधानों से मुक्त कर सकता है।

अनुसूचित अधिकोषों के अधिकार व दायित्व (Rights and Responsibilities of Banks)—रिजर्व बैंक इन अधिकोषों के लिए अन्तिम ऋणदाता का कार्य करता है। अतः ये आवश्यकता के समय धारा 17 व 18 के प्रावधानों के अन्तर्गत रिजर्व बैंक से ऋण ले सकते हैं। इन अधिकारों व सुविधाओं के बदले में उन्हें रिजर्व बैंक के पास धारा 42 के प्रावधानों के अन्तर्गत नकद कोष रखने पड़ते हैं जिन पर सामान्यतः कोई ब्याज नहीं मिलता है।

(ई) ऋण व अग्रिम सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करना (Collection and Furnishing of Credit infotmation) — रिजर्व बैंक भारत में कार्यरत किसी भी व्यापारिक अधिकोष और भारत सरकार द्वारा अधिकृत अन्य वित्तीय संस्थाओं से उनके द्वारा प्रदत्त ऋणों व अग्रिमों के बारे में किसी भी उपयुक्त स्वरूप—जैसा वह ठीक समझे में सूचनाएं मांग सकता है और इस प्रकार से प्राप्त सूचना को धारा 45 (D) के प्रावधानानुसार किसी भी अधिकोष प्रमण्डल को प्रसारित कर सकता है। [45 B (a) (b)]

साख सूचना का आशय निम्नांकित जानकारियों के प्राप्त करने से है—

(i) किसी ऋणी अथवा ऋणियों के किसी वर्ग को स्वीकृत ऋण राशि, उसका स्वरूप व अन्य साख सुविधा,

(ii) स्वीकृत ऋणों के लिए ऋणी अथवा ऋणियों के वर्ग से प्राप्त प्रतिभूति का स्वरूप;

(iii) अधिकोष द्वारा अपने किसी ग्राहक या ग्राहकों के वर्ग के लिए प्रदत्त ऋण गारण्टी;

(iv) ऋणी अथवा ऋणियों का पूर्व इतिहास, उत्तरी क्षमता व वित्तीय लेन-देन का इतिहास, और

(v) अन्य ऐसी सूचना जिसे रिजर्व बैंक साख नीति व साख के अधिक नियमित नियमन के लिए समझे। [धारा 45 A (c)]

प्रत्येक अधिकोष उपर्युक्त सूचनाएं देने के लिए गोपनीयता की रक्षार्थ प्रचलित वैधानिक व्यवस्थाओं व ऋणों की गोपनीयता के लिए सम्पन्न अनुबन्ध के बावजूद-बाध्य है। [45 C (2)]

प्रत्येक अधिकोष को उपर्युक्त सूचना रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित प्रविवरणों में निर्धारित स्वरूप व समय पर भेजनी पड़ती है। [धारा 45 C (1)]

(एफ) रिजर्व बैंक द्वारा साख सूचनाओं की पूर्ति (Furnishing of Credit Information by R. B I.)—एक अधिकोष किसी व्यक्ति विशेष के साथ सम्पन्न या प्रस्तावित वित्तीय अनुबन्धों के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक से साख सूचनाएं मांग सकता है। प्रार्थी अधिकोष को अपना प्रार्थनापत्र रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित स्वरूप में देना पड़ता है। [धारा 45 D (1)]

इस प्रार्थना-पत्र की प्राप्ति पर रिजर्व बैंक प्रार्थी को वांछित सूचना-उपलब्ध होने पर-यथाशीघ्र देगा। सूचना देते समय रिजर्व बैंक अपनी सूचना में उन अधिकोषों के नाम नहीं देता है जिनसे उसने सम्बन्धित सूचना प्राप्त की है अर्थात् वह यह सूचना समेकित (Consolidated) रूप में देता है। [धारा 45 D (2)]

इस कार्य के लिए रिजर्व बैंक चाहे तो प्रार्थी अधिकोष से 25 रुपये तक शुल्क ले सकता है। [धारा 45 D (3)]

(जी) गोपनीयता (Maintenence of Secrecy)—व्यापारिक अधिकोष व रिजर्व बैंक द्वारा धारा 45 C व 45 D के अन्तर्गत प्रेषित सूचनाओं को गोपनीय रखा जाता है और कोई भी न्यायालय, ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण रिजर्व बैंक या अन्य किसी अधिकोष को इन सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण या निरीक्षण के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

अग्रांकित अवस्थाओं में उपर्युक्त सूचनाओं की गोपनीयता भंग की जा सकती है—

(i) एक अधिकोष रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति से रिजर्व बैंक को प्रेषित साख सूचनाओं का उद्घाटन कर सकता है।

(ii) सार्वजनिक हित मे आवश्यक समझने पर रिजर्व बैंक अधिकोषों से प्राप्त सूचना को समेकित रूप में प्रकाशित कर सकता है। इस सूचना मे वह सम्बन्धित अधिकोषो के नाम नही देता है,

(iii) रिजर्व बैंक अथवा किसी बैंकिंग कम्पनी द्वारा किसी अन्य अधिकोष प्रमण्डल को सूचना देने के लिए

या

व्यापारिक अधिकोषों में प्रचलित परम्पराओं द्वारा अनुमोदित होने पर

या

किसी कानून द्वारा अनुमोदित होने पर भी उपर्युक्त सूचनाओं का उद्घाट किया जा सकता है।

(एच) दण्ड (Penalties):—अधिनियम की धारा 58 B रिजर्व बैंक को जानबूझकर गलत सूचना देने वाले या किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने वाले व्यक्तियो के लिए दण्ड की व्यवस्था करती है। इस धारा के अनुसार एक व्यक्ति को निम्नांकित अवस्थाओ मे दण्डित किया जा सकता है—

(i) असत्य विवरण देने पर:—जब एक व्यक्ति रिजर्व बैंक को प्रेषित प्रार्थना-पत्र, घोषणा, प्रविवरण, बयान या सूचना आदि मे जानबूझ कर गलत विवरण देता है अथवा किसी प्रविवरण या विज्ञापन:—जन निक्षेपों को आमंत्रित करने हेतु–मे गलत सूचना देता है या किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाता है तो उसे इस कार्य के लिए 3 वर्ष का कारावास या अर्थदण्ड दिया जा सकता है। [धारा 58 B(1)]

(ii) जानकारी न देने पर:-जब एक व्यक्ति रिजर्व बैंक को रिजर्व बैंक अधिनियम या अन्य किसी अधिनियम, आदेश, नियम आदि के अन्तर्गत मांगी गई पुस्तकें, लेखा-पुस्तकें या अन्य प्रलेख प्रस्तुत नही करता है अथवा उन प्रश्नों का उत्तर नहीं देता है जिनके उत्तर के लिए वह वैधानिक दृष्टि से बाध्य है तो ऐसे व्यक्ति पर प्रत्येक अपराध के लिए 2,000 रुपये तक का अर्थदण्ड किया जा सकता है और यदि वह अपनी भूल को अविलम्ब नहीं सुधारता है तो उस पर 100 रुपये प्रतिदिन की दर से-जब तक भूल नहीं सुधारी जाती है—अतिरिक्त अर्थदण्ड किया जा सकता है- [धारा 58 B(2)]

(iii) धारा 31 के प्रावधानों का उल्लघन करने पर:—जब एक व्यक्ति इस अधिनियम की धारा 31 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए कोई विपत्र, प्रतिज्ञापत्र या हुण्डी लिख देता है तो उस पर उस विपत्र की राशि के बराबर अर्थदण्ड किया जा सकता है। [धारा–58 B (3)]

(4) ऋण सम्बन्धी गोपनीयता भग करने पर:— धारा 54 E द्वारा प्रतिबन्धित साख–सूचना की गोपनीयता भग करने पर एक व्यक्ति को 6 माह का कारावास या, 1,000 रुपए का अर्थदण्ड अथवा दोनों सजाएं दी जा सकती हैं। [धारा 58 (B 4)]

उपर्युक्त कार्यों के लिए दोषी व्यक्तियों को सजा दिलवाने के लिए रिजर्व बैंक को किसी अधिकृत सामान्यतः अथवा विशेष रूप से—न्यायालय (मेट्रोपोलिटन, प्रथम श्रेणी के न्यायिक न्यायाधीश या उच्चतर न्यायालय) में लिखित शिकायत करनी पड़ती है।

स्टेट बैंक को अभिकर्ता के रूप में नियुक्तिः– जिन स्थानों पर रिजर्व बैंक के बैंकिंग डिपार्टमेण्ट के कार्यालय नहीं हैं वहां पर रिजर्व बैंक को स्टेट बैंक समूह की किसी शाखा को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करना पड़ता है, यदि इस समूह की कोई शाखा वहां पर कार्यरत हो। [धारा 45]

प्रश्न

1. भारतीय रिजर्व बैंक की सामान्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. अनुसूचित अधिकोष पर एक लेख लिखिए।
3. निम्नांकित पर टिप्पणियां लिखिए—
   (i) पुनर्कटौती, ऋण व अग्रिम,
   (ii) नकद कोष,
   (iii) प्रविवरण,
   (iv) ऋण व अग्रिम सम्बन्धी सूचनाएं व दण्ड प्रावधान।

22

ब्याज कर अधिनियम, 1974

(INTEREST TAX ACT, 1974)

भारतीय संसद ने 7 सितम्बर, 1974 को यह अधिनियम पारित किया और राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् इसे इसी वर्ष से लागू कर दिया। इस अधिनियम की व्यवस्थानुसार प्रत्येक अनुसूचित अधिकोष को ब्याज से प्राप्त अपनी सकल आय पर 7 प्रतिशत कर देना पड़ता है; किन्तु सकल ब्याज में निम्नांकित स्रोतों से प्राप्त ब्याज को शामिल नहीं किया जाता है :

(i) राजकीय प्रतिभूतियाँ,

(ii) स्थानीय निकायों, प्रमण्डलों व सांविधानिक निगमों के ऋणपत्र और अन्य प्रतिभूतियाँ और

(iii) अनुसूचित बैंकों के मध्य सम्पन्न सौदों से प्राप्त आय।

कुल देय कर राशि को आयकर अधिनियम में कटौती योग्य राशि (Deductible Income) माना गया है। अतः आय-कर की गणना करते समय ब्याज के रूप में देय कर राशि को कुल आय में से घटा दिया जाता है।

अधिनियम के अन्तर्गत सम्बन्धित अधिकोषों को ब्याज कर के भार को ऋण-दाताओं पर विवर्तित (Shifting) करने का अधिकार दिया गया है। कर-विवर्तन ब्याज दर के अनुपात (Prorata) में किया जाता है। समरूपता की दृष्टि से रिजर्व बैंक इस सम्बन्ध में बैंकों को समय-समय पर आवश्यक निर्देश भेजता रहता है। इन निर्देशों के अन्तर्गत वह प्रत्येक ब्याज दर के साथ-साथ विवर्तित कर-भार की मात्रा व कुल ब्याज दर इंगित करता है। विभेदात्मक ब्याज दर (Differential Rate of Interst) व कर्मचारी भविष्य-निधि के अन्तर्गत स्वीकृत ऋणों पर कर विवर्तन के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों पर यह अधिनियम लागू नहीं होता है। उन्हें क्षेत्रीय ग्रामीण अधिनियम की धारा 24 (1) के अन्तर्गत ब्याज कर से मुक्त किया गया है।

23

बैंकिंग सेवा आयोग अधिनियम, 1975

(BANKING SERVICE COMMISSION ACT, 1975)

बैंकिग आयोग ने अपने प्रतिवेदन में केन्द्रीय सरकार से यह सिफारिश की थी कि राष्ट्रीयकृत अधिकोषों के लिपिको और कनिष्ठ अधिकारियों की भर्ती के लिए संघीय लोक सेवा आयोग के अनुरूप एक राष्ट्रीय बैंकिग सेवा आयोग की स्थापना की जाय। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि—(i) यह आयोग एक संवैधानिक (Statutory) आयोग होना चाहिए, (ii) इसके कम-से-कम 50 प्रतिशत सदस्यों को केन्द्रीय बैंकिग अथवा व्यापारिक बैंकिग का कम से कम 10 साल का अनुभव होना चाहिए (iii) सदस्यों की 5 वर्ष के लिए नियुक्ति की जाय और 65 वर्ष की आयु अथवा 5 साल के सेवा-काल की समाप्ति-जो भी पहले हो पर इन्हें सेवा निवृत किया जाय (iv) सेवा-निवृत्ति के पश्चात् इन्हे केन्द्रीय बैंक अथवा उसके सहायक संस्थानों में नियुक्त न किया जाय और (v) आयोग लिपिको की भर्ती के लिए क्षेत्रीय स्तर पर व अधिकारियो की भर्ती के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करे।

भारत सरकार ने आयोग की सिफारिशों को सही मानते हुए 1975 मे बैंकिग सेवा आयोग अधिनियम (Banking Service Commission Act) पारित किया और इसके अन्तर्गत सेवा आयोग की स्थापना की। यह आयोग राष्ट्रीयकृत अधिकोषों की माग के आधार पर प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करता था व आवश्यक मात्रा मे कर्मचारियों व अधिकारियों का चयन करता था, किन्तु दुर्भाग्यवश सितम्बर 1977 मे इस आयोग को भंग कर दिया गया और इसके स्थान पर क्षेत्रीय भर्ती बोर्डों की स्थापना की गई। ये बोर्ड न तो आयोग की भाति संवैधानिक संस्थाएं हैं और न उनकी कार्य प्रणाली मे एकरूपता है।

प्रश्न

1. बैंकिग सेवा आयोग अधिनियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

24

क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष अधिनियम, 1976

(THE REGIONAL RURAL BANKS ACT, 1976)

प्रस्तावना:—क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष *अधिनियम ग्रामीण अधिकोषों के नियमन* व नियंत्रण के लिए बनाया गया है। इस अधिनियम पर *राष्ट्रपति महोदय ने 9 फरवरी, 1976* को अपनी स्वीकृति प्रदान की, *किन्तु इसे 26 सितम्बर, 1975* से लागू हुआ माना गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग एवं अन्य सम्बंधित *गतिविधियों की वित्त पूर्ति विशेषतः सीमान्त किसान*, भूमिहीन कृषि श्रमिक, ग्रामीण कारीगर, लघु उपक्रमी को सस्ती साख प्रदान कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है।

विशेषताएं:—इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं—

(1) धाराएं और अध्याय:—इस अधिनियम में कुल 32 धाराएं व 7 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में नाम, प्रारम्भ तिथि, परिभाषाओं आदि का वर्णन किया गया है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम व छठे अध्याय में क्रमशः (i) स्थापना व पूंजी (ii) प्रबन्ध (iii) व्यवसाय (iv) लेखा एवं अंकेक्षण व (v) विविध घटकों का वर्णन किया गया है। सातवें अध्याय में विविध अधिनियमों में किए गए संशोधन दिए गए हैं।

(2) स्थापना:— क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोषों की स्थापना सामान्यतः किसी राष्ट्रीयकृत अधिकोष द्वारा की जाती है। राज्य सहकारी अधिकोषों व निजी अधिकोषों को भी यह उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। इन अधिकोषों को प्रायोजक (Sponsor) बैंक कहा जाता है। ये अधिकोष अपने-अपने प्रायोजित ग्रामीण अधिकोषों को प्रथम 5 वर्षों तक कर्मचारियों के चयन व प्रशिक्षण में सहायता करते हैं और अन्य आवश्यक वित्तीय व प्रबन्धकीय सहायता प्रदान करते हैं।

(3) कार्यक्षेत्र व प्रधान कार्यालय:—केन्द्रीय सरकार प्रत्येक ग्रामीण अधिकोष का कार्यक्षेत्र निश्चित करती है और उसे गजट में अधिसूचित करती है। अधिकोष का प्रधान कार्यालय भी इस अधिकृत क्षेत्र में किसी पूर्व अधिसूचित स्थान पर खोला जाता है किन्तु शाखाएं सम्पूर्ण क्षेत्र में खोली जा सकती हैं। एक अधिकोष सामान्यतः 1 से 3 जिलों में कार्य करता है।

(4) पूंजी:—एक क्षेत्रीय ग्रामीण अधिकोष की अधिकृत पूंजी 1 करोड़ रुपए होती है जो 100–100 रुपए के 1 लाख पूर्ण दत्त अंशों में *विभक्त होती है* और *निर्गमित पूंजी* 25 लाख रुपए होती है जिसे केन्द्रीय सरकार, सम्बन्धित राज्य सरकार व प्रायोजक अधिकोष *50 : 15 : 35 के अनुपात में खरीदते हैं।* आवश्यकता पड़ने पर ये अधिकोष केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक व प्रायोजक अधिकोष से परामर्श करने के पश्चात् अधिकृत पूंजी में

परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु इसे 25 लाख रुपए से (100 रुपए के पूर्ण दत्त अंशों में विभक्त) कम नही किया जा सकता।

(5) प्रबन्धः–ग्रामीण अधिकोषों का प्रबन्ध एक व सदस्यीय मनोनीत संचालक-मण्डल में निहित होता है। इन सदस्यों में से केन्द्रीय सरकार 4, राज्य सरकार 2 व प्रायोजक अधिकोष 3 संचालकों की नियुक्ति करता है। केन्द्रीय सरकार बैंक के अध्यक्ष (Chairman) का भी मनोनयन करती है। यह चार सदस्यों मे से एक होता है। अध्यक्ष की नियुक्ति 5 वर्ष व अन्य सदस्यों की नियुक्ति 2 वर्ष के लिए की जाती है किन्तु उनका पुनर्मनोनयन किया जा सकता है।

(6) कर्मचारियों का वेतनः–इन अधिकोषों के कर्मचारियों को सम्बन्धित राज्य सरकार के कर्मचारियो के वेतन-मानों मे नियुक्ति दी जाती है किन्तु प्रतिनियुक्ति पर आए हुए कर्मचारियों को अपनी मूल वेतन शृंखला में वेतन पाने का अधिकार होता है। वेतन मानों में संशोधन केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति से किया जाता है।

(7) ग्रामीण अधिकोषों का व्यवसायः–प्रत्येक ग्रामीण अधिकोष का स्तर एक अनुसूचित व्यापारिक अधिकोष के समकक्ष होता है। अतएव ये अधिकोष भी निक्षेप प्राप्त करने, ऋण स्वीकृत करने व अन्य बैंकिंग कार्य करने के लिए अधिकृत होते हैं। ये बैंक मुख्यतः सीमान्त किसानों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों, लघु व्यापारियो व उद्योगपतियों व समाज के अन्य कमजोर वर्गों को ऋण देते हैं।

(8) प्रशिक्षण (Training):–ग्रामीण अधिकोषों के अध्यक्षों व शाखा प्रबन्धकों को कृषि बैंकिंग कालेज, पूना में प्रशिक्षण दिया जाता है और अन्य कर्मचारियों को प्रायोजक अधिकोषों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है।

(9) लेखा एवं अंकेक्षणः–प्रत्येक ग्रामीण अधिकोष को अपना हानि–लाभ खाता व चिट्ठा प्रतिवर्ष 31 दिसम्बर तक तैयार करवाना पड़ता है, उसका कि केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त सनदी लेखाकार (Chartered Accountant) से अंकेक्षण करवाना पड़ता है और अंकेक्षित लेखों को वर्ष समाप्ति के 60 दिनो के भीतर अंशधारियों के समक्ष रखना पड़ता है। इन अंकेक्षकों को सामान्यतः वही अधिकार दिए गए हैं जो अन्य अधिकोषों के अंकेक्षकों को प्राप्त हैं और उनसे वही अपेक्षाएं की गई हैं जो अन्य अंकेक्षकों से अपेक्षित हैं।

(10) आयकर–सम्बन्धी छूटः–आयकर अधिनियम 1961 अथवा आय और लाभ पर कर–सम्बन्धी नियमो की दृष्टि से क्षेत्रीय अधिकोषों को सहकारी अधिकोषों के समकक्ष माना गया है अर्थात् इन्हें आयकर सम्बन्धी वे समस्त छूट प्राप्त हैं जो सहकारी अधिकोषों को प्राप्त हैं।

(11) संचालकों की अयोग्यताएं:–एक व्यक्ति को निम्नांकित अवस्थाओं में संचालक नही बनाया जा सकता :

(i) यदि वह कभी दिवालिया घोषित किया गया हो अथवा उसने ऋणो का भुगतान स्थगित कर दिया हो अथवा उसने अपने लेनदारो से समझौता कर लिया हो;

(ii) यदि उसे किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा पागल घोषित कर दिया गया हो,

(iii) यदि उसे अनैतिक आचरण के लिए दोषी घोषित कर दिया गया हो।

(12) संचालक पद से मुक्ति:—एक व्यक्ति जब उपर्युक्त अयोग्यता अर्जित कर लेता है, अथवा लगातार 3 संचालक-मण्डल की बैठकों में पूर्व सूचना के अनुपस्थित रहता है अथवा अपना त्यागपत्र दे देता है तो संचालक / चेयरमैन का पद खाली मान लिया जाता है।

(13) समापन:—इन अधिकोषों का समापन केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति व केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित विधि से ही किया जा सकता है।

(14) रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त रियायतें (Concession by RBI):—रिजर्व बैंक ने ग्रामीण अधिकोषों को अनेक रियायतें प्रदान की हैं जिनमें से मुख्य निम्नांकित हैं:-

(i) ग्रामीण अधिकोषों को उनकी स्थापना तिथि से ही रिजर्व बैंक अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में शामिल कर लिया जाता है।

(ii) ग्रामीण अधिकोषों को अपने मांग एवं सावधि दायित्वों का केवल 3 प्रतिशत भाग नकद कोष में है और 25 प्रतिशत भाग तरल रूप में रखना पड़ता है।

(iii) 1 जनवरी, 1977 से ये अधिकोष किसी भी राष्ट्रीय अधिकोष के माध्यम से अपनी शाखाओं को निःशुल्क धन का प्रेषण कर सकते हैं। यह राशि एक बार में 5000 रुपए से कम नहीं होनी चाहिए।

(15) निक्षेपों का बीमा:—अन्य अधिकोषों की भांति इन अधिकोषों को भी अपने निक्षेपों का बीमा करवाना पड़ता है। यह बीमा भारतीय निक्षेप बीमा एवं गारण्टी निगम द्वारा किया जाता है।

(16) रिजर्व बैंक व पुनर्वित्त:—इन्हें रिजर्व बैंक से बैंक दर से 2 प्रतिशत कम ब्याज दर पर पुनर्वित की सुविधा प्राप्त है। यह सुविधा पूर्व निर्धारित सीमा के भीतर दी जाती है। आजकल यह सीमा एक वर्ष के लिए तय की जाती है।

प्रश्न

1. ग्रामीण अधिकोषों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।